धर्मवीर भारती

ग्रन्थावली

धर्मवीर भारती ग्रन्थावली-1

उपन्यास और लंबी कहानियाँ

धर्मवीर भारती ग्रन्थावली

खण्ड : एक

उपन्यास और लंबी कहानियाँ

खण्ड : दो

कहानियाँ और एकांकी

खण्ड : तीन

कविताएँ और गीति-नाट्य

खण्ड : चार

निबंध साहित्य

खण्ड : पांच

समीक्षा साहित्य

खण्ड : छः

संस्मरण साहित्य

खण्ड : सात

यात्रा साहित्य

खण्ड : आठ

अनूदित साहित्य

खण्ड : नौ

शोध साहित्य

धर्मवीर भारती ग्रन्थावली

खण्ड : एक

सम्प

चन्द्रकान्त

वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली-110002

ISBN 81-7055-613-9

वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण : 1999

कम्प्यूटेक सिस्टम, दिल्ली-110093
द्वारा लेज़र कम्पोज़

मेहरा ऑफसेट प्रेस, नयी दिल्ली-110002
द्वारा मुद्रित

DHARAMVIR BHARTI
GRANTHAWALI-1
Edited by Chandrakant Bandiwadekar

डॉ. भारती का लेखन

डॉ. भारती के सम्पूर्ण प्रकाशित साहित्य को ग्रन्थावली के रूप में प्रस्तुत करते हुए मुझे अनेक कारणों से अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है। मैं हृदय से स्वीकार करता हूँ कि भारती जी हिन्दी के वरिष्ठतम रचनाकारों में से एक हैं। उनकी बहुआयामी प्रतिभा और विलक्षण अभिव्यक्ति-क्षमता का मणि-कांचन योग अपने आप में एक उदाहरण है।

भारती जी ने अनेक प्रभावपूर्ण गीतों और सशक्त कविताओं की रचना की है किन्तु 'अन्धायुग' और 'कनुप्रिया' काव्य कृतियाँ हिन्दी काव्य-जगत की अमूल्य निधि बन गयी हैं। इन कृतियों की नितान्त मौलिक और अनूठी परिकल्पना, तीव्र एवं सघन काव्यानुभूति, चिन्तनपरक संवेदनशीलता, संस्कारशील सांस्कृतिक निष्ठा, परम्परा और आधुनिकता की सम्यक् संश्लिष्टता और कालजयी रसवत्ता इन्हें अन्यतम महिमा से मंडित करती हैं। सहृदय पाठकों और सुधी समीक्षकों ने इनकी महत्ता को निरपवाद रूप से स्वीकार किया है और मुक्त कंठ से सराहा है। साहित्य, रंगमंच और विवेक संगत सृजनशील सम्वेदना का इतिहास इन रचनाओं के गौरवपूर्ण उल्लेख के बिना अधूरा रहेगा।

भारती जी के उपन्यासों में 'गुनाहों का देवता' को कल्पनातीत लोकप्रियता मिली किन्तु उसमें निहित मनोवैज्ञानिक गहनता और मध्यवर्गीय जीवन के सांस्कृतिक तनावों को प्रायः अनदेखा किया गया है। 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से सराहा गया और अपनी संरचनात्मक विलक्षणता के कारण चालीस वर्षों के बाद भी चुनौती देता रहा है। उपन्यासों के साथ ही भारती जी की कहानियाँ अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। उनके कथा संग्रह 'स्वर्ग और पृथ्वी' की कल्पनाप्रवण कहानियों का यथोचित मूल्यांकन नहीं हो पाया। इसके लिए ये कहानियाँ नहीं, हिन्दी

की समीक्षा दृष्टि जिम्मेदार है। हिन्दी का समीक्षा लेखन समसामयिकता और प्रासंगिकता के प्रति (कभी-कभी असाहित्यिक स्तर पर आकर) अत्यन्त आग्रहशील रहा है। परिणामस्वरूप भावप्रवण कलात्मक कृतियों की उपेक्षा की गयी। भारती जी के 'बन्द गली का आखिरी मकान' कथा संग्रह की चारों कहानियाँ निश्चित रूप से हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों में गिनी जायेंगी। वैसे भारती का समस्त साहित्य भारतीय जीवन मूल्यों से गहरे स्तर पर जुड़ा हुआ है लेकिन 'यह मेरे लिए नहीं' जैसी कहानी में अपने भीतरी भारतीय स्रोतों और संस्कारों को उभरते हुए देखने का कलात्मक प्रयास अपनी सिद्धि में अद्वितीय है। भारती जी की परम्परा पोषित सांस्कृतिक चेतना हठधर्मी संकीर्णता का अनुसरण नहीं करती। सृजन के धरातल पर उनकी दृष्टि व्यापक और प्रगतिशील (दलगत अर्थ में नहीं, वास्तविक अर्थ में) है। 'बन्द गली का आखिरी मकान' जैसी कहानी पश्चिमी परम्परा की श्रेष्ठतम कहानियों में परिगणित की जा सकती है।

डॉ. भारती ने जिस सृजनात्मक ऊर्जा के साथ ललित साहित्य की रचना की उसी ऊर्जा से साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि विषयों पर चिन्तनपरक गम्भीर लेखन भी किया। 'ठेले पर हिमालय', 'कहनी अनकहनी', 'पश्यंती' जैसी पुस्तकों में संकलित निबन्धों, संस्मरणों, डायरी के पन्नों, व्यंग्यात्मक लेखों को पढ़ते समय भारती के बहुमुखी अध्ययन की व्यापकता, चिन्तन की गहराई, विश्लेषण की नीर-क्षीर विवेकी शक्ति और स्मृति में संचित विश्वसाहित्य की महान घटनाओं का जीवन्त सन्दर्भ हमें सुखद आश्चर्य में डालता है। उनका कविसुलभ भावुक मन सौन्दर्य के प्रति जितना समर्पणशील है उतना ही साहसी और चिन्तनशील भी। प्रकृति-सौन्दर्य के आकर्षण ने उन्हें यात्री बनाया और यात्रा ने मुक्त तथा उदार। वे जिस प्रकार सौन्दर्य संवेदन से अभिभूत होते हैं उसी सहजता से मृत्यु का भी चिन्तन करते हैं। दोनों ही स्थितियों में उनका भारतीय मानस उदात्त महिमा से मंडित रहता है। फूलों के विभिन्न प्रकारों, रंगों और आकारों के प्रति स्वभावतः आकृष्ट होने वाले डॉ. भारती कभी आकाश की अथाह नीलिमा में डूब जाते हैं और इसी विराट नीलिमा में उन्हें प्रेम, पवित्रता, असीम गहनता, अनन्त ऊँचाई, माधुर्य, विराटता, भव्यता, असीमता आदि सब कुछ मिल जाता है। जिन्दगी को गहराई में जीने के सार्थक क्षणों को भारती जी बड़ी सूक्ष्मता से पकड़ते हैं और उन्हें सार्थक अभिव्यक्ति देते हैं। वस्तुतः यह ऊर्ध्वगामी मानसिकता अध्यात्म की ही एक अनोखी अभिव्यंजना है।

डॉ. भारती ने अपनी जन्मजात भारतीय मानसिकता को संस्कारों से निरन्तर सींचा है, और गहन अध्ययन से पुष्ट किया है। उनकी रचनाओं में रामायण, महाभारत, गीता, भागवत्, रामचरित मानस, कालिदास, टैगोर आदि के प्रचुर सन्दर्भ उनके गहन

अध्ययन और अर्जित ज्ञान की व्यापकता का पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने अपने बहुमुखी अध्ययन को इस प्रकार आत्मसात किया है कि वह उनके व्यक्तित्व का अंग बन गया है। किन्तु विशेष बात यह है कि उन्होंने भारतीय परम्परा की भाँति ही पूरी सजगता और निष्ठा के साथ पाश्चात्य परम्परा का अध्ययन और मंथन किया है। चूँकि डॉ. भारती के व्यक्तित्व की नींव में जीवन्त भारतीय परम्परा है इसलिए वे पश्चिमी साहित्यिक कृतियों, विचारधाराओं और अनुभव परम्पराओं से प्रभावित तो होते हैं परन्तु अपने विवेकपूर्ण संयम और सन्तुलन के साथ।

डॉ. भारती ने अपने समकालीन साहित्य सृजन के प्रति आत्मीय लगाव ही नहीं रखा अपितु अनेक महत्त्वपूर्ण और मूलभूत साहित्यिक प्रश्नों पर गम्भीर चिन्तन और मनन भी किया। सन् 1950 के बाद हिन्दी साहित्य मीमांसा में दो वैचारिक प्रवृत्तियों का अन्तर्द्वन्द्व रहा है। एक मार्क्स से प्रभावित साहित्य मीमांसा और दूसरी किसी भी राजनैतिक अथवा सांस्कृतिक विचारधारा को अन्तिम न मानकर मनुष्य की विवेकशीलता, मानवीय मूल्यों के प्रति निष्ठा और समर्पण को महत्त्व देनेवाली उदार साहित्य मीमांसा। भारती जी इन मतवादों से मुक्त और वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न स्वतन्त्र विचारक हैं। इस सन्दर्भ में भारती जी की 'प्रगतिवाद : एक समीक्षा' एवं 'मानवमूल्य और साहित्य' जैसी कृतियाँ और साहित्यिक विषयों पर लिखे गये निबन्ध विशेष उल्लेखनीय हैं। 'पश्यंती' के विचारोत्तेजक निबन्धों में भारती जी की सजग, सन्तुलित और प्रखर चिन्तन दृष्टि की समग्रता प्रमाणित होती है। वे जिस विषय पर भी लेखनी उठाते हैं उसमें एक नूतन विचार क्षितिज, अनस्पर्शित वस्तुबोध और अनपहचाने मर्म का उद्घाटन होता है। सामयिक विषयों पर लिखी गयी उनकी टिप्पणियों में भी कोई न कोई ध्यानाकर्षक मौलिक पक्ष उभरता है।

डॉ. भारती ने 'धर्मयुग' का सम्पादन कार्य स्वीकार किया। इस दायित्व का उनके ललित साहित्य सृजन पर निश्चित रूप से प्रभाव पड़ा। किन्तु एक सांप्ताहिक पत्रिका को सर्वसमावेशी व्यापकता प्रदान कर साहित्य एवं अन्य कलाओं, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक समस्याओं, देश-विदेश की महत्त्वपूर्ण सूचनाओं एवं नये ताजे खूनवाले साहित्यकारों की रचनाओं को जनता के सामने ले आना और पत्रिका को आतुर प्रतीक्षा की वस्तु बनाना यदि सृजनशील कार्य है (और क्या हो सकता है ?) और हिन्दी भाषा तथा हिन्दी साहित्य की छवि को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करना यदि महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कार्य है, हिन्दी साहित्य के वर्तमान स्वरूप को अखिल भारतीय पाठकों के सामने प्रस्तुत करना, विभिन्न भाषाओं को परस्पर समीप लाना, भारत की सामाजिक संस्कृति को प्रोत्साहित करना यदि रचनाधर्मिता का अंग है तो 1960 से 1987 तक के कालखण्ड को भारती जी की

महत्त्वपूर्ण साहित्य सेवा का पर्व माना जाना चाहिए। 'धर्मयुग' के सम्पादकीय कार्य का मूल्यांकन जब कभी होगा तब होगा परन्तु प्रस्तुत ग्रन्थावली में हम भारती जी के सम्पादकीय कृतित्व का एक गौरवपूर्ण पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त कर रहे हैं जो हमारी सुखद उपलब्धि है।

भारतीय विजयवाहिनी और बांग्लादेश की मुक्तिवाहिनी के सम्मिलित अभियान में डॉ. भारती भी अपने सम्पादकीय और लेखकीय कार्य के लिए सम्मिलित हुए। आश्चर्य है कि खूनी मुठभेड़ों, बम और गोलियों की वर्षा, घायलों और मुरदों के बीच से युद्धयात्रा करते हुए भारती जी के असैनिक और अनभ्यस्त कदम रंचमात्र भी नहीं डगमगाए। उन्होंने अपनी आँखों से बांग्लादेश की जनता का राष्ट्रीय उत्साह और समर्पण भाव देखा। समस्त भारतीय साहित्यकारों में डॉ. भारती ही ऐसे थे जिन्होंने अपनी जान की बाजी लगाकर दरिद्र जनजीवन की दुर्दम स्वतन्त्रताकांक्षा की अपरिमेय ऊर्जस्विता का आँखों देखा हाल प्रस्तुत किया। क्रान्ति कार्यों में सम्मिलित होनेवाले अथवा किसी महान उद्देश्य की सिद्धि के लिए प्राणों को निछावर करनेवाले पश्चिमी लेखकों के नाम सुने जाते हैं। भारती जी ने अपने इस साहसिक अभियान से भारतीय लेखकों को गौरवान्वित किया है। इस अभियान के विलक्षण अनुभवों का लोहमर्षक और चित्रात्मक प्रस्तुतीकरण भारती जी ने 'युद्धयात्रा' और 'मुक्तक्षेत्रे युद्धक्षेत्रे' कृतियों में किया है जो ग्रन्थावली में सम्मिलित हैं।

डॉ. भारती ने प्रतिभा के प्रारम्भिक उन्मेष काल में अनेक दिशाओं में कार्य किया। उसमें अनुवाद की दिशा भी एक थी। आस्कर वाइल्ड की आठ महत्त्वपूर्ण कहानियों का प्रभावपूर्ण अनुवाद डॉ. भारती ने प्रस्तुत किया। परन्तु उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है यूरोप और अमेरिका के इक्कीस देशों की एक सौ इकसठ चुनिन्दा कविताओं का अनूठा संकलन। काव्यानुभव संस्कृति, सामाजिक जीवन, राजनैतिक वातावरण को अतिक्रान्त करके मनुष्य में निहित एकता के सूत्र को कैसे छू लेता है, इसका प्रामाणिक उदाहरण भारती जी ने इस संकलन द्वारा प्रस्तुत किया। जहाँ तक मेरी जानकारी है, भारतीय भाषाओं में यह अद्वितीय प्रयास है। हिन्दी में भी सम्भवतः एक साथ इतने देशों के इतने कवियों की कविताओं का अनुवाद अभी तक प्रस्तुत नहीं किया गया है। भारती-ग्रन्थावली का यह खण्ड भी अपने आप में महत्त्वपूर्ण अंश है।

डॉ. भारती ने अपने प्राध्यापकीय जीवन के आरम्भकाल में श्रद्धेय धीरेन्द्र वर्मा के कुशल निर्देशन में 'सिद्ध साहित्य' जैसे जटिल विषय पर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया था। डॉ. भारती जैसा आधुनिक संवेदना सम्पन्न प्रतिभावान साहित्य सर्जक शोध में

रुचि रखे और कंटकाकीर्ण विकट रास्ते पर चलकर सार्थक गरिमा के साथ शोध कार्य पूरा करे, यह अपने आप में एक सुखद आश्चर्य है।

डॉ. भारती का सम्पूर्ण लेखन ही अनेक प्रकार के विरोधों को समन्वित करके उच्चतर और उदात्ततर धरातल की ओर गतिशील होनेवाला है। विपरीतताओं और विविधताओं के बीच सृजनशील समन्वय भारती जी की सिद्धि है। रोमैंटिसिज्म और यथार्थवाद, बौद्धिकता और भावात्मकता, कल्पना और संवेदनशीलता, आवेग और संयम, अनुभूतियों का विस्फोटक और यथोचित शिल्प-बोध, मानवीय जीवन विद्रूपता और मनुष्य की विवेकशील मूल्यनिष्ठा, मनुष्य की आदिमता और उसकी ऊर्ध्वगामी आत्मिक ऊर्जा, रंग, गन्ध, रूप के प्रति अनिवार आकर्षण और जीवन को कुरबान करने की साहसिकता जैसी विषमताओं के बीच सृजनशील सम्यक् समन्वय भारती जी के साहित्यिक कृतित्व का मर्म है। उनके समग्र कृतित्व के बीच से गुजरते हुए मैंने भी कुछ सार्थक क्षणों का अनुभव किया है जो मेरी अविस्मरणीय उपलब्धि है।

ग्रन्थावली का यह कठिन कार्य मेरे लिए इतना सुगम कदापि न होता यदि श्रीमती पुष्पा भारती का उदार और सक्रिय सहयोग न मिलता। मैं उनके आत्मीय सहयोग के प्रति हृदय से आभारी हूँ। वाणी प्रकाशन के निदेशक श्री अरुण माहेश्वरी को भी मैं साधुवाद देना चाहूँगा जिनका साहित्यानुराग और आन्तरिक उत्साह प्रस्तुत ग्रन्थावली के प्रकाशन का एक प्रमुख कारण बना। सम्पादन के दौरान श्री बिशन टंडन के मूल्यवान परामर्श के लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

सुधी पाठकों के हाथों में ग्रन्थावली को प्रस्तुत करते हुए मैं पूरी तरह आशान्वित हूँ कि मेरा यह प्रयास डॉ. भारती के कृतित्व को समग्र रूप से आकलित और मूल्यांकित करने में सहायक होगा।

–चन्द्रकान्त बांदिवडेकर

संपादकीय

धर्मवीर भारती ग्रन्थावली के प्रथम खंड में उनके दो उपन्यास 'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' तथा उनकी लंबी कहानियों का संग्रह 'बंद गली का आखिरी मकान' सम्मिलित है।

भारती के 'गुनाहों का देवता' का हिंदी जगत् में संमिश्र स्वागत हुआ। 1998 तक 30 संस्करण छपे। पहला संस्करण 1949 में छपा था। उसके सात संस्करणों के बाद 1959 में ज्ञानपीठ की ओर से पहला संस्करण छपा। 1998 तक 30 संस्करण छपे। यह अभूतपूर्व लोकप्रियता है। परंतु समीक्षकों ने उसको रोमानी घोषित किया। 1950 के बाद हिंदी साहित्यिक जगत् में साहित्यकार की प्रतिबद्धता और साहित्य की सामाजिकता का जो नारा उठा उसमें व्यक्ति के राग संबंधों की ओर तथा मनोवैज्ञानिक जटिलता की ओर शंकास्पद दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति उभरी। स्त्री-पुरुष संबंधों और प्रणय की ओर कुछ अवहेलना की दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति बलवती हुई। आदर्श, सौंदर्य, कल्पना एवं भावना को यथार्थ के परीप्रेक्ष्य में कुछ हेय नज़रिये से देखने की एक संकुचित परिपाटी चल निकली। आत्मा, पवित्रता, प्रेम, वासनारहित आत्मीय संबंध, भारतीय जीवन दर्शन, स्त्री-पुरुषों का संवादपूर्ण जीवन-साहचर्य इत्यादि बातों की ओर कुछ भावुकता की मुद्रा लगा कर देखा गया। यह आधुनिकता का अधूरा साक्षात्कार था। जो बातें एकांगी दृष्टि में लांछित-सी हुईं वे 'गुनाहों का देवता' में केंद्र-स्थानीय थीं। फिर लोकप्रियता के शिखर को छूने वाली रचना को लांछित कर देखने की एक कुंठित मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया भी समीक्षा व्यापार में सक्रिय थी—इसे आज की तारीख में समझना चाहिए। इसी का सम्मिलित परिणाम 'गुनाहों का देवता' पर 'किशोरावधीन भावुकता' का आरोप लगने में होना स्वाभाविक था। सिद्धान्तों के ध्रुवीकरण में सृजन के वैविध्यपूर्ण व्यापार को हानि पहुँचना भी स्वाभाविक था। असल में यथार्थ और आदर्श, वास्तविकता और कल्पना, यथातथ्यता और रोमान,

व्यक्ति और समाज, व्यक्तिवाद और समष्टिवाद, समकालीनता और अतीत, समयविद्धता और समयातीतता, ये अवधारणाएँ साहित्य और कला के क्षेत्र में नितांत विरोधी तत्त्व नहीं होते—नहीं समझने चाहिए। असली शक्तिशाली सर्जक इनके बीच के तथाकथित द्वंद्व को दूर हटाकर ही रचनारत होता है—'गुनाहों का देवता' में यही प्रक्रिया सम्पन्न हुई है।

'गुनाहों का देवता' का पहला इलाहाबाद का भास्वर चित्र ही लेखक की समग्र जीवन दृष्टि का बोध कराता है जिसमें प्रकृति और मनुष्य, नगर और गाँव, समाज और व्यक्ति, रोमान और यथार्थ, सौंदर्य और वास्तविकता, गंभीरता और मज़ाक एक साथ संवादी भाव में विद्यमान हैं। इसमें कुछ किशोरवयीन भावुकता भी है परंतु वह अनुभव की प्रक्रिया में है, परिणाम में नहीं। इसमें एक विलक्षण इंटेंसिटी भी पैदा हुई है। श्रेष्ठ साहित्य की सीढ़ी पर चढ़ने के लिए इंटेंसिटी एक महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य है।

'गुनाहों का देवता' की लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण लेखक की कथा कहने की अद्‌भुत कला भी है। और कहानी है तो उसके साथ पाठक की उपस्थिति का सजग भाव है इसीलिए वे शैलीगत उपकरण भी हैं जो कहानी सुनाने के दौरान इस्तेमाल में लाए जाते हैं। मसलन, कहानी के अनुभव पर अतीत में घटित होने की छाया, घटित का बयान, संप्रेषण के लिए उपयोजित अलंकरण (भारतीय परंपरा में दृष्टान्त, उपमा-आधुनिक परंपरा में बिंबविधान), आत्मप्रकटीकरण और निवेदन या वृत्तकथन का सम्मिलित रूप, व्यक्तियों, प्रसंगों, मानसिक भावों, स्थितियों का चित्ररूप मूर्तिकरण और रोचक बयानबाजी। धर्मवीर भारती का वैशिष्ट्य यह है कि वे कहानी के द्वारा संप्रेषित कर रहे हैं व्यक्तियों और उनके संबंधों का महत्त्वपूर्ण जीवनानुभव। चूँकि खास तरह की पारदर्शी सिंसिरिटी से यह रचना आलोकित होती है, इसमें विभिन्न प्रसंगों में उनकी उत्कट, तीव्र, प्रभावपूर्ण प्रणाली में यह आलोक झिलमिलाता दीखता है।

इसमें एक युवा मानस के केंद्रीय अनुभव—प्रणयानुभव की शक्तिशाली अभिव्यक्ति हुई है। उसकी शक्ति का एक कारण चरित्रों की विलक्षण संवेदनशीलता है, दूसरा कारण चरित्रों की मानसिकता के रेशे-रेशे समाज में, जिस मध्यवर्गीय और जात-पात में संकुचित समाज में पात्र जी रहे हैं, उसमें गुंथे होने में है। यहाँ सामाजिक परिवेश के यथार्थ ने चरित्रों की मानसिकता को उभारने में सघन भूमिका निभाई है और मानसिकता ने समाज-सत्य को प्रकाशित किया है।

'गुनाहों का देवता' के अधिकांश चरित्र प्रणय के दो रूपों के बीच उलझे हुए हैं—प्रणय का वासनारहित, देहमान रहित पवित्र, आदर्श और विशुद्ध आत्मिक रूप और दूसरा प्रणय को वासना का पर्याय माननेवाला रूप। चंदर, सुधा, विनती और गेसू, पम्मी ड्रिक्रूज—हिंदू, मुसलमान, ईसाई सभी व्यापक अर्थ में हिंदू एप्रोच से संस्कारित हैं जिसमें आत्मा और देह को दो पृथक् इकाइयों के रूप में माना जाता रहा है।

जिसमें वासना कुछ लांछित-सी है। पम्मी ड़िक्रूज कुछ अलग ज़रूर है परंतु समर्पण, निष्ठा और ईमानदारी को बेहद महत्त्व वह भी देती है। फिर उसका अंतिम वरण भी हिंदू-इथॉस का समर्थन करता है।

चंदर की कौमार्य संपृक्त युवावस्था और सुधा की वयः संधि की अवस्था में उभरे प्रेम का स्वरूप रोमानी, कल्पनाजीवी, उत्कट और तरल है तो वह एक मनोवैज्ञानिक यथार्थ ही है। सुधा और चंदर के प्रणय का कुछ उलझा हुआ, कुछ अस्पष्ट, अनिर्णीत, रहस्यमय रूप युवा मानसिकता के मनोवैज्ञानिक यथार्थ के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। भारतीय समाज की जाति व्यवस्था ने और पारिवारिक यथार्थ ने उसे अधिक जटिल बनाया है। परिणाम में मानसिक यथार्थ का कटु बोध सुधा के विवाह के उपरान्त मर्मांतक रूप में प्रकट होना ही स्वाभाविक है, कलात्मकता सम्मत भी। चंदर की धुरीहीन मानसिकता की विवेकहीन दौड़ और सुधा की मानसिक यातना और रुग्णता का स्वरूप भी इस यथार्थ में खुलता है। यह उपन्यास उतना चरित्रों का उद्घाटन करने वाला नहीं है जितना मानसिक अवस्थाओं के सशक्त अंकन का है। इसलिए मानसिक उद्वेलनों, तनावों, संघर्षों का जो खूबियों से भरपूर प्रभविष्णु चित्र उभरता है वह महत्त्वपूर्ण है। चंदर की मानसिकता का यथार्थ-स्वरूप सुधा, विनती, गेसू, पम्मी के सम्मिलित संदर्भ में देखा जाए तो 'गुनाहों का देवता' की सशक्त संरचना का एक महत्त्वपूर्ण रूप उभरता है। सुधा की शारीरिक रुग्णता और उसका धार्मिक ग्रंथों के पठन की ओर झुकाव भी लेखक की गहरी मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का परिचायक है। सुधा का परिवेश पूर्णतः नागर है तो गाँव से आई विनती की मानसिक मजबूती गाँव में पले व्यक्तित्व का परिणाम है। इन पाँच चरित्रों के आपसी संबंधों से बुनी हुई अन्तर्वस्तु को समझना ही 'गुनाहों का देवता' को सही संदर्भ में समझना है। इसी संदर्भ में पम्मी का चंदर को लिखा हुआ पत्र जिसमें प्रेम और विवाह को ले कर एक महत्त्वपूर्ण संकेत है, आज की तारीख में भी विचारणीय है। "मैं ईसाई हूँ, पर सभी अनुभवों के बाद मुझे पता लगा है कि हिंदुओं के यहाँ प्रेम नहीं वरन् धर्म और सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर विवाह की रीति बहुत वैज्ञानिक और नारी के लिए ज्यादा लाभदायक है। जिस नीड़ को मैं इतने दिनों पहले उजाड़ चुकी थी, आज वह फिर मुझे पुकार रहा है। हर नारी के जीवन में वह क्षण आता है और शायद इसीलिए हिंदू प्रेम के बजाए विवाह को महत्त्व देते हैं।" ध्यातव्य है सुधा की मृत्यु के बाद उसके पिता चंदर और विनती के जातिबाह्य विवाह के लिए अनुमति देते हैं। क्या यह परिणति किसी रोमांटिक नज़रिए की परिणति है ? उपन्यास मनोवैज्ञानिक प्रसंगों और भावात्मक जटिलता की स्थितियों के साथ समकालीन वैचारिक वातावरण में व्याप्त महत्त्वपूर्ण विचारों से भी संपृक्त है और ये विचार औपन्यासिक अनुभव को शक्ति प्रदान करते हैं। इसलिए प्रसंगों का निर्माण चरित्रों का स्वाभाविक उभार और कलात्मक विकास, केंद्रीय अनुभव के विविध अंगों

का वैविध्य और उनका सघन रचाव, जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों से गहन लगाव, साहित्यिक प्रवृत्तियों के स्थापित रूपों को चुनौती देते हुए उनके परे जाने की क्षमता, भाषिक क्रीड़ा की वैविध्यपूर्ण समृद्धि इत्यादि दृष्टियों से 'गुनाहों का देवता' हिंदी का एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है।

1952 में पहली बार प्रकाशित 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' अपने समय का अद्वितीय उपन्यास रहा है। उसके बाद भी अनोखी शैली, अप्रतिम शिल्प कौशल, अनेक स्तरीय यथार्थ की अनेक स्तरीय अभिव्यक्ति, विलक्षण संकेतपूर्णता, अत्यल्प रेखाओं में ठोस जीवन चरित्रों की सृष्टि, वैविध्यपूर्ण घटनाओं का चित्रमय रेखांकन और इनके सबके बीच झिलमिलाती जीवन दृष्टि की गतिमय ध्वन्यात्मता इत्यादि कतिपय वैशिष्ट्यों के कारण प्रस्तुत रचना की समकक्षता करनेवाली विरल रचनाएँ बाद में आईं। 40/42 वर्षों के बाद श्याम बेनेगल जैसे दृष्टिसंपन्न फिल्म निर्देशक को इस रचना ने फिल्म बनाने के लिए उत्तेजित किया, यह तथ्य उपरोक्त बात को प्रमाणित करता है। 'गुनाहों का देवता' के प्रचण्ड यश के उपरान्त उससे सर्वथा अलग रूप में रचनारत होना बहुरूपिया प्रतिभा और प्रयोगशीलता का परिचायक है। यहाँ प्रेम और प्रणय को परिवेश की जटिलता में रख कर समूची भाव विह्लता और दिव्यता को तार तार कर दिया है। यहाँ यथार्थ हाशिए से उठकर केंद्र में आ गया है। परिवेश की जटिलता में मनुष्य का भाव-संसार किस तरह विद्रूप और लुंजपुंज हो जाता है, इसका निर्मम परंतु वस्तुनिष्ठ चित्र यहाँ है। यहाँ रोमांटिक, मादक, शबाबी शैली के परखचे उड़ाए गए हैं। अपने पूर्व प्रतिष्ठित और स्थापित वैशिष्ट्यों को तोड़मोड़ कर नए रूप मैं रचनारत होना लेखक के साहस और प्रखर प्रयोगक्षम अन्तर्दृष्टि को स्पष्ट करता है। यहाँ स्वप्न चित्रण सुर-रियलिज़्म का रूप प्रकट करता है। इन प्रेम-कहानियों में वैविध्य है—इतना कि प्रेम शब्द को बहुत लचीला और व्यापक भी बनाना पड़ता है। प्रेम के ये विविध रूप ठोस परिवेश के यथार्थ से टकराते हुए गतिशील होते हैं—यह गति दुख सागर की ओर उन्मुख है। माणिक मुल्ला की यह टिप्पणी कि ये प्रेम कहानियाँ 'नीति-प्रेम' कहानियाँ हैं। सटीक है। लेकिन माणिक मुल्ला भविष्य में आस्था के सातवें घोड़े का भी संकेत करते हैं—यह भारतीय मानसिकता है। कहानियों का आनंद देने वाला यह उपन्यास अनेक आयामी अनुभव भी प्रकट करता है।

धर्मवीर भारती की लंबी कहानियों के संग्रह की शीर्षक कहानी 'बंद गली का आखिरी मकान' 1969 में प्रकाशित हुई जो हिंदी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से एक है ही, चेखव, दोस्तोवस्की, टालस्टाय, डी. एच. लारेंस की श्रेष्ठ कहानियों की पंक्ति में भी शामिल हो सकती है। आशय की सघनता, अनुभव की व्यापकता, रसात्मक प्रसंगों की चित्रमय, नाट्यपूर्ण अभिव्यक्ति, बुद्धि-भावना-कल्पना का कलात्मक संतुलन, करुण और हास्य की परिष्कृत संयम समन्वित अभिव्यक्ति का अभिजात प्रदर्शन, गतिमय, ठोस, विलक्षण जीवन्त रेखाओं में सप्राण व्यामिश्र जीवन-चरित्र और भारतीय

मध्यवर्ग की सामूहिक मानसिकता का प्रतीतिपूर्ण प्रस्तुतीकरण, मुहाने की मिट्टी से सहज उद्भासित विविध रंगी वनस्पतियों की तरह परिवेश से सहज उपजे जीवन व्यापारों की चहल पहल, सामान्य व्यक्ति की मानसिकता को गहराई से पकड़ कर पूर्णता देने की कला और भारतीय जनजीवन के रक्त में प्रवाहित सांस्कृतिक और दार्शनिक धाराओं के स्रोतों का निकेत करते हुए कहानी के ताने-बाने को समृद्धता देने की क्षमता—ये सारे वैशिष्ट्य 'बंद गली का आखिरी मकान' में सुधी पाठक को प्रभावित करते हैं। सामान्य व्यक्ति की सामान्य घटनाओं और अनुभवों और सामान्य सुख-दुखों के प्रसंगों को ले कर उसकी संवेदनात्मक लड़ाई प्रारंभ करते हुए उसके भी हृदय तल पर कौरव-पांडवों के युद्ध की-सी हलचल दिखा कर एक श्रेष्ठ कहानी की संरचना करना अपने आप में एक कलात्मक चुनौती है जिसे सफलतापूर्वक भारती ने झेलकर पूर्ण किया है। भारती की इन कहानियों में समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के ताने-बाने ऐसे एक दूसरे में कलात्मकता के साथ बुने गए हैं कि अनुभव शक्तिशाली होता है। इन कहानियों की अनगिनत कलात्मक बारीकियाँ कहानी के अनुभव को गहराई, विस्तार और प्रभविष्णुता प्रदान करती हुई भी अलग से ध्यान आकृष्ट नहीं करतीं—यह परिपक्व कलाकार का ही प्रमाण है। सूक्ष्म जीवन ध्वनियों से गुंजायमान यह अनुभव कला के चरमोत्कर्ष का उदाहरण है।

विश्वास है यह प्रथम खंड भारती के कथाकार का एक सम्यक् और शक्तिशाली रूप पाठकों के सामने प्रस्तुत करेगा।

—चंद्रकांत बांदिवडेकर
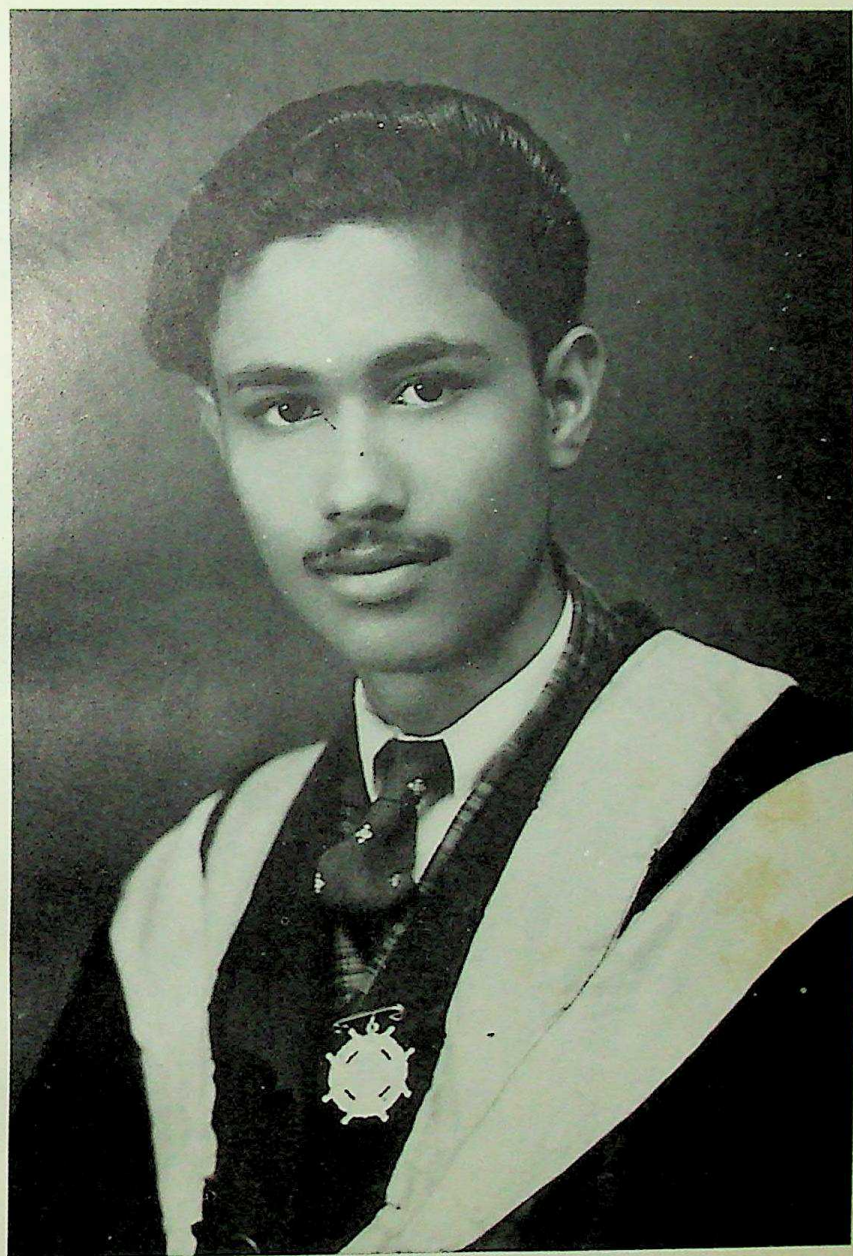
बी.ए. में हिंदी में सर्वाधिक अंक प्राप्त कर चिंतामणि घोस मैडल के साथ धर्मवीर भारती
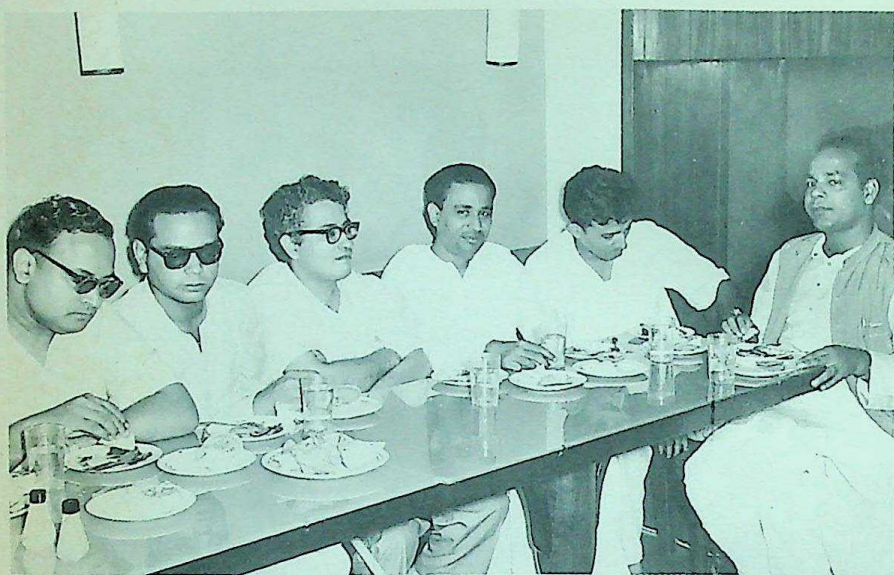
आनंद प्रकाश जैन, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती,
मुनीश सक्सेना और रामरिख मनहर
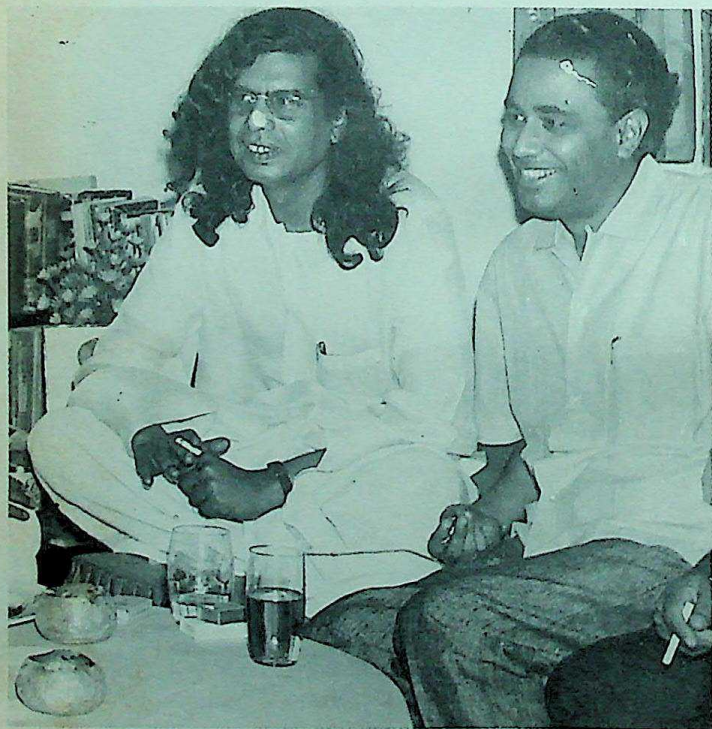
फणीश्वरनाथ रेणु के साथ धर्मवीर भारती

गुनाहों का देवता के लेखन के दौरान के धर्मवीर भारती पंक्ति में पीछे, आगे हैं निराला जी और इलाचंद्र जोशी
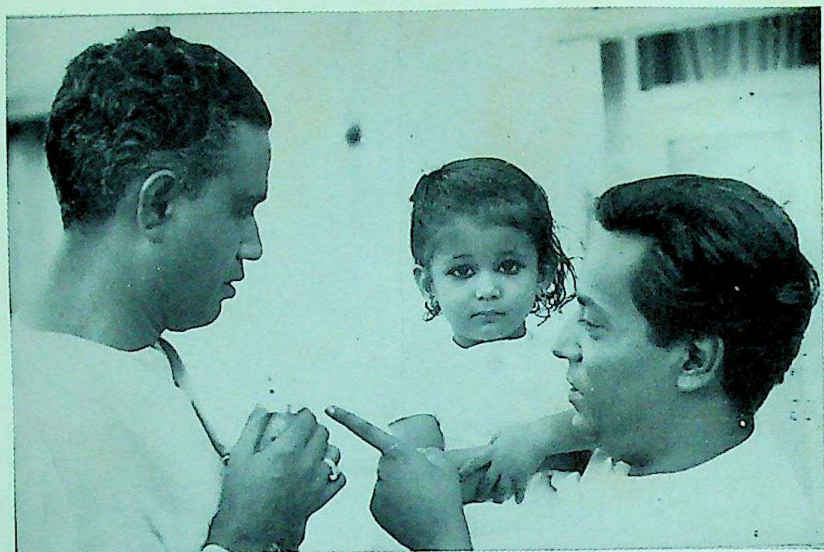
कमलेश्वर (गोदी में भारतीपुत्री प्रज्ञा) और धर्मवीर भारती
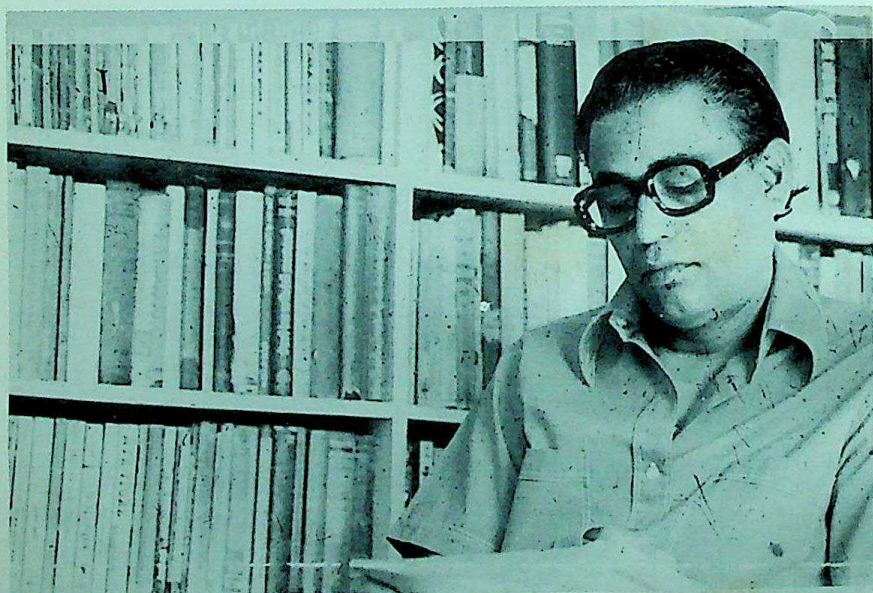
गहन अध्येता धर्मवीर भारती

अनुक्रम

उपन्यास

गुनाहों का देवता 17

सूरज का सातवाँ घोड़ा 261

लंबी कहानियाँ

गुलकी बन्नो 351

सावित्री नंबर दो 366

यह मेरे लिए नहीं 385

बंद गली का आखिरी मकान 406

गुनाहों का देवता

इस उपन्यास के नये संस्करण पर दो शब्द लिखते समय मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या लिखूँ ? अधिक-से-अधिक मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता उन सभी पाठकों के प्रति व्यक्त कर सकता हूँ जिन्होंने कलात्मक अपरिपक्वता के बावजूद इसको पसन्द किया है। मेरे लिए इस उपन्यास का लिखना वैसा ही रहा है जैसा पीड़ा के क्षणों में पूरी आस्था से प्रार्थना करना, और इस समय भी मुझे ऐसा लग रहा है जैसे मैं वह प्रार्थना मन-ही-मन दोहरा रहा हूँ, बस···

–धर्मवीर भारती

एक

अगर पुराने जमाने की नगर-देवता की और ग्राम-देवता की कल्पनाएं आज भी मान्य होतीं तो मैं कहता कि इलाहाबाद का नगर-देवता जरूर कोई रोमैण्टिक कलाकार है। ऐसा लगता है कि इस शहर की बनावट, गठन, जिन्दगी और रहन-सहन में कोई बँधे-बँधाये नियम नहीं, कहीं कोई कसाव नहीं, हर जगह एक स्वच्छन्द खुलाव, एक बिखरी हुई-सी अनियमितता। बनारस की गलियों से भी पतली गलियाँ और लखनऊ की सड़कों से चौड़ी सड़कें। यार्कशायर और ब्राइटन के उपनगरों का मुकाबला करने वाले सिविल लाइन्स और दलदलों की गन्दगी को मात करने वाले मुहल्ले। मौसम में भी कहीं कोई सम नहीं, कोई सन्तुलन नहीं। सुबहें मलयजी, दोपहरें अंगारी, तो शामें रेशमी ! धरती ऐसी कि सहारा के रेगिस्तान की तरह बालू भी मिले, मालवा की तरह हरे-भरे खेत भी मिलें और ऊसर और परती की भी कमी नहीं। सचमुच लगता है कि प्रयाग का नगर-देवता स्वर्ग-कुंजों से निर्वासित कोई मनमौजी कलाकार है जिसके सृजन में हर रंग के डोरे हैं।

और चाहे जो हो, नगर इधर क्वार, कार्तिक तथा उधर वसन्त के बाद और होली के बीच के मौसम से इलाहाबाद का वातावरण नैस्टर्शियम और पैंजी के फूलों से भी ज्यादा खूबसूरत और आम के बौरों की खुशबू से भी ज्यादा महकदार होता है। सिविल लाइन्स हो या अल्फ्रेड पार्क, गंगातट हो या खुशरूबाग, लगता है कि हवा एक नटखट दोशीजा की तरह कलियों के आँचल और लहरों के मिजाज से छेड़खानी करती चलती है। और अगर आप सर्दी से बहुत नहीं डरते तो आप जरा एक ओवरकोट डालकर सुबह-सुबह घूमने निकल जायें तो इन खुली हुई जगहों की फ़िजाँ इठलाकर आपको अपने जादू में बाँध लेगी। खास तौर से पौ फटने के पहले तो आपको एक बिलकुल नयी अनुभूति होगी। वसन्त के नये-नये मौसमी फूलों के रंग से मुकाबला करने वाली हलकी सुनहली, बाल-सूर्य की अँगुलियाँ सुबह की

राजकुमारी के गुलाबी वक्ष पर बिखरे हुए भौंराले गेसुओं को धीरे-धीरे हटाती जाती हैं और क्षितिज पर सुनहली तरुणाई बिखर पड़ती है।

एक ऐसी ही खुशनुमा सुबह थी, और जिसकी कहानी मैं कहने जा रहा हूँ, वह सुबह से भी ज्यादा मासूम युवक, प्रभाती गाकर फूलों को जगाने वाले देवदूत की तरह अल्फ्रेड पार्क के लॉन पर फूलों की सरजमीं के किनारे-किनारे घूम रहा था। कत्थई स्वीटपी के रंग का पशमीने का लम्बा कोट, जिसका एक कालर उठा हुआ था और दूसरे कालर में सरो की एक पत्ती बटन होल में लगी हुई थी, सफेद मक्खन जीन का पतला पैण्ट और पैरों में सफेद जरी की पेशावरी सैण्डिलें, भरा हुआ गोरा चेहरा और ऊँचे चमकते हुए माथे पर झूलती हुई एक रूखी भूरी लटा। चलते-चलते उसने एक रंग-बिरंगा गुच्छा इकट्ठा कर लिया था और रह-रह कर वह उसे सूंघ लेता था।

पूरब के आसमान की गुलाबी पाँखुरियाँ बिखरने लगी थीं और सुनहले पराग की एक बौछार सुबह के ताजे फूलों पर बिछ रही थी। "अरे सुबह हो गयी !" उसने चौंककर कहा और पास की एक बेंच पर बैठ गया। सामने से एक माली आ रहा था। "क्यों जी, लाइब्रेरी खुल गयी ?" "अभी नहीं बाबूजी !" उसने जवाब दिया। वह फिर सन्तोष से बैठ गया और फूलों की पाँखुरियाँ नोंचकर नीचे फेंकने लगा। जमीन पर बिछाने वाली सोने की चादर परतों पर परतें बिछाती जा रही थीं और पेड़ों की छायाओं का रंग गहराने लगा था। उसकी बेंच के नीचे फूलों की चुनी हुई पत्तियाँ बिखरी थीं और अब उसके पास सिर्फ एक फूल बाकी रह गया था। हलके फालसई रंग के उस फूल पर गहरे बैंजनी डोरे थे।

"हलो कपूर !" सहसा किसी ने पीछे से कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"यहाँ क्या झक मार रहे हो सुबह-सुबह ?" उसने मुड़कर पीछे देखा—"आओ, ठाकुर साहब ! आओ बैठो यार, लाइब्रेरी खुलने का इन्तजार कर रहा हूँ।"

"क्यों, युनिवर्सिटी लाइब्रेरी चाट डाली, अब इसे तो शरीफ लोगों के लिए छोड़ दो !"

"हाँ, हाँ शरीफ लोगों ही के लिए छोड़ रहा हूँ; डॉक्टर शुक्ला की लड़की है न, वह इसकी मेम्बर बनना चाहती थी तो मुझे आना पड़ा, उसी का इन्तजार भी कर रहा हूँ।"

"डॉक्टर शुक्ला तो पॉलिटिक्स डिपार्टमेण्ट में हैं ?"

"नहीं, गवर्नमेण्ट साइकोलॉजिकल ब्यूरो में।"

"और तुम पॉलिटिक्स में रिसर्च कर रहे हो ?"

"नहीं, इकनॉमिक्स में !"

"बहुत अच्छे ! तो उनकी लड़की को सदस्य बनवाने आये हो ?" कुछ अजब स्वर में ठाकुर ने कहा।

"छिः !" कपूर ने हँसते हुए, कुछ अपने को बचाते हुए कहा—"यार, तुम जानते हो कि मेरा उनसे कितना घरेलू सम्बन्ध है। जब से मैं प्रयाग में हूँ, उन्हीं के सहारे हूँ

और आजकल तो उन्हीं के यहाँ पढ़ता-लिखता भी हूँ⋯।"

ठाकुर साहब हँस पड़े—"पअरे भाई, मैं डॉक्टर शुक्ला को जानता नहीं क्या ? उनका-सा भला आदमी मिलना मुश्किल है। तुम सफाई व्यर्थ में दे रहे हो।"

ठाकुर साहब युनिवर्सिटी के उन विद्यार्थियों में से थे जो बरायनाम विद्यार्थी होते हैं और कब तक वे युनिवर्सिटी को सुशोभित करते रहेंगे, इसका कोई निश्चय नहीं। एक अच्छे-खासे रुपये वाले व्यक्ति थे और घर के ताल्लुकेदार। हँसमुख, फब्तियाँ कसने में मजा लेने वाले, मगर दिल के साफ निगाह के सच्चे। बोले—

"एक बात तो मैं स्वीकार करता हूँ कि तुम्हारी पढ़ाई का सारा श्रेय डॉ. शुक्ला को है ! तुम्हारे घर वाले तो कुछ खर्चा भेजते नहीं ?"

"नहीं, उनसे अलग ही होकर आया था। समझ लो कि इन्होंने किसी-न-किसी बहाने मदद की है।"

"अच्छा, आओ, तब तक लोटस-पाण्ड (कमल-सरोवर) तक ही घूम लें। फिर लाइब्रेरी भी खुल जायेगी !"

दोनों उठकर एक कृत्रिम कमल-सरोवर की ओर चल दिये जो पास ही में बना हुआ था। सीढ़ियाँ चढ़कर ही उन्होंने देखा कि एक सज्जन किनारे बैठे कमलों की ओर एकटक देखते हुए ध्यान में तल्लीन हैं। दुबले-पतले छिपकली से, बालों की एक लट माथे पर झूमती हुई—

"कोई प्रेमी हैं, या कोई फिलासफर हैं, देखा ठाकुर ?"

"नहीं यार, दोनों से निकृष्ट कोटि के जीव हैं— ये कवि हैं। मैं इन्हें जानता हूँ। ये रवीन्द्र बिसरिया हैं। एम. ए. में पढ़ता है। आओ, मिलायें तुम्हें !"

ठाकुर साहब ने एक बड़ा-सा घास का तिनका तोड़कर पीछे से चुपके-से जाकर उसकी गरदन गुदगुदायी। बिसरिया चौंक उठा—पीछे मुड़कर देखा और बिगड़ गया—"यह क्या बदतमीजी है, ठाकुर साहब ! मैं कितने गम्भीर विचारों में डूबा था।" और सहसा बड़े विचित्र स्वर में आँखें बन्द कर बिसरिया बोला, "आह ! कैसा मनोरम प्रभात है। मेरी आत्मा में घोर अनुभूति हो रही थी⋯।"

कपूर बिसरिया की मुद्रा पर ठाकुर साहब की ओर देखकर मुसकराया और इशारे में बोला—"है यार शगल की चीज। छेड़ो जरा !"

ठाकुर साहब ने तिनका फेंक दिया और बोले—"माफ करना, भाई बिसरिया ! बात यह है कि हम लोग कवि तो हैं नहीं, इसलिए समझ नहीं पाते। क्या सोच रहे थे तुम ?"

बिसरिया ने आँखें खोलीं और एक गहरी साँस लेकर बोला—"मैं सोच रहा था कि आखिर प्रेम क्या होता है, क्यों होता है ? कविता क्यों लिखी जाती है ? फिर कविता के संग्रह उतने क्यों नहीं बिकते जितने उपन्यास या कहानी-संग्रह ?"

"बात तो गम्भीर है।" कपूर बोला—"जहाँ तक मैंने समझा और पढ़ा है—प्रेम एक तरह की बीमारी होती है, मानसिक बीमारी, जो मौसम बदलने के दिनों में होती

है, मसलन क्वार-कार्तिक या फागुन-चैत। उसका सम्बन्ध रीढ़ की हड्डी से होता है और कविता एक तरह का सन्निपात होता है। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं, मि॰ सिबरिया ?"

"सिबरिया नहीं बिसरिया ?" ठाकुर साहब ने टोका।

बिसरिया ने कुछ उजलत, कुछ परेशानी और कुछ गुस्से से उनकी ओर देखा और बोला—"क्षमा कीजिएगा, आप या तो फ्रायडवादी हैं, या प्रगतिवादी और आपके विचार सर्वदा विदेशी हैं। मैं इस तरह के विचारों से घृणा करता हूँ···।"

कपूर कुछ जवाब देने ही वाला था कि ठाकुर साहब बोले —"अरे भाई, बेकार उलझ गये तुम लोग, पहले परिचय तो कर लो आपस में। ये हैं श्री चन्द्रकुमार कपूर, विश्वविद्यालय में रिसर्च कर रहे हैं और आप हैं श्री रवीन्द्र बिसरिया, इस वर्ष एम॰ ए॰ में बैठ रहे हैं। बहुत अच्छे कवि हैं।"

कपूर ने हाथ मिलाया और फिर गम्भीरता से बोला—"क्यों साहब, आपको दुनिया में और कोई काम नहीं रहा जो आप कविता करते हैं ?"

बिसरिया ने ठाकुर साहब की ओर देखा और बोला—"ठाकुर साहब, यह मेरा अपमान है, मैं इस तरह के सवालों का आदी नहीं हूँ।" और उठ खड़ा हुआ।

"अरे बैठो-बैठो !" ठाकुर साहब ने हाथ खींचकर बिठा लिया—"देखो, कपूर का मतलब तुम समझे नहीं। उसका कहना यह है कि तुममें इतनी प्रतिभा है कि लोग तुम्हारी प्रतिभा का आदर करना नहीं जानते। इसलिए उन्होंने सहानुभूति में तुमसे कहा कि तुम और कोई काम क्यों नहीं करते। वरना कपूर साहब तुम्हारी कविता के बहुत शौकीन हैं। मुझसे बराबर तारीफ करते हैं।"

बिसरिया पिघल गया और बोला—"क्षमा कीजिएगा। मैंने गलत समझा, अब मेरा कविता-संग्रह छप रहा है, मैं आपको अवश्य भेंट करूँगा।" और फिर बिसरिया ठाकुर साहब की ओर मुड़कर बोला—"अब लोग मेरी कविताओं की इतनी माँग करते हैं कि मैं परेशान हो गया हूँ। अभी कल 'त्रिवेणी' के सम्पादक मिले। कहने लगे अपना चित्र दे दो। मैंने कहा कि कोई चित्र नहीं है तो पीछे पड़ गये। आखिरकार मैंने आइडेण्टिटी कार्ड उठाकर दे दिया !"

"वाह !" कपूर बोला—"मान गये आपको हम ! तो आप राष्ट्रीय कविताएँ लिखते हैं या प्रेम की ?"

"जब जैसा अवसर हो !" ठाकुर साहब ने जड़ दिया—"वैसे तो यह वारफ्रण्ट का कवि-सम्मेलन, शराबबन्दी कॉन्फ्रेन्स का कवि-सम्मेलन, शादी-ब्याह का कवि-सम्मेलन, साहित्य-सम्मेलन का कवि-सम्मेलन सभी जगह बुलाये जाते हैं। बड़ा यश है इनका !"

बिसरिया ने प्रशंसा से मुग्ध होकर देखा, मगर फिर एक गर्व का भाव मुँह पर लाकर गम्भीर हो गया।

कपूर थोड़ी देर चुप रहा, फिर बोला—"तो कुछ हम लोगों को भी सुनाइए न !"

"अभी तो मूड नहीं है।" बिसरिया बोला।

ठाकुर साहब बिसरिया को पिछले पाँच सालों से जानते थे, वे अच्छी तरह जानते थे कि बिसरिया किस समय और कैसे कविता सुनाता है। अतः बोले—"ऐसे नहीं कपूर, आज शाम को आओ। जरा गंगाजी चलें, कुछ बोटिंग रहे, कुछ खाना-पीना रहे तब कविता भी सुनना !"

कपूर को बोटिंग का बेहद शौक था। फौरन राजी हो गया और शाम का विस्तृत कार्यक्रम बन गया।

इतने में एक कार उधर से लाइब्रेरी की ओर गुजरी। कपूर ने देखा और बोला—"अच्छा, ठाकुर साहब, मुझे तो इजाजत दीजिए। अब चलूँ लाइब्रेरी में। वो लोग आ गये। आप कहाँ चल रहे हैं ?"

"मैं जरा जिमखाने की ओर जा रहा हूँ। अच्छा भाई, तो शाम को पक्की रही।"

"बिल्कुल पक्की !" कपूर बोला और चल दिया।

लाइब्रेरी के पोर्टिको में कार रुकी थी और उसके अन्दर ही डॉक्टर साहब की लड़की बैठी थी।

"क्यों सुधा, अन्दर क्यों बैठी हो ?"

"तुम्हें ही देख रही थी, चन्दर।" और वह उतर आयी। दुबली-पतली, नाटी-सी, साधारण-सी लड़की, बहुत सुन्दर नहीं, केवल सुन्दर, लेकिन बातचीत में बहुत दुलारी।

"चलो, अन्दर चलो।" चन्दर ने कहा।

वह आगे बढ़ी, फिर ठिठक गयी और बोली—"चन्दर, एक आदमी को चार किताबें मिलती हैं ?"

"हाँ क्यों ?"

"तो···तो···" उसने बड़े भोलेपन से मुसकराते हुए कहा—"तो तुम अपने नाम से मेम्बर बन जाओ और दो किताबें हमें दे दिया करना बस, ज्यादा का हम क्या करेंगे ?"

"नहीं !" चन्दर हँसा—"तुम्हारा तो दिमाग खराब है। खुद क्यों नहीं बनतीं मेम्बर ?"

"नहीं, हमें शरम लगती है, तुम बन जाओ मेम्बर हमारी जगह पर।"

"पगली कहीं की !" चन्दर ने उसका कन्धा पकड़कर आगे ले चलते हुए कहा—"वाह रे शरम ! अभी कल ब्याह होगा तो कहना, हमारी जगह तुम बैठ जाओ चन्दर ! कॉलेज में पहुँच गयी लड़की; अभी शरम नहीं छूटी इसकी ! चल अन्दर !"

और वह हिचकती, ठिठकती, झेंपती और मुड़-मुड़कर चन्दर की ओर रूठी हुई निगाहों से देखती हुई अन्दर चली गयी।

थोड़ी देर बाद सुधा चार किताबें लादे हुए निकली। कपूर ने कहा—"लाओ मैं ले लूँ !" तो बाँस की पतली टहनी की तरह लहराकर बोली—"सदस्य मैं हूँ। तुम्हें क्यों दूँ किताबें ?" और जाकर कार के अन्दर किताबें पटक दीं। फिर बोली—"आओ, बैठो, चन्दर !"

"मैं अब घर जाऊँगा।"

"ऊँहूँ, यह देखो !" और उसने भीतर से कागजों का एक बण्डल निकाला और बोली—"देखो, यह पापा ने तुम्हारे लिए दिया है। लखनऊ में कॉन्फ्रेन्स है न। वहीं पढ़ने के लिए यह निबन्ध लिखा है उन्होंने । शाम तक यह टाइप हो जाना चाहिए। जहाँ संख्याएँ.हैं वहाँ खुद आपको बैठकर बोलना होगा। और पापा सुबह से ही कहीं गये हैं। समझे जनाब !" उसने बिल्कुल अल्हड़ बच्चों की तरह गरदन हिलाकर शोख स्वरों में कहा।

कपूर ने बण्डल ले लिया और कुछ सोचता हुआ बोला—"लेकिन डॉक्टर साहब का हस्तलेख, इतने पृष्ठ, शाम तक कौन टाइप कर देगा ?"

"इसका भी इन्तजाम है"—और अपने ब्लाउज में से एक पत्र निकालकर चन्दर के हाथ में देती हुई बोली—"यह कोई पापा की पुरानी ईसाई छात्रा है। टाइपिस्ट। इसके घर में तुम्हें पहुँचाये देती हूँ। मुकर्जी रोड पर रहती है यह। उसी के यहाँ टाइप करवा लेना और यह खत उसे दे देना।"

"लेकिन अभी मैंने चाय नहीं पी।"

"समझ गये, अब तुम सोच रहे होंगे कि इसी बहाने सुधा तुम्हें चाय भी पिला देगी। सो मेरा काम नहीं है जो मैं चाय पिलाऊँ ? पापा का काम है यह ! चलो, आओ !"

चन्दर जाकर भीतर बैठ गया और किताबें उठाकर देखने लगा—"अरे, चारों कविता की किताबें उठा लायी— समझ में आयेंगी तुम्हारे ? क्यों, सुधा ?"

"नहीं !" चिढ़ाते हुए सुधा बोली—"तुम कहो, तुम्हें समझा दें। इकनॉमिक्स पढ़ने वाले क्या जानें साहित्य ?"

"अरे, मुकर्जी रोड पर ले चलो, ड्राइवर !" चन्दर बोला—"इधर कहाँ चल रहे हो ?"

"नहीं, पहले घर चलो !" सुधा बोली—"चाय पी लो तब जाना !"

"नहीं, मैं चाय नहीं पिऊँगा।" चन्दर बोला।

"चाय नहीं पिऊँगा, वाह ! वाह !" सुधा की हँसी में दूधिया बचपन छलक उठा—"मुँह तो सूखकर गोभी हो रहा है, चाय नहीं पीयेंगे।"

बँगला आया तो सुधा ने महाराजिन से चाय बनाने के लिए कहा और चन्दर को स्टडी रूम में बिठाकर प्याले निकालने के लिए चल दी।

वैसे तो यह घर, यह परिवार चन्द्र कपूर का अपना हो चुका था; जब से वह अपनी

माँ से झगड़कर प्रयाग भाग आया था पढ़ने के लिए, यहाँ आकर बी. ए. में भरती हुआ था और कम खर्च के खयाल से चौक में एक कमरा लेकर रहता था, तभी डॉक्टर शुक्ला उसके सीनियर टीचर थे और उसकी परिस्थितियों से अवगत थे। चन्दर की अंग्रेजी बहुत ही अच्छी थी और डॉ. शुक्ला उससे अकसर छोटे-छोटे लेख लिखवाकर पत्रिकाओं में भिजवाते थे। उन्होंने कई पत्रों के आर्थिक स्तम्भ का काम चन्दर को दिलवा दिया था और उसके बाद चन्दर के लिए डॉ. शुक्ला का स्थान अपने संरक्षक और पिता से भी ज्यादा हो गया था। चन्दर शरमीला लड़का था, बेहद शरमीला, कभी उसने युनिवर्सिटी के वजीफे के लिए भी कोशिश न की थी, लेकिन जब बी. ए. में वह सारी युनिवर्सिटी में सर्वप्रथम आया तब स्वयं इक्नॉमिक्स विभाग ने उसे युनिवर्सिटी के आर्थिक प्रकाशनों का वैतनिक सम्पादक बना दिया था। एम. ए. में भी वह सर्वप्रथम आया और उसके बाद उसने रिसर्च ले ली। उसके बाद डॉ. शुक्ला युनिवर्सिटी से हटकर ब्यूरो में चले गये थे। अगर सच पूछा जाय तो उसके सारे कैरियर का श्रेय डॉ. शुक्ला को था जिन्होंने हमेशा उसकी हिम्मत बढ़ायी और उसको अपने लड़के से बढ़कर माना। अपनी सारी मदद के बावजूद डॉ. शुक्ला ने उससे इतना अपनापन बनाये रखा कि कैसे धीरे-धीरे चन्दर सारी गैरियत खो बैठा; यह उसे खुद नहीं मालूम। यह बँगला, इसके कमरे, इसके लॉन, इसकी किताबें, इसके निवासी, सभी कुछ जैसे उसके अपने थे और सभी का उससे जाने कितने जन्मों का सम्बन्ध था।

और यह नन्ही दुबली-पतली रंगीन चन्द्रकिरन-सी सुधा। जब आज से वर्षों पहले यह सातवाँ पास करके अपनी बुआ के पास से यहाँ आयी थी तब से लेकर आज तक कैसे वह भी चन्दर की अपनी होती गयी थी, इसे चन्दर खुद नहीं जानता था। जब वह आयी थी तब वह बहुत शरमीली थी, बहुत भोली थी, आठवें में पढ़ने के बावजूद वह खाना खाते वक्त रोती थी, मचलती थी तो अपनी कॉपी फाड़ डालती थी और जब तक डॉक्टर साहब उसे गोदी में बिठकार नहीं मनाते थे, वह स्कूल नहीं जाती थी। तीन बरस की अवस्था में ही उसकी माँ चल बसी थी और दस साल तक वह अपनी बुआ के पास एक गाँव में रही थी। अब तेरह वर्ष की होने पर गाँव वालों ने उसकी शादी पर जोर देना और शादी न होने पर गाँव की औरतों ने हाथ नचाना और मुँह मटकाना शुरू किया तो डॉक्टर साहब ने उसे इलाहाबाद बुलाकर आठवें में भरती करा दिया। जब वह आयी थी तो आधी जंगली थी, तरकारी में घी कम होने पर वह महराजिन का चौका जूठा कर देती थी और रात में फूल तोड़कर न लाने पर अकसर उसने माली को दाँत भी काट खाया था। चन्दर से जरूर वह बेहद डरती थी, पर न जाने क्यों चन्दर भी उससे नहीं बोलता था। लेकिन जब दो साल तक उसके ये उपद्रव जारी रहे और अकसर डॉक्टर साहब गुस्से के मारे उसे न साथ खिलाते थे और न उससे बोलते थे, तो वह रो-रोकर और सिर पटक-पटककर अपनी जान आधी कर देती थी। तब अकसर चन्दर ने पिता और पुत्री का समझौता कराया था, अकसर सुधा को डाँटा था, समझाया था, और सुधा,

घर-भर से अल्हड़ पुरवाई और विद्रोही झोंके की तरह तोड़-फोड़ मचाती रहने वाली सुधा, चन्दर की आँख के इशारे पर सुबह की नसीम की तरह शान्त हो जाती थी। कब और क्यों उसने चन्दर के इशारों का यह मौन अनुशासन स्वीकार कर लिया था, यह उसे खुद नहीं मालूम था, और यह सभी कुछ इतने स्वाभाविक ढंग से, इतना अपने-आप होता गया कि दोनों में से कोई भी इस प्रक्रिया से वाकिफ नहीं था, कोई भी इसके प्रति जागरूक न था, दोनों का एक-दूसरे के प्रति अधिकार और आकर्षण इतना स्वाभाविक था जैसे शरद् की पवित्रता या सुबह की रोशनी।

और मजा तो यह था कि चन्दर की शक्ल देखकर छिप जाने वाली सुधा इतनी ढीठ हो गयी थी कि उसका सारा विद्रोह, सारी झुँझलाहट, मिजाज की सारी तेजी, सारा तीखापन और सारा लड़ाई-झगड़ा, सभी की तरफ से हटकर चन्दर की ओर केन्द्रित हो गया था। वह विद्रोहिनी अब शान्त हो गयी थी। इतनी शान्त, इतनी सुशील, इतनी विनम्र, इतनी मिष्टभाषिणी कि सभी को देखकर ताज्जुब होता था, लेकिन चन्दर को देखकर जैसे उसका बचपन फिर लौट आता था और जब तक वह चन्दर को खिझाकर, छेड़कर लड़ नहीं लेती थी उसे चैन नहीं पड़ता था। अकसर दोनों में अनबोला रहता था, लेकिन जब दो दिन तक दोनों मुँह फुलाये रहते थे और डॉक्टर साहब के लौटने पर सुधा उत्साह से उनको ब्यूरो का हाल नहीं पूछती थी और खाते वक्त दुलार नहीं दिखाती थी तो डॉक्टर साहब फौरन पूछते थे—"क्या, चन्दर से लड़ाई हो गयी क्या ?" फिर वह मुँह फुलाकर शिकायत करती थी और शिकायतें भी क्या-क्या होती थीं, चन्दर ने उसकी हेड मिस्ट्रेस का नाम एलीफैण्टा(श्रीमती हथिनी) रखा है, या चन्दर ने उसको डिबेट के भाषण के प्वाइण्ट नहीं बताये, या चन्दर कहता है कि सुधा की सखियाँ कोयला बेचती हैं, और जब डॉक्टर साहब कहते हैं कि वह चन्दर को डाँट देंगे तो वह खुशी से फूल उठती और चन्दर के आने पर आँखें नचाती हुई चिढ़ाती थी, "कहो, कैसी डाँट पड़ी ?"

वैसे सुधा अपने घर की पुरखिन थी। किस मौसम में कौन-सी तरकारी पापा को माफिक पड़ती है, बाजार में चीजों का क्या भाव है, नौकर चोरी तो नहीं करता, पापा कितनी सोसायटियों के मेम्बर हैं, चन्दर के इक्नॉमिक्स के कोर्स में क्या है, यह सभी उसे मालूम था। मोटर या बिजली बिगड़ जाने पर वह थोड़ी-बहुत इंजीनियरिंग भी कर लेती थी और मातृत्व का अंश तो उसमें इतना था कि हर नौकर और नौकरानी उससे अपना सुख-दुःख कह देते थे। पढ़ाई के साथ-साथ घर का सारा काम-काज करते हुए उसका स्वास्थ्य भी कुछ बिगड़ गया था और अपनी उम्र के हिसाब से कुछ अधिक शान्त, संयत, गम्भीर और बुजुर्ग थी, मगर अपने पापा और चन्दर, इन दोनों के सामने हमेशा उसका बचपन इठलाने लगता था। दोनों के सामने उसका हृदय उन्मुक्त था और स्नेह बाधाहीन।

लेकिन, हाँ, एक बात थी। उसे जितना स्नेह और स्नेह-भरी फटकारें और स्वास्थ्य के प्रति चिन्ता अपने पापा से मिलती थी, वह सब बड़े निःस्वार्थ भाव से वह

चन्दर को दे डालती थी। खाने-पीने की जितनी परवाह उसके पापा उसकी रखते थे, न खाने पर या कम खाने पर उसे जितने दुलार से फटकारते थे, उतना ही ख्याल वह चन्दर का रखती थी और स्वास्थ्य के लिए जो उपदेश उसे पापा से मिलते थे उसे और भी स्नेह में पागकर वह चन्दर को दे डालती थी। चन्दर कै बजे खाना खाता है, यहां से जाकर घर पर कितनी देर पढ़ता है, रात को सोते वक्त दूध पीता है या नहीं, इन सबका लेखा-जोखा उसे सुधा को देना पड़ता, और जब कभी उसके खाने-पीने में कोई कमी रह जाती तो उसे सुधा की डाँट खानी ही पड़ती थी। पापा के लिए सुधा अभी बच्ची थी; और स्वास्थ्य के मामले में सुधा के लिए चन्दर अभी बच्चा था। और कभी-कभी तो सुधा की स्वास्थ्य-चिन्ता इतनी ज्यादा हो जाती थी कि चन्दर बेचारा जो खुद तन्दुरुस्त था, घबरा उठता था। एक बार सुधा ने कमाल कर दिया। उसकी तबीयत खराब हुई और डॉक्टर ने उसे लड़कियों का एक टॉनिक पीने के लिए बताया। इम्तहान में जब चन्दर कुछ दुबला-सा हो गया तो सुधा अपनी बची हुई दवा ले आयी। और लगी चन्दर से जिद्द करने कि "पियो इसे !" जब चन्दर ने किसी अखबार में उसका विज्ञापन दिखाकर बताया कि वह लड़कियों के लिए है तो कहीं जाकर उसकी जान बची।

इसीलिए जब आज सुधा ने चाय के लिए कहा तो उसकी रूह काँप गयी क्योंकि जब कभी सुधा चाय बनाती थी तो प्याले के मुँह तक दूध भरकर उसमें दो तीन चम्मच चाय का पानी डाल देती थी और अगर उसने ज्यादा स्ट्रांग चाय की माँग की तो उसे खालिस दूध पीना पड़ता था। और चाय के साथ फल और मेवा और खुदा जाने क्या-क्या, और उसके बाद सुधा का इसरार, न खाने पर सुधा का गुस्सा और उसके बाद की लम्बी-चौड़ी मनुहार; इस सबसे चन्दर बहुत घबराता था। लेकिन जब सुधा उसे स्टडी रूम में बिठाकर जल्दी से चाय बना लायी तो उसे मजबूर होना पड़ा, और बैठे-बैठे निहायत बेबसी से उसने देखा कि सुधा ने प्याले में दूध डाला और उसके बाद थोड़ी-सी चाय डाल दी। उसके बाद अपने प्याले में चाय डालकर और दो चम्मच दूध डालकर आप ठाठ से पीने लगी, और बेतकल्लुफी से दूधिया चाय का प्याला चन्दर के सामने खिसकाकर बोली—"पीजिए, नाश्ता आ रहा है।"

चन्दर ने प्याले को अपने सामने रखा और उसे चारों तरफ घुमाकर देखता रहा कि किस तरफ से उसे चाय का अंश मिल सकता है। जब सभी ओर से प्याले में क्षीरसागर नजर आया तो उसने हारकर प्याला रख दिया।

"क्यों, पीते क्यों नहीं ?" सुधा ने अपना प्याला रख दिया।

"पीये क्या ? कहीं चाय भी हो ?"

"तो और क्या खालिस चाय पीजिएगा ? दिमागी काम करने वालों को ऐसी ही चाय पीनी चाहिए।"

"तो अब मुझे सोचना पड़ेगा कि मैं चाय छोड़ूँ या रिसर्च। न ऐसी चाय मुझे पसन्द, न ऐसा दिमागी काम !"

"लो, आपको विश्वास नहीं होता। मेरी क्लासफेलो है गेसू काजमी; सबसे तेज लड़की है, उसकी अम्मी उसे दूध में चाय उबालकर देती है।"

"क्या नाम है तुम्हारी सखी का ?"

"गेसू !"

"बड़ा अच्छा नाम है !"

"और क्या ! मेरी सबसे घनिष्ठ मित्र है और उतनी ही अच्छी है जितना अच्छा नाम !"

"जरूर-जरूर" मुँह बिचकाते हुए चन्दर ने कहा—"और उतनी ही काली होगी, जितने काले गेसू।"

"धत्, शरम नहीं आती किसी लड़की के लिए ऐसा कहते हुए।"

"और हमारे दोस्तों की बुराई करती हो तब ?"

"तब क्या ! वे तो सब हैं ही बुरे ! अच्छा लो नाश्ता, पहले फल खाओ।" और वह प्लेट में छील-छीलकर सन्तरा रखने लगी। इतने में ज्यों ही वह झुककर एक गिरे हुए सन्तरे को नीचे से उठाने लगी कि चन्दर ने झट से उसका प्याला अपने सामने रख लिया और अपना प्याला उधर रख दिया और शान्त चित्त से पीने लगा। सन्तरे की फाँकें उसकी ओर बढ़ाते हुए ज्यों ही उसने एक घूँट चाय ली तो वह चौंककर बोली—"अरे, यह क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं, हमने उसमें दूध डाल दिया । तुम्हें दिमागी काम बहुत रहता है !" चन्दर ने ठाठ से चाय घूँटते हुए कहा। सुधा कुढ़ गयी। कुछ बोली नहीं। चाय खत्म करके चन्दर ने घड़ी देखी।

"अच्छा लाओ, क्या टाइप कराना है ? अब बहुत देर हो रही है।"

"बस यहाँ तो एक मिनट बैठना बुरा लगता है आपको ! हम कहते हैं कि नाश्ते और खाने के वक्त आदमी को जल्दी नहीं करनी चाहिए। बैठिए न !"

"अरे, तो तुम्हें कॉलेज की तैयारी नहीं करनी है ?"

"करनी क्यों नहीं है। आज तो गेसू को मोटर पर लेते हुए तब जाना है !"

"तुम्हारी गेसू और कभी मोटर पर चढ़ी है ?"

"जी, वह साबिरहुसैन काजमी की लड़की है, उसके यहाँ दो मोटरें हैं और रोज तो उसके यहाँ दावतें होती रहती हैं।"

"अच्छा, हमारी तो दावत कभी नहीं की।"

"अहा हा, गेसू के यहाँ दावत खायेंगे ! इसी मुँह से ! जनाब उसकी शादी भी तय हो गयी है, अगले जाड़ों तक शायद हो भी जाय।"

"छिः, बड़ी खराब लड़की हो ! कहाँ रहता है ध्यान तुम्हारा ?"

सुधा ने मजाक में पराजित कर बहुत विजय-भरी मुसकान से उसकी ओर देखा। चन्दर ने झेंपकर निगाह नीची कर ली तो सुधा पास आकर चन्दर का कन्धा पकड़कर बोली—

"अरे उदास हो गये, नहीं भइया, तुम्हारा भी ब्याह तय करायेंगे, घबराते क्यों हो !" और एक मोटी सी इक्नॉमिक्स की किताब उठाकर बोली—"लो, इस मुटकी से ब्याह करोगे ! लो बातचीत कर लो, तब तक मैं वह निबन्ध ले आऊँ, टाइप कराने वाला।"

चन्दर ने खिसियाकर बड़ी जोर से सुधा का हाथ दबा दिया। "हाय रे !" सुधा ने हाथ छुड़ाकर मुँह बनाते हुए कहा—"लो बाबा, हम जा रहे हैं, काहे बिगड़ रहे हैं आप ?" और वह चली गयी ! डॉक्टर साहब का लिखा हुआ निबन्ध उठा लायी और बोली—"लो, यह निबन्ध की पाण्डुलिपि है।" उसके बाद चन्दर की ओर बड़े दुलार से देखती हुई बोली—"शाम को आओगे !"

"न !"

"अच्छा, हम परेशान नहीं करेंगे। तुम चुपचाप पढ़ना। जब रात को पापा आ जायें तो उन्हें निबन्ध की प्रतिलिपि देकर चले जाना !"

"नहीं, आज शाम को मेरी दावत है ठाकुर साहब के यहाँ।"

"तो उसके बाद आ जाना। और देखो, अब फरवरी आ गयी है, मास्टर ढूँढ़ दो हमें।"

"नहीं, ये सब झूठी बात है। हम कल सुबह आयेंगे।"

"अच्छा, तो सुबह जल्दी आना और देखो, मास्टर लाना मत भूलना। ड्राइवर तुम्हें मुकर्जी रोड पहुँचा देगा।"

वह कार में बैठ गया और कार स्टार्ट हो गयी कि फिर सुधा ने पुकारा। वह फिर उतरा। सुधा बोली—"लो, यह लिफाफा तो भूल ही गये थे। यह पापा ने लिख दिया है। उसे दे देना।"

"अच्छा।" कहकर फिर चन्दर चला कि फिर सुधा ने पुकारा, "सुनो !"

"एक बार में क्यों नहीं कह देती सब !" चन्दर ने झल्लाकर कहा।

"अरे बड़ी गम्भीर बात है। देखो, वहाँ कुछ ऐसी-वैसी बात मत कहना लड़की से, वरना उसके यहाँ दो बड़े-बड़े बुलडॉग हैं।" कहकर उसने गाल फुलाकर, आँख फैलाकर ऐसी बुलडॉग की भंगिमा बनायी कि चन्दर हँस पड़ा। सुधा भी हँस पड़ी।

ऐसी थी सुधा, और ऐसा था चन्दर।

सिविल लाइन्स के एक उजाड़ हिस्से में एक पुराने-से बँगले के सामने आकर मोटर रुकी। बँगले का नाम था 'रोजलान' लेकिन सामने के कम्पाउण्ड में जंगली घास उग रही थी और गुलाब के फूलों के बजाय अहाते में मुरगी के पंख बिखरे पड़े थे। रास्ते

पर भी घास उग आयी थी और फाटक पर, जिसके एक खम्भे की कॉर्निस टूट चुकी थी, बजाय लोहे के दरवाजे के दो आड़े बाँस लगे हुए थे। फाटक के एक ओर एक छोटा-सा लकड़ी का नामपटल लगा था, जो कभी काला रहा होगा, लेकिन जिसे धूल, बरसात और हवा ने चितकबरा बना दिया था। चन्दर मोटर से उतरकर उस बोर्ड पर लिखे हुए अधमिटे सफेद अक्षरों को पढ़ने की कोशिश करने लगा, और जाने किसका मुँह देखकर सुबह उठा था कि उसे सफलता भी मिल गयी। उस पर लिखा था 'ए. एफ. डिक्रूज।' उसने जेब से लिफाफा निकाला और पता मिलाया। लिफाफे पर लिखा था, 'मिस पी. डिक्रूज'। यही बँगला है, उसे सन्तोष हुआ।

"हॉर्न दो !" उसने ड्राइवर से कहा। ड्राइवर ने हॉर्न दिया। लेकिन किसी का बाहर आना तो दूर, एक मुरगा, जो अहाते में कुड़कुड़ा रहा था, उसने मुड़कर बड़े सन्देह और त्रास से चन्दर की ओर देखा और उसके बाद पंख फड़फड़ाते हुए, चीखते हुए जान छोड़कर भागा। "बड़ा मनहूस बंगला है, यहाँ आदमी रहते हैं या प्रेत ?" कपूर ने ऊबकर कहा और ड्राइवर से बोला—"जाओ तुम, हम अन्दर जाकर देखते हैं !"

"अच्छा हुजूर, सुधा बीबी से क्या कह देंगे ?"

"कह देना, पहुँचा दिया।"

कार मुड़ी और कपूर बाँस फाँदकर अन्दर घुसा। आगे का पोर्टिको खाली पड़ा था और नीचे की जमीन ऐसी थी जैसे कई साल से उस बँगले में कोई सवारी गाड़ी न आयी हो। वह बरामदे में गया। दरवाजे बन्द थे और उन पर धूल जमी थी। एक जगह चौखट और दरवाजे के बीच में मकड़ी ने जाला बुन रखा था। 'यह बँगला खाली है क्या ?' कपूर ने सोचा। सुबह साढ़े आठ बजे ही वहाँ ऐसा सन्नाटा छाया था कि दिल घबरा जाय। आस-पास चारों ओर आधी फर्लांग तक कोई बँगला नहीं था। उसने सोचा बँगले के पीछे की ओर शायद नौकरों की झोंपड़ियाँ हों। वह दायें बाजू से मुड़ा और खुशबू का एक तेज झोंका उसे चूमता हुआ निकल गया। "ताज्जुब है, यह सन्नाटा, यह मनहूसी और इतनी खुशबू !" कपूर ने कहा और आगे बढ़ा तो देखा कि बँगले के पिछवाड़े गुलाब का एक बहुत खूबसूरत बाग है। कच्ची रविशें और बड़े-बड़े गुलाब, हर रंग के। वह सचमुच 'रोजलान' था।

वह बाग में पहुँचा। उधर से भी बँगले के दरवाजे बन्द थे। उसने खटखटाया लेकिन कोई जवाब नहीं मिला। वह बाग में घुसा कि शायद कोई माली काम कर रहा हो। बीच-बीच में ऊँचे-ऊँचे जंगली चमेली के झाड़ थे और कहीं-कहीं लोहे की छड़ों के कठघरे। बेगमबेलिया भी फूल रही थी लेकिन चारों ओर एक अजब-सा सन्नाटा था और हर फूल पर किसी खामोशी के फरिश्ते की छाँह थी। फूलों में रंग था, हवा में ताजगी थी, पेड़ों में हरियाली थी, झोंकों में खुशबू थी, लेकिन फिर भी सारा बाग एक ऐसे सितारों का गुलदस्ता लग रहा था जिनकी चमक, जिनकी रोशनी और जिनकी ऊँचाई लुट चुकी हो। लगता था जैसे बाग का मालिक मौसमी रंगीनी

भूल चुका हो, क्योंकि नैस्टर्शियम या स्वीटपी या फ्लास्क, कोई भी मौसमी फूल न था। सिर्फ गुलाब थे और जंगली चमेली थी और बेगमबेलिया थी जो सालों पहले वोये गये थे। उसके बाद उन्हीं की काट-छाँट पर बाग चल रहा था। बागबानी में कोई नवीनता और मौसम का उल्लास न था।

चन्दर फूलों का बेहद शौकीन था। सुबह घूमने के लिए भी उसने दरिया किनारे के बजाय अल्फ्रेड पार्क चुना था क्योंकि पानी की लहरों के बजाय उसे फूलों के बाग के रंग और सौरभ की लहरों से बेहद प्यार था। और उसे दूसरा शौक था कि फूलों के पौधों के पास से गुजरते हुए हर फूल को समझने की कोशिश करना। अपनी नाजुक टहनियों पर हँसते-मुसकराते हुए ये फूल जैसे अपने रंगों की बोली में आदमी से जिन्दगी का जाने कौन-सा राज कहना चाहते हैं। और ऐसा लगता है कि जैसे हर फूल के पास अपना व्यक्तिगत सन्देश है जिसे वह अपने दिल की पाँखुरियों में आहिस्ते से सहेज कर रखे हुए है कि कोई सुनने वाला मिले और वह अपनी दास्ताँ कह ज़ाये। पौधे की ऊपरी फुनगी पर मुसकराता हुआ आसमान की तरफ मुँह किए हुए यह गुलाब जो रात-भर सितारों की मुसकराहट चुपचाप पीता रहा है, यह अपनी मोतियों-पाँखुरियों के होंठों से जाने क्यों खिलखिलाता ही जा रहा है। जाने इसे कौन-सा रहस्य मिल गया है। और वह एक नीचे वाली टहनी में आधा झुका हुआ गुलाब, झुकी हुई पलकों-सी पाँखुरियाँ और दोहरे मखमली तार-सी उसकी डण्डी, यह गुलाब जाने क्यों उदास है ? और यह दुवली-पतली लम्बी-सी नाजुक कली जो बहुत सावधानी से हरा आँचल लपेटे है और प्रथम ज्ञात-यौवना की तरह लाज में जो सिमटी तो सिमटी ही चली जा रही है, लेकिन जिसके यौवन की गुलाबी लपटें सात हरे परदों में से झलकी ही पड़ती हैं, झलकी ही पड़ती हैं। और फारस के शाहजादे जैसा शान से खिला हुआ पीला गुलाब ! उस पीले गुलाब के पास आकर चन्दर रुक गया और झुककर देखने लगा । कातिक पूनो की चाँद से झरने वाले अमृत को पीने के लिए व्याकुल किसी सुकुमार, भावुक परी की फली हुई अंजलि के बराबर बड़ा-सा वह फूल जैसे रोशनी बिखेर रहा था। बेगमबेलिया के कुंज से छनकर आने वाली तोतापंखी धूप ने जैसे उस पर धान-पान की तरह खुशनुमा हरियाली बिखेर दी थी। चन्दर ने सोचा, उसे तोड़ ले लेकिन हिम्मत न पड़ी। वह झुका कि उसे सूँघ ही ले। सूँघने के इरादे से उसने हाथ बढ़ाया ही था कि किसी ने पीछे से गरजकर कहा :

"हीयर यू आर, आई हैव काट रेड हैण्डेड टुडे !"

(यह तुम हो; आज तुम्हें मौके पर पकड़ पाया हूँ) और उसके बाद किसी ने अपने दोनों हाथों में जकड़ लिया और उसकी गरदन पर सवार हो गया । वह उछल पड़ा और अपने को छुड़ाने की कोशिश करने लगा। पहले तो वह कुछ समझ नहीं पाया। अजब रहस्यमय है यह बँगला। एक अव्यक्त भय और एक सिहरन में उसके हाथ-पाँव ढीले हो गये। लेकिन उसने हिम्मत करके अपना एक हाथ छुड़ा लिया और

मुड़कर देखा तो एक बहुत कमजोर, बीमार-सा, पीली आँखों वाला गोरा उसे पकड़े हुए था। चन्दर के दूसरे हाथ को फिर पकड़ने की कोशिश करता हुआ वह हाँफता हुआ बोला(अँगरेजी में)

"रोज-रोज यहाँ से फूल गायब होते थे । मैं कहता था, कहता था, कौन ले जाता है। हो···हो:··· " , वह हाँफता जा रहा था—"आज मैंने पकड़ा तुम्हें। रोज चुपके से चले जाते थे···" वह चन्दर को कसकर पकड़े था लेकिन उस बीमार गोरे की साँस जैसे छूटी जा रही थी। चन्दर ने उसे झटका देकर धकेल दिया और डाँटकर बोला—"क्या मतलब है तुम्हारा ! पागल है क्या ! खबरदार जो हाथ बढ़ाया, अभी ढेर कर दूँगा तुझे ! गोरा सुअर ?" और उसने अपनी आस्तीनें चढ़ायीं।

वह धक्के से गिर गया था, धूल झाड़ते उठ बैठा और बड़ी ही रोनी आवाज में बोला—"कितना जुल्म है, कितना जुल्म है ! मेरे फूल भी तुम चुरा ले गये और मुझे इतना हक भी नहीं कि तुम्हें धमकाऊँ ! अब तुम मुझसे लड़ोगे ! तुम जवान हो, मैं बूढ़ा हूँ। हाय रे मैं !" और सचमुच वह जैसे रोने लगा हो।

चन्दर ने उसका रोना देखा और उसका सारा गुस्सा हवा हो गया और हँसी रोककर बोला—"गलतफहमी है, जनाब ! मैं बहुत दूर रहता हूँ। मैं चिट्ठी लेकर मिस डिक्रूज से मिलने आया था।"

उसका रोना नहीं रुका—"तुम बहाना बनाते हो, बहाना बनाते हो और अगर मैं विश्वास नहीं करता तो तुम मारने की धमकी देते हो ? अगर मैं कमजोर न होता··· तो तुम्हें पीसकर खा जाता और तुम्हारी खोपड़ी कुचलकर फेंक देता जैसे तुमने मेरे फूल फेंके होंगे ?"

"फिर तुमने गाली दी ! मैं उठाकर तुम्हें अभी नाले में फेंक दूँगा !"

"अरे बाप रे ! दौड़ो, दौड़ो, मुझे मार डाला··· पापी···टामी···अरे दोनों कुत्ते मर गये···।" उसने डर के मारे चीखना शुरू किया।

"क्या है, बर्टी ? क्यों चिल्ला रहे हो ?" बाथरूम के अन्दर से किसी ने चिल्लाकर कहा।

"अरे मार डाला इसने··· दौड़ो-दौड़ो !"

झटके से बाथरूम का दरवाजा खुला बेदिङ्-गाउन पहने हुए एक लड़की दौड़ती हुई आयी और चन्दर को देखकर रुक गयी।

"क्या है ?" उसने डाँटकर पूछा।

"कुछ नहीं, शायद पागल मालूम देता है !"

"जबान सँभालकर बोलो, वह मेरा भाई है !"

"ओह ! कोई भी हो। मैं मिस डिक्रूज से मिलने आया था। मैंने आवाज दी तो कोई नहीं बोला। मैं बाग में घूमने लगा। इतने में इसने मेरी गरदन पकड़ ली। यह बीमार और कमजोर है वरना अभी गरदन दबा देता।"

गोरा उस लड़की के आते ही फिर तनकर खड़ा हो गया, और दाँत पीसकर

बोला—"अरे मैं तुम्हारे दाँत तोड़ दूँगा। बदमाश कहीं का, चुपके-चुपके आया और गुलाब तोड़ने लगा। मैं चमेली के झाड़ के पीछे छिपा देख रहा था।"

"अभी मैं पुलिस बुलाती हूँ, तुम देखते रहो बर्टी इसे। मैं फोन करती हूँ।" लड़की ने डाँटते हुए कहा।

"अरे भाई, मैं मिस डिक्रूज से मिलने आया हूँ।"

"मैं तुम्हें नहीं जानती, झूठा कहीं का। मैं मिस डिक्रूज हूँ।"

"देखिए तो यह खत !"

लड़की ने खत खोला और पढ़ा और एकदम उसने आवाज बदल दी।

"छिः बर्टी, तुम किसी दिन पागलखाने जाओगे। आपको डॉ. शुक्ला ने भेजा है। तुम तो मुझे बदनाम करा डालोगे !"

उसकी शक्ल और भी रोनी हो गयी—"मैं नहीं जानता था, मैं जानता नहीं था।" उसने और भी घबराकर कहा।

"माफ कीजिएगा !" लड़की ने बड़े मीठे स्वर में साफ हिन्दुस्तानी में कहा—"मेरे भाई का दिमाग जरा ठीक नहीं रहता, जब से इनकी पत्नी की मौत हो गयी।"

"इसका मतलब ये नहीं कि ये किसी भले आदमी की इज्जत उतार लें।" चन्दर ने बिगड़कर कहा।

"देखिए, बुरा मत मानिए। मैं इनकी ओर से माफी माँगती हूँ। आइए, अन्दर चलिए।" उसने चन्दर का हाथ पकड़ लिया। उसका हाथ बेहद ठण्डा था। वह नहाकर आ रही थी। उसके हाथ के उस तुषार स्पर्श से चन्दर सिहर उठा और उसने हाथ झटककर कहा—"अफसोस, आपका हाथ तो बरफ है ?"

लड़की चौंक गयी। वह सद्यस्नाता सहसा सचेत हो गयी और बोली—"अरे शैतान तुम्हें ले जाये, बर्टी ! तुम्हारे पीछे मैं बेदिङ् गाउन में भाग आयी।" और बेदिङ् गाउन के दोनों कालर पकड़कर उसने अपनी खुली गरदन ढँकने का प्रयास किया और फिर अपनी पोशाक पर लज्जित होकर भागी।

अभी तक गुस्से के मारे चन्दर ने उसपर ध्यान ही नहीं दिया था। लेकिन उसने देखा कि वह तेईस बरस की दुबली-पतली तरुणी है। लहराता हुआ बदन, गले तक कटे हुए बाल। एंग्लो इण्डियन होने के बावजूद गोरी नहीं है। चाय की तरह वह हल्की पतली, भूरी और तुर्श थी। भागते वक्त ऐसी लग रही थी जैसे छलकती हुई चाय।

इतने में वह गोरा उठा और चन्दर का कन्धा छूकर बोला—"माफ करना, भाई ! उससे मेरी शिकायत मत करन्ना। असल में ये गुलाब मेरी मृत पत्नी की यादगार हैं। जब इनका पहला पेड़ आया था तब मैं इतना ही जवान था जितने तुम, और मेरी पत्नी उतनी ही अच्छी थी जितनी पम्मी।"

"कौन पम्मी ?"

"यह मेरी बहन प्रमिला डिक्रूज !"

"ओह ! कब मरी आपकी पत्नी ! माफ कीजिएगा मुझे भी मालूम नहीं था !"

"हाँ, मैं बड़ा अभागा हूँ। मेरा दिमाग कुछ खराब है; देखिए !" कहकर उसने झुककर अपनी खोपड़ी चन्दर के सामने कर दी और बहुत गिड़गिड़ाकर बोला—"पता नहीं कौन मेरे फूल चुरा ले जाता है। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद पाँच साल से मैं इन फूलों को संभाल रहा हूँ। हाय रे मैं ! जाइए, पम्मी बुला रही है।"

पिछवाड़े के सहन का बीच का दरवाजा खुल गया था और पम्मी कपड़े पहनकर बाहर झाँक रही थी। चन्दर आगे बढ़ा और गोरा मुड़कर अपने गुलाब और चमेली की झाड़ी में खो गया। चन्दर गया और कमरे में पड़े हुए एक सोफा पर बैठ गया। पम्मी ट्वायलेट कर चुकी थी और एक हलकी फ्रान्सीसी खुशबू से महक रही थी। शैम्पू से धुले हुए रूखे बाल जो मचले पड़ रहे थे, खुशनुमा आसमानी रंग का एक पतला चिपका हुआ झीना ब्लाउज और ब्लाउज पर एक फ्लैनेल का फुलपैण्ट जिसके दो गेलिस कमर, छाती और कन्धे पर चिपके हुए थे। होंठों पर एक हलकी लिपस्टिक की झलक मात्र थी, और गले तक बहुत हलका पाउडर, जो बहुत नजदीक से ही मालूम होता था। लम्बे नाखूनों पर हलकी गुलाबी पैण्ट। वह आयी, निस्संकोच भाव से उसी सोफे पर कपूर के बगल में बैठ गयी और बड़ी मुलायम आवाज में बोली—"मुझे बड़ा दुःख है, मिस्टर कपूर ! आपको बहुत तवालत उठानी पड़ी। चोट तो नहीं आयी ?"

"नहीं-नहीं, कोई बात नहीं !" कपूर का सारा गुस्सा हवा हो गया। कोई भी लड़की निःसंकोच भाव से, इतनी अपनायत से सहानुभूति दिखाये, और माफी माँगे, तो उसके सामने कौन पानी-पानी नहीं हो जायेगा, और फिर वह भी तब जबकि उसके होंठों पर न केवल बोली अच्छी लगती हो, वरन् लिपस्टिक भी इतनी प्यारी हो। लेकिन चन्दर की एक आदत थी। और चाहे कुछ न हो, कम-से-कम वह यह अच्छी तरह जानता था कि नारी जाति से व्यवहार करते समय कहाँ पर कितनी ढील देनी चाहिए, कितना कसना चाहिए, कब सहानुभूति से उन्हें झुकाया जा सकता है, कब अकड़कर। इस वक्त जानता था कि इस लड़की से वह जितनी सहानुभूति चाहे, ले सकता है, अपने अपमान के हर्जाने के तौर पर। इसलिए कपूर साहब बोले—"लेकिन मिस डिक्रूज, आपके भाई बीमार होने के बावजूद बहुत मजबूत हैं। उफ् गरदन पर जैसे अभी तक जलन हो रही है।"

"ओहो ! सचमुच मैं बहुत शरमिन्दा हूँ। देखूँ !" और कालर हटाकर उसने गरदन पर अपनी बरफीली अँगुलियाँ रख दीं, "लाइए, लोशन मल दूँ मैं !"

"धन्यवाद, धन्यवाद, इतना कष्ट न कीजिए। आपकी अँगुलियाँ गन्दी हो जायेंगी !" कपूर ने बड़ी शालीनता से कहा।

पम्मी के होंठों पर एक हलकी-सी मुसकराहट, आँखों में हलकी-सी लाज और वक्ष में एक हलका-सा कम्पन दौड़ गया। यह वाक्य कपूर ने चाहे शरारत में ही कहा हो, लेकिन कहा इतने शान्त और संयत स्वरों में कि पम्मी कुछ प्रतिवाद भी न कर

सकी और फिर छह बरस से साठ बरस तक की कौन ऐसी स्त्री है जो अपने रूप की प्रशंसा पर बेहोश न हो जाये।

"अच्छा लाइए, वह स्पीच कहाँ है जो मुझे टाइप करनी है।" उसने विषय बदलते हुए कहा।

"यह लीजिए।" कपूर ने दे दी।

"यह तो मुश्किल से तीन-चार घण्टे का काम है ?" और पम्मी स्पीच को उलट-पुलटकर देखने लगी।

"माफ कीजिएगा, अगर मैं कुछ व्यक्तिगत सवाल पूछूँ; क्या आप टाइपिस्ट हैं ?" कपूर ने बहुत शिष्टता से पूछा।

"जी नहीं", पम्मी ने उन्हीं कागजों पर नजर गड़ाते हुए कहा—"मैंने कभी टाइपिंग और शार्टहैण्ड सीखी थी, और तब मैं सीनियर कैम्ब्रिज पास करके युनिवर्सिटी गयी थी। युनिविर्सिटी मुझे छोड़नी पड़ी क्योंकि मैंने अपनी शादी कर ली।"

"अच्छा, आपके पति कहाँ हैं ?"

"रावलपिण्डी में, आर्मी में।"

"लेकिन फिर आप डिक्रूज क्यों लिखती हैं, और फिर मिस ?"

"क्योंकि हम लोग अलग हो गये हैं।" और स्पीच के कागज को फिर तह करती हुई बोली—

"मिस्टर कपूर, आप अविवाहित हैं ?"

"जी हाँ ?"

"और विवाह करने का इरादा तो नहीं रखते ?"

"नहीं।"

"बहुत अच्छे। तब तो हम लोगों में निभ जायेगी। मैं शादी से बहुत नफरत करती हूँ। शादी अपने को दिया जाने वाला सबसे बड़ा धोखा है। देखिए, ये मेरे भाई हैं न, कैसे पीले और बीमार से हैं। ये पहले बड़े तन्दुरुस्त और टेनिस में प्रान्त के अच्छे खिलाड़ियों में से थे। एक बिशप की दुबली-पतली भावुक लड़की से इन्होंने शादी कर ली, और उसे बेहद प्यार करते थे। सुबह-शाम, दोपहर, रात, कभी उसे अलग नहीं होने देते थे। हनीमून के लिए उसे लेकर सीलोन गये थे। वह लड़की बहुत कलाप्रिय थी। बहुत अच्छा नाचती थी, बहुत अच्छा गाती थी और खुद गीत लिखती थी। यह गुलाब का बाग उसी ने बनवाया था और इन्हीं के बीच में दोनों बैठकर घण्टों गुजार देते थे।

"कुछ दिनों बाद दोनों में झगड़ा हुआ। क्लब में बॉल डान्स था और उस दिन वह लड़की बहुत अच्छी लग रही थी। बहुत अच्छी। डान्स के वक्त इनका ध्यान डान्स की तरफ कम था, अपनी पत्नी की तरफ ज्यादा। इन्होंने आवेश में उसकी अँगुलियाँ जोर से दबा दीं। वह चीख पड़ी और सभी लोग इन लोगों की ओर देखकर हँस पड़े।

"वह घर आयी और बहुत बिगड़ी, बोली—आप नाच रहे थे या टेनिस का मैच खेल रहे थे, मेरा हाथ था या टेनिस का रैकट ?" इस बात पर बर्टी भी बिगड़ गया, और उस दिन से जो इन लोगों में खटकी तो फिर कभी न बनी। धीरे-धीरे वह लड़की एक सार्जेण्ट को प्यार करने लगी। बर्टी को इतना सदमा हुआ कि वह बीमार पड़ गया। लेकिन बर्टी ने तलाक नहीं दिया, उस लड़की से क्रुछ कहा भी नहीं, और उस लड़की ने सार्जेण्ट से प्यार जारी रखा लेकिन बीमारी में बर्टी की बहुत सेवा की। बर्टी अच्छा हो गया। उसके बाद उसको एक बच्ची हुई और उसी में वह मर गयी। हालाँकि हम लोग सब जानते हैं कि वह बच्ची उस सार्जेण्ट की थी लेकिन बर्टी को यकीन नहीं होता कि वह सार्जेण्ट को प्यार करती थी। वह कहता है— "यह दूसरे को प्यार करती होती तो मेरी इतनी सेवा कैसे कर सकती थी भला ! उस बच्ची का नाम बर्टी ने रोज रखा। और उसे लेकर दिनभर उन्हीं गुलाब के पेड़ों के बीच में बैठा करता था। जैसे अपनी पत्नी को लेकर बैठता था। दो साल बाद बच्ची को साँप ने काट लिया, वह मर गयी और तब से बर्टी का दिमाग ठीक नहीं रहता। खैर, जाने दीजिए। आइए, अपना काम शुरू करें। चलिए, अन्दर के स्टडी रूम में चलें !"

"चलिए !" चन्दर बोला। और पम्मी के पीछे-पीछे चल दिया। मकान बहुत बड़ा था और पुराने अँग्रेजों के ढंग पर सजा हुआ था। बाहर से जितना पुराना और गन्दा नजर आता था, अन्दर से उतना ही आलीशान और सुथरा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जमाने की छाप थी अन्दर। यहाँ तक कि बिजली लगने के बावजूद अन्दर पुराने बड़े-बड़े हाथ से खींचे जाने वाले पंखे लगे थे। दो कमरों को पार कर वे लोग स्टडी-रूम में पहुँचे। बड़ा-सा कमरा जिसमें चारों तरफ आलमारियों में किताबें सजी हुई थीं। चार कोने में चार मेजें लगी हुई थीं जिनमें कुछ बस्ट और कुछ तस्वीरें स्टैण्ड के सहारे रखी हुई थीं। एक आलमारी में नीचे खाने में टाइपराइटर रखा था। पम्मी ने बिजली जला दी और टाइपराइटर खोलकर साफ करने लगी। चन्दर घूमकर किताबें देखने लगा। एक कोने में कुछ मराठी की किताबें रखी थीं। उसे बड़ा ताज्जुब हुआ—"अच्छा पम्मी, ओह माफ कीजिएगा, मिस डिक्रूज···"

"नहीं, आप मुझे पम्मी पुकार सकते हैं। मुझे यही नाम अच्छा लगता है—हाँ, क्या पूछ रहे थे आप ?"

"क्या आप मराठी भी जानती हैं ?"

"नहीं, मैं तो नहीं, मेरी नानीजी जानती थीं। क्या आपको डॉक्टर शुक्ला ने हम लोगों के बारे में कुछ नहीं बताया ?"

"नहीं !" कपूर ने कहा।

"अच्छा ! ताज्जुब है !" पम्मी बोली—"आपने ट्रेनाली डिक्रूज का नाम सुना है न ?"

"हाँ, हाँ, डिक्रूज जिन्होंने कौशाम्बी की खुदाई करवायी थी। वह तो बहुत बड़े पुरातत्त्ववेत्ता थे ?" कपूर ने कहा।

"हाँ, वही। वह मेरे सगे नाना थे। और वह अँगरेज नहीं थे, मराठा थे और उन्होंने मेरी नानी से शादी की थी जो एक कश्मीरी ईसाई महिला थीं। उनके कारण भारत में उन्हें ईसाइयत अपनानी पड़ी। यह मेरे नाना का ही मकान है और अब हम लोगों को मिल गया है। डॉ. शुक्ला के दोस्त मिस्टर श्रीवास्तव बैरिस्टर हैं न, वे हमारे खानदान के ऐटर्नी थे। उन्होंने और डॉ. शुक्ला ने ही यह जायदाद हमें दिलवायी। लीजिए, मशीन तो ठीक हो गयी।" उसने टाइपराइटर में कार्बन और कागज लगाकर कहा—"लाइए निबन्ध।"

इसके बाद घण्टे-भर तक टाइपराइटर रुका नहीं। कपूर ने देखा कि यह लड़की जो व्यवहार में इतनी सरल और स्पष्ट है, फैशन में इतनी नाजुक और शौकीन है, काम करने में उतनी ही मेहनती और तेज भी है। उसकी अँगुलियाँ मशीन की तरह चल रही थीं। और तेज इतनी कि एक घण्टे में उसने लगभग आधी पाण्डुलिपि टाइप कर डाली थी। ठीक एक घण्टे के बाद उसने टाइपराइटर बन्द कर दिया, बगल में बैठे हुए कपूर की ओर झुककर कहा—"अब थोड़ी देर आराम।" और अपनी अँगुलियाँ चटखाने के बाद वह कुरसी खिसकाकर उठी और एक भरपूर अँगड़ाई ली। उसका अंग-अंग धुनष की तरह झुक गया। उसके बाद कपूर के कन्धे पर बेतकल्लुफी से हाथ रखकर बोली—"क्यों, एक प्याला चाय मँगवायी जाय ?"

"मैं तो पी चुका हूँ।"

"लेकिन मुझसे तो काम होने से रहा अब बिना चाय के।" पम्मी एक अल्हड़ बच्ची की तरह बोली। और अन्दर चली गयी। कपूर ने टाइप किए हुए कागज उठाये और कलम निकालकर उनकी गलतियाँ सुधारने लगा। चाय पीकर थोड़ी देर में पम्मी वापस आयी और बैठ गयी। उसने एक सिगरेट केस कपूर के सामने किया।

"धन्यवाद, मैं सिगरेट नहीं पीता।"

"अच्छा, ताज्जुब है, आपकी इजाजत हो तो मैं सिगरेट पी लूँ !"

"क्या आप सिगरेट पीती हैं ? छिः, पता नहीं क्यों औरतों का सिगरेट पीना मुझे बहुत ही नासपन्द है।"

"मेरी तो मजबूरी है मिस्टर कपूर, मैं यहाँ के समाज में मिलती-जुलती नहीं, अपने विवाह और अपने तलाक के बाद मुझे ऐंग्लो इण्डियन समाज से नफरत हो गयी है। मैं अपने दिल से हिन्दोस्तानी हूँ। लेकिन हिन्दोस्तानियों से घुलना-मिलना हमारे लिए सम्भव नहीं। घर में अकेले रहती हूँ। सिगरेट और चाय से तबीयत बदल जाती है। किताबों का मुझे शौक नहीं।"

"तलाक के बाद आपने पढ़ाई जारी क्यों नहीं रखी ?" कपूर ने पूछा।

"मैंने कहा न, कि किताबों का मुझे शौक नहीं बिलकुल !" पम्मी बोली। "और मैं अपने को आदमियों में घुलने-मिलने के लायक नहीं पाती। तलाक के बाद साल-भर तक मैं अपने घर में बन्द रही। मैं और बर्टी। सिर्फ बर्टी से बात करने का मौका मिला। बर्टी मेरा भाई, वह भी बीमार और बूढ़ा। कहीं कोई तकल्लुफ की

गुंजाइश नहीं। अब मैं हरेक से बेतकल्लुफी से बात करती हूँ तो कुछ लोग मुझ पर हँसते हैं, कुछ लोग मुझे सभ्य समाज के लायक नहीं समझते, कुछ लोग उसका गलत मतलब निकालते हैं। इसलिए मैंने अपने को अपने बँगले में ही कैद कर लिया है। अब आप ही हैं, आज पहली बार मैंने देखा आपको। मैं समझी ही नहीं कि आपसे कितना दुराव रखना चाहिए। अगर आप भलेमानस न हों तो आप इसका गलत मतलब निकाल सकते हैं।"

"अगर यही बात हो तो" कपूर हँसकर बोला—"सम्भव है कि मैं भलेमानस बनने के बजाय गलत मतलब निकालना ज्यादा पसन्द करूँ।"

"तो सम्भव है मैं मजबूर होकर आपसे भी न मिलूँ !" पम्मी गम्भीरता से बोली।

"नहीं, मिस डिक्रूज···"

"नहीं, आप पम्मी कहिए, डिक्रूज नहीं !"

"पम्मी सही, आप गलत न समझें, मैं मजाक कर रहा था।" कपूर बोला। उसने इतनी देर में समझ लिया था कि यह साधारण ईसाई छोकरी नहीं है।

इतने में बर्टी लड़खड़ाता हुआ, हाथ में धूल सना खुरपा लिये आया और चुपचाप खड़ा हो गया और अपनी धुँधली पीली आँखों से एकटक कपूर को देखने लगा। कपूर ने एक कुरसी खिसका दी और कहा—"आइए !" पम्मी उठी और बर्टी के कन्धे पर एक हाथ रखकर उसे सहारा देकर कुरसी पर बिठा दिया। बर्टी बैठ गया और आँखें बन्द कर लीं। उसका बीमार कमजोर व्यक्तित्व जाने कैसा लगता था कि पम्मी और कपूर दोनों चुप हो गए। थोड़ी देर बाद बर्टी ने आँख खोली और बहुत करुण स्वर में बोला—"पम्मी, तुम नाराज हो, मैंने जान-बूझकर तुम्हारे मित्र का अपमान नहीं किया था ?"

"अरे नहीं !" पम्मी ने उठकर बर्टी का माथा सहलाते हुए कहा—"मैं तो भूल गयी और कपूर भी भूल गये ?"

"अच्छा, धन्यवाद ! पम्मी, अपना हाथ इधर लाओ !" और वह पम्मी के हाथ पर सिर रखकर पड़ रहा और बोला—"मैं कितना अभागा हूँ ! कितना अभागा ! अच्छा पम्मी, कल रात को तुमने सुना था, वह आयी थी और पूछ रही थी, बर्टी तुम्हारी तबीयत अब ठीक है, मैंने झट अपनी आँख ढँक ली कि कहीं आँख का पीलापन देख न ले। मैंने कहा, तबीयत अब ठीक है, मैं अच्छा हूँ तो उठी और जाने लगी। मैंने पूछा, कहाँ चली, तो बोली सार्जेण्ट के साथ जरा क्लब जा रही हूँ। फिर तुमने सुना था, पम्मी ?"

कपूर स्तब्ध-सा उन दोनों की ओर देख रहा था। पम्मी ने कपूर को आँख का इशारा करते हुए कहा—"हाँ, हमसे मिली थी वह, लेकिन बर्टी, वह सार्जेण्ट के साथ नहीं गयी थी !"

"हाँ, तब ?" बर्टी की आँखें चमक उठीं और उसने उल्लास-भरे स्वर में पूछा।

"वह बोली, बर्टी के ये गुलाब सार्जेण्ट से ज्यादा प्यारे हैं।" पम्मी बोली।

"अच्छा !" मुसकराहट से बर्टी का चेहरा खिल उठा, उसकी पीली-पीली आँखें और धँस गयीं और दाँत बाहर झलकने लगे–"हूँ ! क्या कहा उसने, फिर तो कहो !"

"उसने कहा–ये गुलाब सार्जेण्ट से ज्यादा प्यारे हैं, फिर इन्हीं गुलाबों पर नाचती रही और सुबह होते ही इन्हीं फूलों में छिप गयी ! तुम्हें सुबह किसी फूल में तो नहीं मिली ?"

"उहूँ, तुम्हें तो किसी फूल में नहीं मिली ?" बर्टी ने बच्चों के-से भोले विश्वास के स्वरों में कपूर से पूछा।

चन्दर चौंक उठा। पम्मी और बर्टी की इन बातों पर उसका मन बेहद भर आया था। बर्टी की मुसकराहट पर उसकी नसें थरथरा उठी थीं।

"नहीं; मैंने तो नहीं देखा था।" चन्दर ने कहा।

बर्टी ने फिर मायूसी से सिर झुका लिया और आँखें बन्द कर लीं और कराहती हुई आवाज में बोला, "जिस फूल में वह छिप गयी थी उसी को किसी ने चुरा लिया होगा !" फिर सहसा वह तनकर खड़ा हो गया और पुचकारते हुए बोला–"जाने कौन ये फूल चुराता है। अगर मुझे एक बार मिल जाये तो मैं उसका खून ऐसे पी लूँ !" उसने हाथ की अँगुली काटते हुए कहा और उठकर लड़खड़ाता हुआ चला गया।

वातावरण इतना भारी हो गया था कि फिर पम्मी और कपूर ने कोई बातें नहीं कीं। पम्मी ने चुपचाप टाइप करना शुरू किया और कपूर चुपचाप बर्टी की बातें सोचता रहा। घण्टे-भर बाद टाइपराइटर खामोश हुआ तो कपूर ने कहा–

"पम्मी, मैंने जितने लोग देखे हैं उनमें शायद बर्टी सबसे विचित्र है और शायद सबसे दयनीय !"

पम्मी खामोश रही। फिर उसी लापरवाही से अँगड़ाई लेते हुए बोली– "मुझे बर्टी की बातों पर जरा भी दया नहीं आती। मैं उसको दिलासा देती हूँ क्योंकि वह मेरा भाई है और बच्चे की तरह नासमझ और लाचार है।"

कपूर चौंक गया। वह पम्मी की ओर आश्चर्य से चुपचाप देखता रहा; कुछ बोला नहीं।

"क्यों, तुम्हें ताज्जुब क्यों होता है ?" पम्मी ने कुछ मुसकराकर कहा, "लेकिन मैं सच कहती हूँ"–वह बहुत गम्भीर हो गयी, "मुझे जरा तरस नहीं आता इस पागलपन पर।" क्षण-भर चुप रही, फिर जैसे बहुत ही तेजी से बोली– "तुम जानते हो उसके फूल कौन चुराता है ? मैं, मैं उसके फूल तोड़कर फेंक देती हूँ। मुझे शादी से नफरत है, शादी के बाद होने वाली आपसी धोखेबाजी से नफरत है, और उस धोखेबाजी के बाद इस झूठमूठ की यादगार और बेईमानी के पागलपन से नफरत है। और ये गुलाब के फूल, ये क्यों मूल्यवान हैं, इसलिए न कि इसके साथ बर्टी की जिन्दगी की इतनी बड़ी ट्रैजेडी गुँथी हुई है। अगर एक फूल के खूबसूरत होने के लिए आदमी की जिन्दगी में इतनी बड़ी ट्रैजेडी आना जरूरी है तो लानत है उस फूल

की खूबसूरती पर ! मैं उससे नफरत करती हूँ। इसीलिए मैं किताबों से नफरत करती हूँ। एक कहानी लिखने के लिए कितनी कहानियों की ट्रैजेडी बरदाश्त करनी होती है।"

पम्मी चुप हो गयी। उसका चेहरा सुर्ख हो गया था। थोड़ी देर बाद उसका तैश उतर गया और वह अपने आवेश पर खुद शरमा गयी। उठकर वह कपूर के पास गयी और उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोली—"बर्टी से मत कहना, अच्छा ?"

कपूर ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी और कागज समेटकर खड़ा हुआ। पम्मी ने उसके कन्धों पर हाथ रखकर उसे अपनी ओर घुमाकर कहा—"देखो, पिछले चार साल से मैं अकेली थी, और किसी दोस्त का इन्तजार कर रही थी, तुम आए और दोस्त बन गये। तो अब अक्सर आना, ऐं ?"

"अच्छा !" कपूर ने गम्भीरता से कहा।

"डॉ. शुक्ला से मेरा अभिवादन कहना, कभी यहाँ जरूर आयें।"

"आप कभी चलिए, वहाँ उनकी लड़की है। आप उससे मिलकर खुश होंगी।"

पम्मी उसके साथ फाटक तक पहुँचाने चली तो देखा बर्टी एक चमेली के झाड़ में टहनियाँ हटा-हटाकर कुछ ढूँढ़ रहा था। पम्मी को देखकर पूछा उसने—"तुम्हें याद है; वह चमेली के झाड़ में तो नहीं छिपी थी ?" कपूर ने पता नहीं क्यों जल्दी से पम्मी को अभिवादन किया और चल दिया। उसे बर्टी को देखकर डर लगता था।

सुधा का कॉलेज बड़ा एकान्त और खूबसूरत जगह बना हुआ था। दोनों ओर ऊँची-सी मेड़ और बीच में से कंकड़ की एक खूबसूरत घुमावदार सड़क। दायीं ओर चने और गेहूँ के खेत, बेर और शहतूत के झाड़ और बायीं ओर ऊँचे-ऊँचे टीले और ताड़ के लम्बे-लम्बे पेड़। शहर से काफी बाहर देहात का-सा नजारा और इतना शान्त वातावरण लगता था कि यहाँ कोई उथल-पुथल, कोई शोरगुल है ही नहीं। जगह इतनी हरी-भरी की दरजों के कमरों के पीछे ही महुआ चूता था और लम्बी-लम्बी घास से दुपहरिया के नीले फूलों की जंगली लतरें उलझी रहती थीं।

और इस वातावरण ने अगर किसी पर सबसे ज्यादा प्रभाव डाला था तो वह थी गेसू। उसे अच्छी तरह मालूम था कि बाँस के झाड़ के पीछे किस चीज के फूल हैं। पुराने पीपल पर गिलोय की लतर चढ़ी है और करौंदे के झाड़ के पीछे एक साही की माँद है। नागफनी के झाड़ी के पास एक बार उसने एक लोमड़ी भी देखी थी। शहर के एक मशहूर रईस साबिर हुसैन काजमी की वह सबसे बड़ी लड़की थी। उसकी माँ, जिन्हें उसके पिता अदन से ब्याह कर लाये थे, शहर की मशहूर शायरा

थीं। हालाँकि उनका दीवान छपकर मशहूर हो चुका था, मगर वह किसी भी बाहरी आदमी से कभी नहीं मिलती-जुलती थीं, उनकी सारी दुनिया अपने पति और अपने बच्चों तक सीमित थी। उन्हें शायराना नाम रखने का बहुत शौक़ था। अपनी दोनों लड़कियों का नाम उन्होंने गेसू और फूल रखा था और अपने छोटे बच्चे का नाम हसरत। हाँ, वह अपने पतिदेव साबिर साहब के हुक़्क़े से बेहद चिढ़ती थीं और उनका नाम उन्होंने रखा था, 'आतिश-फ़िशाँ।'

घास, फूल, लतर और शायरी का शौक़ गेसू ने अपनी माँ से विरासत में पाया था। क़िस्मत से उसको कॉलेज भी ऐसा मिला जिसमें दरजों की खिड़कियों से आम की शाखें झाँका करती थीं। इसलिए हमेशा जब कभी मौक़ा मिलता था क्लास से भागकर गेसू घास पर लेटकर सपने देखने की आदी हो गयी थी। क्लास के इस महाभिनिश्क्रमण और उसके बाद लतरों की छाँह में जाकर ध्यान-योग की साधना में उसकी एकमात्र साथिन थी सुधा। आम की घनी छाँह में हरी-हरी दूब में दोनों सिर के नीचे हाथ रखकर लेट रहतीं और दुनिया-भर की बातें करती रहतीं। बातों में छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी किस तरह की बातें रहती थीं यह वही समझ सकता है जिसने कभी दो अभिन्न सहेलियों की एकान्त वार्ता सुनी है। ग़ालिब की शायरी से लेकर, उनके छोटे भाई हसरत ने एक कुत्ते का पिल्ला पाला है, यह गेसू सुनाया करती थी और शरत् के उपन्यासों से लेकर यह कि उसकी मालिन ने गिलट का कड़ा बनवाया है, यह सुधा बताया करती थी। दोनों अपने-अपने मन की बातें एक दूसरे को बता डालती थीं और जितना भावुक, प्यारा, अनजान और सुकुमार दोनों का मन था, उतनी ही भावुक और सुकुमार दोनों की बातें। हाँ भावुक, सुकुमार दोनों ही थीं, लेकिन दोनों में एक अन्तर था। गेसू शायर होते हुए भी इसी दुनिया की थी और सुधा शायर न होते हुए भी कल्पनालोक की थी। गेसू अगर झाड़ियों में से कुछ फूल चुनती तो उन्हें सूँघती, उन्हें अपनी चोटी में सजाती और उन पर चन्द शेर कहने के बाद भी उन्हें माला में पिरोकर अपनी कलाई में लपेट लेती। सुधा लतरों के बीच में सिर रखकर लेट जाती और निर्निमेष पलकों से फूलों को देखती रहती और आँखों से न जाने क्या पीकर उन्हें उन्हीं की डालों पर फूलता हुआ छोड़ देती। गेसू हर चीज़ का उचित इस्तेमाल जानती थी, किसी भी चीज़ को पसन्द करने या प्यार करने के बाद अब उसका क्या उपयोग है, क्रियात्मक यथार्थ जीवन में उसका क्या स्थान है, यह गेसू खूब समझती थी। लेकिन सुधा किसी भी फूल के जादू में बँध जाना चाहती थी, उसी की कल्पना में डूब जाना जानती थी, लेकिन उसके बाद सुधा को कुछ नहीं मालूम था। गेसू की कल्पना और भावुक सूक्ष्मता शायरी में व्यक्त हो जाती थी, अतः उसकी जिन्दगी में काफ़ी व्यावहारिकता और यथार्थ था, लेकिन सुधा जो शायरी लिख नहीं सकती थी अपने स्वभाव और गठन में खुद ही एक मासूम शायरी बन गयी थी। वह भी पिछले दो सालों में तो सचमुच ही इतनी गम्भीर, सुकुमार और भावनामयी बन गयी थी कि लगता था कि सूर के गीतों से उसके व्यक्तित्व के रेशे बुन गये हैं।

लड़कियाँ, गेसू और सुधा के इस स्वभाव और उनकी अभिन्नता से वाक़िफ़ थीं। और इसलिए जब आज सुधा की मोटर आकर सायबान में रुकी और उसमें से सुधा और गेसू हाथ में फ़ाइल लिये उतरीं तो कामिनी ने हँसकर प्रभा से कहा—''लो, चन्दा-सूरज की जोड़ी आ गयी !'' सुधा ने सुन लिया। मुसकराकर गेसू की ओर फिर कामिनी और प्रभा की ओर देखकर हँस दी। सुधा बहुत कम बोलती थी, लेकिन उसकी हँसी ने उसे खुशमिज़ाज साबित कर रखा था और वह सभी की प्यारी थी। प्रभा ने आकर सुधा के गले में बाँह डालकर कहा—'गेसू बानो, थोड़ी देर के लिए सुधारानी को हमें दे दो। ज़रा कल के नोट्स उतारने हैं इनसे पूछकर।''

गेसू हँसकर बोली—''उसके पापा से तय कर ले, फिर तू ज़िन्दगी भर सुधा को पाल-पोस, मुझे क्या करना है।''

जब सुधा प्रभा के साथ चली गयी तो गेसू ने कामनी के कन्धे पर हाथ रखा और कहा—''कम्मो रानी, अब तो तुम्हीं हमारे हिस्से में पड़ी, आओ। चलो देखें लतर में कुन्दरू हैं ?''

''कुन्दरू तो नहीं, अब चने का खेत हरिया आया है।'' कम्मो बोली।

गृह-विज्ञान का पीरियड था और मिस उमालकर पढ़ा रही थीं। बीच की क़तार की एक बेंच पर कामिनी, प्रभा, गेसू और सुधा बैठी थीं। हिस्सा बाँट अभी तक क़ायम था अतः कामिनी के बग़ल में गेसू, गेसू के बग़ल में प्रभा और प्रभा के बाद बेंच के कोने पर सुधा बैठी थी। मिस उमालकर रोगियों के खान-पान के बारे में समझा रही थीं। मेज़ के बग़ल में खड़ी हुई, हाथ में एक किताब लिये हुए उसी पर निगाह लगाये वह बोलती जा रही थीं। शायद अँगरेज़ी की किताब में जो कुछ लिखा हुआ था उसी का हिन्दी में उल्था करते हुए बोलती जा रही थीं—''आलू एक नुक़सानदेह तरकारी है, रोग की हालत में। वह खुश्क होता है, गरम होता है और हज़्म मुश्किल से होता है... ।''

सहसा गेसू ने एकदम बीच से पूछा—''गुरुजी, गान्धीजी आलू खाते हैं या नहीं ?'' सभी हँस पड़े।

मिस उमालकर ने बहुत गुस्से से गेसू की ओर देखा और डाँटकर कहा—''व्हाट टॉक ऑफ गान्धी ? आई वाण्ट नो पोलिटिकल डिसकसन इन क्लास (गान्धी से क्या मतलब ? मैं दरजे में राजनीतिक बहस नहीं चाहती।)'' इस पर तो सभी लड़कियों की दबी हुई हँसी फूट पड़ी। मिस उमालकर झल्ला गयीं और मेज़ पर किताब पटकते हुए बोलीं—''साईलेन्स (ख़ामोश) !'' सभी चुप हो गये। उन्होंने फिर पढ़ाना शुरू किया।

''जिगर के रोगियों के लिए हरी तरकारियाँ बहुत फ़ायदेमन्द होती हैं। लौकी, पालक और हर क़िसम के हरे साग तन्दुरुस्ती के लिए बहुत फ़ायदेमन्द होते हैं।''

सहसा प्रभा ने कुहनी मारकर गेसू से कहा—''ले फिर क्या है, निकाल चने का हरा साग, खा-खाकर मोटे हों मिस उमालकर के घण्टे में !''

गेसू ने अपने कुरते की जेब से बहुत-सा साग निकालकर कामिनी और प्रभा को दिया।

मिस उमालकर अब शक्कर के हानि-लाभ बता रही थीं—"लम्बे रोग के बाद रोगी को शक्कर कम देनी चाहिए। दूध या साबूदाने में ताड़ की मिश्री मिला सकते हैं। दूध तो. ग्लूकोज के साथ बहुत स्वादिष्ट लगता है।"

इतने में जब तक सुधा के पास साग पहुँचा कि फौरन मिस उमालकर ने देख लिया। वह समझ गयीं, यह शरारत गेसू की होगी—"मिस गेसू, बीमारी हालत में दूध काहे के साथ स्वादिष्ट लगता है ?"

इतने में सुधा के मुँह से निकला—"साग काहे के साथ खायें ?" और गेसू ने कहा—"नमक के साथ !"

"हूँ ? नमक के साथ ?" मिस उमालकर ने कहा—"बीमारी में दूध नमक के साथ अच्छा लगता है। खड़ी हो ! कहाँ था ध्यान तुम्हारा ?"

गेसू सन्न। मिस उमालकर का चेहरा मारे गुस्से के लाल हो रहा था।

"क्या बात कर रही थीं तुम और सुधा ?"

गेसू सन्न !

"अच्छा, तुम लोग क्लास के बाहर जाओ, और आज हम तुम्हारे गार्जियन को खत भेजेंगे। चलो, जाओ बाहर।"

सुधा ने कुछ मुसकराते हुए प्रभा की ओर देखा और प्रभा हँस दी। गेसू ने देखा कि मिस उमालकर का पारा और भी चढ़ने वाला है तो वह चुपचाप किताब उठाकर चल दी। सुधा भी पीछे-पीछे चल दी। कामिनी ने कहा—"खत-वत भेजती रहना, सुधा !" और क्लास ठठाकर हँस पड़ी। मिस उमालकर गुस्से से नीली पड़ गयीं—"क्लास अब खत्म होगा।" और रजिस्टर उठाकर चल दीं। गेसू अभी अन्दर ही थी कि वह बाहर चली गयीं और उनके जरा दूर पहुँचते ही गेसू ने बड़ी अदा से कहा—"बड़े बेआबरू होकर तेरे कूँचे से हम निकले" और सारा क्लास फिर हँसी से गूँज उठा। लड़कियाँ चिड़ियों की तरह फुर्र हो गयीं और थोड़ी ही देर में सुधा और गेसू बैडमिण्टन फील्ड के पास वाले छतनार पाकड़ के नीचे लेटी हुई थीं।

बड़ी खुशनुमा दोहपरी थी। खुशबू से लदे हलके-हलके झोंके गेसू की ओढ़नी और गरारे की सिलवटों से आँखमिचौनी खेल रहे थे। आसमान में कुछ हलके-रुपहले बादल उड़ रहे थे और जमीन पर बादलों की साँवली छायाएँ दौड़ रही थीं। घास के लम्बे-चौड़े मैदान पर बादलों की छायाओं का खेल बड़ा मासूम लग रहा था। जितनी दूर तक छाँह रहती थी उतनी दूर तक घास का रंग गहरा काही हो जाता था, और जहाँ-जहाँ बादलों से छनकर धूप बरसने लगती थी वहाँ-वहाँ घास सुनहरे धानी रंग की हो जाती थी। दूर कहीं पर पानी बरसा था और बादल हलके होकर खरगोश के मासूम स्वच्छन्द बच्चों की तरह दौड़ रहे थे। सुधा आँखों पर फाइल की छाँह किए हुए बादलों की ओर एकटक देख रही थी। गेसू ने उसकी ओर करवट बदली और

उसकी वेणी में लगे हुए रेशमी फीते को उँगली में उमेठते हुए एक लम्बी-सी साँस भरकर कहा—

"बादशाहों की मुअत्तर ख्वाबगाहों में कहाँ
वह मजा जो भीगी-भीगी घास पर सोने में है,
मुतमइन बेफिक्र लोगों की हँसी में भी कहाँ
लुत्फ जो एक दूसरे को देखकर रोने में है।"

सुधा ने बादलों से अपनी निगाह नहीं हटायी, बस एक करुण सपनीली मुसकराहट बिखेरकर रह गयी।

"क्या देख रही है, सुधा ?" गेसू ने पूछा।

"बादलों को देख रही हूँ।" सुधा ने बेहोश आवाज में जवाब दिया। गेसू उठी और सुधा की छाती पर सिर रखकर बोली—

"कैफ बरदोश, बादलों को न देख,
बेखबर, तू न कुचल जाय कहीं !"

और सुधा के गाल में जोर की चुटकी काट ली। "हाय रे !" सुधा ने चीखकर कहा और उठ बैठी, "वाह ! वाह ! कितना अच्छा शेर है ! किसका है ?"

"पता नहीं किसका है।" गेसू बोली—"लेकिन बहुत सच है सुधी, आस्माँ के बादलों के दामन में अपने ख्वाब टाँक लेना और उनके सहारे जिन्दगी बसर करने का ख्याल है तो बड़ा नाजुक, मगर रानी बड़ा खतरनाक भी है। आदमी बड़ी ठोकरें खाता है। इससे तो अच्छा है कि आदमी को नाजुकखयाली से साबिका ही न पड़े ! खाते-पीते, हँसते-बोलते आदमी की जिन्दगी कट जाय।"

सुधा ने अपना आँचल ठीक किया, और लटों में से घास के तिनके निकालते हुए कहा—"गेसू, अगर हम लोगों को भी शादी-ब्याह के झंझट में न फँसना पड़े और इसी तरह दिन कटते जायें तो कितना मजा आये। हँसते-बोलते, पढ़ते-लिखते, घास में लेटकर बादलों से प्यार करते हुए कितना अच्छा लगता है, लेकिन हम लड़कियों की जिन्दगी भी क्या ? मैं तो सोचती हूँ गेसू; कभी ब्याह ही न करूँ। हमारे पापा का ध्यान कौन रखेगा ?"

गेसू थोड़ी देर तक सुधा की आँखों में आँखें डालकर शरारत-भरी निगाहों से देखती रही और मुसकराकर बोली—"अरे, अब ऐसी भोली नहीं हो रानी तुम ! ये शबाब, ये उठान और ब्याह नहीं करेंगी, जोगन बनेंगी।"

"अच्छा, चल हट बेशरम कहीं की, खुद ब्याह करने की ठान चुकी है तो दुनिया-भर को क्यों तोहमत लगाती है !"

"मैं तो ठान ही चुकी हूँ, मेरा क्या ! फिक्र तो तुम लोगों की है कि ब्याह नहीं होता तो लेटकर बादल देखती हैं।" गेसू ने मचलते हुए कहा।

"अच्छा-अच्छा," गेसू की ओढ़नी खींचकर सिर के नीचे रखकर सुधा ने कहा—"क्या हाल है तेरे अख्तर मियाँ का ? मँगनी कब होगी तेरी ?"

"मँगनी क्या, किसी दिन हो जाये, बस फूफीजान के यहाँ आने-भर की कसर है। वैसे अम्मी तो फूल की बात उनसे चला रही थीं, पर उन्होंने मेरे लिए इरादा जाहिर किया। बड़े अच्छे हैं, आंते हैं तो घर-भर में रोशनी छा जाती है।" गेसू ने बहुत भोलेपन से गोद में सुधा का हाथ रखकर उसकी उँगलियाँ चिटकाते हुए कहा।

"वे तो तेरे चचाजात भाई हैं न ? तुझसे तो पहले उनसे बोल-चाल रही होगी।" सुधा ने पूछा।

"हाँ-हाँ, खूब अच्छी तरह से। मौलवी साहब हम लोगों को साथ-साथ पढ़ाते थे और जब हम दोनों सबक भूल जाते थे तो एक-दूसरे का कान पकड़कर साथ-साथ उठते-बैठते थे।" गेसू कुछ झेंपते हुए बोली।

सुधा हँस पड़ी—"वाह रे ! प्रेम की इतनी विचित्र शुरुआत मैंने कहीं नहीं सुनी थी। तब तो तुम लोग एक-दूसरे का कान पकड़ने के लिए अपने-आप सबक भूल जाते होगे ?"

"नहीं जी, एक बार फिर पढ़कर कौन सबक भूलता है और एक बार सबक याद होने के बाद जानती हो इश्क में क्या होता है—

'मकतबे इश्क में इक ढंग निराला देखा,
उसको छुट्टी न मिली जिसको सबक याद हुआ।'

खैर, यह सब बात जाने दे सुधा, अब तू कब ब्याह करेगी ?"

"जल्दी ही करूँगी।" सुधा बोली।

"किससे ?"

"तुझसे।" और दोनों खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

बादल हट गये थे और पाकड़ की छाँह को चीरते हुए एक सुनहली रोशनी का तार झिलमिला उठा। हँसते वक्त गेसू के कान के टाप चमक उठे और सुधा का ध्यान उधर खिंच गया। "ये कब बनवाया तूने ?"

"बनवाया नहीं।"

"तो उन्होंने दिये होंगे, क्यों ?"

गेसू ने शरमाकर सिर हिला दिया।

सुधा ने उठकर हाथ से छूते हुए कहा—"कितने सुन्दर कमल हैं ! वाह ! क्यों, गेसू ! तूने सचमुच के कमल देखे हैं ?"

"न।"

"मैंने देखे हैं।"

"कहाँ ?"

"असल में पाँच-छह साल पहले तक तो मैं गाँव में रहती थी न। ऊँचाहार के पास एक गाँव में मेरी बुआ रहती हैं न, बचपन से मैं उन्हीं के पास रहती थी। पढ़ाई की शुरुआत मैंने वहीं की और सातवें तक वही पढ़ी। तो वहाँ मेरे स्कूल के पीछे के पोखरे में बहुत-से कमल थे। रोज शाम को मैं भाग जाती थी और तालाब में घुसकर

कमल तोड़ती और घर से बुआ एक लम्बा-सा सोंटा लेकर गालियाँ देती हुई आती थीं मुझे पकड़ने के लिए। जहाँ वह किनारे पर पहुँचतीं तो मैं कहती, अभी डूब जायेंगे बुआ, अभी डूबे, तो बहुत रबड़ी-मलाई की लालच देकर वह मिन्नत करतीं—निकल आओ, तो मैं निकलती थी। तुमने तो कभी देखा नहीं होगा हमारी बुआ को ?"

"न तूने कभी दिखाया ही नहीं।"

"इधर बहुत दिनों से आयीं ही नहीं वो। आयेंगी तो दिखाऊँगी तुझे। और उनकी एक लड़की है। बड़ी प्यारी, बहुत मजे की है। उसे देखकर तो तुम उसे बहुत प्यार करोगी। वो तो अब यहीं आने वाली है। अब यहीं पढ़ेगी।"

"किस दरजे में पढ़ती है ?"

"प्राइवेट विदुषी में बैठेगी इस साल। खूब गोल-मटोल और हँसमुख है।" सुधा बोली।

इतने में घण्टा बोला और गेसू ने सुधा के पैर के नीचे दबी हुई अपनी ओढ़नी खींची।

"अरे, अब आखिरी घण्टे में जाकर क्या पढ़ोगी। हाजिरी कट ही गयी। अब बैठो यहीं बातचीत करें, आराम करें।" सुधा ने अलसाये स्वर में कहा और खड़ी होकर एक मदमाती हुई अँगड़ाई ली—गेसू ने हाथ पकड़कर उसे बिठा लिया और बड़ी गम्भीरता से कहा, "देखो, ऐसी अरसौहीं अँगड़ाई न लिया करो, इससे लोग समझ जाते हैं कि अब बचपन करवट बदल रहा है।"

"धत् !" बेहद झेंपकर और फाइल में मुँह छिपाकर सुधा बोली।

"लो, तुम मजाक समझती हो, एक शायर ने तुम्हारी अँगड़ाई के लिए कहा है—

कौन ये ले रहा है अँगड़ाई
आसमानों को नींद आती है।"

"वाह !" सुधा बोली, "अच्छा गेसू, आज बहुत-से शेर सुनाओ।"

"सुनो—

इक रिदायेतीरगी है और खाबेकायनात
डूबते जाते हैं तारे, भीगती जाती है रात !"

"पहली लाइन के क्या मतलब हैं ?" सुधा ने पूछा।

"रिदायेतीरगी के माने हैं अँधेरे की चादर और खाबेकायनात के माने हैं जिन्दगी का सपना—अब फिर सुनो शेर—

इक रिदायेतीरगी है और खाबेकायनात
डूबते जाते हैं तारे, भीगती जाती है रात !"

"वाह ! कितना अच्छा है— अन्धकार की चादर है, जीवन का स्वप्न है, तारे डूबते जाते हैं, रात भीगती जाती है···गेसू, उर्दू की शायरी बहुत अच्छी है।"

"तो तू खुद उर्दू क्यों नहीं पढ़ लेती ?" गेसू ने कहा।

"चाहती तो बहुत हूँ, पर निभ नहीं पाता !"

"किसी दिन शाम को आओ सुधा, तो अम्मीजान से तुझे शेर सुनवायें। यह ले तेरी मोटर तो आ गयी।"

सुधा उठी, अपनी फाइल उठायी। गेसू ने अपनी ओढ़नी झाड़ी और आगे चली। पास जाकर उचककर उसने प्रिन्सिपल का रूम देखा। वह खाली था। उसने दाई को खवर दी और मोटर पर बैठ गयी।.

गेसू बाहर खड़ी थी। "चल तू भी न !"

"नहीं, मैं गाड़ी पर चली जाऊँगी।"

"अरे चलो, गाड़ी साढ़े चार बजे जायेगी। अभी घण्टा-भर है। घर पर चाय पियेंगे, फिर मोटर पहुँचा देगी। जब तक पापा नहीं हैं तब तक जितना चाहो कार घिसो !"

गेसू भी आ बैठी और कार चल दी।

दूसरे दिन जब चन्दर डॉ॰ शुक्ला के यहाँ निवन्ध की प्रतिलिपि लेकर पहुँचा तो आठ बज चुके थे। सात बजे तो चन्दर की नींद ही खुली थी और जल्दी से वह नहा-धोकर साइकिल दौड़ाता हुआ भागा था कि कहीं भाषण की प्रतिलिपि पहुँचने में देर न हो जाये।

जब वह बँगले पर पहुँचा तो धूप फैल चुकी थी। अब धूप भली नहीं मालूम देती थी, धूप की तेजी बरदाश्त के बाहर होने लगी थी, लेकिन सुधा नीलकाँटे के ऊँचे-ऊँचे झाड़ों की छाँह में एक छोटी-सी कुरसी डाले बैठी थी। बगल में एक छोटी-सी मेज थी जिस पर कोई किताब खुली हुई रखी थी, हाथ में क्रोशिया थी और उँगलियाँ एक नाजुक तेजी से डोरे से उलझ-सुलझ रही थीं। हल्की बादामी रंग की इकलाई की लहराती हुई धोती, नारंगी और काली तिरछी धारियों का कलफ किया चुस्त ब्लाउज और एक कन्धे पर उभरा हुए उसका पफ ऐसा लग रहा था जैसे कि बाँह पर कोई रंगीन तितली आकर बैठी हुई हो और उसका सिर्फ एक पंख उठा हो ! अभी-अभी शायद नहाकर उठी थी क्योंकि शरद् की खुशनुमा धूप की तरह हलके सुनहले बाल पीठ पर लहरा रहे थे। नीलकाँटे की टहनियाँ उनको सुनहली लहरें समझकर अठखेलियाँ कर रही थीं।

चन्दर की साइकिल जब अन्दर दीख पड़ी तो सुधा ने उधर देखा लेकिन कुछ भी न कहकर फिर अपनी क्रोशिया बुनने में लग गयी। चन्दर सीधा पोर्टिको में गया और अपनी साइकिल रखकर भीतर चला गया डॉ॰ शुक्ला के पास। स्टडी रूम में, बैठक में, सोने के कमरे में कहीं भी डॉ॰ शुक्ला नजर नहीं आये। हारकर वह बाहर

आया तो देखा मोटर अभी गैरज में है तो वे जा कहाँ सकते ? और सुधा को तो देखिए ! क्या अकड़ी हुई है आज, जैसे चन्दर को जानती ही नहीं। चन्दर सुधा के पास गया। सुधा का मुँह और भी लटक गया।

"डॉक्टर साहब कहाँ हैं ?" चन्दर ने पूछा।

"हमें क्या मालूम ?" सुधा ने क्रोशिया पर से बिना निगाह उठाये जवाब दिया।

"तो किसे मालूम होगा ?" चन्दर ने डाँटते हुए कहा—"हर वक्त का मजाक हमें अच्छा नहीं लगता। काम की बात का उसी तरह जवाब देना चाहिए। उनके निबन्ध की लिपि देनी है या नहीं !"

"हाँ-हाँ, देनी है तो मैं क्या करूँ ? नहा रहे होंगे। अभी कोई ये तो है नहीं कि तुम निबन्ध की लिपि लाये हो तो कोई नहाये-धोये न, बस सुबह से बैठा रहे कि अब निबन्ध आ रहा है, अब आ रहा है !" सुधा ने मुँह बनाकर आँखें नचाते हुए कहा।

"तो सीधे क्यों नहीं कहती कि नहा रहे हैं।" चन्दर ने सुधा के गुस्से पर हँसकर कहा। चन्दर की हँसी पर तो सुधा का मिजाज और भी बिगड़ गया और अपनी क्रोशिया उठाकर और किताब बगल में दबाकर, वह उठकर अन्दर चल दी। उसके उठते ही चन्दर आराम से उस कुरसी पर बैठ गया और मेज पर टाँग फैलाकर बोला—

"आज मुझे बहुत गुस्सा चढ़ा है, खबरदार कोई बोलना मत !"

सुधा जाते-जाते मुड़कर खड़ी हो गयी।

"हमने कह दिया चन्दर एक बार कि हमें ये सब बातें अच्छी नहीं लगतीं। जब देखो तुम चिढ़ाते रहते हो !" सुधा ने गुस्से से कहा।

"नहीं ! चिढ़ायेंगे नहीं तो पूजा करेंगे ! तुम अपने मौके पर छोड़ देती हो !" चन्दर ने उसी लापरवाही से कहा।

सुधा गयी नहीं। वहीं घास पर बैठ गयी और किताब खोलकर पढ़ने लगी। जब पाँच मिनट तक वह कुछ नहीं बोली तो चन्दर ने सोचा आज बात कुछ गम्भीर है।

"सुधा !" उसने बड़े दुलार से पुकारा। "सुधा !"

सुधा ने कुछ नहीं कहा मगर दो बड़े-बड़े आँसू टप से नीचे किताब पर गिर गये।

"अरे क्या बात है सुधा, नहीं बताओगी ?"

"कुछ नहीं।"

"बता दो, तुम्हें हमारी कसम है।"

"कल शाम को तुम आये नहीं…" सुधा रोनी आवाज में बोली।

"बस इस बात पर इतनी नाराज हो, पागल !"

"हाँ, इस बात पर इतनी नाराज हो ! तुम आओ चाहे हजार बार न आओ; इस पर हम क्यों नाराज होंगे। बड़े कहीं के आये, नहीं आयेंगे तो जैसे हमारा घर-बार नहीं है। अपने को जाने क्या समझ लिया है।" सुधा ने चिढ़कर जवाब दिया।

"अरे तो तुम्हीं तो कह रही थीं, भाई।" चन्दर ने हँसकर कहा।

"तो बात पूरी भी सुनो। शाम को गेसू का नौकर आया था। उसके छोटे भाई हसरत की सालगिरह थी। सुबह 'कुरानखानी' होने वाली थी और उसकी माँ ने बुलाया था।"

"तो गयी क्यों नहीं ?"

"गयी क्यों नहीं ! किससे पूछकर जाती ? आप तो इस वक्त आ रहे हैं जब सब खत्म हो गया !" सुधा बोली।

"तो पापा से पूछ के चली जाती !" चन्दर ने समझाकर कहा—"और फिर गेसू के यहाँ तो यों अकसर जाती हो तुम !"

"तो ? आज तो डान्स भी करने के लिए कहा था उसने। फिर बाद में तुम कहते, 'सुधा, तुम्हें ये नहीं करना चाहिए, वो नहीं करना चाहिए। लड़कियों को ऐसे रहना, वैसे रहना चाहिए।' और बैठ के उपदेश पिलाते और नाराज होते। बिना तुमसे पूछे हम कहीं सिनेमा, पिकनिक, जलसों में गये हैं कभी ?" और फिर आँसू टपक पड़े।

"पगली कहीं की ! इतनी-सी बात पर रोना क्या ? किसी के हाथ कुछ उपहार भेज दो और फिर किसी मौके पर चली जाना।"

"हाँ चली जाना ! तुम्हें कहते क्या लगता है। गेसू ने कितना बुरा माना होगा !" सुधा ने बिगड़ते हुए ही कहा। "फिर इम्तहान आ रहा है, फिर कब जायेंगे ?"

"कब है इम्तहान तुम्हारा ?"

"चाहे जब हो ! मुझे पढ़ाने के लिए कहा किसी से ?"

"अरे भूल गये ! अच्छा, आज देखो कहेंगे !"

"कहेंगे—कहेंगे नहीं, आज दोपहर को आप बुला लाइए, वरना हम सब किताबों में लगाये देते हैं आग। समझे कि नहीं।"

"अच्छा-अच्छा, आज दोपहर को बुला लायेंगे। ठीक, अच्छा याद आया बिसरिया से कहूँगा तुम्हें पढ़ाने के लिए। उसे रुपये की जरूरत भी है।" चन्दर ने छुटकारे का कोई रास्ता न पाकर कहा।

"आज दोपहर को जरूर से।" सुधा ने फिर आँखें नचाकर कहा।

"जरूर से, बाबा, जरूर से।" चन्दर ने एक सन्तोष की साँस लेकर कहा।

"लो, पापा आ गये नहाकर, जाओ !" चन्दर उठा और चल दिया। सुधा उठी और अन्दर चली गयी।

डॉक्टर शुक्ला हल्के-साँवले रंग के जरा स्थूलकाय-से थे। बहुत गम्भीर अध्ययन और अध्यापन और उम्र के साथ-साथ ही उनकी नम्रता और भी बढ़ती जा रही थी। लेकिन वे लोगों से मिलते-जुलते कम थे। व्यक्तिगत दोस्ती उनकी किसी से नहीं थी। लेकिन उत्तर भारत के प्रमुख विद्वान् होने के नाते कान्फ्रेन्सों में, मौखिक परीक्षाओं

में, सरकारी कमेटियों में वे बराबर बुलाये जाते थे और इसमें प्रमुख दिलचस्पी से हिस्सा लेते थे। ऐसी जगहों में चन्दर अकसर उनका प्रमुख सहायक रहता था और इसी नाते चन्दर भी प्रान्त के बड़े-बड़े लोगों से परिचित हो गया था। जब वह एम॰ ए॰ पास हुआ था तब से फाइनेन्स विभाग में उसे कई बार ऊँचे-ऊँचे पदों का 'ऑफर' आ चुका था लेकिन डॉ॰ शुक्ला इसके खिलाफ थे। वे चाहते थे कि पहले वह रिसर्च पूरी कर ले। सम्भव हो तो विदेश हो आये, तब चाहे कुछ काम करे। अपने व्यक्तिगत जीवन में डॉ॰ शुक्ला अन्तर्विरोधों के व्यक्ति थे। पार्टियों में मुसलमानों और ईसाइयों के साथ खाने में उन्हें कोई एतराज नहीं था लेकिन कच्चा खाना वे चौके में आसन पर बैठकर, रेशमी धोती पहनकर खाते थे। सरकार को उन्होंने सलाह दी कि साधु और संन्यासियों को जबरदस्ती काम में लगाया जाये और मन्दिरों की जायदादें जब्त कर ली जायें लेकिन सुबह घण्टे-भर तक पूजा जरूर करते थे। पूजा-पाठ, खान-पान, जात-पाँत के पक्के हामी; लेकिन व्यक्तिगत जीवन में कभी यह नहीं जाना कि उनका कौन-सा शिष्य ब्राह्मण है, कौन बनिया, कौन खत्री, कौन कायस्थ।

नहाकर वे आ रहे थे और दुर्गासप्तशती का कोई श्लोक गुनगुना रहे थे। कपूर को देखा तो रुक गये और बोले—"हैलो, हो गया वह टाइप !"

"जी हाँ।"

"कहाँ कराया टाइप ?"

"मिस डिक्रूजा के यहाँ।"

"अच्छा ! वह लड़की अच्छी है। अब तो बहुत बड़ी हुई होगी ? अभी शादी नहीं हुई ? मैंने तो सोचा वह मिले या न मिले !"

"नहीं, वह यहीं है। शादी हुई। फिर तलाक हो गया।"

"अरे ! तो अकेले रहती है ?"

"नहीं, अपने भाई के साथ है, बर्टी के साथ !"

"अच्छा ! और बर्टी की पत्नी अच्छी तरह है ?"

"वह मर गयी।"

"राम-राम, तब तो घर ही बदल गया होगा।"

"पापा, पूजा के लिए सब बिछा दिया है।" सहसा सुधा बोली।

"अच्छा बेटी, अच्छा चन्दर, मैं पूजा कर आऊँ जल्दी से। तुम चाय पी चुके ?"

"जी हाँ।"

"अच्छा तो मेरी मेज पर एक चार्ट है, जरा इसको ठीक तो कर दो तब तक। मैं अभी आया।"

चन्दर स्टडी रूम में गया और मेज पर बैठ गया। कोट उतारकर उसने खूँटी पर टाँग दी और नक्शा देखने लगा। पास में एक छोटी-सी चीनी की प्याली में चाइना इंक रखी थी और मेज पर पानी। उसने दो बूँद पानी डालकर चाइना इंक घिसनी

शुरू की, इतने में सुधा कमरे में दाखिल—"ऐ सुनो !" उसने चारों ओर देखकर बड़े सशंकित स्वरों में कहा और फिर झुककर चन्दर के कान के पास मुँह लगाकर कहा—"चावल की नानखटाई खाओगे ?"

"ये क्या बला है ?" चन्दर ने इंक घिसते-घिसते पूछा।

"बड़ी अच्छी चीज होती है; पापा को बहुत अच्छी लगती है। आज हमने सुबह अपने हाथ से बनाई थी। ऐं खाओगे ?" सुधा ने बड़े दुलार से पूछा।

"ले आओ।" चन्दर ने कहा।

"ले आये हम, लो !" और सुधा ने अपने आँचल में लिपटी हुई दो नान-खटाई निकालकर मेज पर रख दी।

"अरे तश्तरी में क्यों नहीं लायी ? सब धोती में घी लग गया। इतनी बड़ी हो गयी, शऊर नहीं जरा-सा।" चन्दर ने बिगड़कर कहा।

"छिपा करके लाये हैं, फिर ये सकरी होती हैं कि नहीं ? चौके के बाहर कैसे लाते ! तुम्हारे लिए तो लाये हैं और तुम्हीं बिगड़ रहे हो। 'अन्धे को नोन दो, अन्धा कहे मेरी आँखें फोड़ीं।' " सुधा ने मुँह बनाकर कहा, "खाना है कि नहीं ?"

"हाथ में तो हमारे स्याही लगी है।" चन्दर बोला।

"हम अपने हाथ से नहीं खिलायेंगे, हमारा हाथ जूठा हो जायेगा और राम ! राम ! पता नहीं तुम रेस्तराँ में मुसलमान के हाथ का खाते होंगे। थू-थू !"

चन्दर हँस पड़ा सुधा की इस बात पर और उसने पानी में हाथ डुबोकर बिना पूछे सुधा के आँचल में हाथ पोंछ दिये स्याही के और बेतकल्लुफी से नान-खटाई उठाकर खाने लगा।

"बस, अब धोती का किनारा रंग दिया और यही पहनना है हमें दिनभर।" सुधा ने बिगड़कर कहा।

"खुद नानखटाई छिपाकर लायी और घी लग गया तो कुछ नहीं और हमने स्याही पोंछ दी तो मुँह बिगड़ गया।" चन्दर ने मैपिंग पेन में इंक लगाते हुए कहा।

"हाँ, अभी पापा देखें तो और बिगड़ें कि धोती में घी, स्याही सब लगाये रहती है। तुम्हें क्या ?" और उसने स्याही लगा हुआ छोर कसकर कमर में खोंस लिया।

"छिः, वही घी में तर छोर कमर में खोंस लिया। गन्दी कहीं की !" चन्दर ने चार्ट की लाइनें ठीक करते हुए कहा।

"गन्दी हैं तो, तुमसे मतलब !" और मुँह चिढ़ाते हुए सुधा कमरे से बाहर चली गयी।

चन्दर चुपचाप बैठा चार्ट दुरुस्त करता रहा। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिला—बलिया, आजमगढ़, बस्ती, बनारस आदि में बच्चों की मृत्यु-संख्या का ग्राफ बनाना था और एक ओर उनके नक्शे पर बिन्दुओं की एक सघनता से मृत्यु-संख्या का निर्देश करना था। चन्दर की एक आदत थी वह काम में लगता था तो भूत की तरह लगता था। फिर उसे दीन-दुनिया, किसी की खबर नहीं रहती थी। खाना-पीना,

तन-बदन, किसी का होश नहीं रहता था। इसका एक कारण था। चन्दर उन लड़कों में से था जिनकी जिन्दगी बाहर से बहुत हलकी-फुलकी होते हुए भी अन्दर से बहुत गम्भीर और अर्थमयी होती है, जिनके सामने एक स्पष्ट उद्देश्य, एक लक्ष्य होता है। बाहर से चाहे जैसे होने पर भी अपने आन्तरिक सत्य के प्रति घोर ईमानदारी यह इन लोगों की विशेषता होती है और सारी दुनिया के प्रति अगम्भीर और उच्छृंखल होने पर भी जो चीजें इनकी लक्ष्यपरिधि में आ जाती हैं उनके प्रति उनकी गम्भीरता, साधना और पूजा बन जाती है। इसलिए बाहर से इतना व्यक्तिवादी और सारी दुनिया के प्रति निरपेक्ष और लापरवाह दीख पड़ने पर भी वह अन्तरतम से समाज और युग और अपने आसपास के जीवन और व्यक्तियों के प्रति अपने को बेहद उत्तरदायी अनुभव करता था। वह देशभक्त भी था और शायद समाजवादी भी, पर अपने तरीके से। वह खद्दर नहीं पहनता था, कांग्रेस का सदस्य नहीं था, जेल नहीं गया था, फिर भी वह अपने देश को प्यार करता था। बेहद प्यार। उसकी देशभक्ति, उसका समाजवाद, सभी उसके अध्ययन और खोज में समा गया था। वह यह जानता था कि समाज के सभी स्तम्भों का स्थान अपना अलग होता है। अगर सभी मन्दिर के कंगूरे का फूल बनने की कोशिश करने लगें तो नींव की ईंट और सीढ़ी का पत्थर कौन बनेगा ? और वह जानता था कि अर्थशास्त्र वह पत्थर है जिस पर समाज के सारे भवन का बोझ है। और उसने निश्चय किया था कि अपने देश, अपने युग के आर्थिक पहलू को वह खूब अच्छी तरह से अपने ढंग से विश्लेषण करके देखेगा और उसे आशा थी कि वह एक दिन ऐसा समाधान खोज निकालेगा कि मानव की बहुत-सी समस्याएँ हल हो जायेंगी और आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में अगर आदमी खूँखार जानवर बन गया है तो एक दिन दुनिया उसकी एक आवाज पर देवता बन सकेगी। इसलिए जब वह बैठकर कानपुर की मिलों के मजूदरों के वेतन का चार्ट बनाता था, या उपयुक्त साधनों के अभाव में मर जाने वाले गरीब औरतों और बच्चों का लेखा-जोखा करता था तो उसके सामने अपना कैरियर, अपनी प्रतिष्ठा, अपनी डिग्री का सपना नहीं होता था। उसके मन में उस वक्त वैसा सन्तोष होता था जो किसी पुजारी के मन में होता है जब वह अपने देवता की अर्चना के लिए धूप, दीप, नैवेद्य सजाता है। बल्कि चन्दर थोड़ा भावुक था, एक बार तो जब चन्दर ने अपने रिसर्च के सिलसिले में यह पढ़ा कि अँगरेजों ने अपनी पूँजी लगाने और अपना व्यापार फैलाने के लिए किस तरह मुर्शिदाबाद से लेकर रोहतक तक हिन्दोस्तान के गरीब-से-गरीब और अमीर-से-अमीर बाशिन्दे को अमानुषिकता से लूटा, तब वह फूट-फूटकर रो पड़ा था लेकिन इसके बावजूद उसने राजनीति में कभी डूबकर हिस्सा नहीं लिया क्योंकि उसने देखा कि उसके जो भी मित्र राजनीति में गये वे थोड़े दिन बाद बहुत प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा पा गये मगर आदमीयत खो बैठे।

अपने अर्थशास्त्र के बावजूद वह यह समझता था कि आदमी की जिन्दगी सिर्फ आर्थिक पहलू तक सीमित नहीं और वह यह भी समझता था कि जीवन को सुधारने

के लिए सिर्फ आर्थिक ढाँचा बदल देने भर की जरूरत नहीं है। उसके लिए आदमी का सुधार करना होगा, व्यक्ति का सुधार करना होगा। वरना एक भरे-पूरे और वैभवशाली समाज में भी आज के-से अस्वस्थ और पाशविक वृत्तियों वाले व्यक्ति रहेंगे तो दुनिया ऐसी ही लगेगी जैसे एक खूबसूरत सजा-सजाया महल जिसमें कीड़े और राक्षस रहते हों।

वह यह भी समझता था कि वह जिस तरह की दुनिया का सपना देखता, वह दुनिया आज किसी भी एक राजनीतिक क्रान्ति या किसी भी विशेष पार्टी की सहायता मात्र से नहीं बन सकती है। उसके लिए आदमी को अपने को बदलना होगा, किसी समाज को बदलने से काम नहीं चलेगा। इसलिए वह अपने व्यक्ति के संसार में निरन्तर लगा रहता था और समाज के आर्थिक पहलू को समझने की कोशिश करता रहता था। यही कारण है कि अपने जीवन में आने वाले व्यक्तियों के प्रति वह बेहद ईमानदार रहता था और अपने अध्ययन और काम के प्रति वह सचेत और जागरूक रहता था और वह अच्छी तरह समझता था कि इस तरह वह दुनिया को उस ओर बढ़ाने में थोड़ी-सी मदद कर रहा है। चूँकि अपने में भी वह सत्य की वही चिनगारी पाता था इसलिए कवि या दार्शनिक न होते हुए भी वह इतना भावुक, इतना दृढ़-चरित्र, इतना सशक्त और इतना गम्भीर था और काम तो अपना वह इस तरह करता था जैसे वह किसी की एकाग्र उपासना कर रहा हो। इसलिए जब वह चार्ट के नक्शे पर कलम चला रहा था तो उसे मालूम नहीं हुआ कि कितनी देर से डॉ॰ शुक्ला आकर उसके पीछे खड़े हो गये।

"वाह, नक्शे पर तो तुम्हारा हाथ बहुत अच्छा चलता है। बहुत अच्छा ! अब उसे रहने दो। लाओ, देखें तुम्हारा काम कैसा चल रहा है। आज तो इतवार है न ?"

डॉ॰ शुक्ला पास की कुरसी पर बैठकर बोले—"चन्दर ! आजकल मैं एक किताब लिखने की सोच रहा हूँ। मैंने सोचा है कि भारतवर्ष की जाति-व्यवस्था का नये वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन और विश्लेषण किया जाय। तुम इसके बारे में क्या सोचते हो ?"

"व्यर्थ है! जो व्यवस्था आज नहीं तो कल चूर-चूर होने जा रही है उसके बारे में तूमार बाँधना और समय बरबाद करना बेकार है।" चन्दर ने बहुत आत्मविश्वास से कहा।

"यही तो तुम लोगों में खराबी है। कुछ थोड़ी-सी खराबियाँ जाति-व्यवस्था की देख लीं और उसके खिलाफ हो गये। एक रिसर्च स्कॉलर का दृष्टिकोण ही दूसरा होना चाहिए। फिर हमारे भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं को तो बहुत ही सावधानी से समझने की आवश्यकता है। यह समझ लो कि मानव-जाति दुर्बल नहीं है। अपने विकास-क्रम में वह उन्हीं संस्थाओं, रीति-रिवाजों और परम्पराओं को रहने देती है जो उसके अस्तित्व के लिए बहुत आवश्यक होती है। अगर वे आवश्यक न हुईं तो मानव उससे छुटकारा माँग लेता है। यह जाति-व्यवस्था जाने कितने सालों से

हिन्दोस्तान में कायम है, क्या यही इस बात का प्रमाण नहीं कि यह बहुत सशक्त है, अपने में बहुत जरूरी है ?"

"अरे हिन्दोस्तान की भली चलायी।" चन्दर बोला—"हिन्दोस्तान में तो गुलामी कितने दिनों से कायम है तो क्या वह भी जरूरी है।"

"बिलकुल जरूरी है।" डॉ॰ शुक्ला बोले—"मुझे भी हिन्दोस्तान पर गर्व है। मैंने कभी कांग्रेस का काम किया, लेकिन मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि जरा-सी आजादी अगर मिलती है हिन्दोस्तानियों को, तो वे उसका भरपूर दुरुपयोग करने से बाज नहीं आते और कभी भी ये लोग अच्छे शासक नहीं निकलेंगे।"

"अरे नहीं ! ऐसी बात नहीं। हिन्दोस्तानियों को ऐसा बना दिया है अँगरेजों ने। वरना हिन्दोस्तान ने हीं तो चन्द्रगुप्त और अशोक पैदा किये थे और रही जाति-व्यवस्था की बात तो मुझे तो स्पष्ट दीख रहा है कि जाति-व्यवस्था टूट रही है।" कपूर बोला—"रोटी-बेटी की कैद थी। रोटी की कैद तो करीब-करीब टूट गयी अब बेटी की कैद भी···ब्याह-शादियाँ भी दो-एक पीढ़ी के बाद स्वच्छन्दता से होने लगेंगी।"

"अगर ऐसा होगा तो बहुत गलत होगा। इससे जातिगत पतन होता है। ब्याह-शादी को कम-से-कम मैं भावना की दृष्टि से नहीं देखता। यह एक सामाजिक तथ्य है और उसी दृष्टिकोण से हमें देखना चाहिए। शादी में सबसे बड़ी बात होती है सांस्कृतिक समानता। और जब अलग-अलग जाति में अलग-अलग रीति-रिवाज हैं तो एक जाति की लड़की दूसरी जाति में जाकर कभी भी अपने को ठीक से सन्तुलित नहीं कर सकती। और फिर एक बनिया की व्यापारिक प्रवृत्तियों की लड़की और एक ब्राह्मण का अध्ययन वृत्ति का लड़का, इनकी सन्तान न इधर विकास कर सकती है न उधर। यह तो सामाजिक व्यवस्था को व्यर्थ के लिए असन्तुलित करना हुआ।"

"हाँ, लेकिन विवाह को आप केवल समाज के दृष्टिकोण से क्यों देखते हैं ? व्यक्ति के दृष्टिकोण से भी देखिए। अगर दो विभिन्न जाति के लड़के-लड़की अपना मानसिक सन्तुलन ज्यादा अच्छा कर सकते हैं तो क्यों न विवाह की इजाजत दी जाये !"

"ओह, एक व्यक्ति के सुझाव के लिए हम समाज को क्यों नुकसान पहुँचाएँ ! और इसका क्या निश्चय कि विवाह के समय यदि दोनों में मानसिक सन्तुलन है तो विवाह के बाद भी रहेगा ही। मानसिक सन्तुलन और प्रेम जितना अपने मन पर आधारित होता है उतना ही बाहरी परिस्थितियों पर। क्या जाने ब्याह के वक्त की परिस्थिति का दोनों के मन पर कितना प्रभाव है और उसके बाद सन्तुलन रह पाता है या नहीं ? और मैंने तो लव-मैरिजेज (प्रेम-विवाह) को असफल ही होते देखा है। बोलो है या नहीं ?" डॉ॰ शुक्ला ने कहा।

"हाँ, प्रेम-विवाह अकसर असफल होते हैं, लेकिन सम्भव है वह प्रेम न होता हो। जहाँ सच्चा प्रेम होगा वहाँ कभी असफल विवाह नहीं होंगे।" चन्दर ने बहुत

साहस करके कहा।

"ओह ! ये सब साहित्य की बातें हैं। समाजशास्त्र की दृष्टि से या वैज्ञानिक दृष्टि से देखो ! अच्छा खैर, अभी मैंने उसकी रूप-रेखा बनायी है। लिखूँगा तो तुम सुनते चलना। लाओ, वह निबन्ध कहाँ है !" डॉ॰ शुक्ला बोले।

चन्दर ने उन्हें टाइप की हुई प्रतिलिपि दे दी। उलट-पुलटकर डॉ॰ शुक्ला ने देखा और कहा—"ठीक है। अच्छा चन्दर, अपना काम इधर ठीक-ठाक कर लो, अगले इतवार को लखनऊ कॉन्फ्रेन्स में चलना है।"

"अच्छा ! कार पर चलेंगे या ट्रेन से ?"

"ट्रेन से। अच्छा, " घड़ी देखते हुए उन्होंने कहा—"अब जरा मैं काम से चल रहा हूँ। तुम यह चार्ट बना डालो और एक निबन्ध लिख डालना 'पूर्वी जिलों में शिशु मृत्यु।' प्रान्त के स्वास्थ्य विभाग ने एक पुरस्कार घोषित किया है।"

डॉ॰ शुक्ला चले गये। चन्दर ने फिर चार्ट में हाथ लगाया।

चन्दर के जाने के जरा ही देर बाद पापा आये और खाने बैठे। सुधा ने रसोई की रेशमी धोती पहनी और पापा को पंखा झलने बैठ गयी। सुधा अपने पापा की सिरचढ़ी दुलारी बेटियों में से थी और इतनी बड़ी हो जाने पर भी वह दुलार दिखाने से बाज नहीं आती थी। फिर आज तो उसने पापा की प्रिय नानखटाई अपने हाथ से बनाई थी। आज तो दुलार दिखाने का उसका हक था और भली बुरी हर तरह की जिद्द का मंजूर करना, यह पापा की मजबूरी थी।

मुश्किल से डॉ॰ साहब ने अभी दो कौर खाये होंगे कि सुधा ने कहा—"नानखटाई खाओ, पापा !"

डॉ॰ शुक्ला ने एक नानखटाई तोड़कर खाते हुए कहा—"बहुत अच्छी है !" खाते-खाते उन्होंने पूछा—"सोमवार को कौन दिन है, सुधा !"

"सोमवार को कौन दिन है ? सोमवार को 'मण्डे' है।" सुधा ने हँसकर कहा। डॉ॰ शुक्ला भी अपनी भूल पर हँस पड़े। "अरे देख तो मैं कितना भुलक्कड़ हो गया हूँ। मेरा मतलब था कि सोमवार को कौन तारीख है।"

"11 तारीख।" सुधा बोली—"क्यों ?"

"कुछ नहीं, 10 को कॉन्फ्रेन्स है और 14 को तुम्हारी बुआ आ रही हैं।"

"बुआ आ रही हैं, और बिनती भी आयेगी ?"

"हाँ, उसी को तो पहुँचाने आ रही हैं। विदुषी का केन्द्र यहीं तो है।"

"आहा ! अब तो विनती तीन महीने यहीं रहेगी, पापा अब विनती को यहीं बुला लो। मैं बहुत अकेली रहती हूँ।"

"हाँ, अब तो जून तक यहीं रहेगी। फिर जुलाई में उसकी शादी होगी।" डॉ. शुक्ला ने कहा।

"अरे, अभी से ? अभी उसकी उम्र ही क्या है !" सुधा बोली।

"क्यों, तेरे बराबर है। अब तेरे लिए भी तेरी बुआ ने लिखा है।"

"नहीं पापा, हम ब्याह नहीं करेंगे।" सुधा ने मचलकर कहा।

"तब ?"

"बस हम पढ़ेंगे। एफ. ए. कर लेंगे, फिर बी. ए., फिर एम. ए. फिर रिसर्च, फिर बराबर पढ़ते जायेंगे, फिर एक दिन हम भी तुम्हारे बराबर हो जायेंगे। क्यों पापा ?"

"पागल नहीं तो, बातें तो सुनो इसकी। ला, दो नानखटाई और दे।" शुक्ला हँसकर बोले।

"नहीं, पहले तो कबूल दो तब हम नानखटाई देंगे। बताओ ब्याह तो नहीं करोगे।" सुधा ने दो नानखटाइयाँ हाथ में उठाकर कहा।

"ला, रख।"

"नहीं, पहले बता दो।"

"अच्छा-अच्छा, नहीं करेंगे।"

सुधा ने दोनों नानखटाइयाँ रखकर पंखा झलना शुरू किया। इतने में फिर नानखटाइयाँ खाते हुए डॉ. शुक्ला बोले—"तेरी सास तुझे देखने आयेगी तो यही नानखटाइयाँ तुमसे बनवाकर खिलायेंगे।"

"फिर वही बात" सुधा ने पंखा पटककर कहा—"अभी तुम वादा कर चुके हो कि ब्याह नहीं करेंगे।"

"हाँ-हाँ, ब्याह नहीं करूँगा, यह तो कह दिया मैंने। लेकिन तेरा ब्याह नहीं करूँगा, यह मैंने कब कहा ?"

"हाँ आँ, ये तो फिर झूठ बोल गये तुम···" सुधा बोली।

"अच्छा, ए ! चलो ओहर।" महराजिन ने डाँटकर कहा, "एत्ती बड़ी बिटिया हो गयी, मारे दुलार के बररानी जात है।" महराजिन पुरानी थी और सुधा को डाँटने का पूरा हक था उसे, और सुधा भी उसका बहुत लिहाज करती थी। वह उठी और चुपचाप जाकर अपने कमरे में लेट गयी। 12 बज रहे थे।

वह लेटी-लेटी कल रात की बात सोचने लगी। क्लास में क्या मजा आया था कल; गेसू कितनी अच्छी लड़की है। इस वक्त गेसू के यहाँ खाना-पीना हो रहा होगा और फिर सब लोग मिलकर गायेंगे। कौन जाने शायद दोपहर को कव्वाली भी हो। इन लोगों के यहाँ कव्वाली इतनी अच्छी होती है। सुधा सुन नहीं पायेगी और गेसू ने भी कितना बुरा माना होगा। और यह सब चन्दर की वजह से। चन्दर हमेशा

उसके आने-जाने, उठने-बैठने में कतर-ब्योंत करता रहता है। एक बार वह अपने मन से लड़कियों के साथ पिकनिक में चली गयी। वहीं चन्दर के बहुत-से दोस्त भी थे। एक दोस्त ने जाकर चन्दर से जाने क्या कह दिया कि चन्दर उस पर बहुत बिगड़ा। और सुधा कितनी रोयी थी उस दिन। यह चन्दर बहुत खराब है। सच पूछो तो अगर कभी-कभी वह सुधा का कहना मान लेता है तो उससे दुगुना सुधा पर रोब जमाता है और सुधा को रुला-रुलाकर मार डालता है। और खुद अपने-आप दुनिया भर में घूमेंगे। अपना काम होगा तो "चलो सुधा, अभी करो, फौरन।" और सुधा का काम होगा तो—"अरे भाई, क्या करें, भूल गये।" अब आज ही देखो, सुबह आठ बजे आये और अब देखो दो बजे भी जनाब आते हैं या नहीं ? और कह गये हैं दो बजे तक के लिए तो दो बजे तक सुधा को चैन नहीं पड़ेगी। न नींद आयेगी, न किसी काम में तबीयत लगेगी। लेकिन अब ऐसे काम कैसे चलेगा। इम्तहान को कितने थोड़े दिन रह गये हैं। और सुधा की तबीयत सिवा पोयट्री (कविता) के और कुछ पढ़ने में लगती ही नहीं। कब से वह चन्दर से कह रही है थोड़ा-सा इकनामिक्स पढ़ा दो, लेकिन ऐसा स्वार्थी है कि बस चाय पी ली, नानखटाई खा ली, रुला लिया और फिर अपने मस्त साइकिल पर घूम रहे हैं।

यही सब सोचते-सोचते सुधा को नींद आ गयी।

और तीन बजे जब गेसू आयी तो भी सुधा सो रही थी। पलंग के नीचे डी. एम. सी. का गोला खुला हुआ था और तकिये के पास क्रोशिया पड़ी थी। सुधा थी बड़ी प्यारी। बड़ी खूबसूरत। और खासतौर से उसकी पलकें तो अपराजिता के फूलों को मात करती थीं। और थी इतनी गोरी गुदकारी कि कहीं पर दबा दो तो फूल खिल जाये मूँगिया होंठों पर जाने कैसा अछूता गुलाब मुसकराता था और बाँहें तो जैसे बेले की पाँखुरियों की बनी हों। गेसू आयी। उसके हाथ में मिठाई थी जो उसकी माँ ने सुधा के लिए भेजी थी। वह पल-भर खड़ी रही फिर उसने मेज पर मिठाई रख दी और क्रोशिया से सुधा की गर्दन गुदगुदाने लगी। सुधा ने करवट बदल ली। गेसू ने नीचे पड़ा हुआ डोरा उठाया और आहिस्ते से उसका चुचिला डोरे के एक छोर से बाँधकर दूसरा छोर मेज के पाये से बाँध दिया। और उसके बाद बोली—"सुधा, सुधा उठो।"

सुधा चौंककर उठ गयी और आँखें मलते-मलते बोली—"अब दो बजे हैं ? लाये उन्हें या नहीं ?"

"ओहो ! उन्हें लाये या नहीं किसे बुलाया था रानी, दो बजे; जरा हमें भी तो मालूम हो ?" गेसू ने बाँह में चुटकी काटते हुए पूछा।

"उफ्फोह" सुधा बाँह झटककर बोली—"मार डाला ! बेदर्द कहीं की ! ये सब अपने उन्हीं अख्तर मियाँ को दिखाया कर !" और ज्योंही सुधा ने सिर ढँकने के लिए पल्ला उठाया तो देखा कि चोटी डोर में बँधी हुई है। इसके पहले कि सुधा कुछ कहे, गेसू बोली—"या सनम ! जरा पढ़ाई तो देखो, मैंने तो सुना था कि नींद न आये

इसलिए लड़के अपनी चोटी खूँटी में बाँध लेते हैं पर यह नहीं मालूम था कि लड़कियाँ भी अब वही करने लगी हैं।"

सुधा ने चोटी से डोर खोलते हुए कहा—"मैं ही सताने को रह गयी हूँ। अख्तर मियाँ की चोटी बाँधकर नचाना उन्हें। अभी से बेताब क्यों हुई जाती है ?"

"अरे रानी, उनके चोटी कहाँ ? मियाँ हैं मियाँ ?"

"चोटी न सही, दाढ़ी सही।"

"दाढ़ी, खुदा खैर करे, मगर वो दाढ़ी रख लें तो मैं उनसे मोहब्बत तोड़ लूँ।"

सुधा हँसने लगी।

"ले, अम्मी ने तेरे लिए मिठाई भेजी है। तू आयी क्यों नहीं ?"

"क्या बताऊँ ?"

"बताऊँ-वताऊँ कुछ नहीं। अब कब आयेगी तू ?"

"गेसू, सुनो, इसी मंगल, नहीं-नहीं बृहस्पति को बुआ आ रही हैं। वो चली जायेंगी तब आऊँगी मैं।"

"अच्छा, अब मैं चलूँ। अभी कामिनी और प्रभा के यहाँ मिठाई पहुँचानी है।" गेसू मुड़ते हुए बोली।

"अरे बैठो भी।" सुधा ने गेसू की ओढ़नी पकड़कर उसे खींचकर बिठलाते हुए कहा—"अभी आये हो, बैठे हो, दामन सँभाला है।"

"आहा ! अब तो तू भी उर्दू शायरी कहने लगी।" गेसू ने बैठते हुए कहा।

"तेरा ही मर्ज लग गया।" सुधा ने हँसकर कहा।

"देख कहीं और भी मर्ज न लग जाये, वरना फिर तेरे लिए भी इन्तजाम करना होगा !" गेसू ने पलंग पर लेटते हुए कहा।

"अरे ये वो गुड़ नहीं कि चींटे खायें।"

"देखूँगी, और देखूँगी क्या, देख रही हूँ। इधर पिछले दो साल से कितनी बदल गयी है तू। पहले कितना हँसती-बोलती थी, कितनी लड़ती-झगड़ती थी और अब कितना हँसने-बोलने पर भी गुमसुम हो गयी है तू। और वैसे हमेशा हँसती रहे चाहे लेकिन जाने किस खयाल में डूबी रहती है हमेशा।" गेसू ने सुधा की ओर देखते हुए कहा।

"धत् पगली कहीं की।" सुधा ने गेसू के एक हलकी-सी चपत मारकर कहा—"यह सब तेरे अपने ख्याली-पुलाव हैं। मैं किसी के ध्यान में डूबूँगी, ये हमारे गुरु ने नहीं सिखाया।"

"गुरु तो किसी के नहीं सिखाते सुधा रानी, बिल्कुल सच-सच, क्या कभी तुम्हारे मन में किसी के लिए मोहब्बत नहीं जागी ?" गेसू ने बहुत गम्भीरता से पूछा।

"देख गेसू, तुझसे मैंने आज तक तो कभी कुछ नहीं छिपाया, न शायद कभी छिपाऊँगी। अगर कभी कोई बात होती तो तुझसे छिपी न रहती और रहा मुहब्बत का, तो सच पूछ तो मैंने जो कुछ कहानियों में पढ़ा है कि किसी को देखकर मैं रोने लगूँ, गाने लगूँ, पागल हो जाऊँ यह सब कभी मुझे नहीं हुआ। और रहीं कविताएँ

तो उनमें की बातें मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। कीट्स की कविताएँ पढ़कर ऐसा लगा है अकसर कि मेरी नसों का कतरा-कतरा आँसू बन कर छलकने वाला है। लेकिन वह महज कविता का असर होता है।"

"महज कविता का असर, " गेसू ने पूछा, "कभी किसी खास आदमी के लिए तेने मन में हँसी या आँसू नहीं उमड़ते ! कभी अपने मन को जाँचकर तो देख़, कहीं तेरी नाजुक-ख्याली के परदे में किसी एक की सूरत तो नहीं छिपी है।"

"नहीं गेसू बानो, नहीं, .इसमें मन को जाँचने की क्या बात है। ऐसी बात होती और मन किसी के लिए झुकता तो क्या खुद मुझे नहीं मालूम होता ?" सुधा बोली, "लेकिन तुम ऐसा क्यों सोचती हो ?"

"बात यह है, सुधी !" गेसू ने सुधा को अपनी गोद में खींचते हुए कहा– "देखो, तुम मुझसे इल्म में ऊँची हो, तुमने अँगरेजी शायरी छान डाली है लेकिन जिन्दगी से जितना मुझे साबिका पड़ चुका है, अभी तुम्हें नहीं पड़ा। अकसर कब, कहाँ और कैसे मन अपने को हार बैठता है, यह खुद हमें पता नहीं लगता। मालूम तब होता है जब जिसके कदम पर हमने सिर रखा है वह झटके से अपने कदम घसीट ले। उस वक्त हमारी नींद टूट जाती है और तब हम जाकर देखते हैं कि अरे हमारा सिर तो किसी के कदमों पर रखा हुआ था और उनके सहारे आराम से सोते हुए हम सपना देख रहे थे कि हमारा सिर कहीं झुका ही नहीं। और मुझे जाने तेरी आँखों में इधर क्या दीख रहा है कि मैं बेचैन हो उठी हूँ। तूने कभी कुछ नहीं कहा, लेकिन मैंने देखा कि नाजुक अशआर तेरे दिल को उस जगह छू लेते हैं जिस जगह उसी को छू सकते हैं जो अपना दिल किसी के कदमों पर चढ़ा चुका हो। और मैं यह नहीं कहती कि तूने मुझसे छिपाया है। कौन जानता है तेरे दिल ने खुद तुझसे यह राज छिपा रखा हो।" और सुधा के गाल थपथपाते हुए गेसू बोली–"लेकिन मेरी एक बात मानेगी तू ? तू कभी इस दर्द को मोल न लेना बहुत तकलीफ होती है।"

सुधा हँसने लगी–"तकलीफ की क्या बात ? तू तो है ही। तुझसे पूछ लूँगी उसका इलाज।"

"मुझसे पूछकर क्या कर लेगी–

'दर्दे दिल क्या बाँटने की चीज है ?
बाँट लें अपने पराये दर्दे दिल ?'

नहीं, तू बड़ी सुकुवाँर है। तू इन तकलीफों के लिए बनी नहीं मेरी चम्पा !" और गेसू ने उसका सिर अपनी छाती में छिपा लिया।

टन से घड़ी ने साढ़े तीन बजाये।

सुधा ने अपना सिर उठाया और घड़ी की ओर देखकर कहा–

"ओफ्फोह, साढ़े तीन बजे गये और अभी तक गायब !"

"किसके इंतजार में बेताब है तू ?" गेसू ने उठकर पूछा।

"बस दर्दे दिल, मुहब्बत, इन्तजार, बेताबी, तेरे दिमाग में तो यही सब भरा रहता है आज कल, वही तू सबको समझती है। इन्तजार-विन्तजार नहीं, चन्दर अभी मास्टर लेकर आयेंगे। अब इम्तहान कितना नजदीक है।"

"हाँ, ये तो सच है और अभी तक मुझसे पूछ, क्या पढ़ाई हुई है। असल बात तो यह है कि कॉलेज में पढ़ाई हो तो घर में पढ़ने में मन लगे और राजा-कॉलेज में पढ़ाई नहीं होती। इससे अच्छा सीधे युनिवर्सिटी में बी॰ ए॰ करते तो अच्छा था। मेरी तो अम्मी ने कहा कि वहाँ लड़के पढ़ते हैं, वहाँ नहीं भेजूँगी, लेकिन तू क्यों नहीं गयी, सुधा ?"

"मुझे भी चन्दर ने मना कर दिया था।" सुधा बोली।

सहसा गेसू ने एक क्षण को सुधा की ओर देखा और कहा—"सुधी, तुझसे एक बात पूछूँ !"

"हाँ।"

"अच्छा जाने दे !"

"पूछो न !"

"नहीं, पूछना क्या, खुद जाहिर है।"

"क्या ?"

"कुछ नहीं।"

"पूछो न !"

"अच्छा, फिर कभी पूछ लेंगे ! अब देर हो रही है। आधा घण्टा हो गया। कोचवान बाहर खड़ा है।"

सुधा गेसू को पहुँचाने बाहर तक आयी।

"कभी हसरत को लेकर आओ।" सुधा बोली।

"अब पहले तुम आओ।" गेसू ने चलते-चलते कहा।

"हाँ, हम तो विनती को लेकर आयेंगे। और हसरत से कह देना तभी उसके लिए तोहफा लायेंगे !"

"अच्छा, सलाम···"

और गेसू की गाड़ी मुश्किल से फाटक के बाहर गयी होगी कि साइकिल पर चन्दर आते हुए दीख पड़ा। सुधा ने बहुत गौर से देखा कि उसके साथ कौन है, मगर वह अकेला था।

सुधा सुचमुच झल्ला गयी। आखिर लापरवाही की हद होती है। चन्दर को दुनिया भर के काम याद रहते हैं, एक सुधा से जाने क्या खार खाये बैठा है कि सुधा का काम कभी नहीं करेगा। इस बात पर सुधा कभी-कभी दुःखी हो जाती है और घर में किससे वह कहे काम के लिए। खुद कभी बाजार नहीं जाती। नतीजा यह होता है कि वह छोटी-से-छोटी चीज के लिए मोहताज होकर बैठ जाती है। और काम नौकरों से करवा भी ले, पर अब मास्टर तो नौकर से नहीं ढुँढ़वाया जा सकता ? ऊन तो

नौकर नहीं पसन्द कर सकता ? किताबें तो नौकर नहीं ला सकता और चन्दर का यह हाल है। इसी बात पर कभी-कभी उसे रुलाई आ जाती है।

चन्दर ने आकर बरामदे में साइकिल रखी और सुधा का चेहरा देखते ही वह समझ गया। "काहे मुँह बना रखा है, पाँच बजे मास्टर साहब आयेंगे तुम्हारे। अभी उन्हीं के यहाँ से आ रहे हैं। बिसरिया को जानती हो, वही आयेंगे।" और उसके बाद चन्दर सीधा स्टडी-रूम में पहुँच गया। वहाँ जाकर देखा तो आराम-कुरसी पर बैठे-ही-बैठे डॉ. शुक्ला सो रहे हैं अतः उसने अपना चार्ट और पेन उठाया और ड्राइंगरूम में आकर चुपचाप काम करने लगा।

बड़ा गम्भीर था वह। जब इंक घोलने के लिए उसने सुधा से पानी नहीं माँगा और खुद गिलास लाकर आँगन में पानी लेने लगा, तब सुधा समझ गयी कि आज दिमाग कुछ बिगड़ा है। वह एकदम तड़प उठी क्या करे वह ! वैसे चाहे वह चन्दर से कितना ही ढीठ क्यों न हो पर जब चन्दर गुस्सा रहता था तब सुधा की रूह काँप उठती थी। उसकी हिम्मत नहीं पड़ती थी कि वह कुछ भी कहे। लेकिन अन्दर-ही-अन्दर वह इतनी परेशान हो उठती थी कि बस।

कई बार वह किसी-न-किसी बहाने से ड्राइंगरूम में आयी, कभी गुलदस्ता बदलने, कभी मेजपोश बदलने, कभी आलमारी में कुछ रखने, कभी आलमारी में से कुछ निकालने, लेकिन चन्दर अपने चार्ट में निगाह गड़ाये रहा। उसने सुधा की ओर देखा तक नहीं। सुधा की आँख में आँसू छलक आये और वह चुपचाप अपने कमरे में चली गयी और लेट गयी। थोड़ी देर वह पड़ी रही, पता नहीं क्यों वह फूट-फूटकर रो पड़ी। खूब रोयी, खूब रोयी और फिर मुँह धोकर आकर पढ़ने की कोशिश करने लगी। जब हर अक्षर में उसे चन्दर का उदास चेहरा नजर आने लगा तो उसने किताब बन्द करके रख दी और ड्राइंगरूम में गयी। चन्दर ने चार्ट बनाना भी बन्द कर दिया था और कुरसी पर सिर टेके छत की ओर देखता हुआ जाने क्या सोच रहा था।

वह जाकर सामने बैठ गयी तो चन्दर ने चौंककर सिर उठाया और फिर चार्ट को सामने खिसका लिया। सुधा ने बड़ी हिम्मत करके कहा–

"चन्दर !"

"क्या !" बड़े भर्राये गले से चन्दर बोला।

"इधर देखो !" सुधा ने बहुत दुलार से कहा।

"क्या है !" चन्दर ने उधर देखते हुए कहा–"अरे सुधा ! तुम रो क्यों रही हो ?"

"हमारी बात पर नाराज हो गये तुम। हम क्या करें, हमारा स्वभाव ही ऐसा हो गया। पता नहीं क्यों तुम पर इतना गुस्सा आ जाता है।" सुधा के गाल पर दो बड़े-बड़े मोती ढलक आये।

"अरे पगली ! मालूम होता है तुम्हारा तो दिमाग बहुत जल्दी खराब हो जायेगा, हमने तुमसे कुछ कहा है ?"

"कह लेते तो हमें सन्तोष हो जाता। हमने कभी कहा तुमसे कि तुम कहा मत करो। गुस्सा मत हुआ करो। मगर तुम तो फिर गुस्सा मन-ही-मन में छिपाने लगते हो। इसी पर हमें रुलाई आ जाती है।"

"नहीं सुधी, तुम्हारी बात नहीं थी। और हम गुस्सा भी नहीं थे। पता नहीं क्यों मन बड़ा भारी-सा था।"

"क्या बात है, अगर बता सको तो बताओ, वरना हम कौन हैं तुमसे पूछने वाले।" सुधा ने बड़े करुण स्वर में कहा।

"तो तुम्हारा दिमाग खराब हुआ। हमने कभी तुमसे कोई बात छिपायी ? जाओ, अच्छी लड़की की तरह मुँह धो आओ।"

सुधा उठी और मुँह धोकर आकर बैठ गयी।

"अब बताओ, क्या बात थी ?"

"कोई एक बात हो तो बतायें। पता नहीं तुम्हारे घर से गये तो एक-न-एक ऐसी बात होती गयी कि मन बड़ा उदास हो गया।"

"आखिर फिर भी कोई बात तो हुई ही होगी !"

"बात यह हुई कि तुम्हारे यहाँ से मैं घर गया खाना खाने। वहाँ देखा चाचाजी आये हुए हैं, उनके साथ एक कोई साहब और हैं। खैर बड़ी खुशी हुई। खाना-वाना खाकर जब बैठे तब मालूम हुआ कि चाचाजी मेरा ब्याह तय करने के लिए आये हैं और साथ वाले साहब मेरे होने वाले ससुर हैं। जब मैंने इनकार कर दिया तो बहुत बिगड़कर चले गये और बोले हम आज से तुम्हारे लिए मर गये और तुम हमारे लिए मर गये।"

"तुम्हारी माताजी कहाँ हैं ?"

"प्रतापगढ़ में, लेकिन वो तो सौतेली हैं और वे तो चाहती ही नहीं कि मैं घर लौटूँ, लेकिन चाचाजी जरूर आज तक मुझसे कुछ मुहब्बत करते थे। आज वह भी नाराज हो कर चले गये।"

सुधा कुछ देर तक सोचती रही, फिर बोली—"तो चन्दर, तुम शादी कर क्यों नहीं लेते ?"

"नहीं सुधा, शादी नहीं करनी है मुझे। मैंने देखा कि जिसकी शादी हुई, कोई भी सुखी नहीं हुआ। सभी का भविष्य बिगड़ गया। और क्यों एक तवालत पाली जाये ? जाने कैसी लड़की हो, क्या हो ?"

"तो उसमें क्या ? पापा से कहो उस लड़की को जाकर देख लें। हम भी पापा के साथ चले जायेंगे। अच्छी हो तो कर लो न, चन्दर। फिर यहीं रहना। हमें अकेला भी नहीं लगेगा। क्यों ?"

"नहीं जी, तुम तो समझती नहीं हो। जिन्दगी निभानी है कि कोई गाय-भैंस खरीदना है !" चन्दर ने हँसकर कहा—"आदमी एक-दूसरे को समझे, बूझे, प्यार करे, तब ब्याह के भी कोई माने हैं।"

"तो उसी से कर लो जिससे प्यार करते हो !"

चन्दर कुछ जवाब नहीं दिया।

"बोलो ! चुप क्यों हो गये ! अच्छा, तुमने किसी को प्यार किया, चन्दर !"

"क्यों ?"

"बताओ न !"

"शायद नहीं !"

"बिलकुल ठीक, हम भी यही सोच रहे थे अभी।" सुधा बोली।

"क्यों, ये क्यों सोच रही थी ?"

"इसलिए कि तुमने किया होता तो तुम हमसे थोड़े ही छिपाते, हमें जरूर बताते, और नहीं बताया तो हम समझ गये कि अभी तुमने किसी से प्यार नहीं किया।"

"लेकिन तुमने यह पूछा क्यों, सुधा ! यह बात तुम्हारे मन में उठी कैसे ?"

"कुछ नहीं, अभी गेसू आयी थी। वह बोली–सुधा, तुमने किसी से कभी प्यार किया है, असल में वह अख्तर को प्यार करती है। उससे उसका विवाह होने वाला है। हाँ, तो उसने पूछा कि तूने किसी से प्यार किया है, हमने कहा, नहीं। बोली, तू अपने से छिपाती है। तो हम मन-ही-मन में सोचते रहे कि तुम आओगे तो तुमसे पूछेंगे कि हमने कभी प्यार तो नहीं किया है। क्योंकि तुम्हीं एक हो जिससे हमारा मन कभी कोई बात नहीं छिपाता, अगर कोई बात छिपायी भी होती हमने, तो तुम्हें जरूर बता देती। फिर हमने सोचा, शायद कभी हमने प्यार किया हो और तुम्हें बताया हो, फिर हम भूल गये हों। अभी उसी दिन देखो, हम पापा की दवाई का नाम भूल गये और तुम्हें याद रहा। शायद हम भूल गये हों और तुम्हें मालूम हो। कभी हमने प्यार तो नहीं किया न ?"

"नहीं, हमें तो कभी नहीं बताया।" चन्दर बोला।

"तब तो हमने प्यार-वार नहीं किया। गेसू यूँ ही गप्प उड़ा रही थी।" सुधा ने सन्तोष की साँस लेकर कहा–"लेकिन बस ! चाचाजी के नाराज होने पर तुम इतने दुःखी हो गये हो ! हो जाने दो नाराज। पापा तो हैं अभी, क्या पापा मुहब्बत नहीं करते तुमसे ?"

"सो क्यों नहीं करते, तुमसे ज्यादा मुझसे करते हैं लेकिन उनकी बात से मन तो भारी हो ही गया। उसके बाद गये बिसरिया के यहाँ। बिसरिया ने कुछ बड़ी अच्छी कविताएँ सुनायीं। और भी मन भारी हो गया।" चन्दर ने कहा।

"लो, तब तो चन्दर, तुम प्यार करते होगे ! जरूर से ?" सुधा ने हाथ पटककर कहा।

"क्यों ?"

"गेसू कह रही थी–शायरी पर जो उदास हो जाता है वह जरूर मुहब्बत-वुहब्बत करता है।" सुधा ने कहा–"अरे यह पोर्टिको में कौन है ?"

चन्दर ने देखा–"लो बिसरिया आ गया !"

चन्दर उसे बुलाने उठा तो सुधा ने कहा—"अभी बाहर बिठलाना उन्हें, मैं तब तक कमरा ठीक कर लूँ।"

बिसरिया को बाहर बिठाकर चन्दर भीतर आया, अपना चार्ट वगैरह समेटने के लिए, तो सुधा ने कहा—"सुनो !"

चन्दर रुक गया।

सुधा ने पास आकर कहा—"तो अब तो उदास नहीं हो तुम। नहीं चाहते मत करो शादी, इसमें उदास क्या होना। और कविता-वविता पर मुँह बनाकर बैठे तो अच्छी बात नहीं होगी।"

"अच्छा !" चन्दर ने कहा।

"अच्छा-वच्छा नहीं, बताओ, तुम्हें मेरी कसम है, उदास मत हुआ करो फिर हमसे कोई काम नहीं होता।"

"अच्छा, उदास नहीं होंगे, पगली !" चन्दर ने हल्की-सी चपत मारकर कहा और बरबस उसके मुँह से एक ठण्डी साँस निकली। उसने चार्ट उठाकर स्टडी रूम में रखा। देखा डॉक्टर साहब अभी सो ही रहे हैं। सुधा कमरा ठीक कर रही थी। वह आकर बिसरिया के पास बैठ गया।

थोड़ी देर में कमरा ठीक करके सुधा आकर कमरे के दरवाजे पर खड़ी हो गयी। चन्दर ने पूछा—"क्यों, सब ठीक है ?"

उसने सिर हिला दिया, कुछ बोली नहीं।

"यही हैं आपकी शिष्या, श्री सुधा शुक्ला। इस साल बी॰ ए॰ फाइनल का इम्तहान देंगी।"

बिसरिया ने बिना आँखें उठाये ही हाथ जोड़ लिए सुधा ने हाथ जोड़े फिर बहुत सकुचा-सी गयी। चन्दर उठा और बिसरिया को लाकर उसने अन्दर बिठा दिया। बिसरिया के सामने सुधा और उसकी बगल में चन्दर।

चुप। सभी चुप।

अन्त में चन्दर बोला—"लो, तुम्हारे मास्टर साहब आ गये। अब बताओ न, तुम्हें क्या-क्या पढ़ना है ?"

सुधा चुप। बिसरिया कभी यह पुस्तक उलटता, कभी वह। थोड़ी देर बाद वह बोला—

"आपके क्या विषय हैं ?"

"जी !" बड़ी कोशिश से बोलते हुए सुधा ने कहा—"हिन्दी इकनॉमिक्स और गृह-विज्ञान।" और उसके माथे पर पसीना झलक आया।

"आपको हिन्दी कौन पढ़ाता है ?" बिसरिया ने किताब में ही निगाह गड़ाये हुए कहा।

सुधा ने चन्दर की ओर देखा और मुसकराकर फिर मुँह झुका लिया।

"बोलो न तुम खुद, ये राजा गर्ल्स कॉलेज में हैं। शायद मिस पवार हिन्दी

पढ़ाती हैं।" चन्दर ने कहा—"अच्छा, अब आप पढ़ाइए, मैं अपना काम करूँ।" चन्दर उठकर चल दिया स्टडी रूम में। मुश्किल से चन्दर दरवाजे तक पहुँचा होगा कि सुधा ने बिसरिया से कहा—

"जी, मैं पेन ले आऊँ !" और लपकती हुई चन्दर के पास पहुँची।

"ए सुनो, चन्दर !" चन्दर रुक गया और उसका कुरता पकड़कर छोटे बच्चों की तरह मचलते हुए सुधा बोली—"तुम चलकर बैठो तो हम पढ़ेंगे। ऐसे शरम लगती है।"

"जाओ, चलो ! हर वक्त वही बचपना !" चन्दर ने डाँटकर कहा—"चलो, पढ़ो सीधे से। इतनी बड़ी हो गयी, अभी तक वही आदतें !"

सुधा चुपचाप मुँह लटकाकर खड़ी हो गयी और फिर धीरे-धीरे पढ़ने लग गयी। चन्दर स्टडी रूम में जाकर चार्ट बनाने लगा। डॉक्टर साहब अभी तक सो रहे थे। एक मक्खी उड़कर उनके गले पर बैठ गयी और उन्होंने बायें हाथ से मक्खी मारते हुए नींद में कहा—"मैं इस मामले में सरकार की नीति का विरोध करता हूँ।"

चन्दर ने चौंककर पीछे देखा। डॉक्टर साहब जग गये थे और जमुहाई ले रहे थे।

"जी, आपने मुझसे कुछ कहा ?" चन्दर ने पूछा।

"नहीं, क्या मैंने कुछ कहा था ? ओह ! मैं सपना देख रहा था। कै बज गये ?"

"साढ़े पाँच।"

"अरे बिलकुल शाम हो गयी !" डॉक्टर साहब ने बाहर देखकर कहा— "अब रहने दो कपूर, आज काफी काम किया है तुमने। चाय मँगवाओ। सुधा कहाँ है ?"

"पढ़ रही है। आज से उसके मास्टर साहब आने लगे हैं।"

"अच्छा-अच्छा, जाओ उन्हें भी बुला लाओ, और चाय भी मँगवा लो। उसे भी बुला लो—सुधा को।"

चन्दर जब ड्राइंग रूम में पहुँचा तो देखा सुधा किताबें समेट रही है और बिसरिया जा चुका है। उसने सुधा से कहना चाहा लेकिन सुधा का मुँह देखते ही उसने अनुमान किया कि सुधा लड़ने के मूड में है, अतः वह स्वयं ही जाकर महराजिन से कह आया कि तीन प्याला चाय पढ़ने के कमरे में भेज दो। जब वह लौटने लगा तो खुद सुधा ही उसके रास्ते में खड़ी हो गयी और धमकी के स्वर में बोली—"अगर कल से साथ नहीं बैठोगे तुम, तो हम नहीं पढ़ेंगे।"

"हम साथ नहीं बैठ सकते, चाहे तुम पढ़ो या न पढ़ो।" चन्दर ने ठण्डे स्वर में कहा और आगे बढ़ा।

"तो फिर हम नहीं पढ़ेंगे।" सुधा ने जोर से कहा।

"क्या बात है ? क्यों लड़ रहे हो तुम लोग ?" डॉ. शुक्ला अपने कमरे से बोले। चन्दर कमरे में जाकर बोला, "कुछ नहीं, ये कह रही हैं कि…"

"पहले हम कहेंगे," बात काटकर सुधा बोली—"पापा, हमने इनसे कहा कि तुम पढ़ाते वक्त बैठा करो, हमें बहुत शरम लगती है, ये कहते हैं पढ़ो चाहे न पढ़ो, हम नहीं बैठेंगे।"

"अच्छा-अच्छा, जाओ चाय लाओ।"

जब सुधा चाय लाने गयी तो डॉक्टर साहब बोले—"कोई विश्वासपात्र लड़का है ? अपने घर की लड़की समझकर सुधा को सौंपना पढ़ने के लिए। सुधा अब बच्ची नहीं है।"

"हाँ-हाँ, अरे यह भी कोई कहने की बात है !"

"हाँ, वैसे अभी तक सुधा तुम्हारी ही निगहबानी में रही है। तुम खुद ही अपनी जिम्मेवारी समझते हो। लड़का हिन्दी में एम. ए. है ?"

"हाँ, एम. ए. कर रहा है।"

"अच्छा है, तब तो बिनती आ रही है, उसे भी पढ़ा देगा।"

सुधा चाय लेकर आ गयी थी।

"पापा, तुम लखनऊ कब जाओगे ?"

"शुक्रवार को, क्यों ?"

"और ये भी जायेंगे ?"

"हाँ।"

"और हम अकेले रहेंगे ?"

"क्यों, महराजिन यहीं सोयेगी और अगले सोमवार को हम लौट आयेंगे।" डॉ. शुक्ला ने चाय का प्याला मुँह में लगाते हुए कहा।

एक गमकदे की शाम, मन उदास, तबीयत उचटी-सी, सितारों की रोशनी फीकी लग रही थी। मार्च की शुरुआत थी और फिर भी जाने शाम इतनी गरम थी, या सुधा को ही इतनी बेचैनी लग रही थी। पहले वह जाकर सामने के लॉन में बैठी लेकिन सामने के मौलसिरी के पेड़ में छोटी-छोटी गौरैयों ने मिलकर इतनी जोर से चहचहाना शुरू किया कि उसकी तबीयत घबरा उठी। वह इस वक्त एकान्त चाहती थी और सबसे बढ़कर सन्नाटा चाहती थी जहाँ कोई न बोले, कोई बात न करे, सभी खामोशी में डूबे हुए हों।

वह उठकर टहलने लगी और जब लगा कि पैरों में ताकत ही नहीं रही तो फिर लेट गयी, हरी-हरी घास पर। मंगलवार की शाम थी और अभी तक पापा नहीं आये थे। आना तो दूर, पापा या चन्दर के हाथ के एक पुरजे के लिए तरस गयी थी।

किसी ने यह भी नहीं लिखा कि वे लोग कहाँ रह गये हैं, या कब तक आयेंगे। किसी को भी सुधा का ख्याल नहीं। शनिवार या इतवार को तो वह हर रोज खाना खाते वक्त रोयी, चाय पीना तो उसने उसी दिन से छोड़ दिया था और सोमवार को सुबह पापा नहीं आये तो वह इतना फूट-फूटकर रोयी कि महराजिन को सिकती हुई रोटी छोड़कर चूल्हे की आँच निकालकर सुधा को समझाने आना पड़ा। और सुधा की रुलाई देखकर तो महराजिन के हाथ-पाँव ढीले हो गये थे। उसकी सारी डाँट हवा हो गयी थी और वह सुधा का मुँह-ही-मुँह देखती थी। कल से कॉलेज भी नहीं गयी थी। और दोनों दिन इन्तजार करती रही कि कहीं दोपहर को पापा न आ जायें। गेसू से भी दो दिन से मुलाकात नहीं हुई थी।

लेकिन मंगल को दोपहर तब जब कोई खबर न आयी तो उसकी घबराहट बेकावू हो गयी। इस वक्त उसने बिसरिया से कोई भी बात नहीं की। आधा घंटा पढ़ने के बाद उसने कहा कि उसके सिर में दर्द हो रहा है और उसके बाद खूब रोयी, खूब रोयी। उसके बाद उठी, चाय पी, मुँह-हाथ धोया और सामने के लॉन में टहलने लगी। और फिर लेट गयी हरी-हरी घास पर।

बड़ी ही उदास शाम थी। और क्षितिज की लाली के होंठ भी स्याह पड़ गये थे। बादल साँस रोके पड़े थे और खामोश सितारे टिमटिमा रहे थे। बगुलों की धुँधली-धुँधली कतारें पर मारती हुई गुजर रही थीं। सुधा ने एक लम्बी साँस लेकर सोचा कि अगर वह चिड़िया होती तो एक क्षण में उड़कर जहाँ चाहती वहाँ की खबर ले आती। पापा इस वक्त घूमने गये होंगे। चन्दर अपने दोस्तों की टोली में बैठा रँगरेलियाँ कर रहा होगा। वहाँ भी दोस्त बना ही लिये होंगे उसने। बड़ा बातूनी है चन्दर और बड़ा मीठे स्वभाव का। आज तक किसी से सुधा ने उसकी बुराई नहीं सुनी। सभी उसको प्यार करते थे। यहाँ तक कि महराजिन, जो सुधा को हमेशा डाँटती रहती थी, चन्दर का हमेशा पक्ष लेती थी। और सुधा हरेक से पूछ लेती थी कि चन्दर के बारे में उसकी क्या राय है ? लेकिन सब लोग जितनी चन्दर की तारीफ करते वह उतना अच्छा उसे नहीं समझती थी। आदमी की परख तब होती है जब दिन-रात बरते। चन्दर उसका ऊन कभी नहीं ला देता था, बादामी रंग का रेशम मँगाओ तो केसरिया रंग का ला देता था। इतने नक्शे बनाता रहता था, और सुधा ने हमेशा उससे कहा कि मेजपोश की कोई डिजाइन बना दो तो उसने कभी नहीं बनायी। एक बार सुधा ने बहुत अच्छी वायल कानपुर से मँगवायी और चन्दर ने कहा, "लाओ, ये बहुत अच्छी है इस पर हम किनारे की डिजाइन बना देंगे।" और उसके बाद उसने उसमें तमाम पान-जैसा जाने क्या बना दिया और जब सुधा ने पूछा, "ये क्या है ?" तो बोला—"लंका का नक्शा है।" ज़ब सुधा बिगड़ी तो बोला—"लड़कियों के हृदय में रावण से मेघनाद तक करोड़ों राक्षसों का वास होता है, इसलिए उनकी पोशाक में लंका का नक्शा ज्यादा सुशोभित होता है।" मारे गुस्से के सुधा ने वह धोती अपनी मालिन को दे डाली थी। यह सब बातें तो किसी को मालूम

नहीं। उनके सामने तो जरा-सा कपूर साहब हँस दिये, चार मजाक की बातें कर दीं, छोटे-मोटे उनके काम कर दिये, मीठी बातें कर लीं और सब समझे कपूर साहब तो बिलकुल गुलाब के फूल हैं। लेकिन कपूर साहब एक तेज तीखे काँटे हैं जो दिन-रात सुधा के मन में चुभते रहते हैं, यह तो दुनिया को नहीं मालूम। दुनिया क्या जाने कि सुधा कितनी परेशान रहती है चन्दर की आदतों से। अगर दुनिया को मालूम हो जाये तो कोई चन्दर की जरा भी तारीफ न करे, सब सुधा को ही ज्यादा अच्छा कहें, लेकिन सुधा कभी किसी से कुछ नहीं कहती, मगर आज उसका मन हो रहा था कि किसी से चन्दर की जी भरकर बुराई कर ले तो उसका मन बहुत हलका हो जाये।

"चलो बिटिया रानी, तई खाय लेव, फिर भीतर लेटो। अबहिन बाहर लेटे का बखत नहीं आवा !" सहसा महराजिन ने आकर सुधा की स्वप्न-शृंखला तोड़ते हुए कहा।

"अब हम नहीं खायेंगे, भूख नहीं।" सुधा ने अपने सुनहले सपनों में ही डूबी हुई बेहोश आवाज में जवाब दिया।

"खाय लेव बिटिया, खाय-पियै छोड़ै से कसस काम चली, आव उठौ !" महराजिन ने बड़े दुलार से कहा। सुधा पीछा छूटने की कोई आशा न देखकर उठ गयी और चल दी खाने। कौर उठाते ही उसकी आँख में आँसू छलक आये, लेकिन अपने को रोक लिया उसने। दूसरों के सामने अपने को बहुत शान्त रखना आता था उसे। दो कौर खाने के बाद वह महराजिन से बोली—"आज कोई चिट्ठी तो नहीं आयी ?"

"नहीं बिटिया, आज तो दिन भर घरै में रह्यो !" महराजिन ने पराठे उलटते हुए जवाब दिया—"काहे बिटिया, बाबूजी कुछौ नाहीं लिखिन तो छोटे बाबू तो लिख देते।"

"अरे महराजिन, यही तो हमारी जान का रोना है। हम चाहे रो-रोकर मर जायें मगर न पापा को ख्याल, न पापा के शिष्य को। और चन्दर तो ऐसे खराव हैं कि हम क्या करें। ऐसे स्वार्थी हैं, अपने मतलब के कि बस ! सुबह-शाम आये और हम या पापा न मिलें तो आफत ढा देंगे—बहुत घूमने लगी हो तुम, बहुत बाहर कदम निकल गया है तुम्हारा—और सच पूछो तो चन्दर की वजह से हमने सब जगह आना-जाना बन्द कर दिया और खुद हैं कि आज लखनऊ, कल कलकत्ता और एक चिट्ठी भेजने तक का वक्त नहीं मिला ! अभी हम ऐसा करते तो हमारी जान नोच खाते ! और पापा को देखो, उनके दुलारे उनके साथ हैं तो बस और क़िसी की फिक्र ही नहीं। अब तुम महराजिन, चन्दर को तो कभी कुछ चाय-वाय बना के मत देना।"

"काहे बिटिया, काहे कोसत हो। कैसा चाँद-से तो हैं छोटे बाबू, और कैसा हँस के बातें करत हैं। माई का जाने कैसे हियाव पड़ा कि उन्हें अलग कै दिहिस। बेचारा होटल में जाने कैसे रोटी खात होई। उन्हें हिंयई बुलाय लेव तो अपने हाथ की खिलाय के दुई महीना माँ मोटा कै देई। हमें तोसे ज्यादा उसकी ममता लगत है।"

"बीबीजी, बाहर एक मेम पूछत हैं– हिंया कोनो डाकदर रहत हैं ? हम कहा, नाहीं, हिंया तो बाबूजी रहत हैं तो कहत हैं, नहीं यही मकान आय।" मालिन ने सहसा आकर बहुत स्वतन्त्र स्वरों में कहा।

"बैठाओ उन्हें, हम आते हैं।" सुधा ने कहा और जल्दी-जल्दी खाना शुरू किया और जल्दी-जल्दी खत्म कर दिया।

बाहर जाकर उसने देखा तो नीलकाँटे के झाड़ से टिकी हुई एक बाइसिकिल रखी थी और एक ईसाई लड़की लॉन पर टहल रही है। होगी करीब चौबीस-पचीस बरस की, लेकिन बहुत अच्छी लग रही थी।

"कहिए, आप किसे पूछ रही हैं ?" सुधा ने अँगरेजी में पूछा।

"मैं डॉक्टर शुक्ला से मिलने आयी हूँ।" उसने शुद्ध हिन्दोस्तानी में कहा।

"वे तो बाहर गये हैं और कब आयेंगे, कुछ पता नहीं। कोई खास काम है आपको ?" सुधा ने पूछा।

"नहीं, यूँ ही मिलने आ गयी। आप उनकी लड़की हैं ?" उसने साइकिल उठाते हुए कहा।

"जी हाँ, लेकिन अपना नाम तो बताती जाइए।"

"मेरा नाम कोई महत्वपूर्ण नहीं। मैं उनसे मिल लूँगी। और हाँ, आप उसे जानती हैं, मिस्टर कपूर को ?"

"आहा ! आप पम्मी हैं, मिस डिक्रूज !" सुधा को एकदम ख्याल आ गया–"आइए, आइए; हम आपको ऐसे नहीं जाने देंगे। चलिए, बैठिए।" सुधा ने बड़ी बेतकल्लुफी से उसकी साइकिल पकड़ ली।

"अच्छा-अच्छा, चलो !" कहकर पम्मी जाकर ड्राइंगरूम में बैठ गयी।

"मिस्टर कपूर रहते कहाँ है ?" पम्मी ने बैठने से पहले पूछा।

"रहते तो वे चौक में हैं, लेकिन आजकल तो वे भी पापा के साथ बाहर गये हैं। वे तो आपकी एक दिन बहुत तारीफ कर रहे थे, बहुत तारीफ। इतनी तारीफ किसी लड़की की करते तो हमने सुना नहीं।"

"सचमुच !" पम्मी का चेहरा लाल हो गया। "वह बहुत अच्छे हैं, बहुत अच्छे हैं !"

थोड़ी देर पम्मी चुप रही, फिर बोली–"क्या बताया था उन्होंने हमारे बारे में ?"

"ओह तमाम ! एक दिन शाम को तो हम लोग आप ही के बारे में बातें करते रहे। आपके भाई के बारे में बताते रहे। फिर आपके काम के बारे में बताया कि आप कितना तेज टाइप करती हैं, फिर आपकी रुचियों के बारे में बताया कि आपको साहित्य से बहुत शौक नहीं है और आप शादी से बेहद नफरत करती हैं और आप ज्यादा मिलती-जुलती नहीं, बाहर आती-जाती नहीं और मिस डिक्रूज···"

"न, आप पम्मी कहिए मुझे !"

"हाँ, तो मिस पम्मी, शायद इसीलिए आप उसे इतनी अच्छी लगीं कि आप कहीं आती-जाती नहीं, वह लड़कियों का आना-जाना और आजादी बहुत नापसन्द करता है।" सुधा बोली।

"नहीं, वह ठीक सोचता है।" पम्मी बोली—"मैं शादी और तलाक के बाद इसी नतीजे पर पहुँची हूँ कि चौदह बरस से चौंतीस बरस तक लड़कियों को बहुत शासन में रखना चाहिए।" पम्मी ने गम्भीरता से कहा।

एक ईसाई मेम के मुँह से यह बात सुनकर सुधा दंग रह गयी।

"क्यों ?" उसने पूछा।

"इसलिए कि इस उम्र में लड़कियाँ बहुत नादान होती हैं और जो कोई भी चार मीठी बातें करता है, तो लड़कियाँ समझती हैं कि इससे ज्यादा प्यार उन्हें कोई नहीं करता। और इस उम्र में जो कोई भी ऐरा-गैरा उनके संसर्ग में आ जाता है, उसे वे प्यार का देवता समझने लगती हैं और नतीजा यह होता है कि वे ऐसे जाल में फँस जाती हैं कि जिन्दगीभर उससे छुटकारा नहीं मिलता। मेरा तो यह विचार है कि या तो लड़कियाँ चौंतीस बरस के बाद शादियाँ करें जब वे अच्छा-बुरा समझने के लायक हो जायें नहीं तो मुझे तो हिन्दुओं का कायदा सबसे ज्यादा पसन्द आता है कि चौदह वर्ष के पहले ही लड़की की शादी कर दी जाये और उसके बाद उसका संसर्ग उसी आदमी से रहे जिससे उसे जिन्दगी भर निबाह करना है और अपने विकास-क्रम से दोनों ही एक-दूसरे को समझते चलें। लेकिन यह तो सबसे भद्दा तरीका है कि चौदह और चौंतीस बरस के बीच में लड़की की शादी हो, या उसे आजादी दी जाये। मैंने तो स्वयं अपने ऊपर बन्धन बाँध लिये थे।...तुम्हारी तो शादी अभी नहीं हुई ?"

"नहीं।"

"बहुत ठीक, तुम चौंतीस बरस के पहले शादी मत करना, अच्छा हाँ और क्या बताया चन्दर ने मेरे बारे में ?"

"और तो कुछ खास नहीं; हाँ यह कह रहा था, आपको चाय और सिगरेट बहुत अच्छी लगती है। ओहो, देखिए मैं भूल ही गयी, लीजिए सिगरेट मँगवाती हूँ।" और सुधा ने घण्टी बजायी।

"रहने दीजिए, मैं सिगरेट छोड़ रही हूँ।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि कपूर को अच्छा नहीं लगता और अब वह मेरा दोस्त बन गया है, और दोस्ती में एक-दूसरे से निबाह ही करना पड़ता है। उसने आपसे यह नहीं बताया कि मैंने उसे दोस्त मान लिया है ?" पम्मी ने पूछा।

"जी हाँ, बताया था, अच्छा तो चाय लीजिए !"

"हाँ-हाँ चाय मँगवा लीजिए। आपका कपूर से क्या सम्बन्ध है ?" पम्मी ने पूछा।

"कुछ नहीं। मुझसे भला क्या सम्बन्ध होगा उनका, जब देखिए तब बिगड़ते

रहते हैं मुझपर; और बाहर गये हैं और आज तक कोई खत नहीं भेजा। ये कहीं सम्बन्ध हैं ?"

"नहीं, मेरा मतलब आप उनसे घनिष्ठ हैं !"

"हाँ, कभी वह छिपाते तो नहीं मुझसे कुछ ! क्यों ?"

"तब तो ठीक है, सच्चे दिल के आदमी मालूम पड़ते हैं। आप तो यह बता सकती हैं कि उन्हें क्या-क्या चीजें पसन्द हैं ?"

"हाँ···उन्हें कविता पसन्द है। बस कविता के बारे में बात न कीजिए, कविता सुना दीजिए उन्हें या कविता की किताब दे दीजिए उन्हें और उनको सुबह घूमना पसन्द है। रात को गंगाजी की सैर करना पसन्द है। सिनेमा तो बेहद पसन्द है। और, और क्या, चाय की पत्ती का हलुआ पसन्द है।"

"यह क्या होता है ?"

"मेरा मतलब बिना दूध की चाय उन्हें पसन्द है।"

"अच्छा, अच्छा देखिए आप सोचेंगी कि मैं इस तरह से मि॰ कपूर के बारे में पूछ रही हूँ जैसे मैं कोई जासूस होऊँ, लेकिन असल बात मैं आपको बता दूँ। मैं पिछले दो-तीन साल से अकेली रहती रही। किसी से भी नहीं मिलती-जुलती थी। उस दिन मिस्टर कपूर गये तो पता नहीं क्यों मुझपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनको देखकर ऐसा लगा कि यह आदमी है जिसमें दिल की सच्चाई है, जो आदमियों में बिलकुल नहीं होती तभी मैंने सोचा, इनसे दोस्ती कर लूँ। लेकिन चूँकि एक बार दोस्ती करके विवाह, और विवाह के बाद अलगाव, मैं भोग चुकी हूँ इसलिए इनके बारे में पूरी जाँच-पड़ताल कर लेना चाहती हूँ। लेकिन दोस्त तो अब बना ही चुकी हूँ।" चाय आ गयी थी और पम्मी ने सुधा के प्याले में चाय ढाली।

"न, मैं तो अभी खाना खा चुकी हूँ।" सुधा बोली।

पम्मी ने दो-तीन चुस्कियों के बाद कहा—"आपके बारे में चन्दर ने मुझसे कहा था।"

"कहा होगा !" सुधा मुँह बिगाड़कर बोली—"मेरी बुराई कर रहे होंगे और क्या ?"

पम्मी चाय के प्याले से उठते हुए धुएँ को देखती हुई अपने ही ख्याल में डूबी थी। थोड़ी देर बाद बोली—"मेरा अनुमान गलत नहीं होता। मैंने कपूर को देखते ही समझ लिया था कि यही मेरे लिए उपयुक्त मित्र हैं। मैंने कविता पढ़नी बहुत दिनों से छोड़ दी लेकिन किसी कवयित्री ने, शायद मिसेज ब्राउनिंग ने कहीं लिखा था, कि वह मेरी जिन्दगी में रोशनी बनकर आया, उसे देखते ही मैं समझ गयी कि यह वह आदमी है जिसके हाथ में मेरे दिल के सभी राज सुरक्षित रहेंगे। वह खेल नहीं करेगा, और प्यार भी नहीं करेगा। जिन्दगी में आकर भी जिन्दगी से दूर और सपनों में बँधकर भी सपनों से अलग···यह बात कपूर पर बहुत लागू होती है। माफ करना मिस सुधा, मैं आपसे इसलिए कह रही हूँ कि आप उनकी घनिष्ठ हैं और आप उन्हें बतला

देंगी कि मेरा क्या ख्याल है उनके बारे में। अच्छा, अब मैं चलूँगी।"

"बैठिए न !" सुधा बोली।

"नहीं, मेरा भाई अकेला खाने के लिए इन्तजार कर रहा होगा।" उठते हुए पम्मी ने कहा।

"आप बहुत अच्छी हैं। इस वक्त आप आयीं तो मैं थोड़ी-सी चिन्ता भूल गयी वरना मैं तीन दिन से उदास थी। बैठिए, कुछ और चन्दर के बारे में बताइए न !"

"अब नहीं। वह अपने ढंग का अकेला आदमी है, यह मैं कह सकती हूँ...ओह तुम्हारी आँखें बड़ी सुन्दर हैं। देखूँ।" और छोटे बच्चे की तरह उसके मुँह को हथेलियों से ऊपर उठाकर पम्मी ने कहा, "बहुत सुन्दर आँखें हैं। माफ करना, मैं कपूर से भी इतनी ही बेतकल्लुफ हूँ !"

सुधा झेंप गयी। उसने आँखें नीची कर लीं।

पम्मी ने अपनी साइकिल उठाते हुए कहा—"कपूर के साथ आप आइएगा। और आपने कहा था कपूर को कविता पसन्द है।"

"जी हाँ, गुड नाइट।"

जब पम्मी बँगले पर पहुँची तो उसकी साइकिल के कैरियर में अँगरेजी कविता के पाँच-छह ग्रन्थ बँधे थे।

आठ बज चुके थे। सुधा जाकर अपने बिस्तर पर लेटकर पढ़ने लगी। अँगरेजी कविता पढ़ रही थी। अँगरेजी लड़कियाँ कितनी आजाद और स्वच्छन्द होती होंगी ! जब पम्मी, जो ईसाई है, इतनी आजाद है, उसने सोचा और पम्मी कितनी अच्छी है। उसकी बेतकल्लुफी में भोलापन तो नहीं है, पर सरलता बेहद है। बड़ा साफ दिल है, कुछ छिपाना नहीं जानती। और सुधा से सिर्फ पाँच-छह साल बड़ी है, लेकिन सुधा उसके सामने बच्ची लगती है। कितना जानती है पम्मी और कितनी अच्छी समझ है उसकी। और चन्दर की तारीफ करते नहीं थकती। चन्दर के लिए उसने सिगरेट छोड़ दी। चन्दर उसका दोस्त है, इतनी पढ़ी-लिखी लड़की के लिए रोशनी का देवदूत है। सचमुच चन्दर पर सुधा को गर्व है। और उसी चन्दर से वह लड़-झगड़ लेती है, इतनी मान-मनुहार कर लेती है और चन्दर सब बरदाश्त कर लेता है वरना चन्दर के इतने बड़े-बड़े दोस्त हैं और चन्दर की इतनी इज्जत है। अगर चन्दर चाहे तो सुधा की रत्ती भर परवाह न करे लेकिन चन्दर सुधा की भली-बुरी बात बरदाश्त कर लेता है। और वह कितना परेशान करती रहती है चन्दर को।

कभी अगर सचमुच चन्दर बहुत नाराज हो गया और सचमुच हमेशा के लिए बोलना छोड़ दे तब क्या होगा ? या चन्दर यहाँ से कहीं चला जाये तब क्या होगा ? खैर, चन्दर जायेगा तो नहीं इलाहाबाद छोड़कर, लेकिन अगर वह खुद कहीं चली गयी तब क्या होगा ? वह कहाँ जायेगी ! अरे पापा को मनाना तो बायें हाथ का खेल है, और ऐसा प्यार वह करेगी नहीं कि शादी करनी पड़े।

लेकिन यह सब तो ठीक है। पर चन्दर ने चिट्ठी क्यों नहीं भेजी ? क्या नाराज

होकर गया है ? जाते वक्त सुधा ने परेशान तो बहुत किया था। होलडॉल की पेटी का बक्सुआ खोल दिया था और उठाते ही चन्दर के हाथ से सब कपड़े बिखर गये। चन्दर कुछ बोला नहीं लेकिन जाते समय उसने सुधा को डाँटा भी नहीं और न यही समझाया कि घर का खयाल रखना, अकेले घूमना मत, महराजिन से लड़ना मत, पढ़ती रहना। इससे सुधा समझ तो गयी थी कि वह नाराज है, लेकिन कुछ कहा नहीं।

लेकिन चन्दर को खत तो भेजना चाहिए था। चाहे गुस्से का ही खत क्यों न होता ? विना खत के मन उसका कितना घबरा रहा है। और क्या चन्दर को मालूम नहीं होगा। यह कैसे हो सकता है ? जब इतनी दूर बैठे हुए सुधा को मालूम हो गया कि चन्दर नाखुश है तो क्या चन्दर को नहीं मालूम होगा कि सुधा का मन उदास हो गया है। जरूर मालूम होगा। सोचते-सोचते उसे जाने कब नींद आ गयी और नींद में उसे पापा या चन्दर की चिट्ठी मिली या नहीं, यह तो नहीं मालूम, लेकिन इतना जरूर है कि जैसे यह सारी सृष्टि एक विन्दु से बनी और एक बिन्दु में समा गयी, उसी तरह सुधा की यह भादों की घटाओं जैसे फैली हुई बेचैनी और गीली उदासी एक चन्दर के ध्यान से उठी और उसी में समा गयी।

दूसरे दिन सुबह सुधा आँगन में बैठी हुई आलू छील रही थी और चन्दर का इन्तजार कर रही थी। उसी दिन रात को पापा आ गये थे और दूसरे दिन सुबह बुआजी और बिनती।

"सुधी !" किसी ने इतने प्यार से पुकारा कि हवाओं में रस भर गया।

"अच्छा ! आ गये चन्दर !" सुधा आलू छोड़कर उठ बैठी, "क्या लाये हमारे लिए लखनऊ से ?"

"बहुत कुछ, सुधा !"

"के है सुधा !" सहसा कमरे में से कोई बोला।

"चन्दर हैं।" सुधा ने कहा, "चन्दर, बुआ आ गयीं।" और कमरे से बुआजी बाहर आयीं।

"प्रणाम, बुआजी !" चन्दर बोला और पैर छूने के लिए झुका।

"हाँ, हाँ, हाँ !" बुआजी तीन कदम पीछे हट गयीं। "देखत्यों नैं हम पूजा की धोती पहने हैं ई के है, सुधा !"

सुधा ने बुआ की बात का कुछ जवाब नहीं दिया—"चन्दर, चलो अपने कमरे में; यहाँ बुआ पूजा करेंगी।"

चन्दर अलग हटा। बुआ ने हाथ के पंचपात्र से वहाँ पानी छिड़का और जमीन

फूँकने लगीं। "सुधा, बिनती को भेज देव।" बुआजी ने धूपदानी में महराजिन से कोयला लेते हुए कहा।

सुधा अपने कमरे में पहुँचकर चन्दर को खाट पर बिठाकर नीचे बैठ गयी।

"अरे, ऊपर बैठो।"

"नहीं, हम यहीं ठीक हैं।" कहकर वह बैठ गयी और चन्दर की पैण्ट पर पेन्सिल से लकीरें खींचने लगी।

"अरे यह क्या कर रही हो ?" चन्दर ने पैर उठाते हुए कहा।

"तो तुमने इतने दिन क्यों लगाये ?" सुधा ने दूसरे पाँयचे पर पेन्सिल लगाते हुए कहा।

"अरे, बड़ी आफत में फँस गये थे, सुधा। लखनऊ से हम लोग गये बरेली। वहाँ एक उत्सव में हम लोग भी गये और एक मिनिस्टर भी पहुँचे। कुछ सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट, और मजदूरों ने विरोध प्रदर्शन किया। फिर तो पुलिस वालों और मजदूरों में जमकर लड़ाई हुई। वह तो कहो एक बेचारा सोशलिस्ट लड़का था कैलाश मिश्रा, उसने हम लोगों की जान बचायी, वरना पापा और हम दोनों ही अस्पताल में होते···"

"अच्छा ! पापा ने हमें कुछ बताया नहीं !" सुधा घबराकर बोली और बड़ी देर तक बरेली, उपद्रव और कैलाश मिश्रा की बात करती रही।

"अरे ये बाहर गा कौन रहा है ?" चन्दर ने सहसा पूछा।

बाहर कोई गाता हुआ आ रहा था—"आँचल में क्यों बाँध लिया मुझ परदेशी का प्यार···आँचल में क्यों ···" और चन्दर को देखते ही उस लड़की ने चौंककर कहा, "अरे ?" क्षण-भर स्तब्ध, और फिर शरम से लाल होकर भागी बाहर।

"अरे, भागती क्यों है ? यही तो हैं चन्दर।" सुधा ने कहा।

लड़की बाहर रुक गयी और गरदन हिलाकर इशारे से कहा, "मैं नहीं आऊँगी। मुझे शरम लगती है।"

"अरे चली आ, देखो हम अभी पकड़ लाते हैं, बड़ी झक्की है यह।" कहकर सुधा उठी, वह फ़िर भागी। सुधा पीछे-पीछे भागी। थोड़ी देर बाद सुधा अन्दर आयी तो सुधा के हाथ में उस लड़की की चोटी और वह बेचारी बुरी तरह अस्त-व्यस्त थी। दाँत से अपने आँचल का छोर दबाये हुए थी, बाल की तीन-चार लटें मुँह पर झुक रही थीं और लाज के मारे सिमटी जा रही थी और आँखें थीं कि मुसकाये या रोये यह तय ही नहीं कर पायी थीं।

"देखो···चन्दर···देखो।" सुधा हाँफ रही थी—"यही है बिनती मोटकी कहीं की, इतनी मोटी है कि दम निकल गया हमारा।" सुधा बुरी तरह हाँफ रही थी।

चन्दर ने देखा—बेचारी की बुरी हालत थी। मोटी तो बहुत नहीं थी पर हाँ, गाँव की तन्दुरुस्ती थी, लाल चेहरा, जिसे शरम ने तो दूना बना दिया था। एक हाथ से अपनी चोटी पकड़े थी, दूसरे से अपने कपड़े ठीक कर रही थी और दाँत से आँचल पकड़े।

"छोड़ दो उसे, यह क्या है सुधा ! बड़ी जंगली हो तुम।" चन्दर ने डाँटकर कहा।

"जंगली मैं हूँ या यह ?" चोटी छोड़कर सुधा बोली—"यह देखो, दाँत काट लिया है इसने।" सचमुच सुधा के कन्धे पर दाँत के निशान बने हुए थे।

चन्दर इस सम्भावना पर बेतहाशा हँसने लगा कि इतनी बड़ी लड़की दाँत काट सकती है—"क्यों जी इतनी बड़ी हो गयी और दाँत काटती हो ?" उसकी हँसी रुक नहीं रही थी। "सचमुच यह तो बड़े मजे की लड़की है। बिनती है इसका नाम ? क्यों रे, महुआ बीनती थी क्या वहाँ, जो बुआजी ने बिनती नाम रखा है ?"

वह पल्ला ठीक से ओढ़ चुकी थी। बोली—"नमस्ते।"

चन्दर और सुधा दोनों हँस पड़े। "अब इतनी देर बाद याद आयी।" चन्दर और भी हँसने लगा।

"बिनती ! ए बिनती !" बुआ की आवाज आई। बिनती ने सुधा की ओर देखा और चली गयी।

"और कहो सुधी," चन्दर बोला—"क्या हाल-चाल रहा यहाँ ?"

"फिर भी एक चिट्ठी भी तो नहीं लिखी तुमने।" सुधा बड़ी शिकायत के स्वर में बोली—"हमें रोज रुलाई आती थी। और तुम्हारी वो आयी थी।"

"हमारी वो ?" चन्दर ने चौंककर पूछा।

"अरे हाँ, तुम्हारी पम्मी रानी।"

"अच्छा वो आयी थीं। क्या बात हुई ?"

"कुछ नहीं; तुम्हारी तस्वीर देख-देखकर रो रही थीं।" सुधा ने उँगलियाँ नचाते हुए कहा।

"मेरी तसवीर देखकर ! अच्छा, और थी कहाँ मेरी तसवीर ?"

"अब तुम तो बहस करने लगे, हम कोई वकील हैं ! तुम कोई नयी बात बताओ।" सुधा बोली।

"हम तो तुम्हें बहुत-बहुत बात बतायेंगे। पूरी कहानी है।"

इतने में बिनती आयी। उसके हाथ में एक तश्तरी थी और एक गिलास। तश्तरी में कुछ मिठाई थी, और गिलास में शरबत। उसने लाकर तश्तरी चन्दर के सामने रख दी।

"ना भई, हम नहीं खायेंगे।" चन्दर ने इनकार किया।

बिनती ने सुधा की ओर देखा।

"खा लो। लगे नखरा करने। लखनऊ से आ रहे हैं न, तकल्लुफ न करें तो मालूम कैसे हो ?" सुधा ने मुँह चिढ़ाते हुए कहा। चन्दर मुसकराकर खाने लगा।

"दीदी के कहने पर खाने लगे आप !" बिनती ने अपने हाथ की अँगूठी की ओर देखते हुए कहा।

चन्दर हँस दिया, कुछ बोला नहीं। बिनती चली गयी।

"बड़ी अच्छी लड़की मालूम पड़ती है यह।" चन्दर बोला।

"बहुत प्यारी है। और पढ़ने में हमारी तरह नहीं है, बहुत तेज है।"

"अच्छा ! तुम्हारी पढ़ाई कैसी चल रही है ?"

"मास्टर साहब बहुत अच्छा पढ़ाते हैं। और चन्दर, अब हम खूब बात करते हैं उनसे दुनिया-भर की और वे बस हमेशा सिर नीचे किये रहते हैं। एक दिन पढ़ते वक्त हम गरी पास में रखकर खाते गये, उन्हें मालूम ही नहीं हुआ। उनसे कविता सुनवा दो एक दिन।" सुधा बोली।

चन्दर ने कुछ जवाब नहीं दिया और डॉ॰ साहब के कमरे में जाकर किताबें उलटने लगा।

इतने में बुआजी का तेज स्वर आया—"हमैं मालूम होता कि ई मुँह-झौंसी हमके ऐसी नाच नचइहै तौ हम पैदा होतै गला घोंट देइत। हरे राम ! अक्काश सिर पर उठाये है। कै घण्टे से नरियात-नरियात गटइ फट गयी। ई बोलतै नाहीं जैसे साँप सूँघ गवा होय।"

प्रोफेसर शुक्ला के घर में वह नया सांस्कृतिक तत्त्व था। कितनी शालीनता और शिष्टता से वह रहते थे। कभी इस तरह की भाषा भी उनके घर में सुनने को मिलेगी, इसकी चन्दर को जरा भी उम्मीद न थी। चन्दर चौंककर उधर देखने लगा। डॉ॰ शुक्ला समझ गये। कुछ लज्जित-से और मुसकराकर ग्लानि छिपाते हुए-से बोले—"मेरी विधवा बहन है, कल गाँव से आयी है लड़की को पहुँचाने।"

उसके बाद कुछ पटकने का स्वर आया, शायद किसी बरतन के। इतने में सुधा आयी, गुस्से से लाल—"सुना पापा तुमने, बुआ बिनती को मार डालेंगी।"

"क्या हुआ आखिर ?" डॉ॰ शुक्ला ने पूछा।

"कुछ नहीं, बिनती ने पूजा का पंचपात्र उठाकर ठाकुरजी के सिंहासन के पीछे रख दिया था। उन्हें दिखायी नहीं पड़ा तो गुस्सा बिनती पर उतार रही हैं।"

इतने में फिर उनकी आवाज आयी—"पैदा करत बखत बहुत अच्छा लाग रहा, पालत बखत टें बोल गये । मर गये रह्यो तो आपन सन्तानौ अपने साथ लै जात्यौ। हमारे मूड पर ई हत्या काहे डाल गयौ। ऐसी कुलच्छनी है कि पैदा होतेहिन बाप को खाय गयी।"

"सुना पापा तुमने ?"

"चलो हम चलते हैं।" डॉ॰ शुक्ला ने कहा। सुधा वहीं रह गयी। चन्दर से बोली—

"ऐसा बुरा स्वभाव है बुआ का कि बस। बिनती ऐसी है कि इतना बर्दाश्त कर लेती है।"

बुआ ने ठाकुरजी का सिंहासन साफ करते हुए कहा—"रोवत काहे हो, कौन तुम्हरे माई-बाप को गरियावा है कि ई अँसुआ ढरकाय रही हो। ई सब चोचला अपने ओं को दिखाओ जायके। दुई महीना और हैं—अबहिन से उधियानी न जाओ।"

अब अभद्रता सीमा पार कर चुकी थी।

"बिनती, चलो कमरे के अन्दर हटो सामने से।" डॉ. शुक्ला ने डाँटकर कहा—"अब ये चरखा बन्द होगा या नहीं। कुछ शरम-हया है या नहीं तुममें ?"

बिनती सिसकते हुए अन्दर गयी। स्टडी रूम में देखा कि चन्दर है तो उलटे पाँव लौट आयी सुधा के कमरे में और फूट-फूटकर रोने लगी।

डॉ. शुक्ला लौट आये—"अब हम ये सब करें कि अपना काम करें ! अच्छा कल से घर में महाभारत मचा रखा है। कब जायेंगी ये, सुधा ?"

"कल जायेंगी। पापा अब बिनती को कभी मत भेजना इनके पास।" सुधा ने गुस्सा-भरे स्वर में कहा।

"अच्छा—जाओ, हमारा खाना परसो। चन्दर, तुम अपना काम यहाँ करो। यहाँ शोर ज्यादा हो तो तुम लाइब्रेरी में चले जाना। आज भर की तकलीफ है।"

चन्दर ने अपनी कुछ किताबें उठायीं और उसने चला जाना ही ठीक समझा। सुधा खाना परोसने चली गयी। बिनती रो-रोकर और तकिये पर सिर पटककर अपनी कुण्ठा और दुःख उतार रही थी। बुआ घण्टी बजा रही थीं, दबी जबान जाने क्या बकती जा रही थीं, यह घण्टी के भक्ति-भावना-भरे मधुर स्वर में सुनाई नहीं देता था।

लेकिन बुआजी दूसरे दिन गयीं नहीं। जब तीन-चार दिन बाद चन्दर गया तो देखा बाहर के सेहन में डॉ. शुक्ला बैठे हुए हैं और दरवाजा पकड़कर बुआजी खड़ी बातें कर रही हैं। लेकिन इस वक्त बुआजी काफी गम्भीर थीं और किसी विषय पर मन्त्रणा कर रही थीं। चन्दर के पास पहुँचने पर फौरन वे चुप हो गयीं और चन्दर की ओर सशंकित नेत्रों से देखने लगीं। डॉ. शुक्ला बोले—"आओ चन्दर बैठो।" चन्दर बगल की कुर्सी खींचकर बैठ गया तो डॉ. साहब बुआजी से बोले—"हाँ-हाँ, बात करो, अरे ये तो घर के आदमी हैं। इनके बारे में सुधा ने नहीं बताया तुम्हें ? ये चन्दर हैं हमारे शिष्य, बहुत अच्छा लड़का है।"

"अच्छा, अच्छा, भाइया बइठो, तू तो एक दिन अउर आये रह्यो, बी. ए. में पढ़त हौ सुधा के सँगे।"

"नहीं बुआजी, मैं रिसर्च कर रहा हूँ।"

"वाह, बहुत खुशी भई तोको देख के—हाँ तो सुकुल !" वे अपने भाई से बोलीं, "फिर यही ठीक होई। बिनती का बियाह टाल देव और अगर ई लड़का ठीक हुई जाय तो सुधा का बियाह अषाढ़-भर में निपटाय देव। अब अच्छा नाहीं लागत।

ठूँठ ऐसी बिटिया, सूनी माँग लिये छररावा करत है एहर-ओहर !" बुआ बोलीं।

"हाँ, ये तो ठीक है ।" डॉ. शुक्ला बोले–"मैं खुद सुधा का ब्याह अब टालना नहीं चाहता। बी. ए. तक की शिक्षा काफी है वरना फिर हमारी जाति में तो लड़के नहीं मिलते। लेकिन ये जो लड़का तुम बता रही हो तो घर वाले कुछ एतराज तो नहीं करेंगे ! और फिर, लड़का तो हमें अच्छा लगा लेकिन घरवाले पता नहीं कैसे हों ?"

"अरे तो घरवालन से का करैका है तोको । लड़का तो अलग है, अपने-आप पढ़ रहा है और लड़की अलग रहिए, न सास का डर न ननद की धौंस। हम पत्री मँगवाये देइत ही, मिलवाय लेव।"

डॉ. शुक्ला ने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

"तो फिर बिनती के बारे में का कहत हौ ? अगहन तक टाल दिया जाय न ?" बुआजी ने पूछा।

"हाँ, हाँ," डॉ. शुक्ला ने विचार में डूबे हुए कहा।

"तो फिर तुम ही इन जूतापिटऊ, बड़नक्कू से कह दियौ; आय के कल से हमरी छाती पर मूँग दलत हैं।" बुआजी ने चन्दर की ओर किसी को निर्देशित करते हुए कहा और चली गयीं।

चन्दर चुपचाप बैठा था। जाने क्या सोच रहा था। शायद कुछ भी नहीं सोच रहा था ! मगर फिर भी अपनी विचार-शून्यता में ही खोया हुआ-सा था। जब डॉ. शुक्ला उसकी ओर मुड़े और कहा–"चन्दर !" तो वह एकदम से चौंक गया और जाने किस दुनिया से लौट आया। डॉ. साहब ने कहा–"अरे ! तुम्हारी तबीयत खराब है क्या ?"

"नहीं तो।" एक फीकी हँसी हँसकर चन्दर ने कहा।

"तो मेहनत बहुत कर रहे होगे। कितने अध्याय लिखे अपनी थीसिस के ? अब मार्च खत्म हो रहा है और पूरा अप्रैल तुम्हें थीसिस टाइप कराने में लगेगा और मई में हर हालत में जमा हो जानी चाहिए।"

"जी, हाँ।" बड़े थके स्वर में चन्दर ने कहा–"दस अध्याय हो ही गये हैं। तीन अध्याय और होने हैं और अनुक्रमणिका बनानी है। अप्रैल के पहले सप्ताह तक खत्म हो ही जायेगा। अब सिवा थीसिस के और करना ही क्या है ?" एक बहुत गहरी साँस लेते हुए चन्दर ने कहा और माथा थामकर बैठ गया।

"कुछ तबीयत ठीक नहीं है तुम्हारी। चाय बनवा लो ! लेकिन सुधा तो है नहीं, न महराजिन है ।" डाक्टर साहब बोले।

अरे सुधा, सुधा के नाम पर चन्दर चौंक गया। हाँ, अभी वह सुधा के ही बारे में सोच रहा था, जब बुआजी बात कर रही थीं। क्या सोच रहा था। देखो··उसने याद करने की कोशिश की पर कुछ याद ही नहीं आ रहा था, पता नहीं क्या सोच रहा था। पता नहीं था··कुछ सुधा के ब्याह की बात हो रही थी शायद। क्या बात हो रही थी ?··

"कहाँ गयी है सुधा ?" चन्दर ने पूछा।

"आज शायद साबिर साहब के यहाँ गयी है। उनकी लड़की उनके साथ पढ़ती है न, वहीं गयी है बिनती के साथ।"

"अब इम्तहान को कितने दिन रह गये हैं, अभी घूमना बन्द नहीं हुआ उनका ?"

"नहीं, दिन-भर पढ़ने के बाद उठी थी, उसके भी सिर में दर्द था, चली गयी। घूम-फिर लेने दो बेचारी को, अब तो जा ही रही है।" डॉ. शुक्ला बोले, एक हँसी के साथ जिसमें आँसू छलके पड़ते थे।

"कहाँ तय हो रही है सुधा की शादी ?"

"बरेली में। अब उसकी बुआ ने बताया है। जन्मपत्री दी है मिलवा लो, फिर तुम जरा सब बातें देख लेना। तुम तो थीसिस में व्यस्त रहोगे; मैं जाकर लड़का देख आऊँगा। फिर मई के बाद जुलाई तक सुधा का ब्याह कर देंगे। तुम्हें डाक्टरेट मिल जाये और युनिवर्सिटी में जगह मिल जाये। बस हम तो लड़का-लड़की दोनों से फारिग।" डॉ. शुक्ला बहुत अजब-से स्वरों में बोले।

चन्दर चुप रहा।

"बिनती को देखा तुमने ?" थोड़ी देर बाद डाक्टर ने पूछा।

"हाँ, वही न जिसको डाँट रही थीं ये उस दिन ?"

"हाँ, वही ! उसके ससुर आये हुए हैं; उनसे कहना है कि अब शादी अगहन-पूस के लिए टाल दें। पहले सुधा की हो जाए, वह बड़ी है और हम चाहते हैं कि बिनती को तब तक विदुषी का दूसरा खण्ड भी दिला दें। आओ, उनसे बात कर लें अभी।" डॉ. शुक्ला उठे। चन्दर भी उठा।

और उसने अन्दर जाकर बिनती के ससुर के दिव्य दर्शन प्राप्त किये। वे एक पलँग पर बैठे थे, लेकिन वह अभागा पलँग उनके उदर के ही लिए नाकाफी था। वे चित पड़े थे और साँस लेते थे तो पुराणों की उस कथा का प्रदर्शन हो जाता था कि धीरे-धीरे पृथ्वी का गोला वाराह के मुँह पर कैसे ऊपर उठा होगा। सिर पर छोटे-छोटे बाल और कमर में एक अँगोछे के अलावा सारा शरीर दिगम्बर। सुबह शायद गंगा नहाकर आये थे क्योंकि पेट तक में चन्दन, रोली लगी हुई थी।

डॉ. शुक्ला जाकर बगल में कुर्सी पर बैठ गये; "कहिये दुबेजी, कुछ जलपान किया आपने ?"

पलँग चरमरायी। उस विशाल मांस-पिण्ड में एक भूडोल आया और दुबेजी जलपान की याद करके गद्‌गद् होकर हँसने लगे। एक थलथलाहट हुई और कमरे की दीवारें गिरते-गिरते बचीं। दुबेजी ने उठकर बैठने की कोशिश की लेकिन असफल होकर लेटे-ही-लेटे कहा—"हो-हो ! सब आपकी कृपा है। खूब छकके मिष्टान्न पाया। अब जरा सरबत-उरबत कुछ मिलै तो जो कुछ पेट में जलन है, सो शान्त होय !" उन्होंने पेट पर अपना हाथ फेरते हुए कहा।

"अच्छा, अरे भाई जरा शरबत बना देना।" डॉ॰ शुक्ला ने दरवाजे की ओट में खड़ी हुई बुआजी से कहा। बुआजी की आवाज सुनाई पड़ी—"बाप रे ! ई ढाई मन की लहास कम-से-कम मसक-भर के शरबत तो उलीचै लैईहै।" चन्दर को हँसी आ गयी, डॉ॰ शुक्ला मुसकराने लगे लेकिन दुबेजी के दिव्य मुखमण्डल पर कहीं क्षोभ या उल्लास की रेखा तक न आयी। चन्दर मन-ही-मन सोचने लगा, प्राचीन काल के ब्रह्मानन्द सिद्ध महात्मा ऐसे ही होते होंगे।

बुआ एक गिलास में शरबत ले आयीं। दुबेजी काँख-काँखकर उठे और एक साँस में शरबत गले से नीचे उतारकर, गिलास नीचे रख दिया।

"दुबेजी, एक प्रार्थना है आपसे !" डॉ॰ शुक्ला ने हाथ जोड़कर बड़े विनीत स्वर में कहा।

"नहीं ! नहीं !" बात काटकर दुबेजी बोले—"बस अब हम कुछ न खावैं। आप बहुत सत्कार किये। हम एही से छक गये। आपको देखके तो हमें बड़ी प्रसन्नता भई। आप सचमुच दिव्य पुरुष हौ ! और फिर आप तो लड़की के मामा हो, और बियाह-शादी में जो है सो मामा का पक्ष देखा जाता है। ई तो भगवान् ऐसा जोड़ मिलाइन हैं कि वरपक्ष अउर कन्यापक्ष दुइन के मामा बड़े ज्ञानी हैं। आप हैं तौन कालिज में पुरफेसर और ओहर हमार सार—लड़का केर मामा जौन हैं तौन डाकघर में मुन्सी हैं, आपकी किरपा से।" दुबेजी ने गर्व से कहा। चन्दर मुसकराने लगा।

"अरे सो तो आपकी नम्रता है लेकिन मैं सोच रहा हूँ कि गरमियों में अगर ब्याह न रखकर जाड़े में रखा जाये तो ज्यादा अच्छा होगा। तब तक आपके सत्कार की हम कुछ तैयारी भी कर लेंगे।" डॉ॰ शुक्ला बोले।

दुबेजी इसके लिए तैयार नहीं थे। वे बड़े अचरज में भरकर उनकी ओर देखने लगे। लेकिन बहुत कहने-सुनने के बाद अन्त में वे इस शर्त पर राजी हुए कि अगहन तक हर तीज-त्यौहार पर लड़के के लिए कुरता-धोती का कपड़ा और ग्यारह-बारह रुपये नजराना जायेगा और अगहन में अगर ब्याह हो रहा है तो सास-ननद और जिठानी के लिए गरम साड़ी जायेगी और जब-जब दुबेजी गंगा नहाने प्रयागराज आयेंगे तो उनका रोचना एक थाल, कपड़े और एक स्वर्णमण्डित जौ से होगा। जब डॉ॰ शुक्ला ने यह स्वीकार कर लिया तो दुबेजी ने उठकर अपना झालम-झोला कुरता गले में अटकाया और अपनी गठरी हाथ में उठाकर बोले—

"अच्छा तो अब आज्ञा देव, हम चली अब, और ई रुपिया लड़की को दै दियो, अब बात पक्की है।" और अपनी टेंट से उन्होंने एक मुड़ा-मुड़ाया तेल लगा हुआ पाँच रुपये का नोट निकाला और डॉ॰ साहब को दे दिया।

"चन्दर एक ताँगा कर दो, दुबेजी को। अच्छा, आओ हम भी चलें।"

जब ये लोग लौटे तो बुआजी एक थैली से कुछ धर-निकाल रही थीं। डॉ॰ शुक्ला ने नोट बुआजी को देते हुए कहा, "लो, ये दे गये तुम्हारे समधी जी, लड़की को।"

पाँच का नोट देखा तो बुआजी सुलग उठीं—"न गहना न गुरिया, बियाह पक्का कर गये ई कागज के टुकड़े से। अपना-आप तो सोना और रुपिया और कपड़ा सब लीलै को तैयार और देत के दाँई पेट पिराता है जूता-पिटऊ का। अरे राम चाही तो जमदूत ई लहास की बोटी-बोटी करके रामजी के कुत्तन को खिलइ हैं।"

चन्दर हँसी के मारे पागल हो गया।

बुआजी ने थैली का मुँह बाँधा और बोलीं, "अबहिन तक बिनती का पता नै, और ऊ तुरकन-मलेच्छन के हियाँ कुछ खा-पी लिहिस तो फिर हमरे हियाँ गुजारा नाहि ना ओका। बड़ी आजाद हुई गयी है सुधा की सह पाय के। आवै देव, आज हम भद्रा उतारित ही।"

डॉ. शुक्ला अपने कमरे में चले गये। चन्दर को प्यास लगी थी। उसने बुआजी से एक गिलास पानी माँगा। बुआ ने एक गिलास में पानी दिया और बोलीं—"बैठ के पियो बेटा; बैठ के। कुछ खाय का देई ?"

"नहीं, बुआजी !" बुआ बैठकर हँसिया से कटहल छीलने लगीं और चन्दर पानी पीता हुआ सोचने लगा, बुआजी सभी से इतनी मीठी बात करती हैं तो आखिर बिनती से ही इतनी कटु क्यों हैं ?

इतने में अन्दर चप्पलों की आहट सुनाई पड़ी। चन्दर ने देखा। सुधा और बिनजी आ गयी थीं। सुधा अपनी चप्पल उतारकर अपने कमरे में चली गयी और बिनती आँगन में आयी। बुआजी के पास आकर बोली—"लाओ, हम तरकारी काट दें।"

"चल हट ओहर। पहिले नहाव जाय के। कुछ खाय तो नै रह्यो। एत्ती देर कहाँ घूमति रह्यो ? हम खूब अच्छी तरह जानित ही तूँ हमार नाक कटाइन के रहबो। पतुरियन के ढँग सीखे हैं !"

बिनती चुप। एक तीखी वेदना का भाव उसके मुँह पर आया। उसने आँखें झुका लीं। रोयी नहीं और चुपचाप सिर झुकाये हुए सुधा के कमरे में चली गयी।

चन्दर क्षण-भर खड़ा रहा। फिर सुधा के पास गया। सुधा के कमरे में अकेले बिनती खाट पर पड़ी थी—औंधे मुँह, तकिया में मुँह छिपाये। चन्दर को जाने कैसा लगा। उसके मन में बेहद तरस आ रहा था इस बेचारी लड़की के लिए, जिसके पिता हैं ही नहीं और जिसे प्रताड़ना के सिवा कुछ नहीं मिला। चन्दर को बहुत ही ममता लग रही थी इस अभागिनी के लिए। वह सोचने लगा, कितना अन्तर है दोनों बहनों में। एक बचपन से ही कितने असीम दुलार, वैभव और स्नेह में पली है और दूसरी प्रताड़ना और कितने अपमान में पली और वह भी अपनी ही सगी माँ से जो दुनिया भर के प्रति स्नेहमयी है, अपनी लड़की को छोड़कर।

वह कुरसी पर बैठकर चुपचाप यही सोचने लगा—अब आगे भी इस बेचारी को क्या सुख मिलेगा। ससुराल कैसी है, यह तो ससुर को देखकर ही मालूम देता है।

इतने में सुधा कपड़े बदलकर हाथ में किताब लिये उसे पढ़ती हुई उसी में डूबी हुई आयी और खाट पर बैठ गयी। "अरे ! बिनती ! कैसे पड़ी हो ? अच्छा तुम हो

चन्दर ! बिनती ! उठो !" उसने बिनती की पीठ पर हाथ रखकर कहा।

बिनती जो अभी तक निचेष्ट पड़ी थी, सुधा के ममता-भरे स्पर्श पर फूट-फूटकर रो पड़ी। तो सुधा ने चन्दर से कहा—"क्या हुआ बिनती रानी को।" और बिनती भी जोरों से सिसकियाँ भरने लगी तो सुधा ने चन्दर से कहा—"कुछ तुमने कहा होगा। चौदह दिन बाद आये और आते ही लगे रुलाने उसे। कुछ कहा होगा तुमने ! समझ गये। घूमने के लिए उसे भी डाँटा होगा। हम साफ-साफ बताये देते हैं चन्दर, हम तुम्हारी डाँट सह लेते हैं इसके ये मतलब नहीं कि अब तुम इस बेचारी पर भी रोब झाड़ने लगो। इससे कभी कुछ कहा तो अच्छी बात नहीं होगी !"

"तुम्हारे दिमाग का कोई पुरजा ढीला हो गया है क्या ? मैं क्यों कहूँगा बिनती को कुछ !"

"बस फिर यही बात तुम्हारी बुरी लगती है।" सुधा बिगड़कर बोली, "क्यों नहीं कहोगे बिनती को कुछ ? जब हमें कहते हो तो उसे क्यों नहीं कहोगे ? हम तुम्हारे अपने हैं तो क्या वो तुम्हारी अपनी नहीं है ?"

चन्दर हँस पड़ा—"सो क्यों नहीं है, लेकिन तुम्हारे साथ न ऐसे निबाह, न वैसे निबाह।"

"ये सब कुछ हम नहीं जानते ! क्यों रो रही है यह ?" सुधा बोली धमकी के स्वर में।

"बुआजी ने कुछ कहा था।" चन्दर बोला।

"अरे तो उसके लिए क्या रोना ! इतना समझाया तुझे कि उनकी तो आदत है। हँसकर टाल दिया कर। चल उठ ! हँसती है कि गुदगुदाऊँ।" सुधा ने गुदगुदाते हुए कहा। बिनती ने उसका हाथ पकड़कर झटक दिया और फिर सिसकियाँ भरने लगी।

"नहीं मानेगी तू ?" सुधा बोली—"अभी ठीक करती हूँ तुझे मैं । चन्दर, पकड़ो तो इसका हाथ।"

चन्दर चुप रहा।

"नहीं उठे। उठो, तुम इसका हाथ पकड़ लो तो हम अभी इसे हँसाते हैं।" सुधा ने चन्दर का हाथ पकड़कर बिनती की ओर बढ़ते हुए कहा। चन्दर ने अपना हाथ खींच लिया और बोला—"वह तो रो रही है और तुम बजाय समझाने के उसे परेशान कर रही हो।"

"अरे जानती हो, क्यों रो रही है ? अभी इसके ससुर आये थे, वो बहुत मोटे थे तो ये सोच रही है कहीं 'वो' भी मोटे हों !" सुधा ने फिर उसकी गरदन गुदगुदाकर कहा।

बिनती हँस पड़ी। सुधा उछल पड़ी—"लो, ये तो हँस पड़ी, अब रोओगी ?" अब फिर सुधा ने गुदगुदाना शुरू किया। बिनती पहले तो हँसी से लोट गयी फिर पल्ला सम्हालते हुए बोली—"छिः, दीदी ! वो बैठे हैं कि नहीं !" और उठकर बाहर जाने लगी।

"कहाँ चली ?" सुधा ने पूछा।

"जा रही हूँ नहाने।" बिनती पल्ले से सिर ढँकते हुए चल दी।

"क्यों, मैंने तेरा बदन छू लिया इसलिए ?" सुधा हँसकर बोली—"ए चन्दर, वो गेसू का छोटा भाई है न—हसरत, मैंने उसे छू लिया तो फौरन उसने जाकर अपना मुँह साबुन से धोया और अम्मीजान से बोला—'मेरा मुँह जूठा हो गया।' और आज हमने गेसू के अख्तर मियाँ को देखा। बड़े मजे के हैं। मैं तो गेसू से बात करती रही लेकिन बिनती और फूल ने बहुत छेड़ा उन्हें। बेचारे घबरा गये। फूल बहुत चुलबुली है और बड़ी नाजुक है। बड़ी बोलने वाली है और बिनती और फूल का खूब जोड़ मिला। दोनों खूब गाती हैं।"

"बिनती गाती भी है ?" चन्दर ने पूछा, "हमने तो रोते ही देखा।"

"अरे बहुत अच्छा गाती है। इसने एक गाँव का गाना बहुत अच्छा गाया था। ...अरे देखो वह सब बताने में हम तुम पर गुस्सा होना तो भूल ही गये। कहाँ रहे चार रोज ? बोलो, बताओ जल्दी से।"

"व्यस्त थे सुधा, अब थीसिस तीन हिस्सा लिख गयी। इधर हम लगातार पाँच घण्टे बैठकर लिखते थे !" चन्दर बोला।

"पाँच घण्टे !" सुधा बोली—"दूध आजकल पीते हो कि नहीं ?"

"हाँ-हाँ, तीन गायें खरीद ली हैं...।" चन्दर बोला।

"नहीं, मजाक नहीं, कुछ खाते-पीते रहना, कहीं तबीयत खराब हुई तो अब हमारा इम्तहान है, पड़े-पड़े मक्खी मारोगे और अब हम देखने भी नहीं आ सकेंगे।"

"अब कितना कोर्स बाकी है तुम्हारा ?"

"कोर्स तो खत्म था हमारा। कुछ कठिनाइयाँ थीं सो पिछले दो-तीन हफ्ते में मास्टर साहब ने बता दी थीं। अब दोहराना है। लेकिन बिनती का इम्तहान मई में है, उसे भी तो पढ़ाना है।"

"अच्छा, अब चलें हम।"

"अरे बैठो ! फिर जाने कै दिन बाद आओगे। आज बुआ तो चली जायेंगी फिर कल से यहीं पढ़ो न। तुमने बिनती के ससुर को देखा था ?"

"हाँ, देखा था !" चन्दर उनकी रूपरेखा याद करके हँस पड़ा—"बाप रे ! पूरे टैंक थे वे तो।"

"बिनती की ननद से तुम्हारा ब्याह करवा दें। करोगे ?" सुधा बोली—"लड़की इतनी ही मोटी है। उसे कभी डाँट लेना तो देखेंगे तुम्हारी हिम्मत।" सुधा बोली।

ब्याह ! एकदम से चन्दर को याद आ गया। अभी बुआ ने बात की थी सुधा के ब्याह की। तब उसे कैसा लगा था ? कैसा लगा था ? उसका दिमाग घूम गया था। लगा जैसे एक असहनीय दर्द था या क्या था—जो उसकी नस-नस को तोड़ गया। एकदम...।

"क्या हुआ, चन्दर ? अरे चुप क्यों हो गये ? डर गये मोटी लड़की के नाम से ?" सुधा ने चन्दर का कन्धा पकड़कर झकझोरते हुए कहा।

चन्दर एक फीकी हँसी हँसकर रह गया और चुपचाप सुधा की ओर देखने लगा। सुधा चन्दर की निगाह से सहम गयी। चन्दर की निगाह में जाने क्या था, एक अजब-सा पथराया सूनापन, एक जाने किस दर्द की अमंगल छाया, एक जाने किस पीड़ा की मूक आवाज, एक जाने कैसी पिघलती हुई-सी उदासी और वह भी गहरी, जाने कितनी गहरी···और चन्दर था कि एकटक देखता ज़ा रहा था, एकटक अपलक···।

सुधा को जाने कैसा लगा। ये अपना चन्दर तो नहीं, ये अपने चन्दर की निगाह तो नहीं है। चन्दर तो ऐसी निगाह से, इस तरह अपलक तो सुधा को कभी नहीं देखता था। नहीं, यह चन्दर की निगाह तो नहीं। इस निगाह में न शरारत है, न डाँट, न दुलार और न करुणा। इसमें कुछ ऐसा है जिससे सुधा बिलकुल परिचित नहीं, जो आज चन्दर में पहली बार दिखाई पड़ रहा है। सुधा को जैसे डर लगने लगा, जैसे वह काँप उठी। नहीं, यह कोई दूसरा चन्दर है जो उसे इस तरह देख रहा है। यह कोई अपरिचित है, कोई अजनबी, किसी दूसरे देश का कोई व्यक्ति जो सुधा को···

"चन्दर, चन्दर ! तुम्हें क्या हो गया !" सुधा की आवाज मारे डर के काँप रही थी, उसका मुँह पीला पड़ गया, उसकी साँस बैठने लगी थी—"चन्दर···" और जब उसका कुछ बस न चला तो उसकी आँखों में आँसू छलक आये।

हाथों पर एक गरम-गरम बूँद आकर पड़ते ही चन्दर चौंक गया। "अरे सुधी ! रोओ मत। नहीं पगली। हमारी तबीयत कुछ ठीक नहीं है, एक गिलास पानी तो ले आओ।"

सुधा अब भी काँप रही थी। चन्दर की आवाज में अभी भी वह मुलायमियत नहीं आ पायी थी। वह पानी लाने के लिए उठी।

"नहीं, तुम कहीं जाओ मत, तुम बैठो यहीं।" उसने उसकी हथेली अपने माथे पर रखकर जोर से अपने हाथों में दबा ली और कहा—"सुधा !···"

"क्यों, चन्दर !"

"कुछ नहीं !" चन्दर ने आवाज दी लेकिन लगता था वह आवाज चन्दर की नहीं थी। न जाने कहाँ से आ रही थी···

"क्या सिर में दर्द है ? बिनती, एक गिलास पानी लाओ जल्दी से।"

सुधा ने आवाज दी। चन्दर जैसे पहले-सा हो गया—"अरे ! अभी मुझे क्या हो गया था ? तुम क्या बात कर रही थीं सुधा ?"

"पता नहीं तुम्हें अभी क्या हो गया था ?" सुधा ने घबरायी हुई गौरैया की तरह सहमकर कहा। चन्दर स्वस्थ हो गया—"कुछ नहीं, सुधा ! मैं ठीक हूँ। मैं तो यूँ ही तुम्हें परेशान करने के लिए चुप था।" उसने हँसकर कहा।

"हाँ, चलो रहने दो। तुम्हारे सिर में दर्द है जरूर से।" सुधा बोली। बिनती पानी लेकर आ गयी थी।

"लो, पानी पियो !"

"नहीं, हमें कुछ नहीं चाहिए।" चन्दर बोला।

"बिनती, जरा पेनबाम ले आओ।" सुधा ने गिलास जबर्दस्ती उसके मुँह से लगाते हुए कहा। बिनती पेनबाम ले आयी थी–"बिनती, तू जरा लगा दे इनके। अरे खड़ी क्यों है ? कुरसी के पीछे खड़ी होकर माथे पर जरा हल्की उँगली से लगा दे।".

बिनती आज्ञाकारी लड़की की तरह आगे बढ़ी, लेकिन फिर हिचक गयी। किसी अजनबी लड़के के माथे पर कैसे पेनबाम लगा दे। "चलती है या अभी काट के गाड़ देंगे यहीं। मोटकी कहीं की ! खा-खाकर मुटानी है। जरा-सा काम नहीं होता।"

बिनती ने हारकर पेनबाम लगाया। चन्दर ने उसका हाथ हटा दिया तो सुधा ने बिनती के हाथ से पेनबाम लेकर कहा–"आओ, हम लगा दें।" बिनती पेनबाम देकर चली गयी। सुधा ने हाथ बढ़ाया तो चन्दर ने डाँटा–"सीधे से बैठो !" सुधा चुपचाप बैठ गयी तो चन्दर बोला–"अब बताओ क्या बात कर रही थी ? हाँ, बिनती के ब्याह की। ये उनके ससुर तो बहुत ही भद्दे मालूम पड़ रहे थे। क्या देखकर ब्याह कर रही हो तुम लोग ?"

"पता नहीं क्या देखकर ब्याह कर रही हैं बुआ। असल में बुआ पता नहीं क्यों बिनती से इतनी चिढ़ती हैं, वह तो चाहती हैं किसी तरह से बोझ टले सिर से। लेकिन चन्दर, यह बिनती बड़ी खुश है। यह तो चाहती है किसी तरह जल्दी से ब्याह हो !" सुधा मुसकराती हुई बोली।

"अच्छा, यह खुद ब्याह करना चाहती है !" चन्दर ने ताज्जुब से पूछा।

"और क्या ? अपने ससुर की खूब सेवा कर रही थी सुबह। बल्कि पापा तो कह रहे थे कि अभी यह बी. ए. कर ले तब ब्याह करो। हमसे पापा ने कहा इससे पूछने को। हमने पूछा तो कहने लगी बी. ए. करके भी वही करना होगा तो बेकार टालने से क्या फायदा। फिर पापा हमसे बोले कि कुछ वजहों से अगहन में ब्याह होगा, तो बड़े ताज्जुब से बोली–अगहन में !"

"सुधी, तुम जानती हो अगहन में उसका ब्याह क्यों टल रहा है ? पहले तुम्हारा ब्याह होगा।" चन्दर हँसकर बोला। वह पूर्णतया शान्त था और उसके स्वर में कम-से-कम बाहर सिवा चुहल के और कुछ भी न था।

"मेरा ब्याह, मेरा ब्याह !" आँखें फाड़कर, मुँह फैलाकर, हाथ नचाकर, कुतूहल-भरे आश्चर्य से सुधा ने कहा और फिर हँस पड़ी, खूब हँसी–"कौन करेगा मेरा ब्याह ? बुआ ? पापा करने ही नहीं देंगे। हमारे बिना पापा का काम ही नहीं चलेगा और बाबूसाहब, तुम किस पर आकर रंग जमाओगे ? ब्याह मेरा। हूँ !" सुधा ने मुँह बिचकाकर उपेक्षा से कहा।

"नहीं सुधा, मैं गम्भीरता से कह रहा हूँ। तीन-चार महीने के अन्दर तुम्हारा ब्याह हो जायेगा।" चन्दर उसे विश्वास दिलाते हुए बोला।

"अरे जाओ !" सुधा ने हँसते हुए कहा–"ऐसे हम तुम्हारे बनाने में आ जायें तो हो चुका।"

"अच्छा जाने दो। तुम्हारे पास कोई पोस्टकार्ड है ? लाओ जरा इस कामरेड को

एक चिट्ठी तो लिख दें।" चन्दर बात बदलकर बोला। पता नहीं क्यों इस विषय की बात के चलने में उसे कैसा लगता था।

"कौन कामरेड ?" सुधा ने पूछा—"तुम भी कम्युनिस्ट हो गये क्या ?"

"नहीं, जी वो बेरली का सोशलिस्ट लड़का कैलाश जिसने झगड़े में हम लोगों की जान बचायी थी। हमने तुम्हें बताया नहीं था सब किस्सा उस झगड़े का, जब हम और पापा बाहर गये थे !"

"हाँ-हाँ, बताया था। उसे जरूर खत लिख दो !" सुधा ने पोस्टकार्ड देते हुए कहा—"तुम्हें पता मालूम है ?"

चन्दर जब पोस्टकार्ड लिख रहा था तो सुधा ने कहा—"सुनो, उसे लिख देना कि पापा की सुधा, पापा की जान बचाने के एवज में आपकी बहुत कृतज्ञ है और कभी अगर हो सके तो आप इलाहाबाद जरूर आयें !" लिख दिया ?"

"हाँ !" चन्दर ने पोस्टकार्ड जेब में रखते हुए कहा।

"चन्दर, हम भी सोशलिस्ट पार्टी के मेम्बर होंगे !" सुधा ने मचलते हुए कहा।

"चलो, अब तुम्हें नयी सनक सवार हुई। तुम क्या समझ रही हो सोशलिस्ट पार्टी को। राजनीतिक पार्टी है वह। यह मत करना कि सोशलिस्ट पार्टी में जाओ और लौटकर आओ तो पापा से कहो—अरे हम तो समझे पार्टी है, वहाँ चाय-पानी मिलेगा। वहाँ तो सब लोग लेक्चर देते हैं।"

"धत् हम कोई बेवकूफ हैं क्या ?" सुधा ने बिगड़कर कहा।

"नहीं, सो तो तुम बुद्धिसागर हो, लेकिन लड़कियों की राजनीतिक बुद्धि कुछ ऐसी ही होती है !" चन्दर बोला।

"अच्छा रहने दो। लड़कियाँ न हों तो काम ही न चले।" सुधा ने कहा।

"अच्छा, सुधा ! आज कुछ रुपये दोगी। हमारे पास पैसे खतम हैं। और सिनेमा देखना है जरा।" चन्दर ने बहुत दुलार से कहा।

"हाँ-हाँ, जरूर देंगे तुम्हें। मतलबी कहीं के !" सुधा बोली—"अभी-अभी तुम लड़कियों की बुराई कर रहे थे न ?"

"तो तुम और लड़कियों में से थोड़े ही हो। तुम तो हमारी सुधा हो। सुधा महान्।"

सुधा पिघल गयी—"अच्छा, कितना लोगे ?" अपनी पॉकेट में से पाँच रुपये का नोट निकालकर बोली—"इससे काम चल जायेगा ?"

"हाँ-हाँ, आज जरा सोच रहे हैं पम्मी के यहाँ जायें, तब सेकण्ड शो जायें।"

"पम्मी रानी के यहाँ जाओगे। समझ गये, तभी तुमने चाचाजी से ब्याह करने से इनकार कर दिया। लेकिन पम्मी तुमसे तीन साल बड़ी है। लोग क्या कहेंगे ?" सुधा ने छेड़ा।

"ऊँह, तो क्या हुआ जी ! सब यों ही चलता है !" चन्दर हँसकर टाल गया।

"तो फिर खाना यहीं खाये जाओ और कार लेते जाओ।" सुधा ने कहा।

"मँगाओ !" चन्दर ने पलंग पर पैर फैलाते हुए कहा। खाना आ गया। और जब तक चन्दर खाता रहा, सुधा सामने बैठी रही और बिनती दौड़कर पूड़ी लाती रही।

जब चन्दर पम्मी के बँगले पर पहुँचा तो शाम होने में देर नहीं थी। लेकिन अभी फर्स्ट शो शुरू होने में देरी थी। पम्मी गुलाबों के बीच में टहल रही थी और बर्टी एक अच्छा-सा सूट पहने लॉन पर बैठा था और घुटनों पर ठुड्डी रखे कुछ सोच-विचार में पड़ा था। बर्टी के चेहरे पर का पीलापन भी कुछ कम था। वह देखने से इतना भयंकर नहीं मालूम पड़ता था। लेकिन उसकी आँखों का पागलपन अभी वैसा ही था और खूबसूरत सूट पहनने पर भी उसका हाल यह था कि एक कालर अन्दर था और एक बाहर।

पम्मी ने चन्दर को आते देखा तो खिल गयी। "हल्लो, कपूर ! क्या हाल है। पता नहीं क्यों आज सुबह से मेरा मन कह रहा था कि आज मेरे मित्र जरूर आयेंगे। और शाम के वक्त तुम तो इतने अच्छे लगते हो जैसे वह जगमग सितारा जिसे देखकर कीट्स ने अपनी आखिरी सानेट लिखी थी।" पम्मी ने एक गुलाब तोड़ा और चन्दर के कोट के बटन होल में लगा दिया। चन्दर ने बड़े भय से बर्टी की ओर देखा कि कहीं गुलाब के तोड़े जाने पर वह फिर चन्दर की गरदन पर सवार न हो जाये। लेकिन बर्टी कुछ बोला नहीं। बर्टी ने सिर्फ हाथ उठाकर अभिवादन किया और फिर बैठकर सोचने लगा।

पम्मी ने कहा—"आओ, अन्दर चलें।" और चन्दर और पम्मी दोनों ड्राइंग रूम में बैठ गये।

चन्दर ने कहा—"मैं तो डर रहा था कि तुमने गुलाब तोड़कर मुझे दिया तो कहीं बर्टी नाराज न हो जाये, लेकिन वह कुछ बोला नहीं।"

पम्मी मुसकरायी—"हाँ, अब वह कुछ कहता नहीं और पता नहीं क्यों गुलाबों से उसकी तबीयत भी इधर हट गयी। अब वह उतनी परवाह भी नहीं करता।"

"क्यों ?" चन्दर ने ताज्जुब से पूछा।

"पता नहीं क्यों। मेरी तो समझ में यह आता है कि उसका जितना विश्वास अपनी पत्नी पर था वह इधर धीरे-धीरे हट गया और इधर वह यह विश्वास करने लगा है कि सचमुच वह सार्जेण्ट को प्यार करती थी। इसलिए उसने फूलों को प्यार करना छोड़ दिया।"

"अच्छा ! लेकिन यह हुआ कैसे ? उसने तो अपने मन में इतना गहरा विश्वास जमा रखा था कि मैं समझता था कि मरते दम तक उसका पागलपन न छूटेगा।" चन्दर ने कहा।

"नहीं, बात यह हुई कि तुम्हारे जाने के दो-तीन दिन बाद मैंने एक दिन सोचा कि मान लिया जाये अगर मेरे और बर्टी के विचारों में मतभेद है तो इसका मतलब यह नहीं कि मैं उसके गुलाब चुराकर उसे मानसिक पीड़ा पहुँचाऊँ और उसका पागलपन और बढ़ाऊँ। बुद्धि और तर्क के अलावा भावना और सहानुभूति का भी एक महत्त्व मुझे लगा और मैंने फूल चुराना छोड़ दिया। दो-तीन दिन वह बेहद खुश रहा, बेहद खुश और मुझे भी बड़ा सन्तोष हुआ कि लो अब बर्टी शायद ठीक हो जाये। लेकिन तीसरे दिन सहसा उसने अपना खुरपा फेंक दिया, कई गुलाब के पौधे उखाड़कर फेंक दिये और मुझसे बोला—'अब तो कोई फूल भी नहीं चुराता, अब भी वह इन फूलों में नहीं मिलती। वह जरूर सार्जेण्ट के साथ जाती है। वह मुझे प्यार नहीं करती, हरगिज नहीं करती, और वह रोने लगा।' बस उसी दिन से वह गुलाबों के पास नहीं जाता और आजकल बहुत अच्छे-अच्छे सूट पहनकर घूमता है और कहता है—क्या मैं सार्जेण्ट से कम सुन्दर हूँ ! और इधर वह बिलकुल पागल हो गया है। पता नहीं किससे अपने-आप लड़ता रहता है।"

चन्दर ने ताज्जुब से सिर हिलाया।

"हाँ, मुझे बड़ा दुख हुआ !" पम्मी बोली—"मैंने तो, हमदर्दी की कि फूल चुराने बन्द कर दिये और उसका नतीजा यह हुआ । पता नहीं क्यों कपूर, मुझे लगता है कि हमदर्दी करना इस दुनिया में सबसे बड़ा पाप है। आदमी से हमदर्दी कभी नहीं करनी चाहिए।"

चन्दर ने सहसा अपनी घड़ी देखी।

"क्यों, अभी तुम नहीं जा सकते। बैठो और बातें सुनो, इसलिए मैंने तुम्हें दोस्त बनाया है। आज दो-तीन साल हो गये, मैंने किसी से बातें ही नहीं की हैं और तुमसे इसलिए मैंने मित्रता की है कि बातें करूँगी।"

चन्दर हँसा—"आपने मेरा अच्छा उपयोग ढूँढ़ निकाला।"

"नहीं, उपयोग नहीं, कपूर ! तुम मुझे गलत न समझना। जिन्दगी ने मुझे इतनी बातें बतायी हैं और यह किताबें जो मैं इधर पढ़ने लगी हूँ, इन्होंने मुझे इतनी बातें बतायी हैं कि मैं चाहती हूँ कि उन पर बात-चीत करके अपने मन का बोझ हलका कर लूँ। और तुम्हें बैठकर सुननी होंगी सभी बातें !"

"हाँ, मैं तैयार हूँ लेकिन किताबें पढ़नी कब से शुरू कर दीं तुमने ?" चन्दर ने ताज्जुब से पूछा।

"अभी उस दिन मैं डॉ. शुक्ला के यहाँ गयी। उनकी लड़की से मालूम हुआ कि तुम्हें कविता पसन्द है। मैंने सोचा, उसी पर बातें करूँ और मैंने कविताएँ पढ़नी शुरू कर दीं।"

"अच्छा, तो मैं देखता हूँ कि दो-तीन हफ्ते में भाई और बहन दोनों में कुछ परिवर्तन आ गये।"

पम्मी कुछ बोली नहीं, हँस दी।

"मैं सोचता हूँ पम्मी कि आज सिनेमा देखने जाऊँ। कार है साथ में, अभी पन्द्रह मिनट बाकी है। चाहो तो चलो।"

"सिनेमा ! आज चार साल से मैं कहीं नहीं गयी हूँ। सिनेमा, हौंजी, बाल डॉन्स—सभी जगह जाना बन्द कर दिया है मैंने। मेरा दम घुटेगा हॉल के अन्दर लेकिन चलो देखें, अब भी कितने ही लोग वैसे ही खुशी से सिनेमा देखते होंगे।" एक गहरी साँस लेकर पम्मी बोली—"बर्टी को ले चलोगे ?"

"हाँ, हाँ ! तो चलो उठो, फिर देर हो जायेगी !" चन्दर ने घड़ी देखते हुए कहा।

पम्मी फौरन अन्दर के कमरे में गयी और एक जार्जेट का हलका भूरा गाउन पहनकर आयी। इस रंग से वह जैसे निखर आयी। चन्दर ने उसकी ओर देखा, तो वह लजा गयी और बोली—"इस तरह से मत देखो। मैं जानती हूँ यह मेरा सबसे अच्छा गाउन है। इसमें कुछ अच्छी लगती होऊँगी। चलो !" और आकर उसने बेतकल्लुफी से उसके कन्धे पर हाथ रख दिया।

दोनों बाहर आये तो बर्टी लॉन पर घूम रहा था। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। लेकिन वह बड़ी शान से सीना ताने था। "बर्टी, आज मिस्टर कपूर मुझे सिनेमा दिखलाने जा रहे हैं। तुम भी चलोगे ?"

"हुँ !" बर्टी ने सिर हिलाकर जोर से कहा—"सिनेमा जाऊँगा ? कभी नहीं। भूलकर भी नहीं। तुमने मुझे क्या समझा है ? मैं सिनेमा जाऊँगा ?" धीरे-धीरे उसका स्वर मन्द पड़ गया···"अगर सिनेमा में वह सार्जेण्ट के साथ मिल गयी तो ! तो मैं उसका गला घोंट दूँगा।" अपने गले को दबाते हुए बर्टी बोला और इतनी जोर से दबा दिया अपना गला कि आँखें लाल हो गयीं और खाँसने लगा। खाँसी बन्द हुई तो बोला—"वह मुझे प्यार नहीं करती। वह सार्जेण्ट को प्यार करती है। वह उसी के साथ घूमती है। अगर वह मिल जायेगी सिनेमा में तो उसकी हत्या कर डालूँगा, तो पुलिस आयेगी और खेल खत्म हो जायेगा। तुम जानते हो मि. कपूर, मैं उससे कितना नफरत करता हूँ···और···और लेकिन नहीं, कौन जानता है मैं नफरत करता होऊँ और वह··मुझे कुछ समझ में नहीं आता, मैं पागल हूँ, ओफ।" और वह सिर थामकर बैठ गया।

पम्मी ने चन्दर का हाथ पकड़कर कहा—"चलो, यहाँ रहने से उसका दिमाग और खराब होगा। आओ !"

दोनों जाकर कार में बैठे। चन्दर खुद ही ड्राइव कर रहा था। पम्मी बोली, "बहुत दिन से मैंने कार नहीं ड्राइव की है। लाओ, आज ड्राइव करूँ।"

पम्मी ने स्टीयरिंग अपने हाथ में ले ली। चन्दर इधर बैठ गया।

थोड़ी देर में कार रीजेण्ट के सामने जा पहुँची। चित्र था—'सेलामी, ह्वेयर शी डान्स्ड' ('सेलामी जहाँ वह नाची थी')। चन्दर ने टिकट लिया और दोनों ऊपर बैठे। ऊपर भीड़ कम थी। सिर्फ तीन-चार लोग थे। ये लोग दूर एक सीट पर जाकर बैठ गये। अभी न्यूज रील चल रही थी। सहसा पम्मी ने कहा—"कपूर, सेलामी की कहानी मालूम है ?"

"न ! क्या यह कोई उपन्यास है !" चन्दर ने पूछा।

"नहीं यह बाइबिल की एक कहानी है। असल में एक राजा था हैराद। उसने अपने भाई को मारकर उसकी पत्नी से अपनी शादी कर ली। उसकी भतीजी थी सेलामी जो बहुत सुन्दर थी और बहुत अच्छा नाचती थी। हैराद उस पर मुग्ध हो गया। लेकिन सेलामी एक पैगम्बर पर मुग्ध थी। पैगम्बर ने सेलामी के प्रणय को ठुकरा दिया। एक बार हैराद ने सेलामी से कहा कि यदि तुम नाचो तो मैं तुम्हें कुछ दे सकता हूँ। सेलामी नाची और पुरस्कार में उसने अपना अपमान करने वाले पैगम्बर का सिर माँगा ! हैराद वचनबद्ध था। उसने पैगम्बर का सिर तो दे दिया लेकिन बाद में इस भय से कि कहीं राज्य पर कोई आपत्ति न आये उसने सेलामी को भी मरवा डाला।"

चन्दर को यह कहानी बहुत अच्छी लगी। तब तो चित्र बहुत ही अच्छा होगा, उसने सोचा। सुधा की परीक्षा है वरना सुधा को भी दिखला देता। लेकिन क्या नैतिकता है इन पाश्चात्य देशों की कि अपनी भतीजी पर ही हैराद मुग्ध हो गया। उसने कहा पम्मी से—

"लेकिन हैराद अपनी भतीजी पर ही मुग्ध हो गया ?"

"तो क्या हुआ ! यह तो सेक्स है मि॰ कपूर। सेक्स कितनी भयंकर शक्तिशाली भावना है, यह भी शायद तुम नहीं समझते। अभी तुम्हारी आँखों में बड़ा भोलापन है। तुम रूप की आग के संसार से दूर मालूम पड़ते हो, लेकिन शायद दो-एक साल बाद तुम भी जानोगे कि यह कितनी भयंकर चीज है। आदमी के सामने वक्त-बेवक्त, नाता-रिश्ता, मर्यादा-अमर्यादा कुछ भी नहीं रह जाता। वह अपनी भतीजी पर मोहित हुआ तो क्या ! मैंने तो तुम्हारे यहाँ एक पौराणिक कहानी पढ़ी थी कि महादेव अपनी लड़की सरस्वती पर मुग्ध हो गये।"

"महादेव नहीं, ब्रह्मा।" चन्दर बोला।

"हाँ, हाँ ब्रह्मा। मैं भूल गयी थी। तो यह तो सेक्स है। आदमी को कहाँ ले जाता है, यह अन्दाजा भी नहीं किया जा सकता। तुम तो अभी बच्चों की तरह भोले हो और ईश्वर न करे तुम कभी इस प्याले का शरबत चखो। मैं भी तो तुम्हारी इसी पवित्रता को प्यार करती हूँ।" पम्मी ने चन्दर की ओर देखकर कहा। "तुम जानते हो, मैंने तलाक क्यों दिया ? मेरा पति मुझे बहुत चाहता था लेकिन मैं विवाहित जीवन के वासनात्मक पहलू से घबरा उठी ! मुझे लगने लगा, मैं आदमी नहीं हूँ बस माँस का लोथड़ा हूँ जिसे मेरा पति जब चाहे मसल दे, जब चाहे...ऊब गयी थी ! एक गहरी नफरत थी मेरे मन में। तुम आये तो तुम बड़े पवित्र लगे। तुमने आते ही प्रणय-याचना नहीं की। तुम्हारी आँखों में भूख नहीं थी। हमदर्दी थी, स्नेह था, कोमलता थी, निश्छलता थी। मुझे तुम काफी अच्छे लगे। तुमने मुझे अपनी पवित्रता देकर जिला दिया...।"

चन्दर को एक अजब-सा गौरव अनुभव हुआ। और पम्मी के प्रति एक बहुत ऊँची आदर-भावना। उसने पवित्रता देकर जिला दिया। सहसा चन्दर के मन में आया

—लेकिन यह उसके व्यक्तित्व की पवित्रता किसकी दी हुई है। सुधा की ही न ! उसी ने तो उसे सिखाया है कि पुरुष और नारी में कितने ऊँचे सम्बन्ध रह सकते हैं।

"क्या सोच रहे हो ?" पम्मी ने अपना हाथ कपूर की गोद में रख दिया।

कपूर सिहर गया लेकिन शिष्टाचार वश उसने अपना हाथ पम्मी के कन्धे पर रख दिया। पम्मी ने दो क्षण के बाद अपना हाथ हटा लिया और बोली—"कपूर, मैं सोच रही हूँ अगर यह विवाह-संस्था हट जाये तो कितना अच्छा हो। पुरुष और नारी में मित्रता हो। बौद्धिक मित्रता और दिल की हमदर्दी। यह नहीं कि आदमी औरत को वासना की प्यास बुझाने का प्याला समझे और औरत आदमी को अपना मालिक। असल में बँधने के बाद ही, पता नहीं क्यों सम्बन्धों में विकृति आ जाती है। मैं तो देखती हूँ कि प्रणय विवाह भी होते हैं तो वह असफल हो जाते हैं क्योंकि विवाह के पहले आदमी औरत को ऊँची निगाह से देखता है, हमदर्दी और प्यार की चीज समझता है और विवाह के बाद सिर्फ वासना की। मैं तो प्रेम में भी विवाह-पक्ष में नहीं हूँ और प्रेम में भी वासना का विरोध करती हूँ।"

"लेकिन हर लड़की ऐसी थोड़े ही होती है !" चन्दर बोला—"तुम्हें वासना से नफरत हो लेकिन हर एक को तो नहीं।"

"हर एक को होती है। लड़कियाँ बस वासना की झलक, एक हलकी सिहरन, एक गुदगुदी पसन्द करती हैं। बस, उसी के पीछे उनपर चाहे जो दोष लगाया जाय लेकिन अधिकतर लड़कियाँ कम वासनाप्रिय होती हैं, लड़के ज्यादा।"

चित्र शुरू हो गया। वह चुप हो गयी। लेकिन थोड़ी ही देर में मालूम हुआ कि चित्र भ्रमात्मक था। वह बाइबिल की सेलामी की कहानी नहीं थी। वह एक अमेरिकन नर्तकी और कुछ डाकुओं की कहानी थी। पम्मी ऊब गयी। अब जब डाकू पकड़कर सेलामी को एक जंगल में ले गये तो इण्टरवल (अवकाश) हो गया और पम्मी ने कहा—"अब चलो, आधे ही चित्र से तबीयत ऊब गयी।"

दोनों उठ खड़े हुए और नीचे आये।

"कपूर, अबकी बार तुम ड्राइव करो !" पम्मी बोली।

"नहीं, तुम्हीं ड्राइव करो"—कपूर बोला।

"कहाँ चलें"—पम्मी ने स्टार्ट करते हुए कहा।

"जहाँ चाहो।" कपूर ने विचारों में डूबे हुए कहा।

पम्मी ने गाड़ी खूब तेज चला दी। सड़कें साफ थीं। पम्मी का कालर फहराने लगा और उड़कर चन्दर के गालों पर थपकिया लगाने लगा। चन्दर दूर खिसक गया। पम्मी ने चन्दर की ओर देखा और बजाय कालर ठीक करने के, गले का एक बटन और खोल दिया और चन्दर को पास खींच लिया। चन्दर चुपचाप बैठ गया। पम्मी ने एक हाथ स्टीयरिंग पर रखा और एक हाथ से चन्दर का हाथ पकड़े रही जैसे वह चन्दर को दूर नहीं जाने देगी। चन्दर के बदन में एक हलकी सिहरन नाच रही थी। क्यों ? शायद इसलिए कि हवा ठण्डी थी या शायद इसलिए कि ···उसने पम्मी का

हाथ अपने हाथ से हटाने की कोशिश की। पम्मी ने हाथ खींच लिया और कार के अन्दर की बिजली जला दी।

कपूर चुपचाप ठाकुर साहब के बारे में सोचता रहा। कार चलती रही। जब चन्दर का ध्यान टूटा तो उसने देखा कार मैकफर्सन लेक के पास रुकी है।

दोनों उतरे। बीच में सड़क थी, इधर नीचे, उतरकर झील और उधर गंगा बह रही थी। आठ बजा होगा। रात हो गयी थी, चारों तरफ सन्नाटा था। बस सितारों की हलकी रोशनी थी। मैकफर्सन झील काफी सूख गयी थी। किनारे-किनारे मछली मारने के मचान बने थे।

"इधर आओ !" पम्मी बोली। और दोनों नीचे उतरकर मचान पर जा बैठे। पानी का धरातल शान्त था। सिर्फ कहीं-कहीं मछलियों के उछलने या साँस लेने से पानी हिल जाता था। पास ही के नीवाँ गाँव में किसी के यहाँ शायद शादी थी जो शहनाई का हलका स्वर हवाओं की तरंगों पर हिलता-डुलता हुआ आ रहा था। दोनों चुपचाप थे। थोड़ी देर बाद पम्मी ने कहा—"कपूर, चुपचाप रहो, कुछ बात मत करना। उधर देखो पानी में। सितारों का प्रतिबिम्ब देख रहे हो। चुप्पे से सुनो, ये सितारे क्या बातें कर रहे हैं।"

पम्मी सितारों की ओर देखने लगी। कपूर चुपचाप पम्मी की ओर देखता रहा। थोड़ी देर बाद सहसा पम्मी एक बाँस से टिककर बैठ गयी। उसके गले के दो बटन खुले हुए थे। और उसमें से रूप की चाँदनी फटी पड़ती थी। पम्मी आँखें बन्द किये बैठी थी। चन्दर ने उसकी ओर देखा और फिर जाने क्यों उससे देखा नहीं गया। वह सितारों की ओर देखने लगा। पम्मी के कालर के बीच से सितारे टूट-टूटकर बरस रहे थे।

सहसा पम्मी ने आँखें खोल दीं और चन्दर का कन्धा पकड़कर बोली—"कितना अच्छा हो अगर आदमी हमेशा सम्बन्धों में एक दूरी रखे। सेक्स न आने दे। ये सितारे हैं, देखो कितने नजदीक हैं। करोड़ों बरस से साथ हैं, लेकिन कभी भी एक दूसरे को छूते तक नहीं, तभी तो संग निभ जाता है।" सहसा उसकी आवाज में जाने क्या छलक आया कि चन्दर जैसे मदहोश हो गया—बोली वह—"बस ऐसा हो कि आदमी अपने प्रेमास्पद को निकटतम लाकर छोड़ दे, उसको बाँधे न। कुछ ऐसा हो कि होंठों के पास खींचकर छोड़ दे।" और पम्मी ने चन्दर का माथा होंठों तक लाकर छोड़ दिया। उसकी गरम-गरम साँसें चन्दर की पलकों पर बरस गयीं··· "कुछ ऐसा हो कि आदमी उसे अपने हृदय तक खींचकर फिर हटा दे।" और चन्दर को पम्मी ने अपनी बाँहों में घेरकर अपने वक्ष तक खींचकर छोड़ दिया। वक्ष की गरमाई चन्दर के रोम-रोम में सुलग उठी, वह बेचैन हो उठा। उसके मन में आया कि वह अभी यहाँ से चला जाये। जाने कैसा लग रहा था उसे। सहसा पम्मी बोली—"लेकिन नहीं, हम लोग मित्र हैं और कपूर तुम बहुत पवित्र हो, निष्कलंक हो, और तुम पवित्र रहोगे। मैं जितनी दूरी, जितना अन्तर, जितनी पवित्रता पसन्द करती हूँ, वह तुममें है और हम लोगों में हमेशा निभेगी जैसे इन सितारों में हमेशा निभती आयी है।"

चन्दर चुपचाप सोचने लगा, वह पवित्र है। यकायक उसका मन जैसे ऊबने लगा। जैसे एक विहग शिशु घबराकर अपने नीड़ के लिए तड़प उठता है, वैसे ही वह इस वक्त तड़प उठा सुधा के पास जाने के लिए—क्यों ? पता नहीं क्यों ? यहाँ कुछ है जो उसे जकड़ लेना चाहता है। वह क्या करे ?

पम्मी उठी, वह भी उठा। बाँस का मचान हिला। लहरों में हरकत हुई। करोड़ों साल से अलग और पवित्र सितारे हिले, आपस में टकराये और चूर-चूर होकर बिखर गये।

रात-भर चन्दर को ठीक से नींद नहीं आयी। अब गरमी काफी पड़ने लगी थी। एक सूती चादर से ज्यादा नहीं ओढ़ा जाता था और चन्दर ने वह भी ओढ़ना छोड़ दिया था, लेकिन उस दिन रात को अक्सर एक अजब-सी कँपकँपी उसे झकझोर जाती थी और वह कसकर चादर लपेट लेता था, फिर जब उसकी तबीयत घुटने लगती तो वह उठ बैठता था। उसे रात-भर नींद नहीं आयी ; बार-बार झपकी आयी और लगा कि खिड़की के बाहर सुनसान अँधेरे में से अजब-सी आवाजें आती हैं और नागिन बनकर उसकी साँसों में लिपट जाती हैं। वह परेशान हो उठता है, इतने में फिर कहीं से कोई मीठी सतरंगी संगीत की लहर आती है और उसे सचेत और सजग कर जाती है। एक बार उसने देखा कि सुधा और गेसू कहीं चली जा रही हैं। उसने गेसू को कभी नहीं देखा था लेकिन उसने सपने में गेसू को पहचान लिया। लेकिन गेसू तो पम्मी की तरह गाउन पहने हुए थी ! फिर देखा बिनती रो रही है और इतना बिलख-बिलखकर रो रही है कि तबीयत घबरा जाये। घर में कोई नहीं है। चन्दर समझ नहीं पाता कि वह क्या करे ! अकेले घर में एक अपरिचित लड़की से बोलने का साहस भी नहीं होता उसका। किसी तरह हिम्मत करके वह समीप पहुँचा तो देखा अरे यह तो सुधा है। सुधा लुटी हुई-सी मालूम पड़ती है। वह बहुत हिम्मत करके सुधा के पास बैठ गया। उसने सोचा, सुधा को आश्वासन दे लेकिन उसके हाथों पर जाने कैसे सुकुमार जंजीरें कसी हुई हैं। उसके मुँह पर किसी की साँसों का भार है। वह निश्चेष्ट है। उसका मन अकुला उठा। वह चौंककर जाग गया तो देखा वह पसीने से तर है। वह उठकर टहलने लगा। वह जाग गया था लेकिन फिर भी उसका मन स्वस्थ नहीं था। कमरे में ही टहलते-टहलते वह फिर लेट गया। लगा जैसे सामने की खुली खिड़की से सैकड़ों तारे टूट-टूटकर भयानक तेजी से आ रहे हैं और उसके माथे से टकरा-टकराकर चूर-चूर हो जाते हैं। एक मर्मान्तक पीड़ा उसकी नसों में खौल उठी और लगा जैसे उसके अंग-अंग में चिताएँ धधक रही हैं।

जैसे-तैसे रात कटी और सुबह उठते ही वह युनिवर्सिटी जाने से पहले सुधा के यहाँ गया। सुधा लेटी हुई पढ़ रही थी। डॉ. शुक्ला पूजा कर रहे थे। बुआजी शायद रात को चली गयी थीं। क्योंकि बिनती बैठी तरकारी काट रही थी और खुश नजर आ रही थी। चन्दर सुधा के कमरे में गया। देखते ही सुधा मुसकरा पड़ी। बोली कुछ नहीं लेकिन आते ही उसने चन्दर के अंग-अंग को अपनी निगाहों के स्वागत में समेट लिया। चन्दर सुधा के पैरों के पास बैठ गया।

"कल रात को तुम कार लेकर वापस आये तो चुप्पे से चले गये !" सुधा बोली—"कहो, कल कौन-सा खेल देखा ?"

"कल बहुत बड़ा खेल देखा; बहुत बड़ा खेल, सुधी !" चन्दर व्याकुलता से बोला—"अरे जाने कैसा मन हो गया कि रात-भर नींद ही नहीं आयी।" और उसके बाद चन्दर सब बता गया। कैसे वह सिनेमा गया। उसने पम्मी से क्या बात की । उसके बाद कैसे कार पर उसने चन्दर को पास खींच लिया। कैसे वे लोग मैकफर्सन झील गये और वहाँ पम्मी पागल हो गयी। फिर कैसे चन्दर को एकदम सुधा की याद आने लगी और फिर रात-भर चन्दर को कैसे-कैसे सपने आये। सुधा बहुत गम्भीर होकर मुँह में पेन्सिल दबाये कुहनी टेके बस चुपचाप सुनती रही और अन्त में बोली—"तो तुम इतने परेशान क्यों हो गये, चन्दर ! उसने तो अच्छी ही बात कही थी। यह तो अच्छा ही है कि ये सब जिसे तुम सेक्स कहते हो, यह सम्बन्धों में न आये। इसमें क्या बुराई है ? क्या तुम चाहते हो कि सेक्स आये ?"

"कभी नहीं, तुम मुझे अभी तक नहीं समझ पायीं।"

"तो ठीक है, तुम भी नहीं चाहते कि सेक्स आये और वह भी नहीं चाहती कि सेक्स आये तो झगड़ा क्या है ? क्यों, तुम उदास क्यों हो इतने ?" सुधा बोली बड़े अचरज से।

"लेकिन उसका व्यवहार कैसा है ?" चन्दर ने सुधा से कहा।

"ठीक तो है। उसने बता दिया तुम्हें कि इतना अन्तर होना चाहिए। समझ गये। तुम लालची आदमी, चाहते होगे यह भी अन्तर न रहे ! इसीलिए तुम उदास हो गये, छिः !" होंठों में मुसकराहट और आँखों में शरारत की झलक छिपाते हुए सुधा बोली।

"तुम तो मजाक करने लगीं।" चन्दर बोला।

सुधा सिर्फ चन्दर की ओर देखकर मुसकराती रही। चन्दर सामने लगी हुई तसवीर की ओर देखता रहा। फिर उसने सुधा के कबूतरों-जैसे उजले मासूम नन्हे पैर अपने हाथ में ले लिये और भर्रायी हुई आवाज में बोला—"सुधा, तुम कभी हम पर विश्वास न हार बैठना।"

सुधा ने किताब बन्द करके रख दी और उठकर बैठ गयी। उसने चन्दर के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर कहा—"पागल कहीं के ! हमें कहते हो, अभी सुधा में बचपन है और तुममें क्या है ! वाह रे छुईमुई के फूल ! किसी ने हाथ पकड़ लिया,

किसी ने बदन छू लिया तो घबरा गये ! तुमसे अच्छी लड़कियाँ होती हैं।" सुधा ने उसके दोनों हाथ झकझोरते हुए कहा।

"नहीं सुधी, तुम नहीं समझतीं। मेरी जिन्दगी में एक ही विश्वास की चट्टान है। वह हो तुम । मैं जानता हूँ कि कितने ही जल-प्रलय हों लेकिन तुम्हारे सहारे मैं हमेशा ऊपर रहूँगा। तुम मुझे डूबने नहीं दोगी तुम्हारे ही सहारे मैं लहरों से खेल भी सकता हूँ लेकिन तुम्हारा विश्वास अगर कभी हिला तो मैं किन अँधेरी गहराइयों में डूब जाऊँगा, यह कभी मैं सोच नहीं पाता।" चन्दर ने बड़े कातर स्वर में कहा।

सुधा बहुत गम्भीर हो गयी। क्षण-भर वह चन्दर के चेहरे की ओर देखती रही, फिर चन्दर के माथे पर झूलती हुई एक लट को ठीक करती हुई बोली–"चन्दर, और मैं किसके विश्वास पर चल रही हूँ, बोलो ! लेकिन मैंने तो कभी नहीं कहा कि चन्दर अपना विश्वास मत हारना ! और क्या कहूँ। मुझे अपने चन्दर पर पूरा विश्वास है। मरते-दम तक विश्वास रहेगा। फिर तुम्हारा मन इतना डगमगा क्यों गया ? बुरी बात है न ?"

चन्दर ने सुधा के कन्धे पर अपना सिर रख दिया। सुधा ने उसका हाथ लेकर कहा–"लाओ, यहाँ छुआ था पम्मी ने तुम्हें !" और उसका हाथ होंठों तक ले गयी। चन्दर काँप गया, आज सुधा को यह क्या हो गया है। लेकिन होंठों तक ले जाकर झाड़ने-फूँकनेवालों की तरह सुधा ने फूँककर कहा– "जाओ, तुम्हारे हाथ से पम्मी के स्पर्श का जहर उतर गया। अब तो ठीक हो गये ! पवित्र हो गये ! छू मन्तर !"

चन्दर हँस पड़ा। उसका मन शान्त हो गया। सुधा में जादू था। सचमुच जादू था। बिनती चाय ले आयी। दो प्याले। सुधा बोली–"अपने लिए भी लाओ।" बिनती ने सिर हिलाया।

सुधा ने चन्दर की ओर देखकर कहा–"ये पगली जाने क्यों तुमसे झेंपती है ?"

"झेंपती कहाँ हूँ ?" बिनती ने प्रतिवाद किया और प्याला भी ले आयी और जमीन पर बैठ गयी। सुधा ने प्याला मुँह से लगाया और बोली–"चन्दर, तुमने पम्मी को गलत समझा है। पम्मी बहुत अच्छी लड़की है। तुमसे बड़ी भी है और तुमसे ज्यादा समझदार, और उसी तरह व्यवहार भी करती है। तुम अगर कुछ सोचते हो तो गलत सोचते हो। मेरा मतलब समझ गये न।"

"जी हाँ, गुरुआनीजी, अच्छी तरह से !" चन्दर ने हाथ जोड़कर विनम्रता से कहा। बिनती हँस पड़ी और उसकी चाय छलक गयी। नीचे रखी हुई चन्दर की जरीदार पेशावरी सेण्डिल भीग गयी। बिनती ने झुककर एक अँगोछे से उसे पोंछना चाहा तो सुधा चिल्ला उठी–"हाँ-हाँ, छुओ मत। कहीं इनकी सैण्डिल भी बाद में आके न रोने लगे। सुन बिनती, एक लड़की ने कल इन्हें छू लिया तो आप आज उदास थे। अभी तुम सैण्डिल छुओ तो कहीं जाके कोतवाली में रपट न कर दें।"

चन्दर हँस पड़ा। और उसका मन धुलकर ऐसे निखर गया जैसे शरद् का नीलाभ आकाश।

"अब पम्मी के यहाँ कब जाओगे ?" सुधा ने शरारत-भरी मुसकराहट से पूछा।

"कल जाऊँगा ! ठाकुर साहब पम्मी के हाथ अपनी कार बेच रहे हैं तो कागज पर दस्तखत करना है।" चन्दर ने कहा—"अब मैं निडर हूँ। कहो बिनती, तुम्हारे ससुर का क्या कोई खत नहीं आया ?"

बिनती झेंप गयी। चन्दर चल दिया।

थोड़ी दूर जाकर फिर मुड़ा और बोला—"अच्छा सुधा, आज तक जो काम हो बता दो फिर एक महीने तक मुझसे कोई मतलब नहीं। हम थीसिस पूरी करेंगे। समझीं ?"

"समझे !" हाथ पटककर सुधा बोली।

सचमुच डेढ़ महीने तक चन्दर को होश नहीं रहा कि कहाँ क्या हो रहा है। बिसरिया रोज सुधा और बिनती को पढ़ाने आता रहा, सुधा और बिनती दोनों ही का इम्तहान खत्म हो गया। पम्मी दो बार सुधा और चन्दर से मिलने आयी लेकिन चन्दर एक बार भी उसके यहाँ नहीं गया। मिश्रा का एक खत बरेली से आया लेकिन चन्दर ने उसका भी जवाब नहीं दिया। डॉक्टर साहब ने अपनी पुस्तक के दो अध्याय लिख डाले लेकिन उसने एक दिन भी बहस नहीं की। बिनती उसे बराबर चाय, दूध, नाश्ता, शरबत और खरबूजा देती रही लेकिन चन्दर ने एक बार भी उसके ससुर का नाम लेकर नहीं चिढ़ाया। सुधा क्या करती है, कहाँ जाती है, चन्दर से क्या कहती है, चन्दर को कोई होश नहीं, बस उसकी पेन, उसके कागज, स्टडीरूम की मेज और चन्दर है कि आखिर थीसिस पूरी करके ही माना।

7 मई को जब उसने थीसिस का आखिरी पन्ना लिखकर पूरा किया और सन्तोष की साँस ली तो देखा कि शाम के पाँच बजे हैं, सायवान में अभी परदा पड़ा है लेकिन धूप उतार पर है और लू बन्द हो गयी है। उसकी कुरसी के पीछे एक चटाई बिछाये हुए सुधा बैठी है। ह्यूगो का अधपढ़ा हुआ उपन्यास बगल में खुला हुआ औंधा पड़ा है और आप चन्दर की एक मोटी-सी इकनॉमिक्स की किताब खोले उसपर कलम से कुछ गोदा-गोदी कर रही है।

"सुधा !" एक गहरी साँस लेकर अँगड़ाई लेते हुए चन्दर ने कहा—"लो, आज आखिरकार जान छूटी। बस अब दो-तीन महीने में माबदौलत डॉक्टर बन जायेंगे !"

सुधा अपने कार्य में व्यस्त। चन्दर ने क्या कहा, यह सुनकर भी गुम। चन्दर ने हाथ बढ़ाकर चोटी झटक दी। "हाय रे ! हमें नहीं अच्छा लगता, चन्दर !" सुधा बिगड़कर बोली—"तुम्हारे काम के बीच में कोई बोलता है तो बिगड़ जाते हो और

हमारा काम थोड़े ही महत्त्वपूर्ण है !" कहकर सुधा फिर पेन लेकर गोदने लगी।

"आखिर कौन-सा उपनिषद् लिख रही हैं आप ? जरा देखें तो !" चन्दर ने किताब खींच ली। टाजिग की इकनॉमिक्स की किताब में एक पूरे पन्ने पर सुधा ने एक बिल्ली बनायी थी और अगर निगाह जरा चूक जाये तो आप कह नहीं सकते कि यह चौरासी लाख योनियों में से किस योनि का जीव है, लेकिन, चूँकि सुधा कह रही है कि यह बिल्ली है, इसलिए मानना होगा कि यह बिल्ली ही है।

चन्दर ने सुधा की बाँह पकड़कर कहा—"उठ ! आलसी कहीं की, चल उठा ये पोथा ! चलके पापा के पैर छू आयें !"

सुधा चुपचाप उठी और आज्ञाकारी लड़की की तरह मोटी फाइल उठा ली। दरवाजे तक पहुँचकर रुक गयी और चन्दर के कन्धे पर फाइलें टिकाकर बोली—"ऐ चन्दर, तो सच्ची अब तुम डॉक्टर हो जाओगे ?"

"और क्या ?"

"आहा !" कहकर जो सुधा उछली तो फाइल हाथ से खिसकी और सभी पन्ने जमीन पर।

चन्दर झल्ला गया। उसने गुस्से से लाल होकर एक घूँसा सुधा को मार दिया। "अरे राम रे !" सुधा ने पीठ सीधी करते हुए कहा—"बड़े परोपकारी हो डॉक्टर चन्दर कपूर ! हमें बिना थीसिस लिखे डिग्री दे दी ! लेकिन बहुत जोर की थी !"

चन्दर हँस पड़ा।

खैर दोनों पापा के पास गये। वे भी लिखकर ही उठे थे और शरबत पी रहे थे। चन्दर ने जाकर कहा—"पूरी हो गयी।" और झुककर पैर छू लिये। उन्होंने चन्दर को सीने से लगाकर कहा—"बस बेटा, अब तुम्हारी तपस्या पूरी हो गयी। अब जुलाई से युनिवर्सिटी में जरूर आ जाओगे तुम !"

सुधा ने पोथा कोच पर रख दिया और अपने पैर बढ़ाकर खड़ी हो गयी। "ये क्या ?" पापा ने पूछा।

"हमारे पैर नहीं छुयेंगे क्या ?" सुधा ने गम्भीरता से कहा।

"चल पगली ! बहुत बदतमीज होती जा रही है !" पापा ने कृत्रिम गुस्से से कहा—"चन्दर ! बहुत सिर चढ़ी हो गयी है। जरा दबाकर रखा करो। तुमसे छोटी है कि नहीं ?"

"अच्छा पापा, अब आज मिठाई मिलनी चाहिए।" सुधा बोली—"चन्दर ने थीसिस खत्म की है ?"

"जरूर, जरूर बेटी !" डॉक्टर शुक्ला ने जेब से दस का नोट निकालकर दे दिया—"जाओ, मिठाई मँगवाकर खाओ तुम लोग।"

सुधा हाथ में नोट लिये उछलते हुए स्टडी रूम में आयी, पीछे-पीछे चन्दर। सुधा रुक गयी और अपने मन में हिसाब लगाते हुए बोली—दस रुपये पौण्ड ऊन। एक पौण्ड में आठ लच्छी। छह लच्छी में एक शाल। बाकी बची दो लच्छी। दो लच्छी में

एक स्वेटर। बस एक बिनती का स्वेटर, एक हमारा शाल !

चन्दर का माथा ठनका। अब मिठाई की उम्मीद नहीं। फिर भी कोशिश करनी चाहिए।

"सुधा अभी से शाल का क्या करोगी ? अभी तो बहुत गरमी है !" चन्दर बोला।

"अबकी जाड़े में तुम्हारा ब्याह होगा तो आखिर हम लोग नयी-नयी चीज का इन्तजाम करें न। अब डॉक्टर हुए, अब डॉक्टरनी आयेंगी !" सुधा बोली।

खैर बहुत मनाने-बहलाने-फुसलाने पर सुधा मिठाई मँगवाने को राजी हुई। जब नौकर मिठाई लेने चला गया तो चन्दर ने चारों ओर देखकर पूछा—"कहाँ गयी बिनती ? उसे भी बुलाओ कि अकेले-अकेले खा लोगी !"

"वह पढ़ रही है मास्टर साहब से !"

"क्यों ? इम्तहान तो खत्म हो गया, अब क्या पढ़ रही है ?" चन्दर ने पूछा।

"विदुषी का दूसरा खण्ड तो दे रही है न सितम्बर में !" सुधा बोली।

"अच्छा, बुलाओ बिसरिया को भी !" चन्दर बोला।

"अच्छा, मिठाई आने दो।" सुधा ने कहा और फाइल की ओर देखकर कहा—"मुझे इस कम्बख्त पर बहुत गुस्सा आ रहा है।"

"क्यों ?"

"इसकी वजह से तुम डेढ़ महीने सीधे से बोले तक नहीं। इम्तहान वाले दिन सुबह-सुबह तुम्हें हाथ जोड़ने आयी तो तुमने सिर पर हाथ भी नहीं रखा !" सुधा ने शिकायत के स्वर में कहा।

"तो अब आशीर्वाद दे दें। अब तो खत्म हुई थीसिस। अब जितना चाहो बात कर लो। थीसिस न लिखते तो फिर तुम्हारे चन्दर को उपाधि कहाँ से मिलती ?" चन्दर ने दुलार से कहा।

"तो फिर कन्वोकेशन पर तुम्हारी गाउन हम पहनकर फोटो खिंचायेंगे !" सुधा मचलकर बोली। इतने में नौकर मिठाई ले आया। "जाओ, बिनतीजी को बुला लाओ।" चन्दर ने कहा।

बिनती आयी।

"तुम पढ़ चुकीं !" चन्दर ने पूछा।

"अभी नहीं।" बिनती बोली।

"अच्छा, अब आज पढ़ाई बन्द करो, उन्हें भी बुला लाओ। मिठाई खायी जाये।" चन्दर ने कहा।

"अच्छा !" कहकर बिनती जो मुड़ी तो सुधा बोली—"अरे लालचिन ! ये तो पूछ ले कि मिठाई काहे की है।"

"मुझे मालूम है !" बिनती मुसकराती हुई बोली—"उनके यहाँ आज गये होंगे, पम्मी के यहाँ फिर आज कुछ उस दिन जैसी बात हुई होगी।"

सुधा हँस पड़ी। चन्दर झेंप गया। बिनती चली गयी बिसरिया को बुलाने।

"अब तो ये तुमसे बोलने लगी !" सुधा ने कहा।

"हाँ, यह है बड़ी सुशील लड़की और बहुत शान्त। हमें बहुत अच्छी लगती है। बोलना तो जैसे आता ही नहीं इसे।"

"हाँ, लेकिन अब खूब सीख रही है। इसकी गुरु मिली है गेसू। हमसे भी ज्यादा गेसू से पटने लगी है इसकी। दोनों ब्याह करने जा रही हैं और दोनों उसी की बातें करती हैं जब मिलती हैं तब।" सुधा बोली।

"और कविता भी करती हैं यह, तुम एक बार कह रही थीं ?" चन्दर ने पूछा।

"नहीं जी, असल में एक बड़ी सुन्दर-सी नोट-बुक थी, उसमें यह जाने क्या लिखती थी ? हमें नहीं दिखाती थी। बाद में हमने देखा कि यह डायरी है। उसमें धोबी का हिसाब लिखती थी।"

"तो कविता नहीं लिखतीं !" ताज्जुब है, वरना सोलह बरस के बाद प्रेम करके कविता करना तो लड़कियों का फैशन हो गया है, उतना ही व्यापक जितना उलटा पल्ला ओढ़ना।" चन्दर बोला।

"चला तुम्हारा नारी-पुराण !" सुधा बिगड़ी।

मिठाई खाने वाले आये। आगे-आगे बिनती, पीछे-पीछे बिसरिया। अभिवादन के बाद बिसरिया बैठ गया। "कहो बिसरिया, तुम्हारी शिष्या कैसी है ?"

"बस अद्वितीय।" कवि बिसरिया ने सिर हिलाकर कहा। सुधा मुसकरा दी, चन्दर की ओर देखकर।

"और ये सुधा कैसी थी ?"

"बस अद्वितीय।" बिसरिया ने उसी तरह कहा।

"दोनों अद्वितीय हैं ? साथ ही !" चन्दर ने पूछा।

सुधा और बिनती दोनों हँस दीं। बिसरिया नहीं समझ पाया कि उसने कौन-सी हँसने की बात की थी और जब नहीं समझ पाया तो पहले सिर खुजलाने लगा फिर खुद भी हँस पड़ा। उसकी हँसी पर तीनों हँस पड़े।

"चन्दर, मास्टर साहब भी खूब हैं। एक दिन बिनती को महादेवी की वह कविता पढ़ा रहे थे, 'विरह का जल जात जीवन,' तो पढ़ते-पढ़ते बड़ी गहरी साँस भरने लगे।"

चन्दर और बिनती दोनों हँस पड़े। बिसरिया पहले तो खुद हँसा फिर बोला—

"हाँ भाई, क्या करें, कपूर ! तुम तो जानते ही हो, मैं बहुत भावुक हूँ। मुझसे बरदाश्त नहीं होता। एक बार तो ऐसा हुआ कि पर्चे में एक करुणरस का गीत आ गया अर्थ लिखने को। मैं उसे पढ़ते ही इतना व्यथित हो गया कि उठकर टहलने लगा। प्रोफेसर समझे मैं दूसरे लड़के की कॉपी देखने उठा हूँ, तो उन्होंने निकाल दिया। मुझे निकाले जाने का अफसोस नहीं हुआ लेकिन कविता पढ़कर मुझे बहुत रुलाई आयी।"

सुधा हँसी तो चन्दर ने आँख के इशारे से मना किया और गम्भीरता से

बोला—"हाँ भाई बिसरिया, सो तो सही है ही। तुम इतने भावुक न हो तो इतना अच्छा कैसे लिख सकते हो ? तो तुमने पर्चा छोड़ दिया ?"

"हाँ, मैं पर्चे वगैरह की क्या परवाह करता हूँ ? मेरे लिए इन सभी वस्तुओं का कुछ भी अर्थ नहीं। मैं भावना की उपासना करता हूँ। उस समय परीक्षा देने की भावना से ज्यादा सबल उस कविता की करुण-भावना थी। और इस तरह मैं कितनी बार फेल हो चका हूँ। मेरे साथ वह पढ़ता था न हरिहर टण्डन, वह अब बस्ती कॉलेज का प्रिन्सिपल है। एक मेरा सहपाठी था, वह रेडियो का प्रोग्राम एक्जीक्यूटिव है···"

"और एक तुम्हारा सहपाठी तो हमने सुना कि असेम्बली का स्पीकर भी है !" चन्दर बात काटकर बोला। सुधा फिर हँस पड़ी। बिनती भी हँस पड़ी।

खैर मिठाई का भोग प्रारम्भ हुआ बिसरिया कुछ तकल्लुफ कर रहा था तो बिनती बोली—"खाइए, मिठाई तो विरह-रोग और भावुकता में बहुत स्वास्थ्यप्रद होती है !"

"अच्छा, अब तो बिनती का कण्ठ फूट निकला ! अपने गुरुजी को बना रही है।" चन्दर बोला।

बिसरिया थोड़ी देर बाद चला गया। "अब मुझे एक पार्टी में जाना है।" उसने कहा। जब आखिर में एक रसगुल्ला बच रहा तो बिनती हाथ में लेकर बोली —"कौन लेगा ?" आज पता नहीं क्यों बिनती बहुत खुश थी और बहुत बोल रही थी।

चन्दर बोला—"हमें दो !"

सुधा बोली—"हमें !"

बिनती ने एक बार चन्दर की ओर देखा, एक बार सुधा की ओर। चन्दर बोला—"देखें बिनती हमारी है या सुधा की है।"

बिनती ने झट रसगुल्ला सुधा के मुख में रख दिया और सुधा के सिर पर सिर रखकर बोली—

"हम अपनी दीदी के हैं !" सुधा ने आधा रसगुल्ला बिनती को दे दिया तो विनती चन्दर को दिखलाकर खाते हुए सुधा से बोली—"दीदी, ये हमें बहुत वनाते हैं, अब हम भी तुम्हारी तरह बोलेंगे तो इनका दिमाग ठीक हो जायेगा।"

"हम-तुम दोनों मिलके इनका दिमाग ठीक करेंगे ?" सुधा ने प्यार से बिनती को थपथपाते हुए कहा—"अब हम तश्तरियाँ धोकर रख दें।" और तश्तरियाँ उठाकर चल दी।

"पानी नहीं दोगी ?" चन्दर बोला।

बिनती पानी ले आयी और बोली—"हम तो आपका इतना काम करते हैं और आप जब देखो तब हमें बनाते रहते हैं। आपको क्या आनन्द आता है हमें बनाने में ?"

चन्दर ने पल-भर बिनती की ओर देखा और बोला—"असल में बनने के बाद जब तुम झेंप जाती हो तो ··हाँ ऐसे ही।"

बिनती ने फिर झेंपकर मुँह छिपा लिया और लाज से सकुचाकर इन्द्रवधू बन गयी। बिनती देखने-सुनने में बड़ी अच्छी थी। उसकी गठन तो सुधा की तरह नहीं थी लेकिन

उसके चेहरे पर एक फिरोजी आभा थी जिसमें गुलाल के डोरे थे। आँखें उसकी बड़ी-बड़ी और पलकों में इस तरह डोलती थीं जैसे किसी सुकुमार सीपी में कोई बहुत बड़ा मोती डोले। झेंपती थी तो मुँह पर साँझ मुसकरा उठती थी और गालों में फूलों के कटोरों जैसे दो छोटे-छोटे गड्ढे। और विनती के अंग-अंग में एक रूप की लहर थी जो नागिन की तरह लहराती थी और उसकी आदत थी कि बात करते समय अपनी गरदन जरा टेढ़ी कर लेती थी और अँगुलियों से अपने आँचल का छोर उमेठने लगती थी।

इस वक्त चन्दर की बात पर झेंप गयी और उसी तरह आँचल के छोर को उमेठती हुई, मुसकान छिपाकर उसने ऐसी निगाह से चन्दर की ओर देखा जिसमें थोड़ी लाज, थोड़ा गुस्सा, थोड़ी प्रसन्नता और थोड़ी शरारत थी।

चन्दर एकदम बोल उठा—"अरे सुधा, सुधा, जरा बिनती की आँख देखो इस वक्त !"

"आयी अभी।" बगल के कमरे में तश्तरी रखते हुए सुधा बोली।

"बड़े खराब हैं आप ?" बिनती बोली।

"हाँ, बनाओगी न आज से हमें ? हमारा दिमाग ठीक करोगी न ? बहुत बोल रही थी, अब बताओ !"

"बतायें क्या ? अभी तक हम बोलते नहीं थे तभी न ?"

"अब अपनी ससुराल में बोलना टुइयाँ ऐसी ! वहीं तुम्हारे बोल पर रीझेंगे लोग।" चन्दर ने फिर छेड़ा।

"छिः, राम-राम ! ये सब मजाक हमसे मत किया कीजिए। दीदी से क्यों नहीं कहते जिनकी अभी शादी होने जा रही है।"

"अभी उनकी कहाँ, अभी तो तय भी नहीं हुई।"

"तय ही समझिए, फोटो इनकी उन लोगों ने पसन्द कर ली। अच्छा एक बात कहें; मानिएगा !" बिनती बड़े आग्रह और दीनता के स्वर में बोली।

"क्या ?" चन्दर ने आश्चर्य से पूछा। विनती आज सहसा कितना बोलने लगी है। बिनती बोली, नीचे जमीन की ओर देखती हुई—"आप हमसे ब्याह के बारे में मजाक न किया कीजिए, हमें अच्छा नहीं लगता।"

"ओहो, ब्याह अच्छा लगता है लेकिन उसके बारे में मजाक नहीं। गुड़ खाया गुलगुले से परहेज !"

"हाँ, यही तो बात है।" बिनती सहसा गम्भीर हो गयी—"आप समझते होंगे कि मैं ब्याह के लिए उत्सुक हूँ, दीदी भी समझती हैं; लेकिन मेरा ही दिल जानता है कि ब्याह की बात सुनकर मुझे कैसा लगने लगता है। लेकिन फिर भी मैंने ब्याह करने से इनकार नहीं किया। खुद दौड़-दौड़कर उस दिन दुबेजी की सेवा में लगी रही, इसीलिए कि आप देख चुके हैं कि माँ का व्यवहार मुझसे कैसा है ? आप यहाँ इस परिवार को देखकर समझ नहीं सकते कि मैं वहाँ कैसे रहती हूँ, कैसे माँजी की बातें बरदाश्त करती हूँ, वह नरक है मेरे लिए, माँ की गोद नरक है और मैं किसी तरह निकल

भागना चाहती हूँ। कुछ चैन तो मिलेगा !" बिनती की आँखों में आँसू आ गये और सिसकती हुई बोली—"लेकिन आप या दीदी जब यह कहते हैं, तो मुझे लगता है कि मैं कितनी नीच हूँ, कितनी पतित हूँ कि खुद अपने ब्याह के लिए व्याकुल हूँ, लेकिन आप न कहा करें तो अच्छा है !" बिनती को आँसुओं का तार बँध गया था।

सुधा बगल के कमरे से सब कुछ सुन रही थी। आयी और चन्दर से बोली—"बहुत बुरी बात है, चन्दर ! बिनती, क्यों रो रही हो, रानी ? बुआ का स्वभाव ही ऐसा है, उससे हमेशा अपना दिल दुखाने से क्या लाभ ?" और पास जाकर उसको छाती से लगाकर सुधा बोली—"मेरी राजदुलारी ! अब रोना मत, ऐं ! अच्छा, हम लोग कभी मजाक नहीं करेंगे ! बस अब चुप हो जाओ रानी बिटिया की तरह जाओ मुँह धो आओ।"

बिनती चली गयी। चन्दर लज्जित-सा बैठा था।

"लो, अब तुम्हें भी रुलाई आ रही है क्या ?" सुधा ने बहुत दुलार से कहा—"तुम उससे ससुराल का मजाक मत किया करो। वह बहुत दुःखी है और बहुत कदर करती है तुम्हारी और किसी की मजाक की बात और है। हम या तुम कहते हैं तो उसे लग जाता है।"

"अच्छा, वो कह रही थी, तुम्हारी फोटो उन लोगों ने पसन्द कर ली है"—चन्दर ने बात बदलने के ख्याल से कहा।

"और क्या, कोई हमारी शक्ल तुम्हारी तरह है कि लोग नापसन्द कर दें।" सुधा अकड़कर बोली।

"नहीं, सच-सच बताओ ?" चन्दर ने पूछा।

"अरे जी," लापरवाही से मुँह बिचकाकर सुधा बोली—"उनके पसन्द करने से क्या होता है ? मैं ब्याह-उआह नहीं करूँगी। तुम इस फेर में न रहना कि हमें निकाल दोगे यहाँ से।"

इतने में बिनती आ गयी। वह भी उदास थी। सुधा उठी और बिनती को पकड़ लायी और ढकेलकर चन्दर के बगल में बिठा दिया।

"लो, चन्दर ! अब इसे दुलार कर लो तो अभी गुरगुराने लगे। बिल्ली कहीं की !" सुधा ने उसे हलकी-सी चपत मारकर कहा। बिनती का मुँह अपनी हथेलियों में लेकर अपने मुँह के पास लाकर आँखों में आँख डालकर कहा—"पगली कहीं की, आँसू का खजाना लुटाती फिरती है।"

"चन्दर !" डॉ. शुक्ला ने पुकारा और चन्दर उठकर चला गया।

सुधा पर इन दिनों घूमना सवार था। सुबह हुई कि चप्पल पहनी और गायब। गेसू, कामिनी, प्रभा, लीला शायद ही कोई लड़की बची होगी जिसके यहाँ जाकर सुधा ऊधम न मचा आती हो, और चार सुख-दुःख की बातें न कर आती हो। बिनती को घूमना कम पसन्द था, हाँ जब कभी सुधा गेसू के यहाँ जाती थी तो बिनती जरूर जाती थी, उसे सुधा की सभी मित्रों में गेसू सबसे ज्यादा पसन्द थी। डॉक्टर शुक्ला के ब्यूरो में छुट्टी हो चुकी थी पर वे सुधा का ब्याह तय करने की कोशिश कर रहे थे। इसलिए वह बाहर भी नहीं गये थे। चन्दर डेढ़ महीने तक लगातार मेहनत करने के बाद पढ़ाई-लिखाई की ओर से आराम कर रहा था और उसने निश्चित कर लिया था कि अब बरसात के पहले वह किताब छुयेगा नहीं। बड़े आराम के दिन कटते थे उसके। सुबह उठकर साइकिल पर गंगा नहाने जाता था और वहाँ अकसर ठाकुर साहब से भी मुलाकात हो जाती थी। डॉक्टर शुक्ला ने भी कई दफे इरादा किया कि वे गंगाजी चला करें लेकिन एक तो उनसे दिन में काम नहीं होता था, शाम को वे घूमते और सुबह उठकर किताब लिखते थे।

एक दिन सुबह लिख रहे थे कि चन्दर आया और उनके पैर छूकर बोला—"प्रान्तीय सरकार का वह पुरस्कार कल शाम को आ गया !"

"कौन-सा ?"

"वह जो उत्तर प्रान्त में माता और शिशुओं की मृत्यु-संख्या पर मैंने निबन्ध लिखा था, उसी पर।"

"तो क्या पदक आ गया ?" डॉक्टर शुक्ला ने कहा।

"जी" अपने जेब में से एक मखमली डिब्बा निकालकर चन्दर ने दिया। पदक बहुत सुन्दर था। जगमगाता हुआ स्वर्णपदक जिसमें प्रान्तीय राजमुद्रा अंकित थी।

"ईश्वर तुम्हें बहुत यशस्वी करे जीवन में।" डॉक्टर शुक्ला ने पदक उसकी कमीज में अपने हाथों से लगा दिया, "जाओ, अन्दर सुधा को दिखा आओ।"

चन्दर जाने लगा तो डॉक्टर साहब ने बुलाया—"अच्छा, अब सुधा की शादी का इन्तजाम करना है। हमसे तो कुछ होने से रहा, तुम्हीं को सब करना होगा। और सुनो, जेठ दशहरा को लड़के का भाई और माँ देखने आ रही हैं। और बहन भी आयेंगी गाँव से।"

"अच्छा ?" चन्दर बैठ गया कुरसी पर और बोला—"कहाँ है लड़का ? क्या करता है ?"

"लड़का शाहजहाँपुर में है। घर के जमींदार हैं ये लोग। लड़का एम. ए. है। और अच्छे विचारों का है। उसने लिखा है कि सिर्फ दस आदमी बारात में आयेंगे, एक दिन रुकेंगे। संस्कार के बाद चले जायेंगे। सिवा लड़की के गहने-कपड़े और लड़के के गहने-कपड़ों के और कुछ भी नहीं स्वीकार करेंगे।"

"अच्छा, ब्राह्मणों में तो ऐसा कुल नहीं मिलेगा।"

"तभी तो ! सुधा की किस्मत है, वरना तुम बिनती के ससुर को तो देख ही

चुके हो। अच्छा जाओ, सुधा से मिल आओ।"

वह सुधा के कमरे में गया। सुधा थी ही नहीं। वह आँगन में आया। देखा महराजिन खाना बना रही है और बिनती बरामदे में बुरादे की अँगीठी पर पकौड़ियाँ बना रही है।

"आइए," बिनती बोली—"दीदी तो गयी हैं गेसू को बुलाने। आज गेसू की दावत है।...पीढ़े पर बैठिएगा, लीजिए।" एक पीढ़ा चन्दर की ओर बिनती ने खिसका दिया। चन्दर बैठ गया। बिनती ने उसके हाथ में मखमली डिब्बा देखा तो पूछा—"यह क्या लाये ? कुछ दीदी के लिए है क्या ? यह तो अँगूठी मालूम पड़ती है।"

"अँगूठी, वह क्या दाल में मिला के खायेगी ! जंगली कहीं की ! उसे क्या तमीज है अँगूठी पहनने की !"

"हमारी दीदी के लिए ऐसी बात की तो अच्छा नहीं होगा, हाँ !" उसे बिनती ने उसी तरह गरदन टेढ़ी कर आँखें डुलाते हुए धमकाया—"उन्हें नहीं अँगूठी पहननी आयेगी तो क्या आपको आयेगी ? अब ब्याह में सोलहों सिंगार करेंगी ! अच्छा, दीदी कैसी लगेंगी घूँघट काढ़ के ? अभी तक तो सिर खोले चकई की तरह घूमती-फिरती हैं।"

"तुमने तो डाल-ली आदत, ससुराल में रहने की !" चन्दर ने बिनती से कहा।

"अरे हमारा क्या !" एक गहरी साँस लेते हुए बिनती ने कहा—"हम तो उसी के लिए बने थे। लेकिन सुधा दीदी को ब्याह-शादी में न फँसना पड़ता तो अच्छा था। दीदी इन सबके लिए नहीं बनी थीं। आप मामाजी से कहते क्यों नहीं ?"

चन्दर ने कुछ जवाब नहीं दिया। चुपचाप बैठा हुआ सोचता रहा। बिनती भी कड़ाही में से पकौड़ियाँ निकाल-निकालकर थाली में रखने लगी। थोड़ी देर बाद जब वह घी में पकौड़िया डाल चुकी तब भी वह वैसे ही गुमसुम बैठा सोच रहा था।

"क्या सोच रहे हैं आप ? नहीं बताइएगा। फिर अभी हम दीदी से कह देंगे कि बैठे-बैठे सोच रहे थे।" बिनती बोली।

"क्या तुम्हारी दीदी का डर पड़ा है ?" चन्दर ने कहा।

"अपने दिल से पूछिए। हमसे नहीं बन सकते आप!" बिनती ने मुसकराकर कहा और उसके गालों में फूलों के कटोरे खिल गये—"अच्छा, इस डिब्बे में क्या है, कुछ प्राइवेट !"

"नहीं जी, प्राइवेट क्या होगा, और वह भी तुमसे ! सोने का मेडल है। मिला है मुझे एक लेख पर।" और चन्दर ने डिब्बा खोलकर दिखला दिया।

"आहा ! ये तो बहुत अच्छा है। हमें दे दीजिए।" बिनती बोली।

"क्या करेगी तू ?" चन्दर ने हँसकर पूछा।

"अपने आनेवाले जीजाजी के लिए कान के बुन्दे बनवा लेंगे।" बिनती बोली—"अरे हाँ, आपको एक चीज दिखायेंगे।"

"क्या ?"

"यह नहीं बताते। देखिएगा तो उछल पड़िएगा।"

"तो दिखाओ न !"

"अभी तो दीदी आ रही होंगी। दीदी के सामने नहीं दिखायेंगे।"

"सुधा से छिपाकर हम कुछ नहीं कर सकते, यह तुम जानती हो।" चन्दर बोला।

"छिपाने की बात थोड़े ही है। देखकर तब उन्हें बता दीजिएगा। वैसे हम खुद ही सुधा दीदी से क्या छिपाते हैं ? लो, सुधा दीदी तो आ गयीं···"

चन्दर ने पीछे मुड़कर देखा। सुधा के हाथ में एक लम्बा-सा सरकण्डा था और उसे झण्डे की तरह फहराती हुई चली आ रही थी। चन्दर हँस पड़ा।

"खिल गये दीदी को देखते ही !" बिनती बोली और एक गरम पकौड़ी चन्दर के ऊपर फेंक दी।

"अरे बड़ी शैतान हो गयी हो तुम इधर ! पाजी कहीं की !" चन्दर बोला।

सुधा चप्पल उतारकर अन्दर आयी। झूमती-इठलाती हुई चली आ रही थी।

"कहो, सेठ स्वार्थीमल !" उसने चन्दर को देखते ही कहा–"सुबह हुई और पकौड़ी की महक लग गयी तुम्हें !" पीढ़ा खींचकर उसके बगल में बैठ गयी और सरकण्डा चन्दर के हाथ पर रखते हुए बोली–"लो, यह गन्ना। घर में बो देना। और गँडेरी खाना ! अच्छा !" और हाथ बढ़ाकर वह डिबिया उठा ली और बोली–"इसमें क्या है ? खोलें या न खोलें ?"

"अच्छा खत तक तो हमारे बिना पूछे खोल लेती हो। इसे पूछ के खोलोगी !"

"अरे हमने सोचा शायद इस डिबिया में पम्मी का दिल बन्द हो। तुम्हारी मित्र है, शायद स्मृति-चिह्न में वही दे दिया हो।" और सुधा ने डिबिया खोली तो उछल पड़ी, "यह तो उसी निबन्ध पर मिला है जिसका चार्ट तुम बनाये थे !"

"हाँ !"

"तब तो ये हमारा है।" डिबिया अपने वक्ष में छिपाकर सुधा बोली।

"तुम्हारा तो है ही। मैं अपना कब कहता हूँ ?" चन्दर ने कहा।

"लगाकर देखें !" और उठकर सुधा चल दी।

"बिनती, दो पकौड़ी तो दो।" और दो पकौड़ियाँ लेकर खाते हुए चन्दर सुधा के कमरे में गया। देखा, सुधा शीशे के सामने खड़ी है और मेडल अपनी साड़ी में लगा रही है। वह चुपचाप खड़ा होकर देखने लगा। सुधा ने मेडल लगाया और क्षण-भर तनकर देखती रही फिर उसे एक हाथ से वक्ष पर चिपका लिया और मुँह झुकाकर उसे चूम लिया।

"बस कर दिया न गन्दा उसे !" चन्दर मौका नहीं चूका।

और सुधा तो जैसे पानी-पानी। गालों से लाज की रतनारी लपटें फूटीं और एड़ी तक धधक उठीं। फौरन शीशे के पास से हट गयी और बिगड़कर बोली–"चोर कहीं के ! क्या देख रहे थे ?"

बिनती इतने में तश्तरी में पकौड़ी रखकर ले आयी। सुधा ने झट से मेडल उतार दिया और बोली—"लो, रखो सहेजकर।"

"क्यों, पहने रहो न !"

"ना बाबा, परायी चीज, अभी खो जाये तो डाँड़ भरना पड़े।" और मेडल चन्दर की गोद में रख दिया।

बिनती ने धीमे से कहा—"या मुरली मुरलीधर की अधरा न धरी अधरा न धरौंगी।"

चन्दर और सुधा दोनों झेंप गये। "लो, गेसू आ गयी।"

सुधा की जान में जान आ गयी। चन्दर ने बिनती का कान पकड़कर कहा—"बहुत उलटा-सीधा बोलने लगी है !"

बिनती ने कान छुड़ाते हुए कहा—"कोई झूठ थोड़े ही कहती हूँ !"

चन्दर चुपचाप सुधा के कमरे में पकौड़ियाँ खाता रहा। बगल के कमरे में सुधा, गेसू, फूल और हसरत बैठे बातें करते रहे। बिनती उन लोगों को नाश्ता देती रही। उस कमरे में नाश्ता पहुँचाकर बिनती एक गिलास में पानी लेकर चन्दर के पास आयी और पानी रखकर बोली—"अभी हलुआ ला रही हूँ, जाना मत !" और पल-भर में तश्तरी में हलुआ रखकर ले आयी।

"अब मैं चल रहा हूँ !" चन्दर ने कहा।

"बैठो, अभी हम एक चीज दिखायेंगे। जरा गेसू से बात कर आयें।" बिनती बड़े भोले स्वर में बोली—"आइए, हसरत मियाँ।" और पल-भर में नन्हे-मुन्ने-से छह वर्ष के हसरत मियाँ तनजेब का कुरता और चूड़ीदार पायजामे पर पीले रेशम की जाकेट पहने कमरे में खरगोश की तरह उछल आये।

"आदाबरज।" बड़े तमीज से उन्होंने चन्दर को सलाम किया।

चन्दर ने उसे गोद में उठाकर पास बिठा दिया। "लो, हलुआ खाओ, हसरत !"

हसरत ने सिर हिला दिया और बोला—"गेसू ने कहा था, जाकर चन्दर भाई से हमारा आदाब कहना और कुछ खाना मत ! हम खायेंगे नहीं।"

चन्दर बोला, "हमारा भी नमस्ते कह दो उनसे जाकर।"

हसरत उठ खड़ा हुआ—"हम कह आयें।" फिर मुड़कर बोला—"आप तब तक हलुआ खत्म कर देंगे ?"

चन्दर हँस पड़ा—"नहीं हम तुम्हारा इन्तजार करेंगे, जाओ।"

हसरत सिर हिलाता हुआ चला गया।

इतने में सुधा आयी और बोली—"गेसू की गजल सुनो यहाँ बैठकर। आवाज आ रही है न ! फूल भी आयी है इसलिए गेसू तुम्हारे सामने नहीं आयेगी वरना फूल अम्मीजान से शिकायत कर देगी। लेकिन वह तुमसे मिलने को बहुत इच्छुक है। अच्छा, यहीं से सुनना बैठे-बैठे···"

सुधा चली गयी। गेसू ने गाना शुरू कियां बहुत महीन, पतली लेकिन बेहद

मीठी आवाज में जिसमें कसक और नशा दोनों घुले-मिले थे। चन्दर एक तकिया टेककर बैठ गया और उनींदा-सा सुनने लगा। गजल खत्म होते ही सुधा भागकर आयी—"कहो, सुन लिया न !" और उसके पीछे-पीछे आया हसरत और सुधा के पैरों में लिपटकर बोला—"सुधा हम हलुआ नहीं खायेंगे !"

सुधा हँस पड़ी—"पागल कहीं का। ले खा।" और उसके मुँह में हलुआ ठूँस दिया। हसरत को गोद में लेकर वह चन्दर के पास बैठ गयी और गेसू के बारे में बताने लगी—"गेसू गर्मियाँ बिताने नैनीताल जा रही है। वहीं अख़्तर की अम्मी भी आयेंगी और मँगनी की रस्म वहीं पूरी करेंगी। अब वह पढ़ेगी नहीं। जुलाई तक उसका निकाह हो जायेगा। कल रात की गाड़ी से जा रहे हैं ये लोग वगैरह-वगैरह।"

बिनती बैठी-बैठी गेसू और फूल से बातें करती रही। थोड़ी देर बाद सुधा उठकर चली गयी। "तुम जाना मत, आज खाना यहीं खाना, मैं बिनती को तुम्हारे पास भेज रही हूँ, उससे बातें करते रहना।"

थोड़ी देर बाद बिनती आयी। उसके हाथ में कुछ था जिसे वह अपने आँचल से छिपाये हुई थी। आयी और बोली—"अब दीदी नहीं हैं, जल्दी से देख लीजिए।"

"क्या है ?" चन्दर ने ताज्जुब से पूछा।

"जीजाजी की फोटो।" बिनती ने मुसकराकर कहा और एक छोटी-सी बहुत कलात्मक फोटो चन्दर के हाथ में रख दी।

"अरे यह तो मिश्र है। कामरेड कैलाश मिश्र।" और चन्दर के दिमाग में बरेली की बातें, लाठी चार्ज··सभी कुछ घूम गया। चन्दर के मन में इस वक्त जाने कैसा-सा लग रहा था। कभी बड़ा अचरज होता, कभी एक सन्तोष होता कि चलो सुधा के भाग्य की रेखा उसे अच्छी जगह ले गयी, फिर कभी सोचता कि मिश्र इतना विचित्र स्वभाव का है, सुधा की उससे निभेगी या नहीं ? फिर सोचता, नहीं सुधा भाग्यवान है। इतना अच्छा लड़का मिलना मुश्किल था।

"आप इन्हें जानते हैं ?" बिनती ने पूछा।

"हाँ, सुधा भी उन्हें नाम से जानती है शक्ल से नहीं। लेकिन अच्छा लड़का है, बहुत अच्छा लड़का।" चन्दर ने एक गहरी साँस लेकर कहा और फिर चुप हो गया। बिनती बोली—"क्या सोच रहे हैं आप ?"

"कुछ नहीं।" पलकों में आये हुए आँसू रोककर और होंठों पर मुसकान लाने की कोशिश करते हुए बोला—"मैं सोच रहा हूँ, आज कितना सन्तोष है मुझे, कितनी खुशी है मुझे, कि सुधा एक ऐसे घर जा रही है जो इतना अच्छा है, ऐसे लड़के के साथ जा रही है जो इतना ऊँचा"··कहते-कहते चन्दर की आँखें भर आयीं।

बिनती चन्दर के पास खड़ी होकर बोली—"छिः, चन्दर बाबू ! आपकी आँखों में आँसू ! यह तो अच्छा नहीं लगता। जितनी पवित्रता और ऊँचाई से आपने सुधा के साथ निबाह किया है, यह तो शायद देवता भी नहीं कर पाते और दीदी ने आपको

जैसा निश्छल प्यार दिया है उसको पाकर तो आदमी स्वर्ग से भी ऊँचा उठ जाता है, फौलाद से भी ज्यादा ताकतवर हो जाता है, फिर आज इतने शुभ अवसर पर आप में कमजोरी कहाँ से ? हमें तो बड़ी शरम लग रही है। आज तक दीदी तो दूर, हम तक को आप पर गर्व था। अच्छा, मैं फोटो रख तो आऊँ वरना दीदी आ जायेंगी !" बिनती ने फोटो ली और चली गयी।

बिनती जब लौटी तो चन्दर स्वस्थ था। बिनती की ओर क्षण भर चन्दर ने देखा और कहा—"मैं इसलिए नहीं रोया था बिनती, मुझे यह लगा कि यहाँ कैसा लगेगा। खैर जाने दो।"

"एक दिन तो ऐसा होता ही है न, सहना पड़ेगा !" बिनती बोली।

"हाँ, सो तो है ; अच्छा बिनती, सुधा ने यह फोटो देखी है ?" चन्दर ने पूछा।

"अभी नहीं, असल में मामाजी ने मुझसे कहा था कि यह फोटो दिखा दे सुधा को; लेकिन मेरी हिम्मत नहीं पड़ी। मैंने उनसे कह दिया कि चन्दर आयेंगे तो दिखा देंगे। आप जब ठीक समझें तो दिखा दें। जेठ दशहरा अगले ही मंगल को है।" बिनती ने कहा।

"अच्छा।" एक गहरी साँस लेकर चन्दर बोला।

बिनती थोड़ी देर तक चन्दर की ओर एकटक देखती रही। चन्दर ने उसकी निगाह चुरा ली और बोला—"क्या देख रही हो, बिनती ?"

"देख रही हूँ कि आपकी पलकें झपकती हैं या नहीं ?" बिनती बहुत गम्भीरता से बोली।

"क्यों ?"

"इसलिए कि मैंने सुना था, देवताओं की पलकें कभी नहीं गिरतीं।"

चन्दर एक फीकी हँसी हँसकर रह गया।

"नहीं, आप मजाक न समझें। मैंने अपनी जिन्दगी में जितने लोग देखे, उनमें आप-जैसा कोई भी नहीं मिला। कितने ऊँचे हैं आप, कितना विशाल हृदय है आपका ! दीदी कितनी भाग्यशाली हैं।"

चन्दर ने कुछ जवाब नहीं दिया। "जाओ, फोटो ले आओ।" उसने कहा—"आज ही दिखा दूँ। जाओ, खाना भी ले आओ। अब घर जाकर क्या करना है।"

पापा को खाना खिलाने के बाद चन्दर और सुधा खाने बैठे। महराजिन चली गयी थी इसलिए बिनती सेंक-सेंककर रोटी दे रही थी। सुधा एक रेशमी सनिया पहने चौके के अन्दर खा रही थी। और चन्दर चौके के बाहर। सुबह के कच्चे खाने में डॉक्टर शुक्ला बहुत छूत-छात का विचार रखते थे।

"देखो, आज बिनती ने रोटी बनायी है तो कितनी मीठी लग रही है, एक तुम बनाती हो कि मालूम ही नहीं पड़ता रोटी है कि सोख्ता !" चन्दर ने सुधा को चिढ़ाते हुए कहा।

सुधा ने हँसकर कहा—"हमें विनती से लड़ाने की कोशिश कर रहे हो ! विनती की हमसे जिन्दगी-भर लड़ाई नहीं हो सकती !"

"अरे हम सब समझते हैं इनकी बात !" विनती ने रोटी पटकते हुए कहा और जब सुधा सिर झुकाकर खाने लगी तो विनती ने आँख के इशारे से पूछा—"कब दिखाओगे ?"

चन्दर ने सिर हिलाया और फिर सुधा से बोला—"तुम उन्हें चिट्ठी लिखोगी ?"

"किन्हें ?"

"कैलाश मिश्रा को, वही बरेली वाले ? उन्होंने हमें खत लिखा था उसमें तुम्हें प्रणाम लिखा था।" चन्दर बोला।

"नहीं खत-वत नहीं लिखते। उन्हें एक दफे बुलाओ तो यहाँ।"

"हाँ, बुलायेंगे अब महीने-दो महीने बाद, तब तुमसे खूब परिचय करा देंगे और तुम्हें उसकी पार्टी में भी भरती करा देंगे।" चन्दर ने कहा।

"क्या ? हम मजाक नहीं करते ! हम सचमुच समाजवादी दल में शामिल होंगे।" सुधा बोली—"अब हम सोचते हैं कुछ काम करना चाहिए, बहुत खेल-कूद लिये, बचपन निभा लिया।"

"उन्होंने अपना चित्र भेजा है। देखोगी ?" चन्दर ने जेब में हाथ डालते हुए पूछा।

"कहाँ ?" सुधा ने बहुत उत्सुकता से पूछा—"निकालो देखें।"

"पहले बताओ, हमें क्या इनाम दोगी ? बहुत मुश्किल से भेजा उन्होंने चित्र !" चन्दर ने कहा।

"इनाम देंगे इन्हें !" सुधा बोली और झट से झपटकर चित्र छीन लिया।

"अरे, छू लिया चौके में से ?" विनती ने दबी जबान से कहा।

सुधा ने थाली छोड़ दी। अब छू गयी थी वह; अब खा नहीं सकती थी।

"अच्छी फोटो देखी दीदी सामने की थाली छूट गयी !" विनती ने कहा।

सुधा ने हाथ धोकर आँचल के छोर से पकड़कर फोटो देखी और बोली—"चन्दर, सचमुच देखो ! कितने अच्छे लग रहे हैं। कितना तेज है चेहरे पर, और माथा देखो कितना ऊँचा है।" सुधा फोटो देखती हुई बोली।

"अच्छी लगी फोटो ? पसन्द है ?" चन्दर ने बहुत गम्भीरता से पूछा।

"हाँ, हाँ, और समाजवादियों की तरह नहीं लगते ये।" सुधा बोली।

"अच्छा सुधा, यहाँ आओ" और चन्दर के साथ सुधा अपने कमरे में जाकर पलँग पर बैठ गयी। चन्दर उसके पास बैठ गया और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उसकी अँगूठी घुमाते हुए बोला—"सुधा, एक बात कहें, मानोगी ?"

"क्या ?" सुधा ने बहुत दुलार और भोलेपन से पूछा।

"पहले बता दो कि मानोगी ?" चन्दर ने उसकी अँगूठी की ओर एकटक देखते हुए कहा।

"फिर, हमने कभी कोई बात तुम्हारी टाली है ! क्या बात है ?"

"तुम मानोगी चाहे कुछ भी हो ?" चन्दर ने पूछा।

"हाँ-हाँ, कह तो दिया। अब कौन-सी तुम्हारी ऐसी बात है जो तुम्हारी सुधा नहीं मान सकती !" आँखों में, वाणी में, अंग-अंग से सुधा के आत्मसमर्पण छलक रहा था।

"फिर अपनी बात पर कायम रहना, सुधा ! देखो !" उसने सुधा की उँगलियाँ अपनी पलकों से लगाते हुए कहा—"सुधी मेरी ! तुम उस लड़के से ब्याह कर लो !"

"क्या ?" सुधा चोट खायी नागिन की तरह तड़प उठी—"इस लड़के से ? यही शकल है इसकी हमसे ब्याह करने की ! चन्दर, हम ऐसी मजाक नापसन्द करते हैं, समझे कि नहीं ! इसीलिए बड़े प्यार से बुला लाये, बड़ा दुलार कर रहे थे !"

"तुम अभी वायदा कर चुकी हो !" चन्दर ने बहुत आजिजी से कहा।

"वायदा कैसा ? तुम कब अपने वायदे निभाते हो ? और फिर यह धोखा देकर वायदा कराना क्या ? हिम्मत थी तो साफ-साफ कहते हमसे ! हमारे मन में आता सो कहते। हमें इस तरह से बाँधकर क्यों बलिदान चढ़ा रहे हो !" और सुधा मारे गुस्से के रोने लगी।

चन्दर स्तब्ध। उसने इस दृश्य की कल्पना ही नहीं की थी। वह क्षण भर खड़ा रहा। वह क्या कहे सुधा से, कुछ समझ ही में नहीं आता था। वह गया और रोती हुई सुधा के कन्धे पर हाथ रख दिया। "हटो उधर !" सुधा ने बहुत रुखाई से हाथ हटा दिया और आँचल से सिर ढकती हुई बोली—"मैं ब्याह नहीं करूँगी, कभी नहीं करूँगी। किसी से नहीं करूँगी। तुम सभी लोगों ने मिलकर मुझे मार डालने की ठानी है। तो मैं अभी सिर पटककर मर जाऊँगी।" और मारे तैश के सचमुच सुधा ने अपना सिर दीवार पर पटक दिया। "अरे !" दौड़कर चन्दर ने सुधा को पकड़ लिया। मगर सुधा ने गरजकर कहा—"दूर हटो चन्दर छूना मत मुझे !" और जैसे उसमें जाने कहाँ की ताकत आ गयी हो, उसने अपने को छुड़ा लिया।

चन्दर ने दबी जबान से कहा—"छिः सुधा ! यह तुमसे उम्मीद नहीं थी मुझे। यह भावुकता तुम्हें शोभा नहीं देती। बातें कैसी कर रही हो तुम ! हम वही चन्दर हैं न !"

"हाँ, वही चन्दर हो ! और तभी तो ! इस सारी दुनिया में तुम्ही एक रह गये हो मुझे फोटो दिखाकर पसन्द कराने को।" सुधा सिसक-सिसककर रोने लगी—"पापा ने भी धोखा दे दिया। हमें पापा से यह उम्मीद नहीं थी।"

"पगली ! कौन अपनी लड़की को हमेशा अपने पास रख पाया है !" चन्दर बोला।

"तुम चुप रहो, चन्दर। हमें तुम्हारी बोली जहर लगती है। 'सुधा, यह फोटो तुम्हें पसन्द है ?' तुम्हारी जबान हिली कैसे ? शरम नहीं आयी तुम्हें। हम कितना

मानते थे पापा को, कितना मानते थे तुम्हें ? हमें यह नहीं मालूम था कि तुम लोग ऐसा करोगे।" थोड़ी देर चुपचाप सिसकती रही सुधा और फिर धधककर उठी—"कहाँ है वह फोटो ? लाओ, अभी मैं जाऊँगी पापा के पास ! मैं कहूँगी उनसे हाँ, मैं इस लड़के को पसन्द करती हूँ। वह बहुत अच्छा है, बहुत सुन्दर है। लेकिन मैं उससे शादी नहीं करूँगी, मैं किसी से शादी नहीं करूँगी ! झूठी बात है···" और उठकर पापा के कमरे की ओर जाने लगी।

"खबरदार, जो कदम बढ़ाया !" चन्दर ने डाँटकर कहा। "बैठो इधर।"

"मैं नहीं रुकूँगी !" सुधा ने अकड़कर कहा।

"नहीं रुकोगी ?"

"नहीं रुकूँगी।"

और चन्दर का हाथ तैश में उठा और एक भरपूर तमाचा सुधा के गाल पर पड़ा। सुधा के गाल पर नीली उँगलियाँ उपट आयीं। वह स्तब्ध ! जैसे पत्थर बन गयी हो। आँख में आँसू जम गये। पलकों में निगाहें जम गयीं। होंठों में आवाजें जम गयीं और सीने में सिसकियाँ जम गयीं।

चन्दर ने एक बार सुधा की ओर देखा और कुरसी पर जैसे गिर पड़ा और सिर पटककर बैठ गया। सुधा कुरसी के पास जमीन पर बैठ गयी। चन्दर के घुटनों पर सिर रख दिया। बड़ी भारी आवाज में बोली—"चन्दर, देखें तुम्हारे हाथ में चोट तो नहीं आयी।"

चन्दर ने सुधा की ओर देखा, एक ऐसी निगाह से जिसमें कब्र मुँह फाड़कर जमुहाई ले रही थी। सुधा यकायक फिर सिसक पड़ी और चन्दर के पैरों पर सिर रखकर बोली—"चन्दर, सचमुच मुझे अपने आश्रय से निकालकर ही मानोगे ! चन्दर, मजाक की बात दूसरी है, जिन्दगी में तो दुश्मनी मत निकाला करो !"

चन्दर एक गहरी साँस लेकर चुप हो गया। और सिर थामकर बैठ गया। पाँच मिनट बीत गये। कमरे में सन्नाटा, गहन खामोशी। सुधा चन्दर के पाँवों को छाती से चिपकाये सूनी-सूनी निगाहों से जाने कुछ देख रही थी दीवारों के पार, दिशाओं के पार, क्षितिजों से परे··दीवार पर घड़ी चल रही थी टिक··· टिक···

चन्दर ने सिर उठाया और कहा—"सुधा, हमारी तरफ देखो—" सुधा ने सिर ऊपर उठाया। चन्दर बोला—"सुधा, तुम हमें जाने क्या समझ रही होगी, लेकिन अगर तुम समझ पाती कि मैं क्या सोचता हूँ ! क्या समझता हूँ।" सुधा कुछ नहीं बोली, चन्दर कहता गया—"मैं तुम्हारे मन को समझता हूँ, सुधा ! तुम्हारे मन ने जो तुमसे नहीं कहा, वह मुझसे कह दिया था— लेकिन सुधा, हम दोनों एक-दूसरे की जिन्दगी में क्या इसीलिए आये कि एक-दूसरे को कमजोर बना दें या हम लोगों ने स्वर्ग की ऊँचाइयों पर साथ बैठकर आत्मा का संगीत सुना सिर्फ इसीलिए कि उसे अपने ब्याह की शहनाई में बदल दें ?"

"गलत मत समझो चन्दर, मैं गेसू नहीं कि अख्तर से ब्याह के सपने देखूँ और

न तुम्हीं अख्तर हो, चन्दर ! मैं जानती हूँ कि मैं तुम्हारे लिए राखी के सूत से भी ज्यादा पवित्र रही हूँ लेकिन मैं जैसी हूँ, मुझे वैसी ही क्यों नहीं रहने देते ! मैं किसी से शादी नहीं करूँगी। मैं पापा के पास रहूँगी। शादी को मेरा मन नहीं कहता, मैं क्यों करूँ ? तुम गुस्सा मत हो, दुखी मत हो, तुम आज्ञा दोगे तो मैं कुछ भी कर सकती हूँ, लेकिन हत्या करने से पहले यह तो देख लो कि मेरे हृदय में क्या है ?" सुधा ने चन्दर के पाँवों को अपने हृदय से और भी दबाकर कहा।

"सुधा, तुम एक बात सोचो। अगर तुम सबका प्यार बटोरती चलती हो तो कुछ तुम्हारी जिम्मेदारी है या नहीं ? पापा ने आज तक तुम्हें किस तरह पाला। अब क्या तुम्हारा यह फर्ज है कि तुम उनकी बात को ठुकराओ ? और एक बात और सोचो–हम पर कुछ विश्वास करके ही उन्होंने कहा है कि मैं तुमसे फोटो पसन्द कराऊँ ? अगर अब तुम इनकार कर देती हो तो एक तरफ पापा को तुमसे धक्का पहुँचेगा, दूसरी ओर मेरे प्रति उनके विश्वास को कितनी चोट लगेगी। हम उन्हें क्या मुँह दिखाने लायक रहेंगे भला ? तो तुम क्या चाहती हो ? महज अपनी थोड़ी-सी भावुकता के पीछे तुम सभी की जिन्दगी चौपट करने के लिए तैयार हो ? यह तुम्हें शोभा नहीं देता है। क्या कहेंगे पापा ? कि चन्दर ने अभी तक तुम्हें यही सिखाया था ? हमें लोग क्या कहेंगे ? बताओ। आज तुम शादी न करो। उसके बाद पापा हमेशा के लिए दुखी रहा करें और दुनिया हमें कहा करे, तब तुम्हें अच्छा लगेगा ?"

"नहीं।" सुधा ने भर्राये हुए गले से कहा।

"तब, और फिर एक बात और है न सुधी ! सोने की पहचान आग में होती है न ! लपटों में अगर उसमें और निखार न आये तभी वह सच्चा सोना है। सचमुच मैंने तुम्हारे व्यक्तित्व को बनाया है या तुमने मेरे व्यक्तित्व को बनाया है, यह तो तभी मालूम होगा जबकि हम लोग कठिनाइयों से, वेदनाओं से, संघर्षों से खेलें और बाद में विजयी हों और तभी मालूम होगा कि सचमुच मैंने तुम्हारे जीवन में प्रकाश और बल दिया था। अगर सदा तुम मेरी बाँहों की सीमा में रहीं और मैं तुम्हारी पलकों की छाँव में रहा और बाहर के संघर्षों से हम लोग डरते रहे तो कायरता है। और मुझे अच्छा लगेगा कि दुनिया कहे कि मेरी सुधा, जिस पर मुझे नाज था, वह कायर है ? बोलो। तुम कायर कहलाना पसन्द करोगी ?"

"हाँ !" सुधा ने फिर चन्दर के घुटनों में मुँह छिपा लिया।

"क्या ? यह मैं सुधा के मुँह से सुन रहा हूँ ! छिः पगली ! अभी तक तेरी निगाहों ने मेरे प्राणों में अमृत भरा है और मेरी साँसों ने तेरे पंखों में तूफानों की तेजी। और हमें-तुम्हें तो आज खुश होना चाहिए कि अब सामने जो रास्ता है उसमें हम लोगों को यह सिद्ध करने का अवसर मिलेगा कि सचमुच हम लोगों ने एक-दूसरे को ऊँचाई और पवित्रता दी है। मैंने आज तक तुम्हारी सहायता पर विश्वास किया था। आज क्या तुम मेरा विश्वास तोड़ दोगी ? सुधा, इतनी क्रूर क्यों हो रही हो आज तुम ? तुम साधारण लड़की नहीं हो । तुम ध्रुवतारा से ज्यादा प्रकाशमान हो। तुम यह

क्यों चाहती हो कि दुनिया कहे सुधा भी एक साधारण-सी भावुक लड़की थी और आज मैं अपने कान से सुनूँ ! बोलो सुधी ?" चन्दर ने सुधा के सिर पर हाथ रखकर कहा।

सुधा ने आँखें उठायीं, बड़ी कातर निगाहों से चन्दर की ओर देखा और सिर झुका लिया। सुधा के सिर पर हाथ फेरते हुए चन्दर बोला—

"सुधा, मैं जानता हूँ मैं तुम पर शायद बहुत सख्ती कर रहा हूँ, लेकिन तुम्हारे सिवा और कौन है मेरा ? बताओ। तुम्हीं पर अपना अधिकार भी आजमा सकता हूँ। विश्वास करो मुझ पर सुधा, जीवन में अलगाव, दूरी, दुख और पीड़ा आदमी को महान् बना सकती है। भावुकता और सुख हमें ऊँचे नहीं उठाते। बताओ सुधा, तुम्हें क्या पसन्द है ? मैं ऊँचा उठूँ तुम्हारे विश्वास के सहारे, तुम ऊँची उठो मेरे विश्वास के सहारे, इससे अच्छा और क्या है, सुधा ! चाहो तो मेरे जीवन को एक पवित्र साधन बना दो, चाहो तो एक छिछली अनुभूति।"

सुधा ने एक गहरी साँस ली, क्षण-भर घड़ी की ओर देखा और बोली—"इतनी जल्दी क्या है अभी चन्दर ? तुम जो कहोगे मैं कर लूँगी !" और फिर वह सिसकने लगी—"लेकिन इतनी जल्दी क्या है ? अभी मुझे पढ़ लेने दो !"

"नहीं इतना अच्छा लड़का फिर मिलेगा नहीं। और इस लड़के के साथ तुम वहाँ पढ़ भी सकती हो। मैं जानता हूँ उसे। वह देवताओं-सा निश्छल है। बोलो, मैं पापा से कह दूँ कि तुम्हें पसन्द है ?"

सुधा कुछ नहीं बोली।

"मौन का मतलब हाँ है न ?" चन्दर ने पूछा।

सुधा ने कुछ नहीं कहा। झुककर चन्दर के पैरों को अपने होंठों से छू लिया और पलकों से दो आँसू चू पड़े। चन्दर ने सुधा को उठा लिया और उसके माथे पर हाथ रखकर कहा—"ईश्वर तुम्हारी आत्मा को सदा ऊँचा बनायेगा, सुधा !" उसने एक गहरी साँस लेकर कहा—"मुझे तुम पर गर्व है, " और फोटो उठाकर बाहर चलने लगा।

"कहाँ जा रहे हो ! जाओ मत !" सुधा ने उसका कुरता पकड़कर बड़ी आजिजी से कहा—"मेरे पास रहो, तबीयत घबराती है ?"

चन्दर पलँग पर बैठ गया। सुधा तकिये पर सिर रखकर लेट गयी और फटी-फटी पथरायी आँखों से जाने क्या देखने लगी। चन्दर भी चुप था, बिलकुल खामोश। कमरे में सिर्फ घड़ी चल रही थी, टिक··· टिक···

थोड़ी देर बाद सुधा ने चन्दर के पैरों को अपने तकिये के पास खींच लिया और उसके तलवों पर होंठ रखकर उसमें मुँह छिपाकर चुपचाप लेटी रही। बिनती आयी । सुधा हिली भी नहीं ! चन्दर ने देखा वह सो गयी थी। बिनती ने फोटो उठाकर इशारे से पूछा—"मंजूर ?" "हाँ।" बिनती ने बजाय खुश होने के चन्दर की ओर देखकर सिर झुका लिया और चली गयी।

सुधा सो रही थी और चन्दर के तलवों में उसकी नरम क्वाँरी साँसें गूँज रही थीं। चन्दर बैठा रहा चुपचाप। उसकी हिम्मत न पड़ी कि वह हिले और सुधा की नींद तोड़ दे। थोड़ी देर बाद सुधा ने करवट बदली तो वह उठकर आँगन के सोफे पर जाकर लेट रहा और जाने क्या सोचता रहा।

जब उठा तो देखा धूप ढल गयी है और सुधा उसके सिरहाने बैठी उसे पंखा झल रही है। उसने सुधा की ओर एक अपराधी जैसी कातर निगाहों से देखा और सुधा ने बहुत दर्द से आँखें फेर लीं और ऊँचाइयों पर आखिरी साँसें लेती हुई मरणासन्न धूप की ओर देखने लगी।

चन्दर उठा और सोचने लगा तो सुधा बोली—"कल आओगे कि नहीं ?"

"क्यों नहीं आऊँगा ?" चन्दर बोला।

"मैंने सोचा शायद अभी से दूर होना चाहते हो।" एक गहरी साँस लेकर सुधा बोली और पंखे की ओट में आँसू पोंछ लिये।

चन्दर दूसरे दिन सुबह नहीं गया। उसकी थीसिस का बहुत-सा भाग टाइप होकर आ गया था और उसे बैठा वह सुधार रहा था। लेकिन साथ ही पता नहीं क्यों उसका साहस नहीं हो रहा था वहाँ जाने का। लेकिन मन में एक चिन्ता थी सुधा की। वह कल से बिलकुल मुरझा गयी थी। चन्दर को अपने ऊपर कभी-कभी क्रोध आता था लेकिन वह जानता था कि अपने हाथ से अपनी खुशी को कब्र में गाड़ रहा है, क्योंकि वह जानता था कि यह तकलीफ का ही रास्ता ठीक रास्ता है। वह अपनी जिन्दगी में सस्तेपन के खिलाफ था। लेकिन उसके लिए सुधा की पलक का एक आँसू भी देवता की तरह था और सुधा के फूलों-जैसे चेहरे पर उदासी की एक रेखा भी उसे पागल बना देती थी। सुबह पहले तो वह नहा गया, बाद में स्वयं उसे पछतावा होने लगा और वह अधीरता से पाँच बजने का इन्तजार करने लगा।

पाँच बजे, और वह साइकिल लेकर पहुँचा। देखा, सुधा और बिनती दोनों नहीं हैं। अकेले डॉक्टर शुक्ला अपने कमरे में बैठे हैं। चन्दर गया। "आओ, सुधा ने तुमसे कह दिया, उसे पसन्द है ?" डॉक्टर शुक्ला ने पूछा।

"हाँ, उसे कोई एतराज नहीं।" चन्दर ने कहा।

"मैं पहले से जानता था। सुधा मेरी इतनी अच्छी है, इतनी सुशील है कि वह मेरी इच्छा का उल्लंघन तो कर ही नहीं सकती। लेकिन चन्दर, कल से उसने खाना-पीना छोड़ दिया है। बताओ, इससे क्या फायदा ? मेरे बस में क्या है ? मैं उसे हमेशा तो रख नहीं सकता। लेकिन, लेकिन आज सुबह खाते वक्त वह बैठी भी नहीं

मेरे पास, बताओ...” उनका गला भर आया—“बताओ, मेरा क्या कसूर है ?”

चन्दर चुप था।

“कहाँ है सुधा ?” चन्दर ने पूछा।

“गैरेज में मोटर ठीक कर रही है। मैंने इतना मना किया कि धूप में तप जाओगी, लू लग जायेगी—लेकिन मानी ही नहीं ! बताओ, इस झल्लाहट से मुझे कैसा लगता है ?” वृद्ध पिता के कातर स्वर में डॉक्टर ने कहा—“जाओ चन्दर, तुम्हीं समझाओ ! मैं क्या कहूँ ?”

चन्दर उठकर गया। मोटर गैरेज में काफी गरमी थी, लेकिन बिनती वहीं एक चटाई बिछाये पड़ी सो रही थी और सुधा इंजन का कवर उठाये मोटर साफ करने में लगी हुई थी। बिनती बेहोश सो रही थी। तकिया चटाई से हटकर जमीन पर चला गया था और चोटी फर्श पर सोयी हुई नागिन की तरह पड़ी थी। बिनती का एक हाथ छाती पर था और एक हाथ जमीन पर। आँचल, आँचल न रहकर चादर बन गया था। चन्दर के जाते ही सुधा ने मुँह फेरकर देखा—“चन्दर, आओ।” क्षीण मुसकराहट उसके होंठों पर दौड़ गयी। लेकिन इस मुसकराहट में उल्लास लुट चुका था, रेखाएँ बाकी थीं। सहसा उसने मुड़कर देखा—“बिनती ! अरे, कैसे घोड़ा बेचकर सो रही है ! उठ ! चन्दर आये हैं !” बिनती ने आँखें खोलीं, चन्दर की ओर देखा, लेटे-ही-लेटे नमस्ते किया और आँचल सँभालकर फिर करवट बदलकर सो गयी।

“बहुत सोती है कम्बख्त !” सुधा बोली—“इतना कहा इससे कमरे में जाकर पंखे में सो ! लेकिन नहीं, जहाँ दीदी रहेगी, वहीं यह भी रहेगी। मैं गैरेज में हूँ तो यह कैसे कमरे में रहे। वहीं मरेगी जहाँ मैं मरूँगी।”

“तो तुम्हीं क्यों गैरेज में थीं ! ऐसी क्या जरूरत थी अभी ठीक करने की !” चन्दर ने कहा, लेकिन कोशिश करने पर भी सुधा को आज डाँट नहीं पा रहा था। पता नहीं कहाँ पर क्या टूट गया था।

“नहीं चन्दर, तबीयत ही नहीं लग रही थी। क्या करती ! क्रोशिया उठाया, वह भी रख दिया। कविता उठायी, वह भी रख दी। कविता वगैरह में तबीयत नहीं लगी। मन में आया, कोई कठोर काम हो, कोई नीरस काम हो लोहे-लक्कड़, पीतल-फौलाद का, तो मन लग जाये। तो चली आयी मोटर ठीक करने।”

“क्यों, कविता में भी तबीयत नहीं लगी ? ताज्जुब है गेसू के साथ बैठकर तुम तो कविता में घन्टों गुजार देती थीं !” चन्दर बोला।

“उन दिनों शायद किसी को प्यार करती रही होऊँ तभी कविता में मन लगता था !” सुधा उस दिन की पुरानी बात याद करके बहुत उदास हँसी हँसी—“अब प्यार नहीं करती होऊँगी, अब तबीयत नहीं लगती। बड़ी फीकी, बड़ी बेजार, बड़ी बनावटी लगती हैं ये कविताएँ, मन के दर्द के आगे सभी फीकी हैं।” और फिर वह उन्हीं पुरजों में डूब गयी। चन्दर भी चुपचाप मोटर की खिड़की से टिककर खड़ा हो गया। और चुपचाप कुछ सोचने लगा।

सुधा ने बिना सिर उठाये, झुके-ही-झुके, एक हाथ से एक तार लपेटते हुए कहा–

"चन्दर, तुम्हारे मित्र का परिवार आ रहा है, इसी मंगल को। तैयारी करो जल्दी।"

"कौन परिवार, सुधा ?"

"हमारे जेठ और सास आ रही हैं, इसी बैसाखी को हमें देखने। उन्होंने तिथि बदल दी है। तो अब छह ही दिन रह गये हैं।"

चन्दर कुछ नहीं बोला। थोड़ी देर बाद सुधा फिर बोली–

"अगर उचित समझो तो कुछ पाउडर-क्रीम ले आना, लगाकर जरा गोरे हो जायें तो शायद पसन्द आ जायें ! क्यों, ठीक है न !" सुधा ने बड़ी विचित्र-सी हँसी हँस और सिर उठाकर चन्दर की ओर देखा। चन्दर चुप था लेकिन उसकी आँखों में अजीब-सी पीड़ा थी और उसके माथे पर बहुत ही करुण छाँह।

सुधा ने कवर गिरा दिया और चन्दर के पास जाकर बोली–"क्यों चन्दर बुरा मान गये हमारी बात का ? क्या करें चन्दर, कल से हम माजक करना भी भूल गये। मजाक करते हैं तो व्यंगय बन जाता है। लेकिन हम तुमको कुछ कह नहीं रहे थे, चन्दर ! उदास न होओ।" बड़े ही दुलार से सुधा बोली–"अच्छा, हम कुछ नहीं कहेंगे।" और उसने अपना आँचल सँभालने के लिए हाथ उठाया। हाथ में कालौंच लग गयी थी। चन्दर समझा मेरे कन्धे पर हाथ रख रही है सुधा। वह अलग हटा तो सुधा अपने हाथ देखकर बोली–"घबराओ न देवता, तुम्हारी उज्ज्वल साधना में कालिख नहीं लगाऊँगी। अपने आँचल में पोंछ लूँगी।" और सचमुच आँचल में हाथ पोंछकर बोली–"चलो, अन्दर चलें, उठ बिनती ! बिलैया कहीं की !"

चन्दर को सोफे पर बिठाकर उसी की बगल में सुधा बैठ गयी और अँगुलियाँ तोड़ते हुए कहा–"चन्दर, सिर में बहुत दर्द हो रहा है मेरे।"

"सिर में दर्द नहीं होगा तो क्या ? इतनी तपिश में मोटर बना रही थीं ! पापा कितने दुखी हो रहे थे आज ? तुम्हें इस तरह करना चाहिए ? फिर फायदा क्या हुआ ? न ऐसे दुखी किया, वैसे दुखी कर लिया। बात तो वही रही न ? तारीफ तो तब थी कि तुम अपनी दुनिया में अपने हाथ से आग लगा देती और चेहरे पर शिकन न आती। अभी तक दुनिया की सभी ऊँचाई समेटकर भी बाहर से वही बचपन कायम रखा था तुमने, अब दुनिया का सारा सुख अपने हाथ से लुटाने पर भी वही बचपन वही उल्लास क्यों नहीं कायम रखती !"

"बचपन !" सुधा हँसी–"बचपन अब खत्म हो गया, चन्दर ! अब मैं बड़ी हो गयी।"

"बड़ी हो गयी ! कब से ?"

"कल दोपहर से, चन्दर !"

चन्दर चुप। थोड़ी देर बाद फिर स्वयं सुधा ही बोली–"नहीं चन्दर, दो-तीन

दिन में ठीक हो जाऊँगी ! तुम घबराओ मत। मैं मृत्यु शय्या पर भी होऊँगी तो तुम्हारे आदेश पर हँस सकती हूँ।" और फिर सुधा गुमसुम बैठ गयी। चन्दर चुपचाप सोचता रहा और बोला—"सुधी ! मेरा तुम्हें कुछ भी ध्यान नहीं ?"

"और किसका है, चन्दर ! तुम्हारा ध्यान न होता तो देखती मुझे कौन झुका सकता था। आज से सालों पहले जब मैं पापा के पास आयी थी तो मैंने कभी न सोचा था कि कोई भी होगा जिसके सामने मैं इतना झुक जाऊँगी।...अच्छा चन्दर, मन बहुत उचट रहा है ! चलो, कहीं घूम आयें ! चलोगे ?"

"चलो !" चन्दर ने कहा।

"जायें बिनती को जगा लायें। वह कमबख्त अभी पड़ी सो रही है।" सुधा उठकर चली गयी । थोड़ी देर में बिनती आँख मलते बगल में चटाई दाबे आयी और फिर बरामदे में बैठकर ऊँघने लगी। पीछे-पीछे सुधा आयी और चोटी खींचकर बोली—"चल तैयार हो ! चलेंगे घूमने।"

थोड़ी देर में तैयार हो गये। सुधा ने जाकर मोटर निकाली और बोली चन्दर से—"तुम चलाओगे या हम ? आज हमीं चलायें। चलो, किसी पेड़ से लड़ा दें मोटर आज !"

"अरे बाप रे।" पीछे बिनती चिल्लायी—"तब हम नहीं जायेंगे।"

सुधा और चन्दर दोनों ने मुड़कर उसे देखा और उसकी घबराहट देखकर दंग रह गये।

"नहीं। मरेगी नहीं तू !" सुधा ने कहा। और आगे बैठ गयी।

"बिनती, तू पीछे बैठेगी ?" सुधा ने पूछा।

"न भइया, मोटर चलेगी तो मैं गिर जाऊँगी।"

"अरे कोई मोटर के पीछे बैठने के लिए थोड़ी कह रही हूँ। पीछे की सीट पर बैठेगी ?" सुधा ने पूछा।

"ओ ! मैं समझी तुम कह रही हो पीछे बैठने के लिए जैसी बग्घी में साईस बैठते हैं ! हम तुम्हारे पास बैठेंगे।" बिनती ने मचलकर कहा।

"अब तेरा बचपन इठला रहा है, बिल्ली कहीं की, चल आ मेरे पास !" बिनती मुसकराती हुई जाकर सुधा के बगल में बैठ गयी। सुधा ने उसे दुलार से पास खींच लिया। चन्दर पीछे बैठा तो सुधा बोली—"अगर कुछ हर्ज न समझो तो तुम भी आगे आ जाओ या दूरी रखनी हो तो पीछे ही बैठो।"

चन्दर आगे बैठ गया। बीच में बिनती, इधर चन्दर उधर सुधा।

मोटर चली तो बिनती चीखी—"अरे मेरे मास्टर साहब !"

चन्दर ने देखा, बिसरिया चला जा रहा था—"आज नहीं पढ़ेंगे..." चन्दर ने चिल्लाकर कहा। सुधा ने मोटर रोकी नहीं।

चन्दर को बेहद अचरज हुआ जब उसने देखा कि मोटर पम्मी के बँगले पर रुकी। "अरे यहाँ क्यों ?" चन्दर ने पूछा।

"यों ही।" सुधा ने कहा। "आज मन हुआ कि मिस पम्मी से अँगरेजी कविता सुनें।"

"क्यों, अभी तो तुम कह रही थीं कि कविता पढ़ने में आज तुम्हारा मन ही नहीं लग रहा है।"

"कुछ कहो मत चन्दर, आज मुझे जो मन में आये, कर लेने दो। मेरा सिर बेहद दर्द कर रहा है और मैं कुछ समझ नहीं पाती, क्या करूँ। चन्दर, तुमने अच्छा नहीं किया ?"

चन्दर कुछ नहीं बोला । चुपचाप आगे चल दिया। सुधा के पीछे-पीछे कुछ संकोच करती हुई-सी बिनती आ रही थी।

पम्मी बैठी कुछ लिख रही थी। उसने उठकर सबों का स्वागत किया। वह कोच पर बैठ गयी। दूसरी पर सुधा, चन्दर और बिनती। सुधा ने बिनती का परिचय पम्मी से कराया और पम्मी ने बिनती से हाथ मिलाया तो बिनती जाने क्यों चन्दर की ओर देखकर हँस पड़ी। शायद उस दिन की घटना की याद में।

सहसा सुधा को जाने क्या ख्याल आ गया, बिनती की शरारत-भरी हँसी देखकर कि उसने फौरन कहा चन्दर से—"चन्दर, तुम पम्मी के पास बैठो, दो मित्रों को साथ बैठना चाहिए।"

"हाँ, और खासतौर से जब वह कभी-कभी मिलते हों"—बिनती ने मुसकराते हुए जोड़ दिया। पम्मी ने मजाक समझ लिया और बिना शरमाये बोली—

"हम लोगों को मध्यस्थ की जरूरत नहीं, धन्यवाद ! आओ चन्दर, यहाँ आओ।" पम्मी ने चन्दर को बुलाया। चन्दर उठकर पम्मी के पास बैठ गया। थोड़ी देर तक बातें होती रहीं। मालूम हुआ बर्टी अपने एक दोस्त के साथ तराई के पास शिकार खेलने गया है। आजकल वह दिल की शक्ल का एक पाननुमा दफ्ती का टुकड़ा काटकर उसमें गोली मारा करता है और जब किसी चिड़िया वगैरह को मारता है तो शिकार को उठाकर देखता है कि गोली हृदय में लगी है या नहीं। स्वास्थ्य उसका सुधर रहा है। सुधा कोच पर सिर टेके उदास बैठी थी। सहसा पम्मी ने बिनती से कहा—"आपको पहली दफे देखा मैंने। आप बातें क्यों नहीं करतीं ?"

बिनती ने झेंपकर मुँह झुका लिया। बड़ी विचित्र लड़की थी। हमेशा चुप रहती थी और कभी-कभी बोलने की लहर आती तो गुटरगूँ करके घर गुंजा देती थी और जिन दिनों चुप रहती थी उन दिनों ज्यादातर आँख की निगाह, कपोलों की आशनाई या अधरों की मुसकान के द्वारा बातें करती थी। पम्मी बोली—"आपको फूलों से शौक है ?"

"हाँ, हाँ" बिनती सिर हिलाकर बोली।

"चन्दर, इन्हें जाकर गुलाब दिखा लाओ। इधर फिर खूब खिले हैं !" बिनती ने सुधा से कहा—"चलो दीदी।"

फूलों के बीच में पहुँचकर, बिनती ने चन्दर से कहा—"सुनिए, दीदी, को तो जाने क्या होता जा रहा है। बताइए, ऐसे क्या होगा ?"

"मैं खुद परेशान हूँ, विनती ! लेकिन पता नहीं कहाँ मन में कौन-सा विश्वास है जो कहता है कि नहीं, सुधा अपने को सँभालना जानती है, अपने मन को सन्तुलित करना जानती है और सुधा सचमुच ही त्याग में ज्यादा गौरवमयी हो सकती है।" इसके बाद चन्दर ने बात टाल दी। वह विनती से ज्यादा बात करना नहीं चाहता था, सुधा के बारे में।

विनती ने चन्दर को मौन देखा तो बोली—"एक बात कहें आपसे ? मानिएगा !"

"क्या ?"

"अगर हमसे कभी कोई अनधिकार चेष्टा हो जाये तो क्षमा कर दीजिएगा, लेकिन आप और दीदी दोनों मुझे इतना चाहते हैं कि हम समझ नहीं पाते कि व्यवहारों को कहाँ सीमित रखूँ !" विनती ने सिर झुकाये एक फूल को नोचते हुए कहा।

चन्दर ने उसकी ओर देखा, क्षण-भर चुप रहा, फिर बोला —"नहीं विनती, जब सुधा तुम्हें इतना चाहती है तो तुम हमेशा मुझ पर उतना ही अधिकार समझना जितना सुधा पर।"

उधर पम्मी ने चन्दर के जाते ही सुधा से कहा—"क्या आपकी तबीयत खराब है ?"

"नहीं तो।"

"आज आप बहुत पीली नजर आती हैं !" पम्मी ने पूछा।

"हाँ, कुछ मन नहीं लग रहा था तो मैं आपके पास चली आयी कि आपसे कुछ कविताएँ सुनूँ, अँगरेजी की। दोपहर को मैंने कविता पढ़ने की कोशिश की तो तबीयत नहीं लगी और शाम को लगा कि अगर कविता नहीं सुनूँगी तो सिर फट जायेगा।" सुधा बोली।

"आपके मन में कुछ संघर्ष मालूम पड़ता है, या शायद ...एक बात पूछूँ आपसे ?"

"क्या, पूछिए ?"

"आप बुरा तो नहीं मानेंगी ?"

"नहीं, बुरा क्यों मानूँगी ?"

"आप कपूर को प्यार तो नहीं करतीं ? उससे विवाह तो नहीं करना चाहतीं ?"

"छिः, मिस पम्मी, आप कैसी बातें कर रही हैं। उसका मेरे जीवन में कोई ऐसा स्थान नहीं। छिः, आपकी बात सुनकर शरीर में काँटे उठ आते हैं। मैं और चन्दर से विवाह करूँगी ! इतनी घिनौनी बात तो मैंने कभी नहीं सुनी !"

"माफ कीजिएगा, मैंने यों ही पूछा था। क्या चन्दर किसी को प्यार करता है ?"

"नहीं, बिलकुल नहीं !" सुधा ने उतने ही विश्वास से कहा जितने विश्वास से उसने अपने बारे में कहा था।

इतने में चन्दर और बिनती आ गये। सुधा बोली अधीरता से—"मेरा एक-एक क्षण कटना मुश्किल हो रहा है, आप शुरू कीजिए कुछ गाना !"

"कपूर, क्या सुनोगे ?" पम्मी ने कहा।

"अपने मन से सुनाओ ! चलो, सुधा ने कहा तो कविता सुनने को मिली !"

पम्मी ने आलमारी से एक किताब उठायी और एक कविता गाना शुरू की—अपनी हेयर पिन निकालकर मेज पर रख दी और उसके बाल मचलने लगे। चन्दर के कन्धे से वह टिककर बैठ गयी और किताब चन्दर की गोद में रख दी। बिनती मुसकरायी तो सुधा ने आँख के इशारे से मना कर दिया। पम्मी ने गाना शुरू किया, लेडी नार्टन का एक गीत—

"मैं तुम्हें प्यार नहीं करती हूँ, न ! मैं तुम्हें प्यार नहीं करती हूँ।
फिर भी मैं उदास रहती हूँ जब तुम पास नहीं होते हो !
और मैं उस चमकदार नीले आकाश से भी ईर्ष्या करती हूँ।
जिसके नीचे तुम खड़े होगे और जिसके सितारे तुम्हें देख सकते हैं..."

चन्दर ने पम्मी की ओर देखा। सुधा ने अपने ही वक्ष में अपना सिर छुपा लिया। पम्मी ने एक पद समाप्त कर एक गहरी साँस ली और फिर शुरू किया—

"मैं तुम्हें प्यार नहीं करती हूँ— फिर भी तुम्हारी बोलती हुई आँखें;
जिनकी नीलिमा में गहराई, चमक और अभिव्यक्ति है—
मेरी निर्निमेष पलकों और जागते अर्धरात्रि के आकाश में नाच जाती हैं !
और किसी की आँखों के बारे में ऐसा नहीं होता..."

सुधा ने बिनती को अपने पास खींच लिया और उसके कन्धे पर सिर टेककर बैठ गयी ! पम्मी गाती गयी—

"न मुझे मालूम है कि मैं तुम्हें प्यार नहीं करती हूँ, लेकिन फिर भी,
कोई शायद मेरे साफ दिल पर विश्वास नहीं करेगा।
और अकसर मैंने देखा है, कि लोग मुझे देखकर मुसकरा देते हैं।
क्योंकि मैं उधर एकटक देखती हूँ, जिधर से तुम आया करते हो।"

गीत का स्वर बड़े स्वाभाविक ढंग से उठा, लहराने लगा, काँप उठा और फिर धीरे-धीरे एक करुण सिसकती हुई लय में डूब गया। गीत खत्म हुआ तो सुधा का सिर बिनती के कन्धे पर था और चन्दर का हाथ पम्मी के कन्धे पर। चन्दर थोड़ी देर सुधा की ओर देखता रहा फिर पम्मी की एक हलकी सुनहरी लट से खेलते हुए बोला—"पम्मी, तुम बहुत अच्छा गाती हो !"

"अच्छा ? आश्चर्यजनक। कहो चन्दर, पम्मी इतनी अच्छी है यह तुमने कभी नहीं बताया था, हमें फिर कभी सुनाइएगा ?"

"हाँ-हाँ मिस शुक्ला ! काश कि बजाय लेडी नार्टन के यह गीत आपने लिखा होता।"

सुधा घबरा गयी, "चलो। चन्दर चलें अब ! चलो।" उसने चन्दर का हाथ

पकड़कर खींच लिया—"मिस पम्मी, अब फिर कभी आयेंगे। आज मेरा मन ठीक नहीं है।"

चन्दर ड्राइव करने लगा। बिनती बोली—"हमें आगे हवा लगती है हम पीछे बैठेंगे।"

कार चली तो सुधा बोली—"अब मन कुछ शान्त है, चन्दर !" इसके पहले तो मन में कैसे तूफान आपस में लड़ रहे थे, कुछ समझ में नहीं आता । अब तूफान बीत गये। तूफान के बाद की खामोशी उदासी है।" सुधा ने गहरी साँस लेकर कहा। "आज जाने क्यों बदन टूट रहा है।" बैठे ही बैठे बदन उमेठते हुए कहा।

दूसरे दिन चन्दर गया तो सुधा को बुखार आ गया था। अंग-अंग जैसे टूट रहा हो और आँखों में ऐसी तीखी जलन कि मानों किसी ने अगारे भर दिये हों। रात-भर वह बेचैन रही, आधी पागल-सी रही। उसने तकिया, चादर, पानी का गिलास सभी उठाकर फेंक दिया, बिनती को कभी बुलाकर पास बिठा लेती, कभी उसे दूर ढकेल देती। डॉक्टर साहब परेशान, रात-भर सुधा के पास बैठे, कभी उसका माथा, कभी उसके तलवों में बरफ मलते रहे। डॉक्टर घोष ने बताया यह कल की गरमी का असर है। बिनती ने एक बार पूछा—"चन्दर को बुलवा दें।" तो सुधा ने कहा—"नहीं, मैं मर जाऊँ तो ! मेरे जीते जी नहीं !" बिनती ने ड्राइवर से कहा —"चन्दर को बुला लाओ।" तो सुधा ने बिगड़कर कहा, "क्यों तुम सब लोग मेरी जान लेने पर तुले हो ?" और उसके बाद कमजोरी से हाँफने लगी। ड्राइवर चन्दर को बुलाने नहीं गया।

जब चन्दर पहुँचा तो डॉक्टर साहब रात-भर के जागरण के बाद उठकर नहाने-धोने जा रहे थे। "पता नहीं सुधा को क्या हो गया कल से ! इस वक्त तो कुछ शान्त है पर रात-भर बुखार और बेहद बेचैनी रही है। और एक ही दिन में इतनी चिड़चिड़ी हो गयी है कि बस ?" डॉक्टर साहब ने चन्दर को देखते ही कहा।

चन्दर जब कमरे में पहुँचा तो देखा कि सुधा आँख बन्द किये हुए लेटी है और बिनती उसके सिर पर आइस-बैग रखे हुए है। सुधा का चेहरा पीला पड़ गया है और मुँह पर जाने कितनी ही रेखाओं की उलझन है, आँखें बन्द हैं और पलकों के नीचे से अंगारों की आँच छनकर आ रही है। चन्दर की आहट पाते ही सुधा ने आँखें खोलीं। अजब-सी आग्नेय निगाहों से चन्दर की ओर देखा और बिनती से बोली—"बिनती, इनसे कह दो जायें यहाँ से।"

बिनती स्तब्ध, चन्दर नहीं समझा, पास आकर बैठ गया, बोला—"सुधा, क्यों पड़ गयी न, मैंने कहा था कि गैरेज में मोटर साफ मत करो। परसों इतना रोयी, सिर पटका, कल धूप खायी। आज पड़ रही ! कैसी तबीयत है ?"

सुधा उधर खिसक गयी और अपने कपड़े समेट लिये, जैसे चन्दर की छाँह से भी बचना चाहती है और तेज, कड़वी और हाँफती हुई आवाज में बोली—"बिनती, इनसे कह दो जायें यहाँ से।"

चन्दर चुप हो गया और एकटक सुधा की ओर देखने लगा और सुधा की बात

ने जैसे चन्दर का मन मरोड़ दिया। कितनी गैरियत से बात कर रही है सुधा। सुधा, जो उसके अपने व्यक्तित्व से ज्यादा अपनी थी, आज किस स्वर में बोल रही है। "सुधी, क्या हुआ तुम्हें ?" चन्दर ने बहुत आहत और बहुत दुलार-भरी आवाज में पूछा।

"मैं कहती हूँ जाओगे नहीं तुम ?" फुफकारकर सुधा बोली—"कौन हो तुम मेरी बीमारी पर सहानुभूति प्रकट करने वाले ? मेरी कुशल पूछने वाले ? मैं बीमार हूँ, मैं मर रही हूँ, तुमसे मतलब ? तुम कौन हो ? मेरे भाई हो ? मेरे पिता हो ? कल अपने मित्र के यहाँ मेरा अपमान कराने ले गये थे !" सुधा हाँफने लगी।

"अपमान ! किसने तुम्हारा अपमान किया, सुधा ? पम्मी ने तो कुछ भी नहीं कहा ? तुम पागल तो नहीं हो गयीं ?" चन्दर ने सुधा के पैरों पर हाथ रखते हुए कहा।

"पागल हो नहीं गयी तो हो जाऊँगी !" उसने पैर हटा लिये, "तुम पम्मी, गेसू, पापा, डॉक्टर सब लोग मुझे पागल कर दोगे। पापा कहते हैं ब्याह करो, पम्मी कहती है मत करो, गेसू कहती है तुम प्यार करती हो और तुम··· तुम कुछ भी नहीं कहते। तुम मुझे इस नरक में बरसों से सुलगते देख रहे हो और बजाय इसके कि तुम कुछ कहो, तुमने मुझे खुद इस भट्टी में ढकेल दिया !··चन्दर, मैं पागल हूँ, मैं क्या करूँ ?" सुधा बड़े कातर स्वर में बोली। चन्दर चुप था सिर्फ सिर झुकाये, हाथों पर माथा रखे बैठा था। सुधा थोड़ी देर हाँफती रही। फिर बोली—

"तुम्हें क्या हक था कल पम्मी के यहाँ ले जाने का ? उसने क्यों कल गीत में कहा कि मैं तुम्हें प्यार करती हूँ ?"

चन्दर ने बिनती की ओर देखा—"क्यों बिनती ? बिनती से मैं कुछ नहीं छिपाता !"

सुधा बोली—"क्यों पम्मी ने कल कहा— मैं तुम्हें प्यार नहीं करती। मेरा मन मुझे धोखा नहीं दे सकता। मैं तुमसे सिर्फ जाने क्या करती हूँ··फिर पम्मी ने कल ऐसी बात क्यों कही ? मेरे रोम-रोम में जाने कौन-सा ज्वालामुखी धधक उठता है ऐसी बातें सुनकर ? तुम क्यों पम्मी के यहाँ ले गये ?"

"तुम खुद गयी थीं, सुधा !" चन्दर बोला।

"तो तुम रोक नहीं सकते थे ! तुम कह देते मत जाओ तो मैं कभी जा सकती थी ? तुमने क्यों नहीं रोका ? तुम हाथ पकड़ लेते। तुम डाँट देते। तुमने क्यों नहीं डाँटा ? एक ही दिन में मैं तुम्हारी गैर हो गयी ? गैर हूँ तो फिर क्यों आये हो ? जाओ यहाँ से। मैं कहती हूँ; जाओ यहाँ से ?" दाँत पीसकर सुधा बोली।

"सुधा···"

"मैं तुम्हारी बोली नहीं सुनना चाहती। जाते हो कि नहीं···" और सुधा ने अपने माथे पर से उठाकर आइस-बैग फेंक दिया। बिनती चौंक उठी। चन्दर चौंक उठा। उसने मुड़कर सुधा की ओर देखा। सुधा का चेहरा डरावना लग रहा था। उसका मन

रो आया। वह उठा, क्षण-भर सुधा की ओर देखता रहा और धीरे-धीरे कमरे से बाहर चला गया।

बरामदे के सोफे पर आकर सिर झुकाकर बैठ गया और सोचने लगा—यह सुधा को क्या हो गया ? परसों शाम को वह इसी सोफे पर सोया था, सुधा बैठी पंखा झल रही थी। कल शाम को वह हँस रही थी, लगता था तूफान शान्त हो गया पर यह क्या ? अन्तर्द्वन्द्व ने यह रूप कैसे ले लिया ?

और क्यों ले लिया ? जब वह अपने मन को शान्त रख सकता है, जब वह सभी कुछ हँसते-हँसते बरदाश्त कर सकता है तो सुधा क्यों नहीं कर सकती ? उसने आज तक अपनी साँसों से सुधा का निर्माण किया है। सुधा को तिल-तिल बनाया, सजाया, सँवारा है फिर सुधा में यह कमजोरी क्यों ?

क्या उसने यह रास्ता अख्तियार करके भूल की ? क्या सुधा भी एक साधारण-सी लड़की है जिसके प्रेम और घृणा का स्तर उतना ही साधारण है ? माना उसने अपने दोनों के लिए एक ऐसा रास्ता अपनाया है जो विलक्षण है लेकिन इससे क्या ? सुधा और वह दोनों ही क्या विलक्षण नहीं हैं ? फिर सुधा क्यों बिखर रही है ? लड़कियाँ भावना की ही बनी होती हैं ? साधना उन्हें आती ही नहीं ? क्या उसने सुधा का गलत मूल्यांकन किया था ? क्या सुधा इस 'तलवार की धार' पर चलने में असमर्थ साबित होगी ? यह तो चन्दर की हार थी।

और फिर सुधा ऐसी ही रही तो चन्दर ? सुधा चन्दर की आत्मा है; इसे अब चन्दर खूब अच्छी तरह पहचान गया। तो क्या अपनी ही आत्मा को घोंट डालने की हत्या का पाप चन्दर के सिर पर है ?

तो क्या त्याग का नाम ही है ? क्या पुरुष और नारी के सम्बन्ध का एक ही रास्ता है—प्रणय, विवाह और तृप्ति ! पवित्रता, त्याग और दूरी क्या सम्बन्धों को, विश्वासों को जिन्दा नहीं रहने दे सकते ? तो फिर सुधा और पम्मी में क्या अन्तर है ? क्या सुधा के हृदय के इतने समीप रहकर, सुधा के व्यक्तित्व में घुल-मिलकर और आज सुधा को इतने अन्तर पर डालकर चन्दर पाप कर रहा है ? तो क्या फूल को तोड़कर अपने ही बटन होल में लगा लेना ही पुण्य है और दूसरा रास्ता गर्हित है ? विनाशकारी है ? क्यों उसने सुधा का व्यक्तित्व तोड़ दिया है ?

किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रखा। विचार-शृंखला टूट गयी··· बिनती थी। "क्या सोच रहे हैं आप ?" बिनती ने पूछा, बहुत स्नेह से।

"कुछ नहीं !"

"नहीं बताइएगा ? हम नहीं जान सकते ?" बिनती के स्वर में ऐसा आग्रह, ऐसा अपनापन, ऐसी निश्छलता रहती थी कि चन्दर अपने को कभी नहीं रोक पाता था। छिपा नहीं पाता था।

"कुछ नहीं, बिनती ! तुम कहती हो सुधा को इतने अन्तर पर मैंने रखा तो मैं देवता हूँ ! सुधा कहती है, मैंने अन्तर पर रखा, मैंने पाप किया ! जाने क्या किया है

मैंने ? क्या मुझे कम तकलीफ है ? मेरा जीवन आजकल किस तरह घायल हो गया है, मैं जानता हूँ। एक पल मुझे आराम नहीं मिलता। क्या उतनी सजा काफी नहीं थी जो सुधा को भी किस्मत यह दण्ड दे रही है ? मुझी को सभी बेचैनी और दुख मिल जाता। सुधा को मेरे पाप का दण्ड क्यों मिल रहा है ? बिनती, तुमसे अब कुछ नहीं छिपा। जिसको मैं अपनी साँसों में दुबकाकर इन्द्रधनुष के लोक तक ले गया, आज हवा के झोंके उसे बादलों की ऊँचाई से क्यों ढकेल देना चाहते हैं ? और मैं कुछ भी नहीं कर सकता ?" इतनी देर बाद बिनती के ममता-भरे स्पर्श में चन्दर की आँख छलछला आयी।

"छिः, आप समझदार हैं ! दीदी ठीक हो जायेंगी ! घबराने से काम नहीं चलेगा न ! आपको हमारी कसम है। उदास मत होइए। कुछ सोचिए मत। दीदी बीमार हैं, आप इस तरह से करेंगे तो कैसे काम चलेगा ! उठिए, दीदी बुला रही हैं।"

चन्दर गया। सुधा ने इशारे से पास बुलाकर बिठाल लिया। "चन्दर, हमारा दिमाग ठीक नहीं है। बैठ जाओ लेकिन कुछ बोलना मत, बैठे रहो।"

उसके बाद दिन भर अजब-सा गुजरा। जब-जब चन्दर ने उठने की कोशिश की, सुधा ने उसे खींचकर बिठा लिया। घर तो उसे जाने ही नहीं दिया। बिनती वहीं खाना ले आयी। सुधा कभी चन्दर की ओर देख लेती। फिर तकिये में मुँह गड़ा लेती। बोली एक शब्द भी नहीं, लेकिन उसकी आँखों में अजब-सी कातरता थी। पापा आये, घण्टों बैठे रहे; वह बोली ही नहीं। पापा चले गये तो उसने चन्दर का हाथ अपने हाथ में ले लिया, करवट बदली और तकिये पर अपने कपोलों से चन्दर की हथेली दबाकर लेटी रही। पलकों से कितने ही गरम-गरम आँसू छलकर गालों पर फिसलकर चन्दर की हथेली भिगोते रहे।

चन्दर चुप रहा। लेकिन सुधा के आँसू जैसे नसों के सहारे उसके हृदय में उतर गये और जब हृदय डूबने लगा तो उसकी पलकों पर उतर आये। सुधा ने देखा लेकिन कुछ भी नहीं बोली। घन्टे-भर बहुत गहरी साँस ली; बेहद उदासी से मुसकराकर कहा—"हम दोनों पागल हो गये हैं, क्यों चन्दर ? अच्छा अब शाम हो गयी। जरा लॉन पर चलें।"

सुधा चन्दर के कन्धे पर हाथ रखकर खड़ी हो गयी। बिनती ने दवा दी, थर्मामीटर से बुखार देखा। बुखार नहीं था। चन्दर ने सुधा के लिए कुरसी उठायी। सुधा ने हँसकर कहा—"चन्दर, आज बीमार हूँ तो कुरसी उठा रहे हो, मर जाऊँगी तो अरथी उठाने भी आना, वरना नरक मिलेगा ! समझे न !"

"छिः, ऐसा कुबोल न बोला करो, दीदी ?"

सुधा लॉन में कुरसी पर बैठ गयी। बगल में नीचे चन्दर बैठ गया। सुधा ने चन्दर का सिर अपनी कुरसी से टिका लिया और अपनी उँगलियों से चन्दर के सूखे होंठों को छूते हुए कहा—"चन्दर, आज मैंने तुम्हें बहुत दुःखी किया, क्यों ? लेकिन जाने क्यों, दुःखी न करती तो आज मुझे वह ताकत न मिलती जो मिल गयी है।"

और सहसा चन्दर के सिर को अपनी गोद में खींचती हुई-सी सुधा ने कहा–"आराध्य मेरे ! आज तुम्हें बहुत-सी बातें बताऊँगी। बहुत-सी।"

विनती उठकर जाने लगी तो सुधा ने कहा–"कहाँ चली ? बैठ तू यहाँ। तू गवाह रहेगी ताकि बाद में चन्दर यह न कहे कि सुधा कमजोर निकल गयी।" विनती बैठ गयी। सुधा ने क्षण-भर आँखें बन्द कर लीं और अपनी वेणी पीठ पर से खींचकर गोद में ढाल ली और बोली –"चन्दर, आज कितने ही साल हुए, जब से मैंने तुम्हें जाना है, तब से अच्छे-बुरे सभी कामों का फैसला तुम्हीं करते रहे हो। आज भी तुम्हीं बताओ चन्दर कि अगर मैं अपने को बहुत सँभालने की कोशिश करती हूँ और नहीं सँभाल पाती हूँ, तो यह कोई पाप तो नहीं ? तुम जानते हो चन्दर, तुम जितने मजबूत हो उस पर मुझे घमण्ड है कि तुम कितनी ऊँचाई पर हो, मैं भी उतना ही मजबूत बनने की कोशिश करती हूँ, उतने ही ऊँचे उठने की कोशिश करती हूँ, अगर कभी-कभी फिसल जाती हूँ तो यह अपराध तो नहीं ?"

"नहीं।" चन्दर बोला।

"और अगर अपने उस अन्तर्द्वन्द्व के क्षणों में तुम पर कठोर हो जाती हूँ तो, तुम सह लेते हो। मैं जानती हूँ, तुम मुझे जितना स्नेह करते हो, उसमें मेरी सभी दुर्बलताएँ धुल जाती हैं। लेकिन आज मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ चन्दर कि मुझे खुद अपनी दुर्बलताओं पर शरम आती है और आगे से मैं वैसी ही बनूँगी जैसा तुमने सोचा है, चन्दर !"

चन्दर कुछ नहीं बोला सिर्फ घास पर रखे हुए सुधा के पाँवों पर अपनी काँपती उँगलियाँ रख दीं। सुधा कहती गयी–"चन्दर, आज से कुछ ही महीने पहले जब गेसू ने मुझसे पूछा था कि तुम्हारा दिल कहीं झुका था तो मैंने इनकार कर दिया था, कल पम्मी ने पूछा–तुम चन्दर को प्यार करती हो तो मैंने इनकार कर दिया था, मैं आज भी इनकार करती हूँ कि मैंने तुम्हें प्यार किया है, या तुमने मुझे प्यार किया है। मैं भी समझती हूँ और तुम भी समझते हो लेकिन यह न तुमसे छिपा है न मुझसे कि तुमने जो कुछ दिया है वह प्यार से कहीं ज्यादा ऊँचा और प्यार से कहीं ज्यादा महान है।...मैं ब्याह नहीं करना चाहती थी, मैंने परसों इनकार कर दिया था, इतनी रोयी थी, खीझी थी, बाद में मैंने सोचा कि यह गलत है, यह स्वार्थ है। जब पापा मुझे इतना प्यार करते हैं तो मुझे उनका दिल नहीं दुखाना चाहिए। पर मन के अन्दर की जो खीज थी, जो कुढ़न थी, वह कहीं तो उतरती ही। वह मैं अपने पर उतार देना चाहती थी, मन में आता था अपने को कितना कष्ट दे डालूँ इसीलिए अपने गैरेज में जाकर मोटर सँभाल रही थी, लेकिन वहाँ भी असफल रही और अन्त में वह खीज अपने मन पर भी न उतारकर उस पर उतारी जिसको मैंने अपने से भी बढ़कर माना है। वह खीझ उतरी तुम पर !"

चन्दर ने सुधा की ओर देखा। सुधा मुसकराकर बोली–"न, ऐसे मत देखो। यह मत समझो कि अपने आज के व्यवहार के लिए मैं तुमसे क्षमा मागूँगी। मैं जानती

हूँ, माँगने से तुम दुखी भी होगे और डाँटने भी लगोगे। खैर, आज से मैं अपना रास्ता पहचान गयी हूँ। मैं जानती हूँ कि मुझे कितना सँभलकर चलना है। तुम्हारे सपने को पूरा करने के लिए मुझे अपने को क्या बनाना होगा, यह भी मैं समझ गयी हूँ। मैं खुश रहूँगी, सबल रहूँगी और सशक्त रहूँगी और जो रास्ता तुम दिखलाओगे उधर ही चलूँगी। लेकिन एक बात बताओ चन्दर, मैंने ब्याह कर लिया और वहाँ सुखी न रह पायी, और उन्हें वह भावना, उपासना न दे पायी तब फिर तुम्हें दुख हुआ, तब ?"

चन्दर ने घास का एक तिनका तोड़कर कहा—"देखो सुधा, एक बात बताओ। अगर मैं तुम्हें कुछ कह देता हूँ और उसे तुम मुझी को वापस दे देती हो तो कोई बहुत ऊँची बात नहीं हुई। अगर मैंने तुम्हें सचमुच ही स्नेह या पवित्रता जो कुछ भी दिया है, उसे तुम उन सभी के जीवन में ही क्यों नहीं प्रतिफलित कर सकती जो तुम्हारे जीवन में आते हैं चाहे वह पति ही क्यों न हों। तुम्हारे मन के अक्षय स्नेह-भण्डार के उपयोग में इतनी कृपणता क्यों ? मेरा सपना कुछ और ही है, सुधा ! आज तक तुम्हारी साँसों के अमृत ने ही मुझे यह सामर्थ्य दी कि मैं अपने जीवन में कुछ कर सकूँ और मैं भी यही चाहता हूँ कि मैं तुम्हें वह स्नेह दूँ जो कभी घटे ही न। जितना बाँटो उतना बढ़े और इतना मुझे विश्वास है कि तुम यदि स्नेह की एक बूँद दो तो मनुष्य क्या से क्या हो सकता है। अगर वही स्नेह रहेगा तो तुम्हारे पति को कभी कोई असन्तोष क्या हो सकता है और फिर कैलाश तो इतना अच्छा लड़का है, और उसका जीवन इतना ऊँचा कि तुम उसकी जिन्दगी में ऐसी लगोगी, जैसे अँगूठी में हीरा। और जहाँ तक तुम्हारा अपना सवाल है, मैं तुमसे भीख माँगता हूँ कि अपना सब कुछ खोकर भी अगर मुझे कोई सन्तोष रहेगा तो यह देखकर कि मेरी सुधा अपने जीवन में कितनी ऊँची है। मैं तुमसे इस विश्वास की भीख माँगता हूँ।"

"छिः, मुझसे बड़े हो, चन्दर ! ऐसी बात नहीं कहते ! लेकिन एक बात है। मैं जानती हूँ कि मैं चन्द्रमा हूँ, सूर्य की किरणों से ही जिनमें चमक आती है। तुमने जैसे आज तक मुझे सँवारा है, आगे भी तुम अपनी रोशनी अगर मेरी आत्मा में भरते गये तो मैं अपना भविष्य भी नहीं पहचान सकूँगी। समझे !"

"समझा, पगली कहीं की !" थोड़ी देर चन्दर चुप बैठा रहा फिर सुधा के पाँवों से सिर टिकाकर बोला—"परेशान कर डाला, तीन रोज से। सूरत तो देखो कैसी निकल आयी है और बैसाखी को कुल चार रोज रह गये। अब मत दिमाग बिगाड़ना ! वे लोग आते ही होंगे !"

"बिनती ! दवा ले आ···" बिनती उठकर गयी तो सुधा बोली—"हटो, अब हम घास पर बैठेंगे !" और घास पर बैठकर वह बोली—"लेकिन एक बात है, आज से लेकर ब्याह तक तुम हर अवसर पर हमारे सामने रहना, जो कहोगे वह हम करते जायेंगे।"

"हाँ, यह हम जानते हैं।" चन्दर ने कहा और कुछ दूर हटकर घास पर लेट गया और आकाश की ओर देखने लगा। शाम हो गयी थी और दिन-भर की उड़ी हुई

धूल अब बहुत कुछ बैठ गयी थी। आकाश के बादल ठहरे हुए थे और उन पर अरुणाई झलक रही थी। एक दुरंगी पतंग बहुत ऊँचे पर उड़ रही थी। चन्दर का मन भारी था। हालाँकि जो तूफान परसों उठा था वह खत्म हो गया था, लेकिन चन्दर का मन अभी मरा-मरा हुआ-सा था। वह चुपचाप लेटा रहा। बिनती दवा और पानी ले आयी। दवा पीकर सुधा बोली—"क्यों, चुप क्यों हो, चन्दर ?"

"कोई बात नहीं।"

"फिर बोलते क्यों नहीं, देखा बिनती, अभी-अभी क्या कह रहे थे और अब देखो इन्हें।" सुधा बोली।

"हम अभी बताते हैं इन्हें !" बिनती बोली और गिलास में थोड़ा-सा पानी लेकर चन्दर के ऊपर फेंक दिया। चन्दर चौंककर उठ बैठा और बिगड़कर बोला—"यह क्या बदतमीजी है ? अपनी दीदी को यह सब दुलार दिखाया करो।"

"तो क्यों पड़े थे ऐसे ? बात करेंगे ऋषि-मुनियों जैसे और उदास रहेंगे बच्चों की तरह ! वाह रे चन्दर बाबू !" बिनती ने हँसकर कहा—"दीदी, ठीक किया न मैंने ?"

"बिलकुल ठीक, ऐसे ही इनका दिमाग ठीक होगा।"

इतने में डॉक्टर शुक्ला आये और कुरसी पर बैठ गये। सुधा के माथे पर हाथ रखकर देखा—"अब तो तू ठीक है ?"

"हाँ पापा !"

"बिनती, कल तुम्हारी माताजी आ रही हैं। अब बैसाखी की तैयारी करनी है। सुधा के जेठ आ रहे हैं और सास।"

सुधा चुपचाप उठकर चली गयी। चन्दर, बिनती और डॉक्टर साहब बैठे उस दिन का बहुत-सा कार्यक्रम बनाते रहे। चन्दर को सबसे बड़ा सन्तोष था कि सुधा ठीक हो गयी थी। बैसाख पूनो के एक दिन पहले ही से बिनती ने घर को इतना साफ कर डाला था कि घर चमक उठा था। यह बात तो दूसरी है कि स्टडी-रूम की सफाई में बिनती ने चन्दर के बहुत से कागज बुहारकर फेंक दिये थे और आँगन धोते वक्त उसने चन्दर के कपड़ों को छीटों से तर कर दिया था। उसके बदले में चन्दर ने बिनती को डाँटा था और सुधा देख-देखकर हँस रही थी और कह रही थी—"तुम क्यों चिढ़ रहे हो ? तुम्हें देखने थोड़े ही आ रही हैं हमारी सास।"

बैसाखी पूनो की सुबह डॉक्टर साहब और बुआजी गाड़ी लेकर उनको लिवा लाने गये थे। चन्दर बाहर बरामदे में बैठा अखबार पढ़ रहा था और सुधा अन्दर कमरे में बैठी थी। अब दो दिन उसे बहुत दब-ढँककर रहना होगा। वह बाहर नहीं घूम सकती थी; क्योंकि जाने कैसे और कब उसकी सास आ जायें और देख लें। बुआ उसे समझा गयी थीं और उसने एक गम्भीर आज्ञाकारी लड़की की तरह मान लिया था और अपने कमरे में चुपचाप बैठी थी। बिनती कढ़ी के लिए बेसन फेंट रही थी और महराजिन ने रसोई में दूध चढ़ा रखा था।

सुधा चुपके से आयी, किवाड़ की आड़ से देखा कि पापा और बुआ की मोटर आ तो नहीं रही है ! जब देखा कि कोई नहीं है तो आकर चुप्पे से खड़ी हो गयी और पीछे से चन्दर के हाथ से अखबार ले लिया। चन्दर ने पीछे देखा तो सुधा एक बच्चे की तरह मुसकरा दी और बोली—"क्यों चन्दर, हम ठीक हैं न ? ऐसे ही रहें न ? देखा तुम्हारा कहना मानते हैं न हम ?"

"हाँ सुधी, तभी तो हम तुमको इतना दुलार करते हैं !"

"लेकिन चन्दर, एक बार आज रो लेने दो। फिर उनके सामने नहीं रो सकेंगे।" और सुधा का गला रुँध गया और आँख छलछला आयी।

"छिः, सुधा···" चन्दर ने कहा।

"अच्छा, नहीं-नहीं···" और झटके से सुधा ने आँसू पोंछ लिये। इतने में गेट पर किसी कार का भोंपू सुनाई पड़ा और सुधा भागी।

"अरे, यह तो पम्मी की कार है।" चन्दर बोला। सुधा रुक गयी। पम्मी ने पोर्टिको में आकर कार रोकी।

"हैलो, मेरे जुड़वां मित्र, क्या हाल है तुम लोगों का ?" और हाथ मिलाकर बेतकल्लुफी से कुरसी खींचकर बैठ गयी।

"इन्हें अन्दर ले चलो, चन्दर ! वरना अभी वे लोग आते होंगे !" सुधा बोली।

"नहीं, मुझे बहुत जल्दी है। आज शाम को बाहर जा रही हूँ। बर्टी अब मसूरी चला गया है, वहाँ से उसने मुझे भी बुलाया है। उसके हाथ में कहीं शिकार में चोट लग गयी है। मैं तो आज जा रही हूँ।"

सुधा बोली—"हमें ले चलिएगा ?"

"चलिए। कपूर, तुम भी चलो, जुलाई में लौट आना !" पम्मी ने कहा।

"जब अगली साल हम लोगों की मित्रता की वर्षगाँठ होगी तो मैं चलूँगा।" चन्दर ने कहा।

"अच्छा, विदा !" पम्मी बोली। चन्दर और सुधा ने हाथ जोड़े तो पम्मी ने आगे बढ़कर सुधा का मुँह हथेलियों में उठाकर उसकी पलकें चूम लीं और बोली—"मुझे तुम्हारी पलकें बहुत अच्छी लगती हैं। अरे ! इनमें आँसुओं का स्वाद है, अभी रोयी थीं क्या ?" सुधा झेंप गयी।

चन्दर के कन्धे पर हाथ रखकर पम्मी ने कहा—"कपूर, तुम खत जरूर लिखते रहना। चलते तो बड़ा अच्छा रहता। अच्छा, आप दोनों मित्रों का समय अच्छी तरह बीते।" और पम्मी चल दी।

थोड़ी देर में डॉक्टर साहब की कार आयी। सुधा ने अपने कमरे के दरवाजे बन्दर कर लिये, बिनती ने सिर पर पल्ला ढक लिया और चन्दर दौड़कर बाहर गया। डॉक्टर साहब के साथ जो सज्जन उतरे वे ठिगने-से, गोरे से गोल चेहरे के कुलीन सज्जन थे और खद्दर का कुरता और धोती पहने हुए थे। हाथ में एक छोटा-सा सफारी बैग था। चन्दर ने लेने को हाथ बढ़ाया तो हँसकर बोले—"नहीं जी, क्या

इतना-सा बैग ले चलने में मेरा हाथ थक जायेगा। आप लोग तो खातिर करके मुझे महत्त्वपूर्ण बना देंगे !"

सब लोग स्टडी रूम में गये। वहीं डॉक्टर शुक्ला ने परिचय कराया—"यह हमारे शिष्य और लड़के, प्रान्त के होनहार अर्थशास्त्री चन्द्रकुमार कपूर और आप शाहजहाँ-पुर के प्रसिद्ध कांग्रेसी कार्यकर्ता और म्युनिसिपल कमिश्नर श्री शंकरलाल मिश्र।"

"अब तू नहाय लेव संकरी, फिर चाय ठंडाय जइहै।" बुआजी ने आकर कहा। आज बुआजी ने बहुत दिनों पहले की बूटीदार साड़ी पहन रखी थी और शायद वह खुश थीं क्योंकि बिनती को डाँट नहीं रही थीं।

"नहीं मैं तो वेटिङ्-रूम में नहा चुका। चाय मैं पीता नहीं। खाना ही तैयार कराइए।" और घड़ी देखकर शंकर बाबू बोले—"मुझे जरा स्वराज्य-भवन जाना है और दो बजे की गाड़ी से वापस चले जाना है और शायद उधर से ही चला जाऊँगा।" उन्होंने बहुत मीठे स्वर से मुसकराते हुए कहा।

"यह तो अच्छा नहीं लगता कि आप आये भी और कुछ रुके नहीं।" डॉक्टर शुक्ला बोले।

"हाँ, मैं खुद रुकना चाहता था लेकिन माँजी की तबीयत ठीक नहीं है। कैलाश भी कानपुर गया हुआ है। मुझे जल्दी जाना चाहिए।"

बिनती ने लाकर थाली रखी। चन्दर ने आश्चर्य से डॉक्टर साहब की ओर देखा। वे हँसकर बोले—"भाई, यह लोग हमारी तरह छूत-पाक नहीं मानते। शंकर तुम्हारे सम्प्रदाय के हैं, यहीं कच्चा खाना खा लेंगे।"

"इन्हें ब्राह्मण कहत के हैं, ई तो किरिस्तान है, हमारो धरम बिगाड़िन हियाँ आय कै !" बुआजी बोलीं। बुआजी ने ही यह शादी तय करायी थी, लड़का बताया था और दूर के रिश्ते से वे कैलाश और शंकर की भाभी लगती थीं।

शंकर बाबू ने हाथ धोये और कुरसी खींचकर बैठ गये। चन्दर की ओर देखकर बोले—"आइए, होनहार डॉक्टर साहब, आप तो मेरे साथ खा सकते हैं ?"

"नहीं, आप खाइए।" चन्दर ने तकल्लुफ करते हुए कहा।

"अजी वाह ! मैं ब्राह्मण हूँ, शुद्ध; मेरे साथ खाकर आपको जल्दी मोक्ष मिल जायेगा। कहीं हाथ में तरकारी लगी रह गयी तो आपके लिए स्वर्ग का फाटक फौरन खुल जायेगा ! खाओ।"

दो कौर खाने के बाद शंकर बाबू ने बुआजी से कहा—"यही बहू है, जो लड़की थाली रख गयी थी ?"

"अरे राम कहौ, ऊ तो हमार छोरी है बिनती ! पहचनत्यौ नै। पिछले साल तो मुन्ने के विवाह में देखे होबो !" बुआजी बोलीं।

शंकर बाबू कैलाश से काफी बड़े थे लेकिन देखने में बहुत बड़े नहीं लगते थे। खाते-पीते बोले—"डॉक्टर साहब ! लड़की से कहिए, रोटी दे जाये। मैं इसी तरह देख लूँगा, और ज्यादा तड़क-भड़क की कोई जरूरत नहीं !"

डॉक्टर साहब ने बुआजी को इशारा किया और वे उठकर चली गयीं। थोड़ी देर में सुधा आयी। सादी सफेद धोती पहने, हाथ में रोटी लिये दरवाजे पर आकर हिचकी, फिर आकर चन्दर से बोली—"रोटी लोगे !" और बिना चन्दर का जवाब सुने रोटी चन्दर के आगे रखकर बोली—"और क्या चाहिए ?"

"मुझे कढ़ी चाहिए !" शंकर बाबू ने कहा। सुधा गयी और कढ़ी ले आयी। शंकर बाबू के सामने रख दी। शंकर बाबू ने आँखें उठाकर सुधा की ओर देखा, सुधा ने निगाहें नीची कर लीं और चली गयी।

"बहुत अच्छी है लड़की !" शंकर बाबू ने कहा। "इतनी पढ़ी-लिखी लड़की में इतनी शर्म-लिहाज नहीं मिलती। सचमुच जैसे आपकी एक ही लड़की थी, आपने उसे खूब बनाया है। कैलाश के बिलकुल योग्य लड़की है। यह तो कहिए डॉक्टर साहब कि शिष्टा प्रबल होती है वरना हमारा कहाँ सौभाग्य था ! जब से मेरी पत्नी मरी तभी से माताजी कैलाश के विवाह की जिद कर रही हैं। कैलाश अन्तर्जातीय विवाह करना चाहता था, लेकिन हमें तो अपनी जाति में ही इतना अच्छा सम्बन्ध मिल गया।"

"तो तोहरे अबहिन कौन बैस है गयी। तुहौ काहे नाही बहुरिया लै अउत्यौ। सुधी के अकेल मन न लगी !" बुआजी बोलीं।

शंकर बाबू कुछ नहीं बोले। खाना खाकर उन्होंने हाथ धोये और घड़ी देखी।

"अब थोड़ा सो लूँ, या जाने दीजिए। आइए, बातें करें हम और आप," उन्होंने चन्दर से कहा। एक बजे तक चन्दर शंकर बाबू से बातें करता रहा और डॉक्टर साहब और सुधा वगैरह खाना खाते रहे। शंकर बाबू बहुत हँसमुख थे और बहुत बातूनी भी। चन्दर को तो कैलाश से भी ज्यादा शंकर बाबू पसन्द आये। बातें करने से मालूम हुआ कि शंकर बाबू की आयु अभी तीस वर्ष से अधिक की नहीं है। एक पाँच वर्ष का बच्चा है और उसी के होने में उनकी पत्नी मर गयी। अब वे विवाह नहीं करेंगे, वे गांधीवादी हैं, कांग्रेस के प्रमुख स्थानीय कार्यकर्ता हैं और म्युनिसिपल कमिश्नर हैं। घर के जमींदार हैं। कैलाश बरेली में पढ़ता था। अब भी कैलाश का कोई इरादा किसी प्रकार की नौकरी या व्यापार करने का नहीं है, वह मजदूरों के लिए साप्ताहिक पत्र निकालने का इरादा कर रहा है। वह सुधा को बजाय घर पर रखने के अपने साथ रखेगा क्योंकि वह सुधा को आगे पढ़ाना चाहता है, सुधा को राजनीति क्षेत्र में ले जाना चाहता है।

बीच में एक बार बिनती आयी और उसने चन्दर को बुलाया। चन्दर बाहर गया तो बिनती ने कहा—"दीदी पूछ रही हैं ये कितनी देर में जायेंगे ?"

"क्यों ?"

"कह रही हैं अब चन्दर को याद थोड़े ही है कि सुधा भी इसी घर में है। उन्हीं से बातें कर रहे हैं।"

चन्दर हँस दिया और कुछ नहीं कहा। बिनती बोली—"ये लोग तो बहुत अच्छे हैं। मैं तो कहूँगी सुधा दीदी को इससे अच्छा परिवार मिलना मुश्किल है। हमारे ससुर की तरह नहीं हैं ये लोग।"

"हाँ, फिर भी सुधा इतनी सेवा नहीं कर रही है इनकी। बिनती, तुम सुधा को कुछ शिक्षा दे दो इस मामले में।"

"हाँ-हाँ, हम सेवा करने की शिक्षा दे देंगे और ब्याह करने के बाद की शिक्षा अपनी पम्मी से दिलवा देना। खुद तो उनसे ले ही चुके होंगे आप !"

चन्दर झेंप गया। "पाजी कहीं की, बहुत बेशरम हो गयी है। पहले मुँह से बोल नहीं निकलता था !"

"तुमने और दीदी ने ही तो किया बेशरम ! हम क्या करें ? पहले हम कितना डरते थे !" बिनती ने उसी तरह गर्दन टेढ़ी करके कहा और मुसकराकर भाग गयी।

जब डॉक्टर साहब आये तो शंकर बाबू ने कहा, "अब तो मैं जा रहा हूँ, यह माला मेरी ओर से बहू को दे दीजिए।" और उन्होंने बड़ी सुन्दर मोतियों की माला बैग से निकाली और बुआजी के हाथ में दे दी।

"हाँ, एक बात है !" शंकर बाबू बोले—"ब्याह हम लोग महीने भर के अन्दर ही करेंगे। आपकी सब बात हमने मानी, यह बात आपको हमारी माननी होगी।"

"इतनी जल्दी !" डॉक्टर शुक्ला चौंक उठे, "यह असम्भव है, शंकर बाबू ! मैं अकेला हूँ, आप जानते हैं।"

"नहीं, आपको कोई कष्ट न होगा।" शंकर बाबू बहुत मीठे स्वर में बोले—"हम लोग रीति-रसम के तो कायल हैं नहीं। आप जितना चाहे रीति-रसम अपने मन से कर लें। हम लोग तो सिर्फ छह-सात आदमियों के साथ आयेंगे। सुबह आयेंगे, अपने बँगले में एक कमरा खाली करा दीजिएगा। शाम को अगवानी और विवाह कर दें। दूसरे दिन दस बजे हम लोग चले जायेंगे।"

"यह नहीं होगा।" डॉक्टर साहब बोले, "हमारी तो अकेली लड़की है और हमारे भी तो कुछ हौसले हैं। और फिर लड़की की बुआ तो यह कभी भी नहीं स्वीकार करेंगी।"

"देखिए, मैं आपको समझा दूँ, कैलाश शादियों में तड़क-भड़क के सख्त खिलाफ है। पहले तो वह इसलिए जाति में विवाह नहीं करना चाहता था, लेकिन जब मैंने उसे भरोसा दिलाया कि बहुत सादा विवाह होगा तभी वह राजी हुआ। इसीलिए इसे आप मान ही लें फिर विवाह के बाद तो जिन्दगी पड़ी है। आपकी अकेली लड़की है जितना चाहिए, करिए। रहा कम समय का तो शुभस्य शीघ्रम् ! फिर आपको कुछ खास इन्तजाम भी नहीं करना, अगर कुछ हो तो कहिए मैं यहीं रह जाऊँ, आपका काम कर दूँ !" शंकर बाबू हँसकर बोले।

कुछ देर तक बातें होती रहीं, अन्त में शंकर बाबू ने अपने सौजन्य और मीठे स्वभाव से सभी को राजी कर ही लिया। उसके बाद उन्होंने सबसे विदा माँगी, चलते वक्त बुआजी और डॉक्टर साहब के पैर छुए, चन्दर से हाथ मिलाया और शंकर बाबू सबका मन जीतकर चले गये।

बुआजी ने माला हाथ में ली, उसे उलट-पलटकर देखा और बोलीं—"एक ऊ

आये रहे जूताखोर ! एक ठो कागज थमाय के चले गये !" और एक गहरी साँस लेके चली गयीं।

डॉक्टर साहब ने सुधा को बुलाया। उसके हाथ में वह माला रखकर उसे चिपटा लिया। सुधा पापा की गोद में मुँह छिपाकर रो पड़ी।

उसके बाद सुधा चली गयी और चन्दर, डॉक्टर साहब और बुआजी बैठे शादी के इन्तजाम की बातें करते रहे। यह तय हुआ कि अभी तो इन्हीं की इच्छानुसार विवाह कर दिया जाये फिर युनिवर्सिटी खुलने पर सभी को बुलाकर अच्छी दावत वगैरह दे दी जाये। यह भी तय हुआ कि बुआजी गाँव जाकर अनाज, घी बड़ियाँ और नौकर वगैरह का इन्तजाम कर लायें और पन्द्रह दिन के अन्दर लौट आयें। यहाँ से लेकर यहाँ तक कि अगवानी ठीक छह बजे शाम को हो जाये और सुबह के नाश्ते में क्या दिया जाये, यह सभी डॉक्टर साहब ने तय कर डाला। लेकिन निश्चय यह भी किया गया कि चूँकि आदमी बहुत कम आ रहे हैं, अतः सुबह-शाम के नाश्ते का काम युनिवर्सिटी के किसी रेस्तराँ को दे दिया जाये।

इसी बीच में बिनती खरबूजा और शरबत लाकर रख गयी और चन्दर ने बहुत आराम से शरबत पीते हुए पूछा—"किसने बनाया है ?"

"सुधा दीदी ने।"

"आज बड़ी खुश मालूम पड़ती है, चीनी बहुत कम छोड़ी है !" चन्दर बोला। बुआ और बिनती दोनों हँस पड़ीं।

थोड़ी देर बाद चन्दर उठकर भीतर गया तो देखा कि सुधा अपनी पलँग पर बैठी सामने एक किताब रखे जाने क्या देख रही है और सामने वह माला पड़ी है। चन्दर गया और बोला—"सुधा ! आज मैं बहुत खुश हूँ।"

सुधा ने आँखें उठायीं और चन्दर की ओर देखकर मुसकराने की कोशिश की और बोली—"मैं भी बहुत खुश हूँ।"

"क्यों, तय हो गया इसलिए ?" बिनती ने पूछा।

"नहीं, चन्दर बहुत खुश हैं इसलिए !" और एक गहरी साँस लेकर किताब बन्द कर दी।

"कौन-सी किताब है, सुधा ?" चन्दर ने पूछा।

"कुछ नहीं, इस पर उर्दू के कुछ अशआर लिखे हैं जो गेसू ने सुनाये थे।" सुधा बोली।

चन्दर ने बिनती की ओर देखा और कहा—"बिनती, कैलाश तो जैसा है वैसा ही है, लेकिन शंकरबाबू की तारीफ मैं कर नहीं सकता। क्या राय है तुम्हारी ?"

"हाँ, है तो सही; दीदी इतनी सुखी रहेंगी कि बस ! दीदी, हमें भूल मत जाना, समझीं !" बिनती बोली।

"और हमें भी मत भूलना सुधा !" चन्दर ने सुधा की उदासी दूर करने के लिए छेड़ते हुए कहा।

"हाँ, तुम्हें भूले बिना कैसे काम चलेगा।" सुधा ने और भी गहरी साँस लेते हुए कहा और एक आँसू गालों पर फिसल ही आया।

"अरे पगली, तुम सब कुछ अपने चन्दर के लिए कर रही हो, उसकी आज्ञा मानकर कर रही हो। फिर यह आँसू कैसे ? छिः ! और यह माला सामने रखे क्या कर रही हो ?" चन्दर ने बहलाया।

"माला तो दीदी इसलिए सामने रखे थीं कि बतलाऊँ···बतलाऊँ !" बिनती बोली—"असल में रामायण की कहानी तो सुनी है चन्दर तुमने ? रामचन्द्र ने अपने एक भक्त को मोती की माला दी तो वह उसे दाँत से तोड़कर देख रहा था कि उसके अन्दर रामनाम है या नहीं। सो यह माला सामने रखकर देख रही थीं, इसमें कहीं चन्दर की झलक है या नहीं ?"

"चुप गिलहरी कहीं की ?" सुधा हँस पड़ी, "बहुत बोलना आ गया है !" सुधा ने हँसते हुए बनावटी गुस्से से कहा। फिर सुधा तकिये से टिककर बैठ गयी —"आज गेसू नहीं है। मुझे गेसू की बहुत याद आ रही है।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि आज उसके कई शेर याद आ रहे हैं। एक दफे उसने सुनाया था—

'ये आज फिजा खामोश है क्यों, हर जर्र को आखिर होश है क्यों ?
या तुम ही किसी के हो न सके, या कोई तुम्हारा हो न सका।'

इसी की अन्तिम पंक्ति है—

'मौजें भी हमारी हो न सकीं, तूफाँ भी हमारा हो न सका' !"

"वाह ! यह पंक्ति बहुत अच्छी है, " चन्दर ने कहा।

"आज गेसू होती तो बहुत-सी बातें करते !" सुधा बोली—"देखो चन्दर, जिन्दगी भी क्या होती है ! आदमी क्या सोचता है और क्या हो जाता है। आज से तीन-चार महीने पहले मैंने क्या सोचा था ! क्लास-रूम से भागकर हम लोग पेड़ के नीचे लेटकर बातें करते थे, तो मैं हमेशा कहती थी—मैं शादी नहीं करूँगी। पापा को समझा लूँगी। उस दिन क्या मालूम था कि इतनी जल्दी जुए के नीचे गरदन डाल देनी होगी और पापा को भी जीतकर किसी दूसरे से हार जाना होगा। अभी उसकी तय भी नहीं हुई और महीने-भर बाद मेरी···" सुधा थोड़ी देर चुप रही और फिर—"और दूसरी बात उसकी, जो मैंने तुम्हें बतायी थी। उसने कहा था जब किसी के कदम हट जाते हैं सिर के नीचे से, तब मालूम होता है कि हम किसका सपना देख रहे थे। पहले हमें भी नहीं मालूम होता था कि हमारे सिर किसके कदमों पर झुक चुके हैं। याद है ? मैंने तुम्हें बताया था, तुमने पूछा था !"

"याद है।" चन्दर ने कहा बिनती उठकर चली गयी लेकिन सुधा या चन्दर किसी ने ध्यान भी नहीं दिया। चन्दर बोला—"लेकिन सुधा, इन सब बातों को सोचने से क्या फायदा, आगे का रास्ता सामने है, बढ़ो।"

"हाँ, सो तो है ही देवता मेरे ! कभी-कभी जाने कितनी पुरानी बातें मन में आ ही जाती हैं और मन करता है कि मैं सोचती ही जाऊँ। जाने क्यों मन को बड़ा सन्तोष मिलता है। और चन्दर जब, मैं वहा रहूँगी, तुमसे दूर, तो इन्हीं स्मृतियों के अलावा और क्या शेष रहेगा···तुम्हें वह दिन याद है जब मैं गेसू के यहाँ नहीं जा पायी थी और उस स्थान पर हम लोगों में झगड़ा हो गया था ··· चन्दर, वहाँ सब कुछ है लेकिन मैं लड़ूँगी-झगड़ूँगी किससे वहाँ ?"

चन्दर एक फीकी-सी हँसी हँसकर बोला—"अब क्या जन्म-भर बच्ची ही बनी रहोगी !"

"हाँ चन्दर, चाहती तो यही थी लेकिन जिन्दगी तो जबरदस्ती सब सुख छीन लेती है और बदले में कुछ भी नहीं देती। आओ, चलो लॉन पर चलें। शाम को तुमसे बातें ही करेंगे !"

उसके बाद सुधा रात को आठ बजे उठी, जब बुआ तैयार होकर स्टेशन जा रही थीं और ड्राइवर मोटर निकाल रहा था। और उदास टिमटिमाते हुए सितारों ने देखा कि चन्दर और सुधा दोनों की आँखों में आँसुओं की अवशेष नमी झिलमिला रही थी। उठते हुए सुधा ने क्षण-भर चन्दर की ओर देखा, चन्दर ने सिर झुका लिया और बहुत उदास आवाज में कहा— "चलो सुधा, बहुत देर कर दी हम लोगों ने।"

पन्द्रह दिन बाद बुआ आयीं तो उन्होंने घर की शक्ल ही बदल दी। दरवाजे पर और बरसाती में हल्दी के हाथों की छाप लग गयी, कमरों का सभी सामान हटाकर दरी बिछा दी गयीं और सबसे अन्दर वाले कमरे में सुधा का सब सामान रख दिया गया। स्टडी-रूम की सभी किताबें समेट दी गयीं और वहाँ एक बड़ी-सी मशीन लाकर रख दी गयी जिस पर बैठकर बिनती सिलाई करती थी। उसी को कपड़े और गहनों का भण्डार-घर बनाया गया और उसकी चाबी बिनती या बुआ के पास रहती थी। गाँव से एक महराजिन, एक कहारिन और दो मजदूर आये थे, वे सभी गैरेज में सोते थे और दिन-भर काम करते थे और 'पानी पीने' को माँगते रहते थे। सभी कुरसियाँ और सोफासेट निकलवाकर सायबान में लगवा दिये गये थे। रसोई के पार वाली कोठरी में कुल्हड़, पत्तलें, प्याले वगैरह रखे थे और पूजा वाले कमरे में शक्कर, घी, तरकारी और अनाज था। मिठाई कहाँ रखी जायेगी इस पर बुआजी, महराजिन और बिनती में घण्टे-भर तक बहस हुई लेकिन जब बुआजी ने बिनती से कहा—"आपन लड़के बच्चे का बियाह कियो तो कतरनी अस जबान चलाय लिह्यो, अबहिन हर काम में काहे टाँग अड़ावा करत हौ !" तो बिनती चुप हो गयी और अन्त में बुआजी की राय सर्वोपरि

मानी गयी। बुआजी की जबान जितनी तेज थी, हाथ भी उतने ही तेज। चार बोरा गेहूँ उन्होंने साफ करके कोठरियों में भरवा दिये। कम-से-कम पाँच तरह की दालें लायी थीं। बेसन पिसवाया, दाल दरवायीं, पापड़ बनवाये, मैदा छनवायी, सूजी दरवायी, बरी-मुँगौरी डलवायीं, चावल की कचौरियाँ बनवायीं और सबको अलग-अलग गठरी में बाँधकर रख दिया। रात को अकसर बुआजी, महराजिन तथा गाँव की महरिन ढोलक लेकर बैठ जातीं और गीत गातीं। बिनती उनमें भी शामिल रहती।

सच पूछो तो सुधा के ब्याह का जितना उछाह बुआ को नहीं था, उतना बिनती को था। वह सुबह से उठकर झाड़ू लेकर सारा घर बुहार डालती थी, इसके बाद नहाकर तरकारी काटती, उसके बाद फिर चाय चढ़ाती। डॉक्टर साहब, चन्दर, सुधा सभी को चाय देती, बैठकर चन्दर अगर कुछ हिसाब लिखता तो हिसाब लिखती, फिर अपनी मशीन पर बैठ जाती और बारह-एक बजे तक सिलाई करती रहती, फिर दोपहर को चावल और दाल बीनती, शाम को खरबूजे काटती, शरबत बनाती और रात-भर जाग-जागकर गाती या दीदी को हँसाने की कोशिश करती। एक दिन सुधा ने कहा—''मेरे ब्याह में तो इतनी खुश है, अपने ब्याह में क्या करेगी ?'' तो बिनती ने जवाब दिया—''अपने ब्याह में तो मैं खुद बैण्ड बजाऊँगी, वर्दी पहनकर !''

घर चमक उठा था जैसे रेशम ! लेकिन रेशम के चमकदार, रंगीन उल्लास भरे गोले के अन्दर भी एक प्राणी होता है, उदास स्तब्ध अपनी साँस रोककर अपनी मौत की क्षण-क्षण प्रतीक्षा करने वाला रेशम का कीड़ा। घर के इस सारे उल्लास और चहल-पहल से घिरा हुआ सिर्फ एक प्राणी था जिसकी साँस धीरे-धीरे डूब रही थी, जिसकी आँखों की चमक धीरे-धीरे कुम्हला रही थी, जिसकी चंचलता ने उसकी नजरों से विदा माँग ली थी, जिसके उल्लास ने, सन्तोष ने, सुख ने, शान्ति ने उसके हृदय से विदा माँग ली थी, वह थी—सुधा। सुधा बदल गयी थी। गोरा चम्पई चेहरा पीला पड़ गया था, और लगता था जैसे वह बीमार हो। खाना उसे जहर लगने लगा था, अपने कमरे को छोड़कर कहीं जाती न थी। एक शीतलपाटी बिछाये उसी पर दिन-रात पड़ी रहती थी। बिनती जब हँसती हुई खाना लाती और सुधा के इनकार पर बिनती के आँसू छलछला आते तब सुधा पानी के घूँट के सहारे कुछ खा लेती और उदास, फिर अपनी शीतलपाटी पर लेट जाती। स्वर्ग को कोई इन्द्रधनुषों से भर दे और शची को जहर पिला दे, कुछ ऐसा ही लग रहा था वह घर।

डॉक्टर शुक्ला का साहस न होता था सुधा से बोलने का। वह रोज बिनती से पूछ लेते—''सुधा खाना खाती है या नहीं ?'' बिनती कहती, ''हाँ।'' तो एक गहरी साँस लेकर अपने कमरे में चले जाते।

चन्दर परेशान था। उसने इतना काम शायद कभी भी न किया हो अपनी जिन्दगी में। सुनार के यहाँ, कपड़े वाले के यहाँ, फिर राशनिंग अफसर के यहाँ, पुलिस बैण्ड ठीक कराने पुलिस लाइन्स, अर्जी देने मैजिस्ट्रेट के यहाँ, रुपया निकालने बैंक, शामियाने का इन्तजाम, पलँग, कुरसी वगैरह का इन्तजाम, खाने-परोसने के बरतनों

का इन्तजाम और जाने क्या-क्या···और जब बुरी तरह थक कर आता, जेठ की तपती हुई दोपहरी में, तब बिनती आकर बताती—सुधा ने आज फिर कुछ नहीं खाया तो उसका मन होता था वह सिर पटक-पटक दे। वह सुधा के पास जाता, सुधा आँसू पोंछकर बैठती, एक टूटी-फूटी मुसकान से चन्दर का स्वागत करती। चन्दर उससे पूछता—"खाती क्यों नहीं ?"

"खाती तो हूँ चन्दर, इससे ज्यादा गरमियों में मैं कभी नहीं खाती थी।" सुधा कहती और इतने दृढ़ स्वर से कि चन्दर से कुछ प्रतिवाद नहीं करते बनता।

अब बाहरी काम लगभग समाप्त हो गये थे। वैसे तो सभी जगह हल्दी छिड़ककर पत्र रवाना किये जा चुके थे लेकिन निमन्त्रण-पत्र भी बहुत सुन्दर छपकर आये थे, हालाँकि कुछ देर हो गयी थी। ब्याह को अब कुल सात दिन बचे थे। चन्दर सुबह दस बजे एक डिब्बे में निमन्त्रण-पत्र और लिफाफा-भरे हुए आया और स्टडी-रूम में बैठ गया। बिनती बैठी हुई कुछ सिल रही थी।

"सुधा कहाँ है ? उसे बुला लाओ।"

सुधा आयी, सूजी आँखें, सूखे होंठ, रूखे बाल, मैली धोती, निष्प्राण चेहरा और बीमार चाल। हाथ में पंखा लिये थी। आयी और चन्दर के पास बैठ गयी—"कहो, क्या कर आये, चन्दर ! अब कितना इन्तजाम बाकी है ?"

"अब सब हो गया, सुधा रानी ! आज तो पैर जवाब दे रहे हैं। साइकिल चलाते-चलाते पैर में जैसे गाँठें पड़ गयी हों।" चन्दर ने कार्ड फैलाते हुए कहा—"शादी तुम्हारी होगी और जान मेरी निकली जा रही है मेहनत से।"

"हाँ चन्दर, इतना उत्साह तो और किसी को नहीं है मेरी शादी का !" सुधा ने कहा और बहुत दुलार से बोली—"लाओ, पैर दबा दूँ तुम्हारे ?"

"अरे पागल हो गयी ?" चन्दर ने अपने पैर उठाकर ऊपर रख लिये।

"हाँ, चन्दर !" गहरी साँस लेते हुए सुधा बोली, "अब मेरा अधिकार भी क्या है तुम्हारे पैर छूने का। क्षमा करना, मैं भूल गयी थी कि मैं पुरानी सुधा नहीं हूँ।" और टप से दो आँसू गिर पड़े। सुधा ने पंखे की ओट कर आँखें पोंछ लीं।

"तुम तो बुरा मान गयीं, सुधा !" चन्दर ने पैर नीचे रखते हुए कहा।

"नहीं चन्दर अब बुरा-भला मानने के दिन बीत गये। अब गैरों की बात का भी बुरा-भला नहीं मान पाऊँगी, फिर घर के लोगों की बातों का बुरा-भला क्या···छोड़ो ये सब बातें। ये क्या निमन्त्रण-पत्र छपा है, देखें !"

चन्दर ने एक निमन्त्रण-पत्र उठाया, उसे लिफाफे में भरकर उस पर सुधा का नाम लिखकर कहा—"लो, हमारी सुधा का ब्याह है, आइएगा जरूर !"

सुधा ने निमन्त्रण पत्र ले लिया—"अच्छा !" एक फीकी हँसी हँसकर बोली—"अच्छा, अगर हमारे पतिदेव ने आज्ञा दे दी तो आऊँगी आपके यहाँ। उनका भी नाम लिख दीजिए वरना बुरा न मान जायें।" और सुधा उठ खड़ी हुई।

"कहाँ चली ?" चन्दर ने पूछा।

"यहाँ बहुत रोशनी है ! मुझे अपना अँधेरा कमरा ही अच्छा लगता है।" सुधा बोली।

"चलो बिनती, वहीं कार्ड ले चलो !" चन्दर ने कहा—"आओ सुधा, आज कार्ड लिखते जाएँगे, तुमसे बात करते जाएँगे। जिन्दगी देखो, सुधी ! आज पन्द्रह दिन से तुमसे दो मिनट बैठकर बात भी न कर सके।"

"अब क्या करना है, चन्दर ! जैसा कह रहे हो वैसा कर तो रही हूँ। अभी कुछ और बाकी है क्या ? बता दो वह भी कर डालूँ। अब तो रो-पीटकर ऊँचा बनना ही है।"

बिनती ने कार्ड समेटे तो सुधा डाँटकर बोली—"रख इसे यहीं; चली उठा के ! बड़ी चन्दर की आज्ञाकारी बनी है। ये भी हमारी जान की गाहक हो गयी अब ! हमारे कमरे में लायी ये सब, तो टाँग तोड़ दूँगी ! पाजी कहीं की !"

बिनती ने कार्ड धर दिये। नौकर ने आकर कहा—"बाबूजी, कुम्हार अपना हिसाब माँगता है !"

"अच्छा, अभी आया, सुधा !" और चन्दर चला गया।

और इस तरह दिन बीत रहे थे। शादी नजदीक आती जा रही थी और सभी का सहारा एक-दूसरे से छूटता जा रहा था। सुधा के मन पर जो कुछ भी धीरे-धीरे मरघट की उदासी की तरह बैठता जा रहा था और चन्दर अपने प्यार से, अपनी मुसकानों से, अपने आँसुओं को धोने देने के लिए व्याकुल हो उठा था, लेकिन यह जिन्दगी थी यहाँ प्यार हार जाता है, मुसकानें हार जाती हैं, आँसू हार जाते हैं—तश्तरी, प्याले, कुल्हड़ पत्तलें, कालीनें, दरियाँ और बाजे जीत जाते हैं। जहाँ अपनी जिन्दगी की प्रेरणा-मूर्ति के आँसू गिनने के बजाय कुल्हड़ और प्याले गिनवाकर रखने पड़ते हैं और जहाँ किसी आत्मा की उदासी को अपने आँसुओं से धोने के बजाय पत्तलें धुलवाना ज्यादा महत्त्वपूर्ण होता है, जहाँ भावना और अन्तर्द्वन्द्व के सारे तूफान सुनार और बिजलीवालों की बातों में डूब जाते हैं, और जहाँ दो आँसुओं में डूबते हुए व्यक्तियों की पुकार शहनाइयों की आवाज में डूब जाती है और जिस वक्त कि आदमी के हृदय का कण-कण क्षतविक्षत हो जाता है, जिस वक्त उसकी नसों में सितारे टूटते हैं, जिस वक्त उसके माथे पर आग धधकती है, जिस वक्त उसके सिर पर से आसमान और पाँव तले से धरती हट जाती है, उस समय उसे शादी की साड़ियों का मोल-तोल करना पड़ता है और बाजे वाले को एडवान्स रुपया देना पड़ता है।

ऐसी थी उस वक्त चन्दर की जिन्दगी और उस जिन्दगी ने अपना चक्र पूरी तरह चला दिया था। करोड़ों तूफान घुमड़ाते हुए उसे नचा रहे थे। वह एक क्षण भी कहीं नहीं टिक पाता था। एक पल भी उसे चैन नहीं था, एक पल भी वह यह नहीं सोच पाता था कि उसके चारों ओर क्या हो रहा है ? वह बेहोशी में मूर्छा में मशीन की तरह काम कर रहा था। आवाजें थीं कि उसके कानों से टकराकर चली जाती थीं,

आँसू थे कि हृदय को छू नहीं पाते थे, चक्र उसे फँसाकर खींचे लिये जा रहा था। बिजली से भी ज्यादा तेज, प्रलय से भी ज्यादा सशक्त वह खिंचा जा रहा था। सिर्फ एक ओर। शादी का दिन। सुधा ने नथुनी पहनी, उसे नहीं मालूम। सुधा ने कोरे कपड़े पहने, उसे नहीं मालूम। सुधा ने चूड़े पहने, उसे नहीं मालूम। घर में गीत हुए, उसे नहीं मालूम। सुधा ने चूल्हा पूजते वक्त अपना सिर पटक दिया, उसे नहीं मालूम···वह व्यक्ति नहीं था। तूफान में उड़ता हुआ एक पीला पत्ता था, जो वात्याचक्र में उलझ गया था और झोंके उसे नचाये जा रहे थे···

और उसे होश आया तब, जब बिनती जबरदस्ती उसका हाथ पकड़कर खींच ले गयी बारात आने के एक दिन पहले। उस छत पर, जहाँ सुधा पड़ी रो रही थी, चन्दर को ढकेलकर चली आयी।

चन्दर के सामने सुधा थी। सुधा, जिससे वह पता नहीं क्यों बचना चाहता था। अपनी आत्मा के संघर्षों से, अपने अन्तःकरण के घावों की कसक से घबराकर जैसे कोई आदमी एकान्त कमरे से भागकर भीड़ में मिल जाता हैं, भीड़ के निरर्थक शोर में अपने को खो देना चाहता है, बाहर के शोर में अन्दर का तूफान भुला देना चाहता है; उसी तरह चन्दर पिछले हफ्ते से सब कुछ भूल गया; उसे सिर्फ एक चीज याद रहती थी–शादी का प्रबन्ध। सुबह से लेकर सोने के वक्त तक वह इतना काम कर डालना चाहता था कि उसे एक क्षण भी बैठने का मौका न मिले, और सोने से पहले वह इतना थक जाये, इतना चूर-चूर हो जाये कि लेटते ही नींद उसे जकड़ ले और उसे बेहोश कर दे। लेकिन इस वक्त बिनती उसे उसके विस्मरण-स्थल से खींचकर एकान्त में ले आयी है जहाँ उसकी ताकत और उसकी कमजोरी, उसकी पवित्रता और उसका पाप, उसकी मुसकान और उसके आँसू, उसकी प्रतिभा और उसकी विस्मृति; उसकी सुधा अपनी जिन्दगी के चिरन्तन मोड़ पर खड़ी अपना सब कुछ लुटा रही थी। चन्दर को लगा जैसे उसको अभी चक्कर आ जायेगा। वह अकुलाकर खाट पर बैठ गया।

शाम थी, सूरज डूब रहा था और दिन-भर की तपी हुई छत पर जलती हुई बरसाती के नीचे एक खरहरी खाट पर सुधा लेटी थी। एक महीन पीली धोती पहने, कोरी मारकीन की कुरती पहने, रूखे चिकटे हुए बाल और नाक में बहुत बड़ी-सी नथ। पन्द्रह दिन के आँसुओं ने चेहरे को जाने कैसा बना दिया। न चेहरे पर सुकुमारता थी, न कठोरता। न रूप था, न ताजगी। सिर्फ ऐसा लगता था कि जैसे सुधा का सब कुछ लुट चुका है। न केवल प्यार और जिन्दगी लुटी है, वरन् आवाज भी लुट गयी है और नीरवता भी। वैभव भी लुट गया और याचना भी।

सुधा ने अपने पीले पल्ले से आँसू पोंछे और उठकर बैठ गयी। दोनों चुप। पहले कौन बोले ! बिनती आयी, चन्दर और सुधा का खाना रखकर चली गयी। "खाना खाओगी, सुधा ?" चन्दर ने पूछा। सुधा कुछ बोली नहीं सिर्फ सिर हिला दिया और डूबते हुए सूरज और उड़ते हुए बादलों की ओर देखकर जाने क्या सोचने लगी।

चन्दर ने थाली खिसका दी और सुधा को अपनी ओर खींचकर बोला–"सुधा, इस तरह कैसे काम चलेगा। तुम्हीं को देखकर तो मैं अपना धीरज सँभालूँगा, बताओ। और तुम्हीं यह कर रही हो !" सुधा चन्दर के पास खिसक आयी और दो मिनट तक चुपचाप चन्दर की ओर फटी हुई पथरायी आँखों से देखती रही और एकदम हृदय को फाड़ देने वाली आवाज में चीखकर रो उठी–"चन्दर, अब क्या होगा !"

चन्दर की समझ में नहीं आया, वह क्या करे ! आँसू उसके सूख चुके थे। वह रो नहीं सकता था। उसके मन पर कहीं कोई पत्थर रखा था जो आँसुओं की बूँदों को बनने के साथ ही सोख लेता था लेकिन वह तड़प उठा, "सुधा !" वह घबराकर बोला–"सुधा, तुम्हें हमारी कसम है–चुप हो जाओ ! चुप...बिलकुल चुप...हाँ...ऐसे ही !" सुधा चन्दर के पाँवों में मुँह छिपाये थी–"उठकर बैठो ठीक से सुधा ... इतना समझ-बूझकर यह सब करती हो, छिः ! तुम्हें अपना दिल मजबूत करना चाहिए वरना पापा को कितना दुख होगा।"

"पापा ने तो मुझसे बोलना भी छोड़ दिया है, चन्दर ! पापा से कह दो आज तो बोल लें, कल से हम उन्हें परेशान करने नहीं आयेंगे, कभी नहीं आयेंगे। अब उनकी सुधा को सब ले जा रहे हैं, जाने कहाँ ले जा रहे हैं !" और फिर वह फफक-फफककर रो पड़ी।

चन्दर ने बिनती से पापा को बुलवाया। सुधा को रोते हुए देखकर बिनती खड़ी हो गयी, "दीदी, रोओ मत दीदी, फिर हम किसके भरोसे रहेंगे यहाँ ?" और सुधा को चुप कराते-कराते बिनती भी रोने लगी। और आँसू पोंछते हुए चली गयी।

पापा आये। सुधा चुप हो गयी और कुछ कहा नहीं, फिर रोने लगी। डॉक्टर शुक्ला भर्राये गले से बोले–"मुझे यह रोआई अच्छी नहीं लगती। यह भावुकता क्यों ? तुम पढ़ी-लिखी लड़की हो। इसी दिन के लिए तुम्हें पढ़ाया-लिखाया गया था ! भावुकता से क्या फायदा ?" कहते-कहते डॉक्टर शुक्ला खुद रोने लगे। "चलो चन्दर यहाँ से ! अभी जनवासा ठीक करवाना है।" चन्दर और डॉक्टर शुक्ला दोनों उठकर चले गए।

अपनी शादी के पहले, हमेशा के लिए अलग होने से पहले सुधा को इतना ही मौका मिला...उसके बाद...

सुबह छह बजे गाड़ी आती थी, लेकिन खुशकिस्मती से गाड़ी लेट थी; डॉक्टर शुक्ला तथा अन्य लोग बारात का स्वागत करने स्टेशन पर जा रहे थे और चन्दर घर पर ही रह गया था जनवासे का इन्तजाम करने। जनवासा बगल में था। माथुर साहब के बँगले के दोनों हॉल और कमरा खाली करवा लिये गये थे। चन्दर सुबह छह ही बजे आ गया था और जनवासे में सब सामान लगवा दिया था। नहाने का पानी और बाकी इन्तजाम कर वह घर आया। जलपान का इन्तजाम तो केदार के हाथ में था लेकिन कुछ तौलिये भिजवाने थे।

"बिनती, कुछ तौलिये निकाल दो।" चन्दर ने बिनती से कहा।

बिनती उर्द की दाल धो रही थी। उसने फौरन उठकर हाथ धोये और कमरे की ओर चली गयी।

"ऐ बिनती···" बुआजी ने भण्डारे के अन्दर से आवाज लगायी—"जाने कहाँ मर गयी मुँहझौंसी ! अरे सिंगार-पटार बाद में कर लियो, काम में तनिक दीदा नै लगते। बेसन का कनस्टर कहाँ रखा है ?"

"अभी आये !" बिनती ने चन्दर से कहा और अपनी माँ के पास दौड़ी—पन्द्रह मिनट हो गये लेकिन बिनती लौटी ही नहीं। ब्याह का घर ! हर तरफ से बिनती की पुकार मचती और बिनती पंख लगाये उड़ रही थी। जब बिनती नहीं लौटी तो चन्दर ने सुधा को ढूँढ़कर कहा—"सुधी, एक बहुत बड़ा-सा तौलिया निकाल दो।"

सुधा चुपचाप उठी और स्टडी-रूम में चली गयी। चन्दर भी पीछे-पीछे गया।

"बैठो, अभी निकालकर लाते हैं !" सुधा ने भरी हुई आवाज में कहा और बगल के कमरे में चली गयी। वहाँ से लौटी तो उसके हाथ में मीठे की तश्तरी थी।

"अरे खाने का वक्त नहीं है, सुधा ! आठ बजे लोग आ जायेंगे !"

"अभी दो घण्टे हैं, खा लो चन्दर ! अब कभी तुम्हारे काम में हरजा करके खाने को नहीं कहूँगी !" सुधा बोली। चन्दर चुप।

"याद है, चन्दर ! इसी जगह आँचल में छिपाकर नानखटाई लायी थी। आओ, आज अपने हाथ से खिला दूँ। कल ये हाथ पराये हो जायेंगे। और सुधा ने एक इमरती तोड़कर चन्दर के मुँह में दे दी। चन्दर की आँखों में दो आँसू छलक आये—सुधा ने अपने हाथ से आँसू पोंछ दिये और बोली—"चन्दर, घर में कोई खाने का ख्याल करने वाला नहीं है। खाते-पीते जाना, तुम्हें हमारी कसम है। मैं शाहजहाँपुर से लौटकर आऊँगी तो दुबले मत मिलना।" चन्दर कुछ बोला नहीं। आँसू बहते गये, सुधा खिलाती गयी, वह खाता गया। सुधा ने गिलास में पानी दिया, उसने हाथ धोया और जेब से रूमाल निकाला।

"क्यों, आज आँचल में हाथ नहीं पोंछोगे ?" सुधा बोली। चन्दर ने आँचल हाथ में ले लिया और पलकों पर आँचल दबाकर फूट-फूटकर रो पड़ा।

"छिः, चन्दर ! आज तो हम सँभल गये हैं, हमने सब स्वीकार कर लिया चुपचाप। अब तुम कमजोर मत बनो। तुमने कहा था, मैं शान्त रहूँ तो शान्त हो गयी। अब क्यों मुझे भी रुलाओगे ! उठो।" चन्दर उठ खड़ा हुआ।

सुधा ने एक पान चन्दर के मुँह में देकर कत्था उसकी कमीज से लगा दिया। चन्दर कुछ नहीं बोला।

"अरे, आज तो लड़ लो, चन्दर ! आज से खत्म कर देना।"

इतने में बिनती तौलिया ले आयी। "दीदी, इन्हें कुछ खिला दो। ये खा नहीं रहे हैं।" बिनती ने कहा।

"खिला दिया।" सुधा बोली—"देखो चन्दर, आज मैं नहीं रोऊँगी लेकिन एक शर्त पर। तुम बराबर मेरे सामने रहना। मण्डप में रहोगे न ?"

"हाँ, रहूँगा।" चन्दर ने आँसू पीते हुए कहा।

"कहीं चले मत जाना ! मेरी आखिरी बिनती है।" सुधा बोली। चन्दर तौलिया लेकर चला आया।

चूँकि बारात में कुल आठ ही लोग थे अतः घर की और माथुर साहब की दो ही कारों से काम चल गया। जब ये लोग आये तो नाश्ते का सामान तैयार था और चन्दर चुपचाप बैठा था। उसने फौरन सबका सामान लगवाया और सामान रखवाकर वह जा ही रहे थे कि कैलाश ने पीछे से कन्धे पर हाथ रखकर उसे पीछे घुमा लिया और गले से लगाकर बोला, "कहाँ चले कपूर साहब, नमस्ते ! चलो, पहले नाश्ता करो।" और खींचकर वह चन्दर को ले गया। अपने बगल की मेज पर बिठाकर, उसकी चाय अपने हाथ से बनायी और बोला, "कुछ नाराज थे क्या कपूर ? खत का जवाब क्यों नहीं देते थे ?"

"हम तो बराबर खत का जवाब देते रहे, यार !" कपूर चाय पीते हुए बोला।

"अच्छा तो हम घूमते रहे इधर-उधर, खत गड़बड़ हो गये होंगे। ... लो, समोसा खाओ !" कैलाश ने कहा। चन्दर ने सिर हिलाया तो बोला, "अरे, वाह म्याँ ? शादी तुम्हारी नहीं हो रही है, हमारी हो रही है, समझे ? तुम क्यों तकल्लुफ कर रहे हो। अच्छा कपूर ... काम तो तुम्हीं पर होगा सब !"

"हाँ !" कपूर बोला।

"बड़ा अफसोस है, यार ! जब हम लोग पहली दफा मिले थे तो यह नहीं मालूम था कि तुम और डॉक्टर साहब इतना अच्छा इनाम दोगे, अपने को बचाने का। हमारे लायक कोई काम हो तो बताओ !"

"आपकी दुआ है !" चन्दर ने सिर झुकाकर कहा, और सभी हँस पड़े। इतने में शंकर बाबू डॉक्टर साहब के साथ आये और सब लोग चुप हो गये।

दिन भर के व्यवहार से चन्दर ने देखा कि कैलाश भी उतना ही अच्छा हँसमुख और शालीन है जितने शंकर बाबू थे। वह उसे राजनीतिक क्षेत्र में जितना फौलादी लगा था, घरेलू जिन्दगी में उतना ही अच्छा लगा। चन्दर का मन खुशी से नाच उठा। सुधा की ओर से वह थोड़ा निश्चिन्त हो गया। अब सुधा निभा ले जायेगी। वह मौका निकालकर घर में गया। देखा, सुधा को औरतें घेरे हुए बैठी हैं और महावर लगा रही हैं। बिनती कनस्तर में से घी निकाल रही थी। चन्दर गया और बिनती की चोटी घसीटकर बोला, "ओ गिलहरी, घी पी रही है क्या ?"

बिनती ने दंग होकर चन्दर की ओर देखा। आज तक कभी अच्छे-भले में तो चन्दर ने उसे नहीं चिढ़ाया था। आज क्या हो गया ? आज जब कि पिछले पन्द्रह रोज से चन्दर के होंठ मुसकराना भूल गये हैं।

"आँख फाड़कर क्या देख रही है ? कैलाश बहुत अच्छा लड़का है, बहुत अच्छा। अब सुधा बहुत सुखी रहेगी। कितना अच्छा होगा, बिनती ! हँसती क्यों नहीं गिलहरी !" और चन्दर ने बिनती की बाँह में चुटकी काट ली।

"अच्छा ! हमें दीदी समझा है क्या ? अभी बताती हूँ।" और घी भरे हाथ से चन्दर की बाँह पकड़कर बिनती ने जोर से घुमा दी। चन्दर ने अपने को छुड़ाया और बिनती को चपत मारकर गुनगुनाता हुआ चला गया।

बिनती ने कनस्तर के मुँह पर लगा घी पोंछा और मन में बोली, "देवता और किसे कहते हैं ?"

शाम को बारात चढ़ी। सादी-सी बारात। सिर्फ एक बैण्ड था। कैलाश ने शेरवानी और पायजामा पहना था, और टोपी। सिर्फ एक माला गले में पड़ी थी और हाथ में कंगन बँधा था। मौर पीछे किसी आदमी के हाथ में था। जयमाला की रस्म होने वाली थी लेकिन बुआजी ने स्पष्ट कर दिया कि हमारी लड़की कोई ऐसी-वैसी नहीं कि ब्याह के पहले भरी बारात में मुँह खोलकर माला पहनाये। लेकिन घूँघट के मामले पर सुधा ने दृढ़ता से मान किया था, वह घूँघट बिलकुल नहीं करेगी।

अन्त में पापा उसे लेकर मण्डप में आये। घर का काम-काज निबट गया था। सभी लोग आँगन में बैठे थे। कामिनी, प्रभा, लीला सभी थीं, एक ओर बाराती बैठे थे। सुधा शान्त थी लेकिन उसका मुँह ग्रहण के चन्द्रमा की तरह निस्तेज था। मण्डप का एक बल्ब खराब हो गया था और चन्दर सामने खड़ा उसे बदल रहा था। सुधा ने जाते-जाते चन्दर को देखा और आँसू पोंछकर मुसकराने लगी और मुसकराकर फिर आँसू पोंछने लगी। कामिनी, प्रभा, लीला तमाम लड़कियाँ कैलाश पर फब्तियाँ कस रही थीं। सुधा सिर झुकाये बैठी थी। पापा से उसने कहा, "बिनती को हमारे पास भेज दो।" बिनती आकर सुधा के पीछे बैठ गयी। कैलाश ने आँख के इशारे से चन्दर को बुलाया। चन्दर जाकर पीछे बैठा तो कैलाश ने कहा, "यार, यहाँ जो लोग खड़े हैं इनका परिचय तो बता दो चुपके से !" चन्दर ने सभी का परिचय बताया। कामिनी, प्रभा, लीला सभी के बारे में जब चन्दर बता रहा था तो बिनती बोली, "बड़े लालची मालूम देते हैं आप ? एक से सन्तोष नहीं है क्या ? वाह रे जीजाजी !" कैलाश ने मुसकराकर चन्दर से पूछा, "इसका ब्याह तय हुआ कि नहीं ?"

"हो गया।" चन्दर ने कहा।

"तभी बोलने का अभ्यास कर रही हैं; मण्डप में भी इसीलिए बैठी हैं क्या ?" कैलाश ने कहा। बिनती झेंप गयी और उठकर चली गयी।

संस्कार शुरू हुआ। कैलाश के हाथ में नारियल और उसकी मुट्ठी पर सुधा के दोनों हाथ। सुधा अब चुप थी। इतनी चुप··इतनी चुप कि लगता था उसके होंठों ने कभी बोलना जाना ही नहीं। संस्कार के दौरान ही पारस्परिक वचन का समय आया। कैलाश ने सभी प्रतिज्ञाएँ स्वयं कहीं। शंकरबाबू ने कहा, लड़की भी शिक्षित है और उसे भी स्वयं वचन करने होंगे। सुधा ने सिर हिला दिया। एक असन्तोष की लहर-सी बारातियों में फैल गयी। चन्दर ने बिनती को बुलाया। उसके कान में कहा–"जाकर सुधा से कह दो कि पागलपन नहीं करते। इससे क्या फायदा ?" बिनती ने जाकर बहुत धीरे से सुधा के कान में कहा। सुधा ने सिर उठाकर देखा। सामने बरामदे की

सीढ़ियों पर चन्दर बैठा हुआ बड़ा चिन्तित-सा कभी शंकरबाबू की ओर देखता और कभी सुधा की ओर। सुधा से उसकी निगाह मिली और वह सिहर-सा उठा, सुधा क्षण-भर उसकी ओर देखती रही। चन्दर ने जाने क्या कहा और सुधा ने आँखों-ही-आँखों में उसे क्या जवाब दे दिया। उसके बाद सुधा नीचे रखे हुए पूजा के नारियल पर लगे हुए सिन्दूर को देखती रही फिर एक बार चन्दर की ओर देखा। विचित्र-सी थी वह निगाह, जिसमें कातरता नहीं थी, करुणा नहीं थी, आँसू नहीं थे, कमजोरी नहीं थी, था एक गम्भीरतम विश्वास, एक उपमाहीन स्नेह, एक सम्पूर्णतम समर्पण। लगा, जैसे वह कह रही हो—सचमुच तुम कह रहे हो, फिर सोच लो चन्दर ... इतने दृढ़ हो ... इतने कठोर हो ... मुझसे मुँह से क्यों कहलवाना चाहते हो... क्या सारा सुख लूटकर थोड़ी-सी आत्मवंचना भी मेरे पास नहीं छोड़ोगे ? ... अच्छा लो, मेरे देवता ! और उसने हारकर सिसकियों से सने स्वरों में अपने को कैलाश को समर्पित कर दिया। प्रतिज्ञाएँ दोहरा दीं और उसके बाद साड़ी का एक छोर खींचकर, नथ की डोरी ठीक करने के बहाने उसने आँसू पोंछ लिये।

चन्दर ने एक गहरी साँस ली और बगल में बैठी हुई बुआजी से कहा—"बुआजी, अब तो बैठा नहीं जाता। आँखों में जैसे किसी ने मिर्च भर दी हो।"

"जाओ ... जाओ, सोय रहो ऊपर, खाट बिछी है। कल सुबह दस बजे विदा करे को है। कुछ खायो पियो नै, तो पड़े रहबो !" बुआ ने बड़े स्नेह से कहा।

चन्दर ऊपर गया तो देखा एक खाट पर बिनती औंधी पड़ी सिसक रही है। "बिनती ! बिनती !" उसने बिनती को पकड़कर हिलाया। बिनती फूट-फूटकर रो पड़ी।

"उठ पगली, हमें तो समझाती है, खुद अपने-आप पागलपन कर रही है।" चन्दर ने रुँधे गले से कहा।

बिनती उठकर एकदम चन्दर की गोद में समा गयी और दर्दनाक स्वर में बोली—"हाय चन्दर ... अब ... क्या ... होगा ?"

चन्दर की आँखों में आँसू आ गये, वह फूट पड़ा और बिनती को एक डूबते हुए सहारे की तरह पकड़कर उसकी माँग पर मुँह रखकर फूट-फूटकर रो पड़ा। लेकिन फिर भी सँभल गया और बिनती का माथा सहलाते हुए और अपनी सिसकियों को रोकते हुए कहा—"रो मत पगली !"

धीरे-धीरे बिनती चुप हुई। और खाट के पास नीचे छत पर बैठ गयी और चन्दर के घुटनों पर हाथ रखकर बोली—"चन्दर, तुम आना मत छोड़ना। तुम इसी तरह आते रहना ! जब तक दीदी ससुराल से लौट न आयें।"

"अच्छा !" चन्दर ने बिनती की पीठ पर हाथ रखकर कहा—"घबराते नहीं। तुम तो बहादुर लड़की हो न ! सब चीज बहादुरी से सहना चाहिए। कैसी दीदी की बहन हो ? क्यों ?"

बिनती उठकर नीचे चली गयी।

चन्दर लेट रहा। उसकी पोर-पोर में दर्द हो रहा था। नस-नस को जैसे कोई तोड़ रहा हो, खींच रहा हो। हड्डियों के रेशे-रेशे में थकान मिल गयी थी लेकिन उसे नींद नहीं आयी। आँगन में पुरोहितजी के मन्त्र-पाठ का स्वर और बीच-बीच में आने वाले किसी बाराती या औरतों की आवाजें उसके मन को अस्त-व्यस्त कर देती थीं। उसकी थकान और उसकी अशान्ति ही उसको बार-बार झटके से जगा देती थी। वह करवट बदलता, कभी ऊपर देखता कभी आँखें बन्द कर लेता कि शायद नींद आ जाये लेकिन नींद नहीं ही आयी। धीरे-धीरे नीचे का रव भी शान्त हो गया। संस्कार भी समाप्त हुआ। बाराती उठकर चलने लगे और वह आवाजों से यह पहचानने की कोशिश करने लगा कि अब कौन क्या कर रहा है। धीरे-धीरे सब शोर शान्त हो गया।

चन्दर ने फिर करवट बदली और आँख बन्द कर ली। धीरे-धीरे एक कोहरा उसके मन पर छा गया। वह इतना जागा कि अब अगर वह आँख भी बन्द करता तो जब पलकें पुतलियों से छा जातीं तो एक बहुत कड़ुआ दर्द होने लगा था। जैसे-तैसे उसकी थोड़ी-सी आँख लगी···

किसी ने सहसा जगा दिया। पलक बन्द करने में जितना दर्द हुआ था उतना ही पलकें खोलने में। उसने पलकें खोलीं–देखा सामने सुधा खड़ी थी···

माँग और माथे में सिंदूर, कलाई में कंगन, हाथ में अँगूठियाँ, कड़े, चूड़े, गले में गहने, बड़ी-सी नथुनी डोरे के सहारे कान में बँधी हुई, आँखें–जिनमें भादों की घटनाओं की गरज खामोश हो रही बरसात-सी हो गयी थी।

वह क्षण-भर पैताने खड़ी रही। चन्दर उठकर बैठ गया ! उसका दिल इस तरह धड़क रहा था जैसे किसी के सामने भाग्य का रूठा हुआ देवता खड़ा हो। सुधा कुछ बोली नहीं। उसने दोनों हाथ जोड़े और झुककर चन्दर के पैरों पर माथा टेक दिया। चन्दर ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा–"ईश्वर तुम्हारा सुहाग अटल करे ! तुम वहुत महान् हो। मुझे तुम पर आज से गर्व है। आज तक तुम जो कुछ थी उससे कहीं ज्यादा हो मेरे लिए, सुधा !"

सुधा कुछ बोली नहीं। आँचल से आँसू पोंछती हुई पायताने जमीन पर बैठ गयी और अपने गले से एक बेले का हार उतारा। उसे तोड़ डाला और चन्दर के पाँव खींचकर खाट के नीचे जमीन पर रख लिये।

"अरे यह क्या कर रही हो, सुधा।" चन्दर ने कहा।

"जो मेरे मन में आयेगा !" बहुत मुश्किल से रुँधे गले से सुधा बोली, "मुझे किसी का डर नहीं, तुम जो कुछ दण्ड दे चुके हो, उससे बड़ा दण्ड तो अब भगवान भी नहीं दे सकेंगे ?" सुधा ने चन्दर के पाँवों पर फूल रखकर उन्हें चूम लिया और अपनी कलाई में बँधी हुई एक पुड़िया खोलकर उसमें से थोड़ा-सा सिन्दूर उन फूलों पर छिड़ककर, चन्दर के पाँवों पर सिर रखकर चुपचाप रोती रही।

थोड़ी देर बाद उठी और उन फूलों को समेटा। अपने आँचल के छोर में उन्हें

बाँध लिया और उठकर चली···धीमे-धीमे निःशब्द···

"कहाँ चली, सुधा ?" चन्दर ने सुधा का हाथ पकड़ लिया।

"कहीं नहीं !" अपना हाथ छुड़ाते हुए सुधा ने कहा।

"नहीं-नहीं, सुधा, लाओ ये हम रखेंगे !" चन्दर ने सुधा को रोकते हुए कहा।

"बेकार है, चन्दर ! कल तक, परसों तक ये जूठे हो जायेंगे, देवता मेरे !" और सुधा सिसकते हुए चली गयी।

एक चमकदार सितारा टूटा और पूरे आकाश पर फिसलते हुए जाने किस क्षितिज में खो गया।

दूसरे दिन आठ बजे तक सारा सामान स्टेशन पहुँच गया था। शंकर बाबू और डॉक्टर साहब पहले ही स्टेशन पहुँच गये थे। बाराती भी सब वहीं चले गये थे। कैलाश और सुधा को स्टेशन तक लाने का जिम्मा चन्दर पर था। बहुत जल्दी करते-कराते भी सवा नौ बज गये थे। उसने फ़िर जाकर कहा। कैलाश और सुधा खड़े हुए थे। पीछे से नाइन सुधा के सिर पर पंखा रखी थी और बुआजी रोचना कर रही थीं। चन्दर के जल्दी मचाने पर अन्त में उन्हें फुरसत मिली और वह आगे बढ़े। मोटर पर सुधा ने ज्यों ही पाँव रखा कि बिनती पाँव से लिपट गयी और रोने लगी। सुधा जोर से बिलख-बिलखकर रो पड़ी। चन्दर ने बिनती को छुड़ाया। सुधा पीछे बैठकर खिड़की पर मुँह रखकर सिसकती रही। मोटर चल दी। सुधा मुड़कर अपने घर की ओर देख रही थी। बिनती ने हाथ जोड़े तो सुधा चीख कर रो पड़ी। फिर चुप हो गयी।

स्टेशन पर भी सुधा बिलकुल शान्त रही। सुधा और कैलाश के लिए सेकेण्ड क्लास में एक बर्थ सुरक्षित थी। बाकी लोग ड्योढ़े में थे। शंकर बाबू ने दोनों को उस डिब्बे में पहुँचाया और बोले—"कैलाश, तुम जरा हमारे साथ आओ। मिस्टर कपूर, जरा बहू के पास आप रहिए। मैं डाक्टर साहब को यहाँ भेज रहा हूँ।"

चन्दर खिड़की के पास खड़ा हो गया। शंकर बाबू का छोटा बच्चा आकर अपनी नयी चाची के पास बैठ गया और उनकी रेशमी चादर से खेलने लगा। चन्दर चुपचाप खड़ा था।

सहसा सुधा ने उसके हाथों पर अपना मेहंदी लगा हाथ रख दिया और धीमे से कहा—"चन्दर !" चन्दर ने मुड़कर देखा तो बोली—"अब कुछ सोचो मत। इधर देखो !" और सुधा ने जाने कितने दुलार से चन्दर से कहा—"देखो, बिनती का ध्यान रखना। उसे तुम्हारे ही भरोसे छोड़ रही हूँ और सुनो, पापा को रात को सोते वक्त दूध में ओवल्टीन जरूर दे देना। खाने-पीने में गड़बड़ी मत करना, यह मत समझना

कि सुधा मर गयी तो फिर बिना दूध की चाय पीने लगो। हम जल्दी से आ जायेंगे। पम्मी का कोई खत आये तो हमें लिखना।"

इतने में डॉक्टर साहब और कैलाश आ गये। कैलाश कम्पार्टमेण्ट के बाथरूम में चला गया। डॉक्टर साहब आये और सुधा के सिर पर हाथ रखकर बोले—"बेटा ! आज तेरी माँ होती तो कितना अच्छा होता। और देख़, महीने-भर में बुला लेंगे तुझे ! वहाँ घबराना मत।"

गाड़ी ने सीटी दी।

पापा ने कहा—"बेटा, अब ठीक से रहना और भावुकता या बचपना मत करना। समझी !" पापा, ने आँख से रूमाल लगा लिया—"विवाह बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। अब तुम्हारी नयी जिन्दगी है। अब तक बेटी थी, अब बहू हो···।"

सुधा बोली—"पापा, तुम्हारा ओवल्टीन का डिब्बा शीशे वाली मेज पर है। उसे पी लिया करना और पापा बिनती को गाँव मत भेजना। चन्दर को अब घर पर ही बुला लो। तुम अकेले पड़ गये ! और हमें जल्दी बुला लेना···"

गार्ड ने सीटी दी। कैलाश ने जल्दी से डॉक्टर साहब के पैर छुए। चन्दर से हाथ मिला लिया। सुधा बोली—"चन्दर, ये पुर्जा बिनती को देना और देखो मेरा नतीजा निकले तो तार देना।" गाड़ी चल पड़ी। "अच्छा पापा, अच्छा चन्दर···" सुधा ने हाथ जोड़े और खिड़की पर टिककर रोने लगी। और बार-बार आँसू पोंछ-पोंछकर देखने लगी।···

गाड़ी प्लेटफार्म के बाहर चली गयी तब चन्दर मुड़ा। उसके बदन में पोर-पोर में दर्द हो रहा था। वह कैसे घर पर पहुँचा उसे मालूम नहीं।

दो

चन्दर को हफ्ते-भर तक होश नहीं रहा। शादी के दिनों में उसे एक नशा था जिसके बल पर वह मशीन की तरह काम करता गया। शादी के बाद इतनी भयंकर थकावट उसकी नसों में कसक उठी कि उसका चलना-फिरना मुश्किल हो गया था। वह अपने घर से होटल तक खाना खाने नहीं जा पाता था। बस पड़ा-पड़ा सोता रहता। सुबह नौ बजे सोता; पाँच बजे उठता; थोड़ी देर होटल में बैठकर फिर वापस आ जाता। चुपचाप छत पर लेटा रहता और फिर सो जाता। उसका मन एक उजड़े हुए नीड़ की तरह था जिसमें से विचार, अनुभूति, स्पन्दन और रस के विहंगम कहीं दूर उड़ गये थे। लगता था, जैसे वह सब कुछ भूल गया है। सुधा, बिनती, पम्मी, डॉक्टर साहब, रिसर्च, थीसिस, सभी कुछ ! ये सब चीजें कभी-कभी उसके मन में नाच जातीं लेकिन चन्दर को ऐसा लगता कि ये किसी ऐसी दुनिया की चीजें हैं जिसको वह भूल गया है, जो उसके स्मृति-पटल से मिट चुकी हैं, कोई ऐसी दुनिया जो कभी थी, कहीं थी, लेकिन किसी भयंकर जलप्रलय ने जिसका कण-कण ध्वस्त कर दिया था। उसकी दुनिया अपनी छत तक सीमित थी, छत के चारों ओर की ऊँची दीवारों और उन चारदीवारों से बँधे हुए आकाश के चौकोर टुकड़े तक ही उसके मन की उड़ान बँध गयी थी। उजाला पाख था। पहले वह लुब्धक तारे की रोशनी देखता फिर धीरे-धीरे चाँद की दूधिया रोशनी सफेद कफन की तरह छा जाती और वह मन में थके हुए स्वर जैसे चाँदनी को ओढ़ता हुआ-सा कहता—"सो जा मुरदे··सो जा।"

छठे दिन उसका मन कुछ ठीक हुआ। थकावट, जो एक केंचुल की तरह उस पर छायी हुई थी, धीरे-धीरे उतर गयी और उसे लगा जैसे मन में कुछ टूटा हुआ-सा दर्द कसक रहा है। यह दर्द क्यों है, कैसा है, यह उसके कुछ समझ में नहीं आता था। पाँच बजे थे लेकिन धूप बिलकुल नहीं थी। पीले उदास बादलों की एक झीनी तह ने ढलते हुए आषाढ़ के सूरज को ढँक लिया था। हवा में एक ठण्डक आ गयी थी; लगता था कि झोंके किसी वर्षा के देश से आ रहे हैं। वह उठा, नहाया और सुधा के घर चल पड़ा।

डॉक्टर शुक्ला लॉन पर हांथ में किताव लिये टहल रहे थे। पाँच दिनों में जैसे वह बहुत बूढ़े हो गये थे। वहुत झुके हुए-से, निस्तेज चेहरा, डबडबायी आँखें और चाल में जैसे उम्र थक गयी हो। उन्होंने चन्दर का स्वागत भी उस तरह नहीं किया जैसे पहले करते थे। सिर्फ इतना बोले—"चन्दर, दो दफे ड्राइवर को भेजकर बुलाया तो मालूम हुआ तुम सो रहे हो। अब अपना सामान यहीं ले आओ।" और वे बैठकर किताब उलट-पलट कर देखने लगे। अभी तक वे बूढ़े थे, उनका व्यक्तित्व तरुण था। आज लगता था जैसे उनके व्यक्तित्व पर झुर्रियाँ पड़ने लगी हैं, उनके व्यक्तित्व की कमर भी झुक गयी है। चन्दर कुछ नहीं बोला। चुपचाप खड़ा रहा। सामने आकाश पर एक अजब-सी जर्दी छा रही थी। डॉक्टर साहब ने किताव बन्द की और बोले—"सुना है···कॉलेज के प्रिन्सिपल आ गये हैं। ज़ाऊँ जरा उनसे तुम्हारे बारे में बात कर आऊँ। तुम जाओ, सुधा का खत आया है, बिनती के पास।"

"बुआजी हैं ?" चन्दर ने पूछा।

"नहीं, आज ही सुबह तो गयीं। हम लोग कितना रोकते रहे लेकिन उन्हें कहीं और चैन ही नहीं पड़ती। बिनती को बड़ी मुश्किल से रोका मैंने।" और डॉक्टर साहब गैरेज की ओर चल पड़े।

चन्दर भीतर गया। सारा घर इतना सुनसान था, इतना भयंकर सन्नाटा कि चन्दर के रोयें-रोयें खड़े हो गये। शायद मौत के बाद का घर भी इतना नीरव और इतना भयानक न लगता होगा जितना यह शादी के बाद का घर। सिर्फ रसोई से कुछ खटपट की आवाज आ रही थी। "विनती !" चन्दर ने पुकारा। बिनती चौके में थी। वह निकल आयी। बिनती को देखते ही चन्दर दंग हो गया। वह लड़की इतनी दुबली हो गयी थी कि जैसे बीमार हो। रो-रोकर उसकी आँखें सूज गयी थीं और होंठ मोटे पड़ गये थे। चन्दर को देखते ही उसने कड़ाही उतारकर नीचे रख दी और बिखरी हुई लटें सुधारकर, आँचल ठीक कर बाहर निकल आयी। कमरे से खींचकर एक चौकी आँगन में डालकर चन्दर से वहुत उदास स्वर में बोली—"वैठिए !"

"घर कितना सूना लग रहा है बिनती, तुम अकेले कैसे रहती होगी ?" चन्दर ने कहा। बिनती की आँखों में आँसू छलछला आये।

"बिनती, रोती क्यों हो ? छिः ! मुझे देखो। मैं कैसे पत्थर बन गया हूँ। क्यों ? तुम तो इतनी अच्छी लड़की हो।" चन्दर ने बिनती के कन्धे पर हाथ रखकर कहा।

बिनती ने आँसू भरी पलकें चन्दर की ओर उठायीं और बड़े ही कातर स्वर में कहा—"आप देवता हो सकते हैं, लेकिन हरेक तो देवता नहीं है। फिर आपने कहा था आप आयेंगे बराबर। पिछले हफ्ते से आये भी नहीं। यह भी नहीं सोचा कि हमारा क्या हाल होगा ! रोज सुबह-शाम कोई भी आता तो हम दौड़कर देखते कि आप आये हैं या नहीं। दीदी आपकी थीं ! बस उन तक आपका रिश्ता था। हम तो आपके कोई नहीं हैं।"

"नहीं बिनती ! इतने थक गये थे हम कि कहीं आने-जाने की हिम्मत ही नहीं

पड़ती थी। बुआजी को जाने क्यों दिया तुमने ? उन्हें रोक लेती !" चन्दर ने कहा।

"अरे, वह थीं तो रोने भी नहीं देती थीं। मैं दो-तीन दिन तक रोयी तो मुझ पर बहुत बिगड़ीं और महराजिन से बोलीं—'हमने तो ऐसी लड़की ही नहीं देखी। बड़ी बहन का व्याह हो गया तो मारे जलन के दिन-रात आँसू बहा-बहाकर अमंगल बनाती है। जब बखत आयेगा तभी शादी करेंगे कि अभी ही किसी के साथ निकाल दूँ ?' विनती ने एक गहरी साँस लेकर कहा, 'आप समझ नहीं सकते कि जिन्दगी कितनी खराब है। अब तो हमारी तबीयत होती है कि मर जायें। अभी तक दीदी थीं, सहारा दिये रहती थीं। हिम्मत बँधाये रहती थीं, अब तो कोई नहीं है हमारा।' "

"छिः, ऐसी बातें नहीं करते, विनती ! महीने-भर में सुधा आ जायेगी। और माँ की बातों का क्या बुरा मानना ?"

"आप लड़की होते तो समझते, चन्दर बाबू !" बिनती बोली और जाकर एक तश्तरी में नाश्ता ले आयी—"लो, दीदी कह गयी थीं कि चन्दर के खाने-पीने का ख्याल रखना लेकिन यह किसको मालूम था कि दीदी के जाते ही चन्दर गैर हो जायेंगे।"

"नहीं बिनती, तुम गलत समझ रही हो। जाने क्यों एक अजीब-सी खिन्नता मन में आ गयी थी। कुछ करने की तबीयत ही नहीं होती थी। आज कुछ तबीयत ठीक हुई तो सबसे पहले तुम्हारे ही पास आया। बिनती ! अब सुधा के बाद मेरा है ही कौन, सिवा तुम्हारे ?" चन्दर ने बहुत उदास स्वर में कहा।

"तभी न ! उस दिन मैं बुलाती रह गयी और आप यह गये, वह गये और आँख से ओझल ! मैंने तो उसी दिन समझ लिया था कि अब पुराने चन्दर बाबू बदल गये।" बिनती ने रोते हुए कहा।

चन्दर का मन भर आया था, गले में आँसू अटक रहे थे लेकिन आदमी की जिन्दगी भी कैसी अजब होती है। वह रो भी नहीं सकता था, माथे पर दुख की रेखा भी झलकने नहीं दे सकता था, इसलिए कि सामने कोई ऐसा था, जो खुद दुखी था और सुधा की थाती होने के नाते बिनती को समझाना उसका पहला कर्त्तव्य था। बिनती के आँसू रोकने के लिए वह खुद अपने आँसू पी गया और बिनती से बोला—"लो, कुछ तुम भी खाओ।" बिनती ने मना किया तो उसने अपने हाथ से बिनती को खिला दिया। बिनती चुपचाप खाती रही और रह-रहकर आँसू पोंछती रही।

इतने में महराजिन आयी। बिनती ने चौके का काम समझा दिया और चन्दर से बोली—"चलिए, ऊपर चलें।" चन्दर ने चारों ओर देखा। घर का सन्नाटा वैसा ही था। सहसा उसके मन में एक अजीब-सी बात आयी। सुधा के साथ कभी भी कहीं भी वह जा सकता था, लेकिन बिनती के साथ छत पर अकेले जाने में क्यों उसके अन्तःकरण ने गवाही नहीं दी। वह चुपचाप बैठा रहा। बिनती कुछ भी हो, कितनी ही समीप क्यों न हो, बिनती सुधा नहीं थी, सुधा नहीं हो सकती थी। "नहीं, यहीं ठीक है।" चन्दर बोला।

बिनती गयी। सुधा का पत्र ले आयी। चन्दर का मन जाने कैसा होने लगा। लगता था जैसे अब आँसू नहीं रुकेंगे। उसके मन में सिर्फ इतना आया कि अभी बहत्तर घण्टे पहले सुधा यहीं थी, इस घर की प्राण थी; आज लगता है जैसे इस घर में सुधा थी ही नहीं···

आँगन में अँधेरा होने लगा था। वह उठकर सुधा के कमरे के सामने पड़ी हुई कोच पर बैठ गया और बिनती ने बत्ती जला दी। खत छोटा-सा था–

"डॉक्टर चन्दर बाबू,

क्या तुम कभी सोचते थे कि तुम इतनी दूर होगे और मैं तुम्हें खत लिखूँगी। लेकिन खैर !

अब तो घर में चैन की बंसी बजाते होगे। एक अकेले मैं ही काँटे-जैसी खटक रही थी, उसे भी तुमने निकाल फेंका। अब तुम्हें न कोई परेशान करता होगा, न तुम्हारे पढ़ने-लिखने में बाधा पहुँचती होगी। अब तो तुम एक महीने में दस बारह थीसिस लिख डालोगे।

जहाँ दिन में चौबीस घण्टे तुम आँख के सामने रहते थे, वहाँ अब तुम्हारे बारे में एक शब्द सुनने के लिए तड़प उठती हूँ। कई दफे तबीयत आती कि जैसे बिनती से तुम्हारे बारे में बातें करती थी वैसे ही इनसे (तुम्हारे मित्र से) तुम्हारे बारे में बातें करूँ लेकिन ये तो जाने कैसी-कैसी बातें करते हैं।

और सब ठीक है। यहाँ बहुत आजादी है मुझे। माँजी भी बहुत अच्छी हैं। परदा बिलकुल नहीं करती। अपने पूजा के सारे बरतन पहले ही दिन हमसे मँजवाये।

देखो, पापा का ध्यान रखना। और बिनती को जैसे मैं छोड़ आयी हूँ उतनी ही मोटी रहे। मैं महीने-भर बाद आकर तुम्हीं से बिनती को वापस लूँगी, समझे ? यह न करना कि मैं न रहूँ तो मेरे बजाय बिनती को रुला-रुलाकर, कुढ़ा-कुढ़ाकर मार डालो, जैसी तुम्हारी आदत है।

चाय ज्यादा मत पीना–खत का जवाव फौरन !

तुम्हारी –सुधा"

चन्दर ने चिट्ठी एक बार फिर पढ़ी, दो बार पढ़ी, और बार-बार पढ़ता गया। हलके हरे कागज पर छोटे-छोटे काले अक्षर जाने कैसे लग रहे थे। जाने क्या कह रहे थे, छोटे-छोटे अर्थात् कुछ उनमें अर्थ था जो शब्द से भी ज्यादा गम्भीर था। युगों पहले वैयाकरणों ने उन शब्दों के जो अर्थ निश्चित किये थे, सुधा की कलम से जैसे उन शब्दों को एक नया अर्थ मिल गया था। चन्दर बेसुध-सा तन्मय होकर उस खत को बार-बार पढ़ता गया और किस समय वे छोटे-छोटे नादान अक्षर उसके हृदय के चारों ओर कवच-जैसे बौद्धिकता और सन्तुलन के लौह पत्र को चीरकर अन्दर बिंध गये और हृदय की धड़कनों को मरोड़ना शुरू कर दिया, यह चन्दर को खुद नहीं मालूम हुआ जब तक कि उसकी पलकों से एक गरम आँसू खत पर नहीं टपक पड़ा। लेकिन उसने बिनती से वह आँसू छिपा लिया और खत मोड़कर बिनती को दे दिया।

बिनती ने खत लेकर रख लिया और बोली, "अब चलिए खाना खा लीजिए !" चन्दर इनकार नहीं कर सका।

महराजिन ने थाली लगायी और बोली—"भइया, नीचे अबहिन आँगन धोवा जाई, आप जाय के ऊपर खाय लेव।"

चन्दर को मजबूरन ऊपर जाना पड़ा। बिनती ने खाट बिछा दी। एक स्टूल डाल दिया। पानी रख दिया और नीचे थाली लाने चली गयी। चन्दर का मन भारी हो गया था। यह वही जगह है, वही खाट है जिस पर शादी की रात वह सोया था। इसी के पैताने सुधा आकर बैठी थी अपने नये सुहाग में लिपटी हुई-सी। यहीं पर सुधा के आँसू गिरे थे…।

बिनती थाली लेकर आयी और नीचे बैठकर पंखा करने लगी।

"हमारी तबीयत तो है ही नहीं खाने की, बिनती !" चन्दर ने भर्राये हुए स्वर में कहा।

"अरे, बिना खाये पीये कैसे काम चलेगा ? और फिर आप ऐसा करेंगे तो हमारी क्या हालत होगी ? दीदी के बाद और कौन सहारा है हमारा ! खाइए !" और बिनती ने अपने हाथ से एक कौर बनाकर चन्दर को खिला दिया ! चन्दर खाने लगा। चन्दर चुप था, वह जाने क्या सोच रहा था। बिनती चुपचाप बैठी पंखा झल रही थी।

"क्या सोच रहे हैं आप ?" बिनती ने पूछा।

"कुछ नहीं !" चन्दर ने उतनी ही उदासी से कहा।

"नहीं बताइएगा ?" बिनती ने बड़े कातर स्वर से कहा।

चन्दर एक फीकी मुसकान के साथ बोला—"बिनती ! अब तुम इतना ध्यान न रखा करो ! तुम समझती नहीं, बाद में कितनी तकलीफ होती है। सुधा ने क्या कर दिया है यह वह खुद नहीं समझती !"

"कौन नहीं समझता !" बिनती एक गहरी साँस लेकर बोली—"दीदी नहीं समझती, या हम नहीं समझते ! सब समझते हैं लेकिन जाने मन कैसा पागल है कि सब कुछ समझकर धोखा खाता है। अरे ! दही तो आपने खाया ही नहीं।" वह पूड़ी लाने चली गयी।

और इस तरह दिन कटने लगे। जब आदमी अपने हाथ से आँसू मोल लेता है, अपने-आप दर्द का सौदा करता है, तब दर्द और आँसू तकलीफ-देह नहीं लगते। और जब कोई ऐसा हो जो आपके दर्द के आधार पर आपको देवता बनाने के लिए तैयार हो और

आपके एक-एक आँसू पर अपने सौ-सौ आँसू बिखेर दे, तब तो कभी-कभी तकलीफ भी भली मालूम देने लगती है। लेकिन फिर भी चन्दर के दिन कैसे कट रहे थे यह वही जानता था। लेकिन अकबर के महल में जलते हुए दीपक को देखकर अगर किसी ने जाड़े की रात जमुना के घुटनों-घुटनों पानी में खड़े होकर काट दी, तो चन्दर अगर सुधा के प्यारे-प्यारे खतों के सहारे समय काट रहा था तो कोई ताज्जुब नहीं। अपने अध्ययन में पौढ़, अपने विचारों में उदार होने के बावजूद चन्दर अपने स्वभाव में बच्चा था, जिससे जिन्दगी कुछ भी करवा सकती थी बशर्ते जिन्दगी को यह आता हो कि इस भोले-भाले बच्चे को कैसे बहलावा दिया जाये।

बहलावे के लिए मुसकानें ही जरूरी नहीं होती हैं, शायद आँसुओं से मन जल्दी बहल जाता है। बिनती के आँसुओं में चन्दर सुधा की तसवीर देखता था और बहल जाता था। वह रोज शाम को आता और बिनती से सुधा की बातें करता, जाने कितनी बातें, जाने कैसी बातें और बिनती के माध्यम से सुधा में डूबकर चला आता था। चूँकि सुधा के बिना उसका दिन कटना मुश्किल था, एक क्षण कटना मुश्किल था इसलिए बिनती उसकी एक जरूरत बन गयी थी। वह जब तक बिनती से सुधा की बात नहीं कर लेता था, तब तक जैसे वह बेचैन रहता था तब तक उसकी किसी काम में तबीयत नहीं लगती थी।

जब तक सुधा सामने रही, कभी भी उसे यह नहीं मालूम हुआ कि सुधा का क्या महत्त्व है उसकी जिन्दगी में। आज जब सुधा दूर थी तो उसने देखा कि सुधा उसकी साँसों से भी ज्यादा आवश्यक थी उसकी जिन्दगी के लिए। लगता था वह एक क्षण सुधा के बिना जिन्दा नहीं रह सकता। सुधा के अभाव में बिनती के माध्यम से वह सुधा को ढूँढ़ता था और जैसे सूरज के डूब जाने पर चाँद सूरज की रोशनी उधार लेकर रात को उजियारा कर देता है उसी तरह बिनती सुधा की याद से चन्दर के प्राणों पर उजियारी बिखेरती रही। चन्दर बिनती को इस तरह अपनी साँसों की छाँह में दुबकाये रहा जैसे बिनती सुधा का स्पर्श हो, सुधा का प्यार हो।

बिनती भी चन्दर के माथे पर उदासी के बादल देखते ही तड़प उठती थी। लेकिन फिर भी बिनती चन्दर को हँसा नहीं पायी। चन्दर का पुराना उल्लास लौटा नहीं। साँप का काटा हुआ जैसे लहरें लेता है वैसे ही चन्दर की नसों में फैला हुआ उदासी का जहर रह-रहकर चन्दर को झकझोर देता था। उन दिनों दो-दो तीन-तीन दिन तक चन्दर कुछ नहीं करता था बिनती के पास भी नहीं जाता था, बिनती के आँसुओं की भी परवाह नहीं करता था। खाना नहीं खाता था, और अपने को जितनी तकलीफ हो सकती थी, देता था। फिर ज्यों ही सुधा का कोई खत आता था, वह उसे चूम लेता और फिर स्वस्थ हो जाता था। बिनती चाहे जितना करे लेकिन चन्दर की इन भयंकर उदासी की लहरों को चन्दर से छीन नहीं पायी थी। चाँद कितनी कोशिश क्यों न करे, वह रात को दिन नहीं बना सकता।

लेकिन आदमी हँसता है, दुख-दर्द सभी में आदमी हँसता है। जैसे हँसते-हँसते आदमी की प्रसन्नता थक जाती है वैसे ही कभी-कभी रोते-रोते आदमी की उदासी थक जाती है और आदमी करवट बदलता है ताकि हँसी की छाँह में कुछ विश्राम कर फिर वह आँसुओं की कड़ी धूप में चल सके।

ऐसी ही एक सुबह थी जब कि चन्दर की उदासी के मन में आ रहा था कि वह थोड़ी देर हँस भी ले। बात यों हुई थी कि उसे शेली की एक कविता बहुत पसन्द आयी थी जिसमें शेली ने भारतीय मलयज को सम्बोधित किया है। उसने अपना शेली कीट्स का ग्रन्थ उठाया और उसे खोला तो वही आम के अचार के दाग सामने पड़ गये जो सुधा ने शरारतन डाल दिये थे। बस वह शेली की कविता तो भूल गया और उसे याद आ गयी आम की फाँक और सुधा की शरारत से भरी शोख आँखें। फिर तो एक के बाद दूसरी शरारत प्राणों में उठ-उठकर चन्दर की नसों को गुदगुदाने लगी और चन्दर उस दिन जाने क्यों हँसने के लिए व्याकुल हो उठा। उसे ऐसा लगा जैसे सुधा की यह दूरी, यह अलगाव सभी कुछ झूठ है। सच तो वे सुनहले दिन थे जो सुधा की शरारतों से मुसकराते थे, सुधा के दुलार में जगमगाते थे। और कुछ भी हो जाये, सुधा उसके जीवन का एक ऐसा अमर सत्य है जो कभी भी डगमगा नहीं सकता। अगर वह उदास होता है, दुखी होता है तो वह गलत है। वह अपने ही आदर्श को झूठा बना रहा है, अपने ही सपने का अपमान कर रहा है। और उसी दिन सुधा का खत भी आया जिसमें सुधा ने साफ-साफ तो नहीं पर इशारे से लिखा था कि वह चन्दर के भरोसे ही किसी तरह दिन काट रही थी। उसने सुधा को एक पत्र लिखा, जिसमें वही शरारत, वही खिजाने की बातें थीं जो वह हमेशा सुधा से करता था लेकिन जिसे वह पिछले तीन महीने में भूल गया था।

उसके बाद वह बिनती के यहाँ गया।

बिनती अपनी धोती में क्रोशिया की बेल टाँक रही थी। "ले गिलहरी, तेरी दीदी का खत ! लाओ, मिठाई खिलाओ।"

"हम काहे को खिलायें। आप खिलाइए जो खिले पड़े हैं आज !" बिनती बोली।

"हम ! हम क्यों खिलायेंगे ! यहाँ तो सुधा का नाम सुनते ही तबीयत कुढ़ जाती है!"

"अरे चलिए, आपका घर मेरा देखा है। मुझसे नहीं बन सकते आप !" बिनती ने मुँह चिढ़ाकर कहा, "आज बड़े खुश हैं !"

"हाँ, बिनती···" एक गहरी साँस लेकर चन्दर चुप हो गया, "कभी-कभी उदासी भी थक जाती है !" और मुँह झुकाकर बैठ गया।

"क्यों, क्या हुआ ?" बिनती ने चन्दर की बाँह में सूई चुभो दी—चन्दर

चौंक उठा। "हमारी शक्ल देखते ही आपके चेहरे पर मुहर्रम छा जाता है !"

"अजी नहीं, आपका मुख-मण्डल देखकर तो आकाश में चन्द्रमा भी लज्जित हो जाता होगा, श्रीमती बिनती विदुषी !" चन्दर ने हँसकर कहा। आज चन्दर बहुत खुश था।

बिनती लजा गयी और फिर उसके गालों में फूल के कटोरे खिल गये और उसने चन्दर के कन्धे से फिर सूई चुभोकर कहा—"आपको एक बड़े मजे की बात बतानी है आज !"

"क्या ?"

"फिर हँसिएगा मत ! और चिढ़ाइएगा नहीं !" बिनती बोली।

"कुछ तेरे ब्याह की बात होगी !" चन्दर ने कहा।

"नहीं, ब्याह की नहीं, प्रेम की !" बिनती ने हँसकर कहा और झेंप गयी।

"अच्छा, गिलहरी को यह रोग कब से ?" चन्दर ने हँसकर पूछा—"अपनी माँजी की शक्ल देखी है न, काटकर कुएँ में फेंक देंगी तुझे !"

"अब क्या करें, कोई सिर पर प्रेम मढ़ ही दे तो !" बिनती ने बड़े आत्मविश्वास से कहा। थी बड़ी खुले स्वभाव की लड़की।

"आखिर कौन अभागा है वह ! जरा नाम तो सुनें।" चन्दर बोला।

"हमारे महाकवि मास्टर साहब।" बिनती ने हँसकर कहा।

"अच्छा, यह कब से ! तूने पहले तो कभी बताया नहीं।"

"अब तो जाकर हमें मालूम हुआ। पहले सोचा दीदी को लिख दें। फिर कहा वहाँ जाने किसके हाथ में चिट्ठी पड़े। तो सोचा तुम्हें बता दें !"

"हुआ क्या आखिर ?" चन्दर ने पूछा।

"बात यह हुई कि पहले तो हम दीदी के साथ पढ़ते थे तब तो मास्टर साहब कुछ नहीं बोलते थे, इधर जब से हम अकेले पढ़ने लगे तब से कविताएँ समझाने के बहाने दुनिया-भर की बातें करते रहे। एक बार स्कन्दगुप्त पढ़ाते-पढ़ाते बड़ी ठण्डी साँस लेकर बोले, काश कि आप भी देवसेना बन सकतीं। बड़ा गुस्सा आया मुझे। मन में आया कह दूँ कि मैं तो देवसेना बन जाती लेकिन आप अपना कविसम्मेलन का पेशा छोड़कर स्कन्दगुप्त कैसे बन पायेंगे। लेकिन फिर मैंने कुछ कहा नहीं। दीदी से सब बात कह दी। दीदी तो हैं ही लापरवाह। कुछ कहा ही नहीं उन्होंने। और मास्टर साहब वैसे अच्छे हैं, पढ़ाते भी अच्छा है, लेकिन यह फितूर जाने कैसे उनके दिमाग में चढ़ गया।" बिनती बड़े सहज स्वभाव से बोली।

"लेकिन इधर क्या हुआ ?" चन्दर ने पूछा।

"अभी कल आये, एक हाथ में उनके एक मोटी-सी कॉपी थी। दे गये तो देखा वह उनकी कविताओं का संग्रह है और उसका नाम उन्होंने रखा है 'बिनती'। अभी आते होंगे। क्या करें कुछ समझ में नहीं आता। अभी तक दीदी के भरोसे हमने सब छोड़ दिया था। वह पता नहीं कब आयेंगी।"

"अच्छा लाओ, वह संग्रह हमें दे दो।" चन्दर ने कहा—"और बिसरिया से कह देना वह चन्दर के हाथ पड़ गया। फिर कल सुबह तुम्हें मजा दिखलायेंगे। लेकिन हाँ, यह पहले बता दो कि तुम्हारा तो कुछ झुकाव नहीं है उधर, वरना बाद में हमें कोसो ?" चन्दर ने छेड़ते हुए कहा।

"अरे हाँ, मुसलमान भी हो तो वेहना के संग ! कवियों से प्यार लगाकर कौन बवालत पाले !" बिनती ने झेंपते हुए कहा।

दूसरे दिन सुबह पहुँचा तो बिसरिया साहब पढ़ा रहे थे। बिसरिया की शक्ल पर कुछ मायूसी, कुछ परेशानी, कुछ चिन्ता थी। उसको बिनती ने बता दिया कि संग्रह चन्दर के पास पहुँच गया है। चन्दर को देखते ही वह बोला, "अरे कपूर, क्या हाल है ?" और उसके बाद अपने को निर्दोष बताने के लिए फौरन बोला, "कहो, हमारा संग्रह देखा है ?"

"हाँ देखा है, जरा आप इन्हें पढ़ा लीजिए। आपसे कुछ जरूरी बातें करनी हैं।" चन्दर ने इतने कठोर स्वर में कहा कि बिसरिया के दिल की धड़कनें डूबने-सी लगीं। वह काँपती हुई आवाज में बहुत मुश्किल से अपने को सम्हालते हुए बोला, "कैसी बातें ? कपूर, तुम कुछ गलत समझ रहे हो।"

कपूर एक उपेक्षा की हँसी हँसा और चला गया। डॉक्टर साहब पूजा करके उठे थे। दोनों में बातें होती रहीं। उनसे मालूम हुआ कि अगले महीने में सम्भवतः चन्दर की नियुक्ति हो जायेगी और तीन दिन बाद डॉक्टर साहब खुद सुधा को लाने के लिए शाहजहाँपुर जायेंगे। उन्होंने बुआजी को पत्र लिखा है कि यदि वह आ जायें तो अच्छा है, वरना चन्दर को दो-तीन दिन बाद यहीं रहना पड़ेगा क्योंकि बिनती अकेली है। चन्दर की बात दूसरी है लेकिन और लोगों के भरोसे डॉक्टर साहब बिनती को अकेले नहीं छोड़ सकते।

अविश्वास आदमी की प्रवृत्तियों को जितना बिगाड़ता है, विश्वास आदमी को उतना ही बनाता है। डॉक्टर साहब चन्दर पर जितना विश्वास करते थे, सुधा चन्दर पर जितना विश्वास करती थी और इधर बिनती उस पर जितना विश्वास करने लगी थी उसके कारण चन्दर के चरित्र में इतनी दृढ़ता आ गयी थी कि वह फौलाद बन गया था। ऐसे अवसरों पर जब मनुष्य को गम्भीरतम उत्तरदायित्व सौंपा जाता है तब स्वभावतः आदमी के चरित्र में एक विचित्र-सा निखार आ जाता है। यह निखार चन्दर के चरित्र में बहुत उभरकर आया था और यहाँ तक कि बुआजी अपनी लड़की पर अविश्वास कर सकती थीं, वह भी चन्दर को देवता ही मानती थीं, बिनती पर और

चाहे जो बन्धन हो लेकिन चन्दर के हाथ में बिनती को छोड़कर वे निश्चिंत थीं।

डॉक्टर साहब और चन्दर बैठे बातें कर ही रहे थे कि विनती ने आकर कहा, "चलिए, मास्टर साहब आपका इन्तजार कर रहे हैं !" चन्दर उठ खड़ा हुआ। रास्ते में बिनती बोली, "हमसे बहुत नाराज हैं। कहते हैं तुम्हें हम ऐसा नहीं समझते थे !" चन्दर कुछ नहीं बोला। जाकर बिसरिया के सामने कुर्सी पर बैठ गया। "तुम जाओ, बिनती !" बिनती चली गयी तो चन्दर ने कहा, बहुत गम्भीर स्वरों में, "बिसरिया साहब, आपका संग्रह देखकर बहुत खुशी हुई लेकिन मेरे मन में सिर्फ एक शंका है। यह 'बिनती' नाम के क्या माने हैं ?"

बिसरिया ने अपने गले की टाई ठीक की, वह गरमी में भी टाई लगाता था, और दिन में नाइट कैप पहनता था। टाई ठीक कर, खँखारकर बोला, "मैं भी यही समझता था कि आपको यह गलत-फहमी होगी। लेकिन वास्तविक बात यह है कि मुझे मध्यकाल की कविता बहुत पसन्द है, खास तौर से उसमें बिनती (प्रार्थना) शब्द बड़ा मधुर है। मैंने यह संग्रह तो बहुत पहले तैयार किया था। मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ जब मैं बिनती से मिला। मैंने उनसे कहा कि यह संग्रह भी बिनती नाम का है। फिर मैंने उन्हें लाकर दिखला दिया।"

चन्दर मुसकराया और मन-ही-मन कहा, 'है बिसरिया बहुत चालाक। लेकिन खैर मैं हार नहीं मान सकता।' और बहुत गम्भीर होकर बैठ गया।

"तो यह संग्रह इस लड़की के नाम पर नहीं है ?"

"बिलकुल नहीं।"

"और बिनती के लिए आपके मन में कहीं कोई आकर्षण नहीं ?"

"बिलकुल नहीं। छिः, आप मुझे क्या समझते हैं !" बिसरिया बोला।

"छिः, मैं भी कैसा आमदी हूँ, माफ करना बिसरिया ! मैंने व्यर्थ में शक किया।"

विसरिया यह नहीं जानता था कि यह दाँव इतना सफल होगा। वह खुशी से फूल उठा। सहसा चन्दर ने एक गहरी साँस ली।

"क्या बात है, चन्दर बाबू ?" बिसरिया ने पूछा।

"कुछ नहीं बिसरिया, आज तक मुझे तुम्हारी प्रतिभा, तुम्हारी भावना, तुम्हारी कला पर विश्वास था, आज से उठ गया।"

"क्यों ?"

"क्यों क्या ? अगर बिनती-जैसी लड़की के साथ रहकर भी तुम उसके आन्तरिक सौन्दर्य से अपनी कला को अभिसिंचित न कर सके तो तुम्हारे मन में कलात्मकता है; यह मैं विश्वास नहीं कर पाता। तुम जानते हो, मैं पुराने विचारों का संकीर्ण, बड़ा बुजुर्ग तो हूँ नहीं, मैं भी भावनाओं को समझता हूँ। मैं सौन्दर्य-पूजा या प्यार को पाप नहीं समझता और मुझे तो बहुत खुशी होती यह जानकर कि तुमने ये कविताएँ बिनती पर लिखी हैं, उसकी प्रेरणा से लिखी हैं। यह मत समझना कि

मुझे इससे जरा भी बुरा लगता। यह तो कला का सत्य है। पाश्चात्य देशों में तो लोग हर कवि को प्रेरणा देने वाली लड़कियों की खोज में वर्षों बिता देते हैं, उसकी कविता से ज्यादा महत्त्व उसकी कविता के पीछे रहने वाले व्यक्तित्व को देते हैं। हिन्दोस्तान में पता नहीं क्यों हम नारी को इतना महत्त्वहीन समझते हैं, या डरते हैं, या हममें इतना नैतिक साहस नहीं है। तुम्हारा स्वभाव, तुम्हारी प्रतिभा किसी हालत में मुझे विदेश के किसी कवि से कम नहीं लगती। मैंने सोचा था, जब तुम अपनी कविताओं के प्रेरणात्मक व्यक्तित्व का नाम घोषित करोगे तो सारी दुनिया बिनती को और हमारे परिवार को जान जायेगी। लेकिन खैर, मैंने गलत सभझा था कि बिनती तुम्हारी प्रेरणा-बिन्दु थी।" और चन्दर चुपचाप गम्भीरता से बिसरिया के संग्रह के पृष्ठ उलटने लगा।

बिसरिया के मन में कितनी उथल-पुथल मची हुई थी। चन्दर का मन इतना विशाल है, यह उसे कभी नहीं मालूम था। यहाँ तो कुछ छिपाने की जरूरत ही नहीं और जब चन्दर इतनी स्पष्ट बातें कर रहा है तो बिसरिया क्यों छिपाये।

"कपूर, मैं तुमसे कुछ नहीं छिपाऊँगा। मैं कह नहीं सकता कि बिनती जी मेरे लिए क्या हैं। शेक्सपीयर की मिराण्डा, प्रसाद की देवसेना, डाण्टे की बीएत्रिस, कीट्स की फैनी और सूर की राधा से बढ़कर माधुर्य अगर मुझे कहीं मिला है तो बिनती में। इतना, इतना डूब गया मैं बिनती में कि एक कविता भी नहीं लिख पाया। मेरा संग्रह छपने जा रहा था तो मैंने सोचा कि इसका नाम ही क्यों न 'बिनती' रखूँ।"

चन्दर ने बड़ी मुश्किल से अपनी हँसी रोकी। दरवाजे के पास छिपी खड़ी हुई बिनती खिलखिलाकर हँस पड़ी। चन्दर बोला—"नाम तो 'बिनती' बहुत अच्छा सोचा तुमने, लेकिन सिर्फ एक बात है। मेरे जैसे विचार के लोग सभी नहीं होते। अगर घर के और लोगों को यह मालूम हो गया, मसलन डॉक्टर साहब को, तो वह न जाने क्या कर डालेंगे। इन लोगों को कविता और उसकी प्रेरणा का महत्त्व ही नहीं मालूम। उस हालत में अगर तुम्हारी बहुत बेइज्जती हुई तो न हम कुछ बोल पायेंगे न बिनती। और तुम्हारे जैसा महान् कवि , मेरा मतलब जो आगे चलकर होने जा रहा है उसे डॉक्टर साहब पुलिस को सौंप दें, यह अच्छा नहीं लगता। वैसे मेरी राय है कि तुम बिनती ही नाम रखो; बड़ा नया नाम है; लेकिन यह समझ लो कि डॉक्टर साहब बहुत सख्त हैं इस मामले में।"

बिसरिया की समझ में नहीं आता था कि वह क्या करे। थोड़ी देर तक सिर खुजलाता रहा, फिर बोला—"क्या राय है कपूर तुम्हारी ? अगर मैं कोई दूसरा नाम रख दूँ तो कैसा रहेगा ?"

"बहुत अच्छा रहेगा और सुरक्षित रहेगा। अभी अगर तुम बदनाम हो गये तो आगे तुम्हारी उन्नति के सभी मार्ग बन्द हो जायेंगे। आदमी प्रेम करे मगर जरा सोच-समझकर; मैं तो इस पक्ष में हूँ।"

"भावना को कोई नहीं समझता इस दुनिया में। कोई नहीं समझता हम

कलाकारों की कितनी मुसीबत है।" एक गहरी साँस लेकर बिसरिया बोला—"लेकिन खैर ! अच्छा तो कपूर, क्या राय है तुम्हारी ? मैं क्या नाम रखूँ इसका ?"

चन्दर गम्भीरता से सिर झुकाये थोड़ी देर तक सोचता रहा। फिर बोला—"तुम्हारी कविताओं में बहुत रस है। कैसा रहे अगर तुम इसका नाम 'गड़ेरियाँ' रखो !"

"क्या ?" बिसरिया ताज्जुब से बोला।

"हाँ-हाँ गड़ेरियाँ, मेरा मतलब है गन्ने की गड़ेरियाँ !" दरवाजे के पीछे बिनती से न रहा गया और खिलखिलाकर हँस पड़ी और सामने आ गयी। चन्दर भी अट्टहास कर पड़ा।

बिसरिया क्षण-भर आँख फाड़े दोनों की ओर देखता रहा। उसके बाद वह ज्यों ही मजाक समझा, उसका चेहरा लाल हो गया। हैट उठाकर बोला—"अच्छा, आप लोग मजाक बना रहे थे मेरा। कोई बात नहीं, मैं देखूँगा। मिस्टर कपूर, आप अपने को क्या समझते हैं ?" वह चल दिया।

"अरे सुनो, बिसरिया !" चन्दर ने पुकारा, वह हँसी नहीं रोक पा रहा था। बिसरिया मुड़ा। मुड़कर बोला—"कल से मैं पढ़ाने नहीं आ सकता। मैं आपकी शकल भी नहीं देखना चाहता।" उसने बिनती से कहा।

"तो मुँह फेरकर पढ़ा दीजिएगा।" चन्दर बोला। बिनती फिर हँस पड़ी। बिसरिया ने मुड़कर बड़े गुस्से से देखा और पैर पटकते हुए चला गया।

"बेचारे कवि, कलाकार आज की दुनिया में प्यार भी नहीं कर पाते।" चन्दर ने कहा और दोनों की हँसी बहुत देर तक गूँजती रही।

अगस्त की उदास शाम थी, पानी रिमझिमा रहा था और डॉक्टर शुक्ला के सूने बँगले के बरामदे में कुरसी डाले, लॉन पर छोटे-छोटे गड्ढों में पंख धोती और कुलेंले करती हुई गौरैयों की तरफ अपलक देखता हुआ चन्दर जाने किन खयालों में डूबा हुआ था। डॉक्टर साहब सुधा को लिवाने के लिए शाहजहाँपुर गये थे। बिनती भी जिद करके उनके साथ गयी थी। वहाँ से ये लोग दिल्ली घूमने के लिए चले गये थे लेकिन आज पन्द्रह रोज हो गये उन लोगों का कोई खत नहीं आया था। डॉक्टर साहब ने ब्यूरो को महज एक अर्जी भेज दी थी। चन्दर को डॉक्टर साहब के जाने के पहले ही कॉलेज में जगह मिल गयी थी और उसने क्लास लेने शुरू कर दिये थे। वह अब इसी बँगले में आ गया था। सुबह तो क्लास के पाठ की तैयारी करने और नोट्स बनाने में कट जाती थी, दोपहर कॉलेज में कट जाती थी लेकिन शामें बड़ी उदास गुजरती थीं और

फिर पन्द्रह दिन से सुधा का कोई भी खत नहीं आया। वह उदास बैठा सोच रहा था।

लेकिन यह उदासी थी, दुख नहीं था। और वह भी उदासी, एक देवता की उदासी जो दुख भरी न होकर सुन्दर और सुकुमार अधिक होती है। एक बात जरूर थी। जब कभी वह उदास होता था तो जाने क्यों वह यह हमेशा सोचने लगता था कि उसके जीवन में जो कुछ हो गया है उस पर उसे गर्व करना चाहिए जैसे वह अपनी उदासी को अपने गर्व से मिटाने का प्रयास करता था। लेकिन इस वक्त एक बात रह-रहकर उभर आती थी उसके मन में, "सुधा ने खत क्यों नहीं लिखा ?"

पानी बिलकुल बन्द हो गया था। पश्चिम के दो-एक बादल खुल गये थे। और पके जामुन के रंग के एक बहुत बड़े बादल के पीछे से डूबते सूरज की उदास किरणें झाँक रही थीं। इधर की ओर एक इन्द्रधनुष खिल गया था जो मोटर गैरेज की छत से उठकर दूर पर युक्लिप्टस की लम्बी शाखों में उलझ गया था।

इतने में छाता लगाये पोस्टमैन आया, उसने पोर्टिको में अपने जूतों में लगी कीचड़ झाड़ी, पैर पटके और किरमिच के झोले से खत निकाले और सीढ़ी पर फैला दिये। उनमें से ढूँढ़कर तीन लिफाफे निकाले और चन्दर को दे दिये। चन्दर ने लपककर लिफाफे ले लिये। पहला लिफाफा बुआ का था बिनती के नाम, दूसरा था ओरियण्टल इन्श्योरेन्स का लिफाफा डॉक्टर साहब के नाम और तीसरा एक सुन्दर-सा नीला लिफाफा। यह सुधा का होगा। पोस्टमैन जा चुका था। उसने इतने प्यार से लिफाफे को चूमा जितने प्यार से डूबता हुआ सूरज नीली घटाओं को चूम रहा था। "पगली कहीं की ! परेशान कर डालती है। यहाँ थी तो वही आदत, वहाँ है तो वही आदत !" चन्दर ने मन में कहा और लिफाफा खोल डाला।

लिफाफा पम्मी का था, मसूरी से आया। उसने झल्लाकर लिफाफा फेंक दिया। सुधा कितनी लापरवाह है। वह जानती है कि चन्दर को यहाँ कैसा लग रहा होगा। बिनती ने बता दिया होगा फिर भी वही लापरवाही ! मारे गुस्से के···

थोड़ी देर बाद उसने पम्मी का खत पढ़ा। छोटा-सा खत था। पम्मी अभी मसूरी में ही है, अक्टूबर तक आयेगी। लगभग सभी यात्री जा चुके हैं लेकिन उसे पहाड़ों की बरसात बहुत अच्छी लग रही है। बर्टी इलाहाबाद चला गया है। उसके साथ वहाँ से एक पहाड़ी ईसाई लड़की भी गयी है। बर्टी कहता है कि वह उसके साथ शादी करेगा। बर्टी अब बहुत स्वस्थ है। चन्दर चाहे तो जाकर बर्टी से मिल ले।

सुधा के खत के न आने से चन्दर के मन में बहुत बेचैनी थी। उसे ठीक से मालूम भी नहीं हो पा रहा था कि ये लोग हैं कहाँ ? बर्टी के आने की खबर मिलने पर उसे सन्तोष हुआ, चलो एक दिन बर्टी से ही मिल आयेंगे, अब देखें कैसे हैं वह ?

तीसरे या चौथे दिन जब अकस्मात् पानी बन्द था तो वह कार लेकर बर्टी के यहाँ गया। बरसात में इलाहाबाद की सिविल लाइन्स का सौन्दर्य और भी निखर आता है। रूखे-सूखे फुटपाथों और मैदानों पर घास जम जाती है; बँगले की उजाड़ चहारदीवारियाँ तक हरी-भरी हो जाती हैं। लम्बे और घने पेड़ और झाड़ियाँ निखरकर,

धुलकर हरे मखमली रंग की हो जाती हैं और कोलतार की सड़कों पर थोड़ी-थोड़ी पानी की चादर-सी लहरा उठती है जिसमें पेड़ों की हरी छायाएँ बिछ जाती हैं। बँगले में पली हुई बत्तखों के दल सड़क पर चलती हुई मोटरों को रोक लेते हैं और हर बँगले में से रेडियो या ग्रामोफोन के संगीत की लहरें मचलती हुई वातावरण पर छा जाती हैं।

कॉलेज से लौटकर, एक प्याला चाय पीकर, कार लेकर चन्दर बर्टी के यहाँ चल दिया। वह बहुत दिन बाद बर्टी को देखने जा रहा है। जितने व्यक्तियों को उसने अपने जीवन में देखा था, बर्टी शायद उन सभी से निराला था, अद्‌भुत था। लेकिन कितना अभागा था। नहीं, अभागा नहीं कमजोर था बर्टी। और वही क्या कमजोर था, यह सारी दुनिया कितनी कमजोर है।

बर्टी का बँगला आ गया था। वह उतरकर अन्दर गया। बाहर कोई नहीं था। बरामदे में एक पिंजरा टँगा हुआ था जिसमें एक बहुत छोटा तोते का बच्चा टँगा था। चन्दर भीतर जाने में हिचक रहा था क्योंकि एक तो पम्मी नहीं थी और दूसरे कोई और लड़की भी बर्टी के साथ आयी थी, बर्टी की भावी पत्नी। चन्दर ने आवाज दी। अन्दर कोई बहुत भारी पुरुष-स्वर में एक साधारण गीत गा रहा था। चन्दर ने फिर आवाज दी। बर्टी बाहर आया। चन्दर उसे देखकर दंग रह गया, बर्टी का चेहरा भर गया था, जवानी लौट आयी थी, पीलेपन की बजाय चेहरे पर खून दौड़ गया था, सीना उभर आया था। बर्टी खाकी रंग का कोट, बहुत मोटा खाकी हैट, खाकी ब्रिचेज, शिकारी बूट पहने हुए था और कन्धे पर बन्दूक लटक रही थी। वह आया ड्राइंगरूम के दरवाजे पर पीठ झुकाकर एक हाथ से बन्दूक पकड़कर और एक हाथ आँखों के आगे रखकर उसने इस तरह देखा जैसे वह शिकार ढूँढ़ रहा हो। चन्दर के प्राण सूख गये। उसने मन-ही-मन सोचा, पहली बार तो वह कुश्ती में बर्टी से जीत गया था, लेकिन अबकी बार जीतना मुश्किल है। कहाँ बेकार फँसा आकर। उसने घबरायी हुई आवाज में कहा—

"यह मैं हूँ मिस्टर बर्टी, चन्दर कपूर, पम्मी का मित्र !"

"हाँ-हाँ, मैं जानता हूँ।" बर्टी तनकर खड़ा हो गया और हँसकर बोला, "मैं आपको भूला नहीं; मैं तो आपको यह दिखला रहा था कि मैं पागल नहीं हूँ, शिकारी हो गया हूँ।" और उसने चन्दर के कन्धे पकड़ कर इतना जोर से झकझोर दिया कि चन्दर की पसलियाँ चरमरा उठीं। "आओ !" उसने चन्दर के कन्धे दबाकर बरामदे की ही कोच पर बिठा दिया और सामने कुरसी पर बैठता हुआ बोला—"मैं तुम्हें अन्दर ले चलता, लेकिन अन्दर जेनी है और एक मेरा मित्र। दोनों बातें कर रहे हैं। आज जेनी की सालगिरह है। तुम जेनी को जानते हो न ? वह तराई के कस्बे में रहती थी। मुझे मिल गयी। बहुत खराब औरत है ! मैं तन्दुरुस्त हो गया हूँ न !"

"बहुत, मुझे ताज्जुब है कि तन्दुरुस्ती के लिए तुमने क्या किया तीन महीने तक !"

"नफरत, मिस्टर कपूर ! औरतों से नफरत। उससे ज्यादा अच्छा टॉनिक तन्दुरुस्ती के लिए कोई नहीं है।"

"लेकिन तुम तो शादी करने जा रहे हो, लड़की ले आये हो वहाँ से।"

"अकेली लड़की नहीं, मिस्टर ! मैं वहाँ से दो चीज लाया हूँ। एक तो यह तोते का बच्चा और एक जेनी, वही लड़की। तोते को मैं बहुत प्यार करता हूँ, यह बड़ा हो जायेगा, बोलने लगेगा तो इसे गोली मार दूँगा और लड़की से मैं बहुत नफरत करता हूँ, इससे शादी कर लूँगा ! क्यों, है न ठीक ? इसको शिकार का चाव कहते हैं और अब मैं शिकारी हूँ न !"

चन्दर हाँ कहे या न कहे। अभी बर्टी का दिमाग बिलकुल वैसा ही है, इसमें कोई शक नहीं। वह क्या बात करे ? अन्त में बोला—

"यह बन्दूक तो उतारकर रखिए। हमेशा बाँधे रहते हैं !"

"हाँ, और क्या ? शिकार का पहला सिद्धान्त है कि जहाँ खतरा हो, जंगली जानवर हों वहाँ कभी बिना बन्दूक के नहीं जाना चाहिए ?" और बहुत धीमे से चन्दर के कान में बर्टी बोला—"तुम जानते हो चन्दर, एक औरत है जो चौबीस घण्टे घर में रहती है। मैं तो एक क्षण को बन्दूक अलग नहीं रखता।"

सहसा अन्दर से कुछ गिरने की आवाज आयी, कोई चीखा और लगा जैसे कोई चीज पियानो पर गिरी और परदों को तोड़ती हुई नीचे आ गयी। फिर कुछ झगड़ों की आवाज आयी।

चन्दर चौंक उठा, "क्या बात है बर्टी, देखो तो !"

बर्टी ने हाथ पकड़कर चन्दर को खींच लिया—"बैठो, बैठो ! अन्दर मेरे मित्र और जेनी सालगिरह मना रहे हैं, अन्दर मत जाना !"

"लेकिन यह आवाजें कैसी हैं ?" चन्दर ने चिन्ता से पूछा।

"शायद वे लोग प्रेम कर रहे होंगे !" बर्टी बोला और निश्चिन्तता से बैठ गया।

और क्षण-भर वाद उसने अजव-सा दृश्य देखा। एक बर्टी का ही हमउम्र आदमी हाथ से माथे का खून पोंछता हुआ आया। वह नशे में चूर था। और बहुत भद्दी गालियाँ देता हुआ चला जा रहा था। वह गिरता-पड़ता आया और उसने बर्टी को देखते ही घूँसा ताना—"तुमने मुझे धोखा दिया। मुझसे पचास रुपये उपहार ले लिया···मैं अभी तुम्हें बताता हूँ ।" चन्दर स्तब्ध था। क्या करे क्या न करे ? इतने में अन्दर से जेनी निकली। लम्बी-तगड़ी, कम-से-कम तीस वर्ष की औरत। उसने आते ही पीछे से उस आदमी की कमीज पकड़ी और उसे सीढ़ी के नीचे कीचड़ में ढकेल दिया और सैकड़ों गाली देते हुए बोली—"जा सीधे, वरना हड्डी नहीं बचेगी यहाँ।" वह फिर उठा तो खुद भी नीचे कूद पड़ी और घसीटती हुई दरवाजे के बाहर ढकेल आयी।

बर्टी साँस रोके अपराधी-सा खड़ा था। वह लौटी और बर्टी का कालर पकड़ लिया—"···मैं निर्दोष हूँ ! मैं कुछ नहीं जानता !" सहसा जेनी ने चन्दर की ओर देखा—"हूँ, यह भी तुहारा दोस्त है। अभी बताती हूँ !" और जो वह चन्दर की ओर बढ़ी तो चन्दर

ने मन-ही-मन पम्मी का स्मरण किया। कहाँ फँसाया उस कमबख्त ने खत लिखकर। ज्यों ही जेनी ने चन्दर का कालर पकड़ा कि बर्टी बड़े कातर स्वर में बोला–"उसे छोड़ दो ! वह मेरा नहीं पम्मी का मित्र है !" जेनी रुक गयी। "तुम पम्मी के मित्र हो ? अच्छा बैठ जाओ, बैठ जाओ, तुम शरीफ आदमी मालूम पड़ते हो। मगर आगे से तुम्हारा कोई मित्र आया तो मैं उसकी हत्या कर डालूँगी। समझे कि नहीं, बर्टी ?"

बर्टी ने सिर हिलाया–"हाँ, समझ गये !" जेनी अन्दर चल दी, फिर सहसा बाहर आयी और बर्टी को पकड़कर घसीटती हुई बोली–"पानी बरस रहा है, इतनी सर्दी बढ़ रही है और तुमने स्वेटर नहीं पहना, चलो पहनो, मरने की ठानी है। मैं साफ बताये देती हूँ चाहे दुनिया इधर की उधर हो जाये, मैं बिना शादी किये मरने नहीं दूँगी तुम्हें।" और वह बकरे की तरह बर्टी का कान पकड़कर अन्दर घसीट ले गयी।

चन्दर ने मन में कहा, यह कुछ इस रहस्यमय बँगले का असर है कि हरेक का दिमाग खराब ही मालूम देता है। दो मिनट बाद जब बर्टी लौटा तो उसके गले में गुलबन्द, ऊनी स्वेटर, ऊनी मोजे थे। वह हाँफता हुआ आकर बैठ गया।

"मिस्टर कपूर ! तुम्हें मानना होगा कि यह लड़की, यह डाइन जेनी बहुत क्रूर है।"

"मानता हूँ, बर्टी ! सोलहों आने मानता हूँ।" चन्दर ने मुसकराहट रोककर कहा–"लेकिन यह झगड़ा क्या है ?"

"झगड़ा क्या होता है ? औरतों को समझना बहुत मुश्किल है।"

"इस औरत के फन्दे में फँसे कैसे तुम ?" चन्दर ने पूछा।

"शी ! शी !" होंठ पर हाथ रखकर धीरे बोलने का इशारा करते हुए बर्टी ने कहा–"धीरे बोलो। बात ऐसी हुई कि जब मैं तराई में शिकार खेल रहा था तो एक बार अकेले छूट गया ! यह एक पेन्शनर फॉरेस्ट गार्ड की अनब्याही लड़की थी। शिकार में बहुत होशियार। मैं भटकते हुए पहुँचा तो इसका बाप बीमार था। मैं रुक गया। तीसरे दिन वह मर गया। उसे जाने कौन-सा रोग था कि उसका चेहरा बहुत डरावना हो गया था और पेट फूल गया था। रात को इसे बहुत डर लगा तो यह मेरे पास आकर लेट गयी। बीच में बन्दूक रखकर हम लोग सो गये। रात को इसने बीच से बन्दूक हटा दी और अब वह कहती है कि मुझी से ब्याह करेगी और नहीं करूँगा तो मार डालेगी। पम्मी भी मुझसे बोली–तुम्हें अब ब्याह करना ही होगा। अब मजबूरी है, मिस्टर कपूर !"

चन्दर चुप बैठा सोच रहा था, कैसी विचित्र जिन्दगी है इस अभागे की ! मानो प्रकृति ने सारे आश्चर्य इसी की किस्मत के लिए छोड़ रखे थे। फिर बोला–

"यह आज क्या झगड़ा था ?"

"कुछ नहीं। आज इसकी सालगिरह थी। यह बोली–मुझे कुछ उपहार दो। मैं बहुत देर तक सोचता रहा। क्या दूँ इसे ? कुछ समझ ही में नहीं आया। बहुत देर सोचने के बाद मैंने सोचा–मैं तो इसका पति होने जा रहा हूँ। इसे एक प्रेमी उपहार में दे दूँ। मैंने एक मित्र से कहा कि तुम मेरी भावी पत्नी से आज शाम को प्रेम कर सकते हो ? वह राजी हो गया, मैं ले आया।"

चन्दर जोर से हँस पड़ा।

"हँसो मत, हँसो मत, मिस्टर कपूर !" बर्टी बहुत गम्भीर बनकर बोला—"इसका मतलब यह है कि तुम औरतों को समझते नहीं। देखो, एक औरत उसी चीज को ज्यादा पसन्द करती है, उसी के प्रति समर्पण करती है जो उसकी जिन्दगी में नहीं होता। मसलन एक औरत है जिसका ब्याह हो गया है, या होने वाला है, उसे यदि एक नया प्रेमी मिल जाये तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता। वह अपने पति की बहुत कम परवा करेगी अपने प्रेमी के सामने। और अगर क्वाँरी लड़की है तो वह अपने प्रेमी की भावनाओं की पूरी तौर से हत्या कर-सकती है यदि उसे एक पति मिल जाये तो ! मैं तो समझता हूँ कि कोई भी पति अपनी पत्नी को यदि कोई अच्छा उपहार दे सकता है तो वह है एक नया प्रेमी और कोई भी प्रेमी अपनी रानी को यदि कोई अच्छा उपहार दे सकता है तो वह यह कि उसे एक पति प्रदान कर दे। तुम्हारी अभी शादी तो नहीं हुई ?"

"न !"

"तो तुम प्रेम तो जरूर करते होगे··· न, सिर मत हिलाओ··मैं यकीन नहीं कर सकता···। मैं इतनी सलाह तुम्हें दे रहा हूँ, कि अगर तुम किसी लड़की से प्यार करते हो तो ईश्वर के वास्ते उससे शादी मत करना—तुम मेरा किस्सा सुन चुके हो। अगर दिल से प्यार करना चाहते हो और चाहते हो कि वह लड़की जीवन-भर तुम्हारी कृतज्ञ रहे तो तुम उसकी शादी करा देना···यह लड़कियों के सेक्स जीवन का अन्तिम सत्य है··· !हा !हा !हा !" बर्टी हँस पड़ा।

चन्दर को लगा जैसे आग की लपट उसे तपा रही है। उसने भी तो यही किया है सुधा के साथ जिसे बर्टी कितने विचित्र स्वरों में कह रहा है। उसे लगा जैसे इस प्रेत-लोक में सारा जीवन विकृत दिखाई देता है। वहाँ साधना की पवित्रता भी कीचड़ और पागलपन में उलझकर गन्दी हो जाती है। छिः, कहाँ बर्टी की बातें और कहाँ उसकी सुधा···

वह उठ खड़ा हुआ। जल्दी से विदा माँगकर इस तरह भागा जैसे उसके पैरों के नीचे अंगारे छिपे हों।

फिर उसे नींद नहीं आयी। चैन नहीं आया। रात को सोया तो वह बार-बार चौंक-सा उठा। उसने सपना देखा, एक बहुत बड़ा कपूर का पहाड़ है। बहुत बड़ा। मुलायम कपूर की बड़ी-बड़ी चट्टानें और इतनी पवित्र खुशबू कि आदमी की आत्मा बेले का फूल बन जाये। वह और सुधा उन सौरभ की चट्टानों के बीच चढ़ रहे हैं। केवल वह है और सुधा···सुधा सफेद बादलों की साड़ी पहने है और चन्दर किरनों की चादर लपेटे है। जहाँ-जहाँ चन्दर जाता है, कपूर की चट्टानों पर इन्द्रधनुष खिल जाते हैं और सुधा अपने बादलों के आँचल में इन्द्रधनुष के फूल बटोरती चलती है।

सहसा एक चट्टान हिली और उसमें से एक भयंकर प्रेत निकला। एक सफेद कंकाल— जिसके हाथ में अपनी खोपड़ी और एक हाथ में जलती मशाल और उस मुण्डहीन कंकाल ने खोपड़ी हाथ में लेकर चन्दर को दिखायी। खोपड़ी हँसी और बोली—"देखो, जिन्दगी का अन्तिम सत्य यह है। यह !" और उसने अपने हाथ की

मशाल ऊँची कर दी। "यह कपूर का पहाड़, यह बादलों की साड़ी, यह किरनों का परिधान, यह इन्द्रधनुष के फूल, यह सब झूठे हैं। और यह मशाल, जो अपने एक स्पर्श में इस सबको पिघला देगी।"

और उसने अपनी मशाल एक ऊँचे शिखर से छुआ दी। वह शिखर धधक उठा। पिघलती हुई आग की एक धार बरसाती नदी की तरह उमड़कर बहने लगी।

"भागो, सुधा !" चन्दर ने चीखकर कहा—"भागो !"

सुधा भागी, चन्दर भागा और वह पिघली हुई आग की महानदी लहराते हुए अजगर की तरह उन्हें अपनी गुंजलिका में लपेटने के लिए चल पड़ी। शैतान हँस पड़ा—"हा ! हा ! हा !" चन्दर ने देखा, सुधा शैतान की गोद में थी।

चन्दर चौंककर जाग गया। पानी बन्द था लेकिन घनघोर अँधेरा था। और पिशाचनी की तरह पागल हवा पेड़ों को झकझोर रही थी जैसे युग के जमे हुए विश्वासों को उखाड़ फेंकना चाहती हो। चन्दर काँप रहा था, उसका माथा पसीने से तर था।

वह उठकर नीचे आया। उसके कदम ठीक नहीं पड़ रहे थे। बरामदे की बत्ती जलायी। महराजिन उठी—"का है भइया !" उसने पूछा।

"कुछ नहीं, अन्दर सोऊँगा।" चन्दर ने कहा और सुधा के कमरे में जाकर बत्ती जलायी। सुधा की चारपाई पर लेट गया। फिर उठा, चारों ओर के दरवाजे बन्द कर दिये कि कहीं कोई फिर ऐसा सपना बाहर के भंयकर अँधेरे में से न चला आये।

लेकिन बर्टी की बातों से अन्दर-ही-अन्दर उसके मन में जाने कहाँ क्या टूट गया जो फिर बन नहीं पाया। अभी तक उसे अपने पर गर्व था, विश्वास था, अब कभी-कभी वह अपने व्यक्तित्व का विश्लेषण करने लगा था। अब वह कभी-कभी अपने विश्वासों पर सिर ऊँचा करने के बजाय उन्हें सामने फेंक देता और एक निरपेक्ष वैज्ञानिक की तरह उनकी चीर-फाड़ करता, उनकी शव-परीक्षा किया करता। अभी तक उसके विश्वास का सम्बल था, अब किसी ने उसे तर्क का अस्त्र-शस्त्र दे दिया था। जाने किस राक्षसी प्रेरणा से उसने अपनी आत्मा को चीरना शुरू किया। और इस तर्क-वितर्क और अविश्वास के भयंकर जल-प्रलय की एक लहर ने उसे एक दिन नरक के किनारे ले जा पटका।

सुधा का खत आया था। दिल्ली में पापा अपने कुछ काम से रुके थे और सुधा की तबीयत खराब हो गयी थी। अब वह दो-तीन रोज में आ जायेगी।

लेकिन चन्दर के मन पर एक अजब-सा असर हुआ था इस खत का। सुधा का पत्र नहीं आया था, सुधा दूर थी तब वह खुश था, वह उल्लसित था। सुधा का पत्र

आते ही सहसा वह उदास हो गया। उदास तो क्या उसे उबकाई-सी आने लगी। उसे यह सब सहसा, पता नहीं क्यों एक नाटक-सा लगने लगा था, एक बहुत सस्ता, नीचे स्तर का नाटक। उसे लगता था—ये सब चारों ओर का त्याग, साधन, सौन्दर्य, यह सब झूठ है। सुधा भी अन्ततोगत्वा वही साधारण लड़की है जो क्वाँरे जीवन में पति और विवाहित जीवन में प्रेमी की भूखी होती है।

वह भी शैतान से पूर्णतया हारा नहीं था। वह लड़ने की कोशिश करता था लेकिन वह हार रहा था, यह भी उसे मालूम था। और चन्दर के जिस गर्व ने उसकी जीत में साथ दिया था, वही गर्व उसकी हार में साथ दे रहा था। उसने मन में सोच लिया कि वह सुधा से, सभी लड़कियों से, इस सारे नाटक से नफरत करता है। सुधा का विवाह होना ही था, सुधा को विवाह करना था, सुधा के आँसू झूठे थे, अगर चन्दर सुधा को न भी समझाता तो घूम-फिर सुधा विवाह करती ही।

तब फिर विश्वास काहे का ? त्याग काहे का ?

विश्वास टूट चुका था, गर्व जिन्दा था, गर्व घमण्ड में बदल गया था, घमण्ड नफरत में, और नफरत नसों को चूर-चूर कर देने वाली उदासी में।

सुधा जब आयी तो उसने चन्दर को बिलकुल बदला हुआ पाया। एक बात और हुई जिसने और भी आग सुलगा दी। यह लोग दोपहर को एक बजे के लगभग आये जब कि चन्दर कॉलेज गया था। पापा तो आते ही नहा-धोकर सोने चले गये। सुधा और बिनती ने आते ही अपने कमरे की सफाई शुरू की। कमरे की सारी किताबें झाड़ीं, कपड़े ठीक किये, मेजें साफ कीं और उसके बाद कमरा धोने में लग गयीं। बिनती बाल्टी में पानी भर-भरकर लाने लगी और सुधा झाड़ू से फर्श धोने लगी। हाथों में चूड़े अब भी थे, पाँव में बिछिया और माँग में सिन्दूर—चेहरा बहुत पीला पड़ गया था सुधा का; चेहरे की हड्डियाँ निकल आयी थीं और आँखों की रोशनी भी मैली पड़ गयी थी। वह जाने क्यों कमजोर भी हो गयी थी।

झाड़ू लगाते-लगाते सुधा बिनती से बोली—"आज मालूम पड़ता है कि मैं आदमी हूँ ! कल तक तो हैवान थी। पापा को भी जाने क्या सूझा कि इन्हें भी साथ दिल्ली ले गये। मैं तो शरम से मरी जाती थी।"

थोड़ी देर बाद चन्दर आया। बाहर ही उसे मालूम हो गया था कि सब लोग आ गये हैं। उसे जाने क्यों ऐसा लग रहा था कि वह उलटे लौट जाये, वह अगर इस घर में गया तो जाने उससे क्या अनर्थ हो जायेगा, लेकिन वह बढ़ता ही गया। स्टडी-रूम में डॉक्टर साहब सो रहे थे। वह लौटा और अपने कपड़े उतारने के लिए ड्राइंग-रूम की ओर चला। सुधा ने ज्यों ही आहट पायी, वह फौरन झाड़ू फेंककर भागी, सिर खुला, धोती कमर में खुँसी हुई, हाथ गन्दे, बाल बिखरे और बेतहाशा दौड़कर चन्दर से लिपट गयी और बच्चों की भोली हँसी हँसकर बोली—"चन्दर, चन्दर ! हम आ गये, अब बताओ ?" और चन्दर को इस तरह कस लिया कि अब कभी छोड़ेगी नहीं।

"छिः, दूर हटो, सुधा ! यह क्या नाटक करती हो ! आज तुम बच्ची नहीं हो !"

और सुधा को बड़ी रुखाई से परे हटाकर अपने कोट पर से सुधा के हाथ से लगी हुई मिट्टी झाड़ते हुए चन्दर चुपचाप अपने कमरे में चला गया।

सुधा पर जैसे बिजली गिर पड़ी हो। वह पत्थर की तरह खड़ी रही। फिर जैसे लड़खड़ाती हुई अपने कमरे में गयी और चारपाई पर लेटकर फूट-फूटकर रोने लगी। चन्दर सुधा से नहीं ही बोला। डॉक्टर साहब के जगते ही उनसे बातें करने लगा, शाम को वह साइकिल लेकर घूमने निकल गया। लौटकर ऊपर छत पर चला गया और बिनती को पुकारकर कहा—"अगर तकलीफ न हो तो जरा ऊपर खाना दे जाओ।"

बिनती ने थाली लगायी और सुधा से कहा—"लो दीदी ! दे आओ !" सुधा ने सिर हिलाकर कहा—"तू ही दे आ ! मैं अब कौन रह गयी उनकी।" बिनती के बहुत समझाने पर सुधा ऊपर खाना ले गयी। चन्दर लेटा था गुमसुम। सुधा ने स्टूल खींचकर खाना रखा। चन्दर कुछ नहीं बोला। उसने पानी रखा। चन्दर कुछ नहीं बोला।

"खाओ न !" सुधा ने कहा और एक कौर बनाकर चन्दर को देने लगी।

"तुम जाओ !" चन्दर ने बड़े रूखे स्वर में कहा, "मैं खा लूँगा !"

सुधा ने कौर थाली में रख दिया और चन्दर के पायताने बैठकर बोली—"चन्दर, तुम क्यों नाराज हो, बताओ हमसे क्या पाप हो गया है ? पिछले डेढ़ महीने हमने एक-एक क्षण गिन-गिनकर काटे हैं कि कब तुम्हारे पास आयें। हमें क्या मालूम था कि तुम ऐसे हो गये हो। मुझे जो चाहो सजा दे लो लेकिन ऐसा न करो। तुम तो कुछ भी नहीं समझते।" और सुधा ने चन्दर के पैरों पर सिर रख दिया। चन्दर ने पैर झटक दिये—"सुधा, इन सब बातों से फायदा नहीं है। अब इस तरह की बातें करना और सुनना मैं भूल गया हूँ। कभी इस तरह की बातें करते अच्छा लगता था। अब तो किसी सोहागिन के मुँह से यह शोभा नहीं देता !"

सुधा तिलमिला उठी, "तो यह बात है तुम्हारे मन में ! मैं पहले से समझती थी। लेकिन तुम्हीं ने तो कहा था, चन्दर ! अब तुम्हीं ऐसे कह रहे हो ? शरम नहीं आती तुम्हें।" और सुधा ने हाथ से व्याहवाले चूड़े उतारकर छत पर फेंक दिये, बिछिया उतारने लगी—और पागलों की तरह फटी आवाज में बोली, "जो तुमने कहा, मैंने किया, अब जो कहोगे वह करूँगी। यही चाहते हो न !" और अन्त में उसने अपनी बिछिया उतारकर छत पर फेंक दी।

चन्दर काँप गया। उसने इस दृश्य की कल्पना भी नहीं की थी। "बिनती ! बिनती !" उसने घबराकर पुकारा और सुधा से बोला, "अरे, यह क्या कर रही हो ! कोई देखेगा तो क्या सोचेगा ! पहनो जल्दी से।"

"मुझे किसी की परवा नहीं । तुम्हारा तो जी ठण्डा पड़ जायेगा !"

चन्दर उठा। उसने जबरदस्ती सुधा के हाथ पकड़ लिये। बिनती आ गयी थी।

"लो, इन्हें चूड़े तो पहना दो !" बिनती ने चुपचाप चूड़े और बिछिया पहना दी। सुधा चुपचाप उठी और नीचे चली गयी।

चन्दर अपनी खाट पर सिर झुकाये लज्जित-सा बैठा था।

"लीजिए, खाना खा लीजिए।" बिनती बोली।

"मैं नहीं खाऊँगा।" चन्दर ने रुँधे गले से कहा।

"खाइए, वरना अच्छी बात नहीं होगी। आप दोनों मिलकर मुझे मार डालिए बस किस्सा खत्म हो जाये। न आप सीधे मुँह से बोलते हैं, न दीदी। पता नहीं आप लोगों को क्या हो गया है ?"

चन्दर कुछ नहीं बोला।

"खाइए, आपको हमारी कसम है। वरना दीदी खाना नहीं खायेंगी ! आपको मालूम नहीं, दीदी की तबीयत इधर बहुत खराब है। उन्हें सुबह-शाम बुखार रहता है। दिल्ली में तबीयत बहुत खराब हो गयी थी। आप ऐसे कर रहे हैं। बताइए, उनका क्या हाल होगा। आप समझते होंगे यह बहुत सुखी होंगी लेकिन आपको क्या मालूम !··. पहले आप दीदी के एक आँसू पर पागल हो उठते थे, अब आपको क्या हो गया है ?"

चन्दर ने सिर उठाया—और गहरी साँस लेकर बोला—"जाने क्या हो गया है, बिनती ! मैं कभी नहीं सोचता था कि सुधा को मैं इतना दुख दे सकूँगा। इतना अभागा हूँ मैं कि खुद भी इधर घुलता रहा और सुधा को भी इतना दुखी कर दिया।" और सचमुच चन्दर की आँखों में आँसू भर आये। बिनती चन्दर के पीछे खड़ी थी। चन्दर का सिर अपनी छाती में लगाकर आँसू पोंछती हुई बोली—"छिः, अब और दुखी होइएगा तो दीदी और भी रोयेंगी। लीजिए, खाइए !"

"जाओ, दीदी को बुला लो और उन्हें भी खिला दो !" चन्दर ने कहा। बिनती गयी। फिर लौटकर बोली—"बहुत रो रही हैं। अब आज उनका नशा उतर जाने दीजिए, तब कल बात कीजिएगा।"

"फिर सुधा ने न खाया तो ?"

"नहीं, आप खा लीजिएगा तो वे खा लेंगी। उनको खिलाये बिना मैं नहीं खाऊँगी।" बिनती बोली और अपने हाथ से कौर बनाकर चन्दर को देने लगी। चन्दर ने खाना शुरू किया और धीरे-से गहरी साँस लेकर बोला—"बिनती ! तुम हमारी और सुधा की उस जनम की कौन हो ?"

सुबह के वक्त चन्दर जब नाश्ता करने बैठा तो डॉक्टर साहब के साथ ही बैठा। सुधा आयी और प्याला रखकर चली गयी। वह बहुत उदास थी। चन्दर का मन भर आया। सुधा की उदासी उसे कितना लज्जित कर रही थी, कितना दुखी कर रही थी। दिन-भर किसी काम में उसकी तबीयत नहीं लगी। उसने क्लास छोड़ दिये। लाइब्रेरी में भी जाकर किताबें उलट-पलटकर चला आया। उसके बाद प्रेस गया जहाँ उसे अपनी थीसिस छपने को देनी थी, उसके बाद ठाकुर साहब के यहाँ गया। लेकिन कहीं भी वह टिक नहीं पाया। जब तक वह सुधा को हँसा न ले, सुधा के आँसू सुखा न दे; उसे चैन नहीं मिलेगा।

शाम को वह लौटा तो खाना तैयार था। बिनती से उसने पूछा—"कहाँ है सुधा ?" "अपनी छत पर।" बिनती ने कहा। चन्दर ऊपर गया। पानी परसों से बन्द

था और बादल भी खुले हुए थे लेकिन तेज पुरवैया चल रही थी। तीज का चाँद शरमीली दुल्हन-सा बादलों में मुँह छिपा रहा था। हवा के तेज झकोरों पर बादल उड़ रहे थे और कचनार बादलों में तीज का धनुषाकार चाँद आँखमिचौनी खेल रहा था। सुधा ने अपनी खाट बरसाती के बाहर खींच ली थी। छत पर धुँधला अँधेरा था और रह-रहकर सुधा पर चाँदनी के फूल बरस जाते थे। सुधा चुपचाप लेटी हुई बादलों को देखती हुई जाने क्या सोच रही थी।

चन्दर गया। चन्दर को. देखते ही सुधा उठ खड़ी हुई और उसने बिजली जला दी और चुपचाप बैठ गयी। चन्दर बैठ गया। वह कुछ भी नहीं बोली। बगल में बिछी हुई बिनती की खाट पर सुधा बैठ गयी।

चन्दर को समझ नहीं आता था कि वह क्या कहे। सुधा को इतना दुख दिया उसने। सुधा उससे कल शाम से बोली तक नहीं।

"सुधा तुम नाराज हो गयी ! मुझे जाने क्या हो गया था ! लेकिन माफ नहीं करोगी ?" चन्दर ने बहुत काँपती हुई आवाज में कहा। सुधा कुछ नहीं बोली—चुपचाप बादलों की ओर देखती रही।

"सुधा ?" चन्दर ने सुधा के दो कबूतरों जैसे उजले मासूम पैरों को लेकर अपनी गोद में रख लिया और भरे हुए गले से बोला—"सुधा, मुझे जाने क्या हो जाता है कभी-कभी ! लगता है वह पहले वाली ताकत टूट गयी। मैं बिखर रहा हूँ। तुम आयी और तुम्हारे सामने मन का जाने कौन-सा तूफान फूट पड़ा। तुमने उसका इतना बुरा मान लिया। बताओ अगर तुम ही ऐसा करोगी तो मुझे सँभालने वाला फिर कौन है, सुधा ?" और चन्दर की आँखों से एक बूँद आँसू सुधा के पाँवों पर चू पड़ा। सुधा ने चौंककर अपने पाँव खींच लिये। और उठकर चन्दर की खाट पर बैठ गयी और चन्दर के कन्धे पर सिर रखकर फूट-फूटकर रो पड़ी। बहुत रोयी…बहुत रोयी। उसके बाद उठी और सामने बैठ गयी।

"चन्दर ! तुमने गलत नहीं किया। मैं सचमुच कितनी अपराधिन हूँ। मैंने तुम्हारी जिन्दगी चौपट कर दी है। लेकिन मैं क्या करूँ ? किसी ने तो मुझे कोई रास्ता नहीं बताया था। अब हो ही क्या सकता है, चन्दर ! तुम भी बरदाश्त करो और हम भी करें।" चन्दर नहीं बोला। उसने सुधा के हाथ अपने होंठों से लगा लिये। "लेकिन मैं तुम्हें इस तरह बिखरने नहीं दूँगी ! तुमने अब अगर इस तरह किया तो अच्छी बात नहीं होगी। फिर हम तो बराबर हर पल तुम्हारे ही बारे में सोचते रहे और तुम्हारी ही बातें सोच-सोचकर अपने को धीरज देते रहे और तुम इस तरह करोगे तो…"

"नहीं सुधा, मैं अपने को टूटने नहीं दूँगा। तुम्हारा प्यार मेरे साथ है। लेकिन इधर मुझे जाने क्या हो गया था !"

"हाँ, समझ लो, चन्दर ! तुम्हें हमारे सुहाग की लाज है, हम कितने दुखी हैं, तुम समझ नहीं सकते। एक तुम्हीं को देखकर हम थोड़ा-सा दुख-दर्द भूल जाते हैं, सो तुम भी इस तरह करने लगे ! हम लोग कितने अभागे हैं !" और वह फिर चुपचाप लेटकर

ऊपर देखती हुई जाने क्या सोचने लगी। चन्दर ने एक बार धुँधली रेशमी चाँदनी में मुरझाये हुए सोनजुही के फूल-जैसे मुँह की ओर देखा और सुधा के नरम गुलाबी होंठों पर उँगलियाँ रख दीं। थोड़ी देर वह आँसू में भीगे हुए गुलाब की दुख-भरी पाँखुरियों से उँगलियाँ उलझाये रहा और फिर बोला–

"क्या सोच रही थीं ?" चन्दर ने बहुत दुलार से सुधा के माथे पर हाथ फेरकर कहा। सुधा एक फीकी हँसी हँसकर बोली–

"जैसे आज लेटी हुई बादलों को देख रही हूँ और पास तुम बैठे हो, उसी तरह एक दिन कॉलेज में दोपहर को मैं और गेसू लेटे हुए बादलों को देख रहे थे। उस दिन उसने एक शेर सुनाया था। 'कैफ बरदोश बादलों को न देख, बेखबर तू कुचल न जाये कहीं।' उसका कहना कितना सच निकला ! भाग्य ने कहाँ ले जा पटका मुझे !"

"क्यों, वहाँ तुम्हें कोई तकलीफ तो नहीं ?" चन्दर ने पूछा।

"हाँ, समझते तो सब यही हैं, लेकिन जो तकलीफ है वह मैं जानती हूँ या बिनती जानती है। " सुधा ने गहरी साँस लेकर कहा–"वहाँ आदमी भी बने रहने का अधिकार नहीं।"

"क्यों ?" चन्दर ने पूछा।

"क्या बतायें तुम्हें चन्दर ! कभी-कभी मन में आता है कि डूब मरूँ। ऐसा भी जीवन होगा मेरा, यह कभी मैं नहीं सोचती थी।" सुधा ने कहा।

"क्या बात है ? बताओ न !" चन्दर ने पूछा।

"बता दूँगी, देवता ! तुमसे भला क्या छिपाऊँगी लेकिन आज नहीं फिर कभी !" सुधा ने कहा–"तुम परेशान मत हो। कहाँ तुम, कहाँ दुनिया ! काश कि कभी तुम्हारी गोद से अलग न होती मैं !" और सुधा ने अपना मुँह चन्दर की गोद में छिपा लिया। चन्दर ने सुधा की भौंराली अलकों पर अपना सिर रख दिया। बादल हट गये और ढेर चाँदनी की पाँखुरियाँ बरस पड़ीं।

उल्लास और रोशनी का मलय पवन फिर लौट आया था, फिर एक बार चन्दर, सुधा और बिनती के प्राणों को विभोर कर गया था। चन्दर भूल गया था कि सुधा को महीने-भर बाद ही जाना है और सुधा भूल गयी थी कि शाहजहाँपुर से भी उसका कोई नाता है। बिनती का इम्तहान हो गया था और अकसर चन्दर और सुधा बिनती के ब्याह के लिए गहने और कपड़े खरीदने जाते। जिन्दगी फिर खुशी के हिलकोरों पर झूलने लगी थी। बिनती का ब्याह उतरते अगहन में होने वाला था। अब दो-ढाई महीने रह गये थे। सुधा और चन्दर जाकर कपड़े खरीदते और लौटकर बिनती को जबरदस्ती

पहनाते और गुड़िया की तरह उसे सजाकर खूब हँसते। दोनों के बड़े-बड़े हौसले थे बिनती के लिए। सुधा बिनती को सलवार और चुन्नी का एक सेट और गरारा और कुरते का एक सेट देना चाहती थी। चन्दर बिनती को एक हीरे की अँगूठी देना चाहता था। चन्दर बिनती को बहुत स्नेह करने लगा था। वह बिनती के ब्याह में भी जाना चाहता था लेकिन गाँव का मामला, कान्यकुब्जों की बारात। शहर में सुधा, बिनती और चन्दर को जितनी आजादी थी उतनी वहाँ भला क्यों हो सकती थी। फिर कहने वालों की जबान, कोई क्या कह बैठे ? यही सब सोचकर सुधा ने चन्दर को मना कर दिया था। इसलिए चन्दर यहीं बिनती को जितने उपहार और आशीर्वाद देना चाहता था, दे रहा था। सुधा का बचपन लौट आया था और दिन-भर उसकी शरारतों और किलकारियों से घर हिलता था। सुधा ने चन्दर को इतनी ममता में डुबो लिया था कि एक क्षण वह चन्दर को अपने से अलग नहीं रहने देती थी। जितनी देर चन्दर घर में रहता, सुधा उसे अपने दुलार में, अपनी साँसों की गरमाई में समेटे रहती थी, चन्दर के माथे पर हर क्षण वह जाने कितना स्नेह बिखेरती रहती थी।

एक दिन चन्दर आया तो देखा कि बिनती कहीं गयी है और सुधा चुपचाप बैठी हुई बहुत-से पुराने खतों को सँभाल रही है। एक गम्भीर उदासी का बादल घर में छाया हुआ है। चन्दर आया। देखा, सुधा आँख में आँसू भरे बैठी है।

"क्या बात है, सुधा ?"

"रुखसती की चिट्ठी आ गयी चन्दर, परसों शंकर बाबू आ रहे हैं।"

चन्दर के हृदय की धड़कनों पर जैसे किसी ने हथौड़ा मार दिया। वह चुपचाप बैठ गया। "अब सब खत्म हुआ, चन्दर !" सुधा ने बड़ी ही करुण मुसकान से कहा–"अब साल-भर के लिए विदा और उसके बाद जाने क्या होगा ?"

चन्दर कुछ नहीं बोला। वहीं लेट गया और बोला–"सुधा, दुखी मत हो। आखिर कैलाश इतना अच्छा है, शंकर बाबू इतने अच्छे हैं। दुख किस बात का ? रहा मैं, तो अब मैं सशक्त रहूँगा। तुम मेरे लिए मत घबराओ !"

सुधा एकटक चन्दर की ओर देखती रही। फिर बोली–"चन्दर ! तुम्हारे जैसे सब क्यों नहीं होते ? तुम सचमुच इस दुनिया के योग्य नहीं हो ! ऐसे ही बने रहना, चन्दर मेरे ! तुम्हारी पवित्रता ही मुझे जिन्दा रख सकेगी वरना मैं तो जिस नरक में जा रही हूँ···"

"तुम उसे नरक क्यों कहती हो ! मेरी समझ में नहीं आता !"

"तुम नहीं समझ सकते। तुम अभी बहुत दूर हो इन सब बातों से, लेकिन···" सुधा बड़ी देर तक चुप रही। फिर खत सब एक ओर खिसका दिये और बोली–"चन्दर, उनमें सब कुछ है। वे बहुत अच्छे हैं, बहुत खुले विचार के हैं, मुझे बहुत चाहते हैं, मुझ पर कहीं से कोई बन्धन नहीं, लेकिन इस सारे स्वर्ग का मोल जो देकर चुकाना पड़ता है उससे मेरी आत्मा का कण-कण विद्रोह कर उठता है।" और सहसा घुटनों में मुँह छिपाकर रो पड़ी।

चन्दर उठा और सुधा के माथे पर हाथ रखकर बोला—"छिः, रोओ मत, सुधा ! अब तो जैसा है, जो कुछ भी है, बरदाश्त करना पड़ेगा।"

"कैसे करूँ, चन्दर ! वह इतने अच्छे हैं और इसके अलावा इतना अच्छा व्यवहार करते हैं कि मैं उनसे क्या कहूँ ? कैसे कहूँ ?" सुधा बोली।

"जाने दो सुधी, जैसी जिन्दगी हो वैसा निबाह करना चाहिए, इसी में सुन्दरता है। और जहाँ तक मेरा खयाल है वैवाहिक जीवन के प्रथम चरण में ही यह नशा रहता है फिर किसको यह सूझता है। आओ, चलो चाय पीयें ! उठो, पागलपन नहीं करते। परसों चली जाओगी, रुलाकर नहीं जाना होता। उठो !" चन्दर ने अपने मन की जुगुप्सा पीकर ऊपर से बहुत स्नेह से कहा।

सुधा उठी और चाय ले आयी। चन्दर ने अपने हाथ से एक कप में चाय बनायी और सुधा को पिलाकर उसी में पीने लगा। चाय पीते-पीते सुधा बोली—

"चन्दर, तुम ब्याह मत करना ! तुम इसके लिए नहीं बने हो।"

चन्दर सुधा को हँसाना चाहता था—"चल स्वार्थी कहीं की ! क्यों न करूँ ब्याह ? जरूर करूँगा ! और जनाब, दो-दो करूँगा ! अपने आप तो कर लिया और मुझे उपदेश दे रही है !"

सुधा हँस पड़ी। चन्दर ने कहा—

"बस ऐसे ही हँसती रहना हमेशा, हमारी याद करके और अगर रोयी तो समझ लो हम उसी तरह फिर अशान्त हो उठेंगे जैसे अभी तक थे !···" फिर प्याला सुधा के होंठों से लगाकर बोला—"अच्छा सुधी, कभी तुम सुनो कि मैं उतना पवित्र नहीं रहा जितना कि हूँ तो तुम क्या करोगी ? कभी मेरा व्यक्तित्व अगर बिगड़ गया, तब क्या होगा ?"

"होगा क्या ? मैं रोकने वाली कौन होती हूँ ? मैं खुद ही क्या रोक पायी अपने को ! लेकिन चन्दर, तुम ऐसे ही रहना। तुम्हें मेरे प्राणों की सौगन्ध है, तुम अपने को बिगाड़ना मत।"

चन्दर हँसा—"नहीं सुधा, तुम्हारा प्यार मेरी ताकत है। मैं कभी गिर नहीं सकता जब तक तुम मेरी आत्मा में गुँथी हुई हो।"

तीसरे दिन शंकर बाबू आये और सुधा चन्दर के पैरों की धूल माथे पर लगाकर चली गयी···इस बार वह रोयी नहीं, शान्त थी जैसे वधस्थल पर जाता हुआ बेबस अपराधी।

जब तक आसमान में बादल रहते हैं तब तक झील में बादलों की छाँह रहती है। बादलों

के खुल जाने के बाद कोई भी झील उनकी छाँह को सुरक्षित नहीं रख पाती। जब तक सुधा थी, चन्दर की जिन्दगी की फिर एक बार उल्लास और ताकत लौट आयी थी, सुधा के जाते ही वह फिर सब कुछ खो बैठा। उसके मन में कोई स्थायित्व नहीं रहा। लगता था जैसे वह एक जलागार है जो बहुत गहरा है, लेकिन जिसमें हर चाँद, सूरज, सितारे और बादल की छाँह पड़ती है और उनके चले जाने के बाद फिर वह उनका प्रतिबिम्ब धो डालता है और बदलकर फिर वैसा ही हो जाता है। कोई भी चीज पानी को रँग नहीं पाती, उसे छू नहीं पाती, हाँ, लहरों में उनकी छाया का रूप विकृत हो जाता है।

चन्दर को चारों ओर की दुनिया सहज गुजरते हुए बादलों का निस्सार तमाशा-सी लग रही थी। कॉलेज की चहल-पहल, ढलती हुई बरसात का पानी, थीसिस और डिग्री, बर्टी का पागलपन और पम्मी के खत—ये सभी उसके सामने आते और सपनों की तरह गुजर जाते। कोई चीज उसके हृदय को छू न पाती। ऐसा लगता था कि चन्दर एक खोखला व्यक्ति है जिसमें सिर्फ एक सापेक्ष अन्तःकरण मात्र है, कोई निरपेक्ष आत्मा नहीं और हृदय भी जैसे समाप्त हो गया था। एक जलहीन हलके बादल की तरह वह हवा के हर झोंके पर तैर रहा था। लेकिन टिकता कभी भी नहीं था। उसकी भावनाएँ, उसका मन, उसकी आत्मा, उसके प्राण, उसका सब कुछ सो गया था और वह जैसे नींद में चल-फिर रहा था, नींद में सब कुछ कर रहा था। जाने के आठ-नौ रोज बाद सुधा का खत आया—

"मेरे भाग्य !

मैं इस बार तुम्हें जिस तरह छोड़ आयी हूँ उससे मुझे पल-भर को चैन नहीं मिलता। अपने को तो बेच चुकी, अपने मन के मोती को कीचड़ में फेंक चुकी, तुम्हारी रोशनी को ही देखकर कुछ सन्तोष है। मेरे दीपक, तुम बुझना मत। तुम्हें मेरे स्नेह की लाज है।

मेरी जिन्दगी का नरक फिर मेरे अंगों में भिदना शुरू हो गया है। तुम कहते हो कि जैसे हो निबाह करना चाहिए। तुम कहते हो कि अगर मैंने उनसे निबाह नहीं किया तो यह तुम्हारे प्यार का अपमान होगा। ठीक है, मैं अपने लिए नहीं, तुम्हारे लिए निबाह करूँगी, लेकिन मैं कैसे सँभालूँ अपने को ? दिल और दिमाग बेबस हो रहे हैं, नफरत से मेरा खून उबला जा रहा है। कभी-कभी जब तुम्हारी सूरत सामने होती है तो जैसे अपना सुख-दुख भूल जाती हूँ, लेकिन अब तो जिन्दगी का तूफान जाने कितना तेज होता जा रहा है कि लगता है तुम्हें भी मुझसे खींचकर अलग कर देगा।

लेकिन तुम्हें अपने देवत्व की कसम है, तुम मुझे अब अपने हृदय से दूर न करना। तुम नहीं जानते कि तुम्हारी याद के ही सहारे मैं यह नरक झेलने में समर्थ हूँ। तुम मुझे कहीं छिपा लो—मैं क्या करूँ, मेरा अंग-अंग मुझी पर व्यंग्य कर रहा है, आँखों की नींद खत्म है। पाँवों में इतना तीखा दर्द है कि कुछ कह नहीं सकती। उठते-बैठते चक्कर आने लगा है। कभी-कभी बदन काँपने लगता है। आज वह बरेली

गये हैं तो लगता है मैं आदमी हूँ। तभी तुम्हें लिख भी रही हूँ। तुम दुखी मत होना। चाहती थी कि तुम्हें न लिखूँ लेकिन बिना लिखे मन नहीं मानता। मेरे अपने ! तुमने तो यही सोचकर यहाँ भेजा था कि इससे अच्छा लड़का नहीं मिलेगा लेकिन कौन जानता था कि फूल में कीड़े भी होंगे।

अच्छा, अब माँजी नीचे बुला रही हैं···चलती हूँ···देखो अपने किसी खत में इन सब बातों का जिक्र मत करना ! और इसे फाड़कर फेंक देना।

तुम्हारी अभागिन–सुधी"

चन्दर को खत मिला तो एक बार जैसे उसकी मूर्च्छा टूट गयी। उसने खत लिया और बिनती को बुलाया। बिनती हाथ में साग और डलिया लिये आयी और पास बैठ गयी। चन्दर ने वह खत बिनती को दे दिया। बिनती ने पढ़ा और चन्दर को वापस दे दिया और चुपचाप तरकारी काटने लगी।

वह उठा और चुपचाप अपने कमरे में चला गया। थोड़ी देर बाद बिनती चाय लेकर आयी और चाय रखकर बोली–"आप दीदी को कब खत लिख रहे हैं ?"

"मैं नहीं लिखूँगा !" चन्दर बोला।

"क्यों ?"

"क्या लिखूँ बिनती, कुछ समझ में नहीं आता !" कुछ झल्लाकर चन्दर ने कहा। बिनती चुपचाप बैठ गयी। थोड़ी देर बाद चन्दर बड़े मुलायम स्वर में बोला–"बिनती, एक दिन तुमने कहा था कि मैं देवता हूँ, तुम्हें मुझ पर गर्व है। आज भी तुम्हें मुझ पर गर्व है ?"

"पहले से ज्यादा !" बिनती बोली।

"अच्छा, ताज्जुब है !" चन्दर बोला–"अगर तुम जानती कि आजकल कभी-कभी मैं क्या सोचता हूँ तो तुम्हें ताज्जुब होता ! तुम जानती तो, सुधा के इस खत से मुझे जरा-सा भी दुख नहीं हुआ, सिर्फ झल्लाहट ही हुई है। मैं सोच रहा था कि क्यों सुधा इतना स्वाँग भरती है दुख और अन्तर्द्वन्द्व का ! किस लड़की को यह सब पसन्द नहीं ? किस लड़की के प्यार में शरीर का अंश नहीं होता ? लाख प्रतिभाशालिनी लड़कियाँ हों लेकिन अगर वे किसी को प्यार करेंगी तो उसे अपनी प्रतिभा नहीं देंगी, अपना शरीर ही देंगी और यदि वह अस्वीकार कर लिया जाये तो शायद प्रतिहिंसा से तड़प भी उठेगी। अब तो मुझे ऐसा लगने लगा कि सेक्स ही प्यार है, प्यार का मुख्य अंश है, बाकी सभी कुछ उसकी तैयारी है, उसके लिए एक समुचित वातावरण और विश्वास का निर्माण करना है··· जाने क्यों मुझे इस सबसे बहुत नफरत होती जाती है। अभी तक मैं सेक्स और प्यार को दो चीजें समझता था, प्यार पर विश्वास करता था, सेक्स से नफरत, अब मुझे दोनों ही एक चीज लगते हैं और जाने कैसे अरुचि-सी हो गयी है इस जिन्दगी से। तुम्हारी क्या राय है, बिनती ?"

"मेरी ? अरे, हम बे-पढ़े-लिखे आदमी, हम क्या आपसे बात करेंगे ! लेकिन एक बात है। ज्यादा पढ़ना-लिखना अच्छा नहीं होता।"

"क्यों ?" चन्दर ने पूछा।

"पढ़ने-लिखने से ही आप और दीदी जाने क्या-क्या सोचते हैं। हमने देहात में देखा है कि वहाँ सभी लड़कियाँ समझती हैं कि उन्हें क्या करना है। इसलिए कभी इन सब बातों पर अपना मन नहीं बिगाड़तीं। बल्कि मैंने तो देखा है सभी शादी के बाद मोटी होकर आती हैं। और दीदी अब छोटी-सी नहीं कि ऐसी उनकी तबीयत खराब हो जाये। यह सब मन में घुटने का नतीजा है। जब यह होना ही है तो क्यों दीदी दुखी होती हैं ? उन्हें तो और मोटी होना चाहिए।" बिनती बोली।

इस समस्या का इतना सरल समाधान सुनकर चन्दर को हँसी आ गयी।

"अब तुम ससुराल जा रही हो। मोटी होकर आना !"

"धत्, आप तो मजाक करने लगे !"

"लेकिन बिनती, तुम इस मामले में बड़ी विद्वान् मालूम देती हो। अभी तक यह विद्वत्ता कहाँ छिपा रखी थी ?"

"नहीं आप मजाक न बनाइए तो मैं सच बताऊँ कि देहाती लड़कियाँ शहर की लड़कियों से ज्यादा होशियार होती हैं इन सब मामलों में।"

"सच ?" चन्दर ने पूछा। वह गाँव की जिन्दगी को बेहद निरीह समझता था।

"हाँ और क्या ? वहाँ इतना दुराव, इतना गोपन नहीं है। सभी कुछ उनके जीवन का उन्मुक्त है। और ब्याह के पहले ही वहाँ लड़कियाँ सब कुछ···"

"अरे नहीं !" चन्दर ने बेहद ताज्जुब से कहा।

"लो यकीन नहीं होता आपको ? मुझे कैसे मालूम हुआ इतना। मैं आपसे कुछ नहीं छिपाती, वहाँ तो सब लोग इसे इतना स्वाभाविक समझते हैं जितना खाना-पीना, हँसना-बोलना। बस लड़कियाँ इस बात में सचेत रहती हैं कि किसी मुसीबत में न फँसें !"

चन्दर चुपचाप बैठा चाय पीता रहा। आज तक वह जिन्दगी को कितना पवित्र मानता रहा था लेकिन जिन्दगी कुछ और ही है। जिन्दगी अब भी वह है जो सृष्टि के आरम्भ में थी···और दुनिया कितनी चालाक है। कितनी भुलावा देती है। अन्दर से मन में जहर छिपाकर भी होंठों पर कैसी अमृतमयी मुसकान झलकाती रहती है। यह बिनती जो इतनी शांत, संयत और भोली लगती थी, इसमें भी सभी गुन भरे हैं। कल्पना और भाव के आधार पर अपना आदर्श लेकर चलने वाले कितने मूर्ख रहते हैं इस दुनिया में ? चन्दर ने जिन्दगी को परखने में कितना बड़ा धोखा खाया है।···जिन्दगी यह है—मांसलता और प्यास और उसके साथ-साथ अपने को छिपाने की कला।

वह बैठा-बैठा सोचता रहा। सहसा उसने अकस्मात् पूछा—

"बिनती, तुम भी देहात में रही हो और सुधा भी। तुम लोगों की जिन्दगी में भी वह सब कभी आया ?"

बिनती क्षण-भर चुप रही, फिर बोली—"क्यों, क्या नफरत करोगे सुनकर !"

"नहीं बिनती, जितनी नफरत और अरुचि दिल में आ गयी है उससे ज्यादा आ सकती है भला ! बताना चाहो तो बता दो। अब मैं जिन्दगी को समझना चाहता हूँ, वास्तविकता के स्तर पर !" चन्दर ने गम्भीरता से पूछा।

"मैंने आपसे कुछ नहीं छिपाया, न अब छिपाऊँगी। पता नहीं क्यों दीदी से भी ज्यादा आप पर विश्वास ज़मता जा रहा है। सुधा दीदी की जिन्दगी में तो यह सब नहीं आ पाया। वे बड़ी विचित्र-सी थीं। सबसे अलग रहती थीं। और पढ़तीं और कमल के पोखरे में फूल तोड़ती थीं, बस ! मेरी जिन्दगी में···"

चन्दर ने चाय का प्याला खिसका दिया। जाने किस भाव से उसने बिनती के चेहरे की ओर देखा। वह शान्त थी, निर्विकार थी और बिना किसी हिचक के कहती जा रही थी।

चन्दर चुप था। बिनती ने अपने पाँवों से चन्दर के पाँवों की उँगलियाँ दबाते हुए पूछा—"क्या सोच रहे हैं आप ? सुन रहे हैं आप ?"

"जाने दो, मैं नहीं सुनूँगा। लेकिन तुम मुझ पर इतना विश्वास क्यों करती हो ?" चन्दर ने पूछा।

"जाने क्यों ? यहाँ आकर मैंने दीदी के साथ आपका व्यवहार देखा। फिर पम्मी वाली घटना हुई। मेरे तन-मन में एक विचित्र-सी श्रद्धा आपके लिए छा गयी। जाने कैसी अरुचि मेरे मन में दुनिया के लिए थी, आपको देखकर मैं फिर स्वस्थ हो गयी।"

"ताज्जुब है ! तुम्हारे मन की अरुचि दूर हो गयी दुनिया के प्रति और मेरे मन की अरुचि बढ़ गयी। कैसे अन्तर्विरोध होते हैं मन की प्रतिक्रियाओं में ! एक बात पूछूँ, बिनती ! तुम मेरे इतने समीप रही हो। सैकड़ों बार ऐसा हुआ होगा जो मेरे विषय में तुम्हारे मन में शंका पैदा कर देता, तुम सैकड़ों बार मेरे सिर को अपने वक्ष पर रखकर मुझे सान्त्वना दे चुकी हो। तुम मुझे बहुत प्यारी हो लेकिन तुम जानती हो मैं तुम्हें प्यार नहीं करता हूँ, फिर यह सब क्या है, क्यों है ?"

विनती चुप रही—"पता नहीं क्यों है ? मुझे इसमें कभी कोई पाप नहीं दिखा और कभी दिखा भी तो मन ने कहा कि आप इतने पवित्र हैं, आपका चरित्र इतना ऊँचा है कि मेरा पाप भी आपको छूकर पवित्र हो जायेगा।"

"लेकिन बिनती···"

"बस ?" बिनती ने चन्दर को टोककर कहा—"इससे अधिक आप कुछ मत पूछिए, मैं हाथ जोड़ती हूँ !"

चन्दर चुप हो गया।

चन्दर जितना सुलझाने का प्रयास कर रहा था, चीजें उतनी ही उलझती जा रही थीं। सुधा ने जिन्दगी का एक पक्ष चन्दर के सामने रखा था। बिनती उसे दूसरी दुनिया में खींच लायी। कौन सच है कौन झूठ ? वह किसका तिरस्कार करे, किसको स्वीकार करे। अगर सुधा गलती पर है तो चन्दर का जिम्मा है, चन्दर ने सुधा की हत्या की है...लेकिन कितनी विभिन्न हैं दोनों बहनें ! बिनती कितनी व्यावहारिक, कितनी यथार्थ, संयत और सुधा कितनी आदर्श, कितनी कल्पनामयी, कितनी सूक्ष्म, कितनी ऊँची, कितनी सुकुमार और पवित्र।

जीवन की समस्याओं के अन्तर्विरोधों में जब आदमी दोनों पक्षों को समझ लेता है तब उसके मन में एक ठहराव आ जाता है। वह भावना से ऊपर उठकर स्वच्छ बौद्धिक धरातल पर जिन्दगी को समझने की कोशिश करने लगता है। चन्दर अब भावना से हटकर जिन्दगी को समझने की कोशिश करने लगा था। वह अब भावना से डरता था। भावना के तूफान में इतनी ठोकरें खाकर अब उसने बुद्धि की शरण ली थी और एक पलायनवादी की तरह भावना से भागकर बुद्धि की एकांगिता में छिप गया था। कभी भावुकता से नफरत करता था, अब वह भावना से ही नफरत करने लगा था। इस नफरत का भोग सुधा और बिनती दोनों को ही भुगतना पड़ा। सुधा को उसने एक भी खत नहीं लिखा और बिनती से एक दिन भी ठीक से बातें नहीं कीं।

जब भावना और सौन्दर्य के उपासक को बुद्धि और वास्तविकता की ठेस लगती है तब वह सहसा कटुता और व्यंग्य से उबल उठता है। इस वक्त चन्दर का मन भी कुछ ऐसा ही हो गया था। जाने कितने जहरीले काँटे उसकी वाणी में उग आये थे जिन्हें वह कभी भी किसी को चुभाने से बाज नहीं आता था। एक निर्मम निरपेक्षता से वह अपने जीवन की सीमा में आने वाले हर व्यक्ति को कटुता के जहर से अभिषिक्त करता चलता था। सुधा को वह कुछ लिख नहीं सकता था। पम्मी यहाँ थी नहीं, ले-देकर वची अकेली विनती जिसे इन जहरीले वाणों का शिकार होना पड़ रहा था। सितम्बर बीत रहा था और अब वह गांव जाने की तैयारी कर रही थी। डॉक्टर साहब ने दिसम्बर तक की छुट्टी ली थी और वे भी गाँव जाने वाले थे। शादी के महीने-भर पहले से उनका जाना जरूरी था।

चन्दर खुश नहीं था, नाराज नहीं था। एक स्वर्गभ्रष्ट देवदूत जिसे पिशाचों ने खरीद लिया हो, उन्हीं की तरह वह जिन्दगी के सुख-दुःख को ठोकर मारता हुआ किनारे खड़ा सभी पर हँस रहा था। खास तौर से नारी पर उसके मन का सारा जहर बिखरने लगा था और उसमें उसे यह भी अकसर ध्यान नहीं रहता था कि वह किससे क्या बात कर रहा है। बिनती सब कुछ चुपचाप सहती जा रही थी, बिनती को सुधा की तरह रोना नहीं आता था; न उसकी चन्दर इतनी परवा ही करता था जितनी सुधा की। दोनों में बातें भी बहुत कम होती थीं, लेकिन बिनती मन-ही-मन दुःखी थी। वह क्या करे ! एक दिन उसने चन्दर के पैर पकड़कर बहुत अनुनय से कहा—"आपको

यह क्या होता जा रहा है ? अगर आप ऐसे ही करेंगे तो हम दीदी को लिख देंगे !"

चन्दर बड़ी भयावनी हँसी हँसा—"दीदी को क्या लिखोगी ? मुझे अब उसकी परवा नहीं। वह दिन गये, बिनती ! बहुत बन लिए हम।"

"हाँ, चन्दर बाबू, आप लड़की होते तो समझते !"

"सब समझता हूँ मैं, कैसा दोहरा नाटक खेलती हैं लड़कियाँ ! इधर अपराध करना, उधर मुखबिरी करना।"

बिनती चुप हो गयी। एक दिन जब चन्दर कॉलेज से आया तो उसके सिर में दर्द हो रहा था। वह आकर चुपचाप लेट गया। बिनती ने आकर पूछा तो बोला—"क्यों, क्यों मैं बतलाऊँ कि क्या है, तुम मिटा दोगी ?"

बिनती ने चन्दर के सिर पर हाथ रखकर कहा—"चन्दर, तुम्हें क्या होता जा रहा है ? देखो कैसी हड्डियाँ निकल आयी हैं इधर। इस तरह अपने को मिटाने से क्या फायदा ?"

"मिटाने से ?" चन्दर उठकर बैठ गया—"मैं मिटाऊँगा अपने को लड़कियों के लिए ? छिः तुम लोग अपने को क्या समझती हो ? क्या है तुम लोगों में सिवा एक नशीली मांसलता के ? इसके लिए मैं अपने को मिटाऊँगा ?"

बिनती ने चन्दर को फिर लिटा दिया।

"इस तरह अपने को धोखा देने से क्या फायदा, चन्दर बाबू ? मैं जानती हूँ दीदी के न होने से आपकी जिन्दगी में कितना बड़ा अभाव है लेकिन···"

"दीदी के न होने पर ? क्या मतलब है तुम्हारा ?"

"मेरा मतलब आप खूब समझते हैं। मैं जानती हूँ, दीदी होतीं तो आप इस तरह न मिटाते अपने को। मैं जानती हूँ दीदी के लिए आपके मन में क्या था ?" बिनती ने सिर में तेल डालते हुए कहा।

"दीदी के लिए क्या था ?" चन्दर हँसा बड़ी विचित्र हँसी—"दीदी के लिए मेरे मन में एक आदर्शवादी भावुकता थी जो अधकचरे मन की उपज थी, एक ऐसी भावना थी जिसके औचित्य पर ही मुझे विश्वास नहीं, वह एक सनक थी।"

"सनक !" बिनती थोड़ी देर तक चुपचाप सिर में तेल ठोंकती रही। फिर बोली—"अपनी साँसों से बनायी देवमूर्ति पर इस तरह लात तो न मारिए। आपको शोभा नहीं देता!" बिनती की आँख में आँसू आ गये, "कितनी अभागी हैं दीदी !"

चन्दर एकटक बिनती की ओर देखता रहा और फिर बोला—"मैं अब पागल हो जाऊँगा, बिनती !"

"मैं आपको पागल नहीं होने दूँगी। मैं आपको छोड़कर नहीं जाऊँगी।"

"मुझे छोड़कर नहीं जाओगी !" चन्दर फिर हँसा—"जाइए आप ! अब आप श्रीमती बिनती होने वाली हैं। आपका ब्याह होगा। मैं पागल हो रहा हूँ इससे क्या हुआ ? इन सब बातों से दुनिया नहीं रुकती, शहनाइयाँ नहीं बन्द होतीं, बन्दनवार नहीं तोड़े जाते !"

"मैं नहीं जाऊँगी चन्दर अभी, तुम मुझे नहीं जानते। तुम्हारी इतनी ताड़ना और व्यंग्य सहकर भी तुम्हारे पास रही, अब दुनिया-भर की लांछना और व्यंग्य सहकर तुम्हारे पास रह सकती हूँ।" बिनती ने तीखे स्वर में कहा।

"क्यों ? तुम्हारे रहने से क्या होगा ? तुम सुधा नहीं हो। तुम सुधा नहीं हो सकती ! जो सुधा है मेरी जिन्दगी में, वह कोई नहीं हो सकता। समझीं ? और मुझ पर एहसान मत जताओ ! मैं मर जाऊँ, मैं पागल हो जाऊँ, किसी का साझा ! क्यों तुम मुझ पर इतना अधिकार समझने लगीं—अपनी सेवा के बल पर ? मैं इसकी रत्ती-भर परवा नहीं करता। जाओ, यहाँ से !" और उसने बिनती को धकेल दिया, तेल की शीशी उठाकर बाहर फेंक दी।

बिनती रोती हुई चली गयी। चन्दर उठा और कपड़े पहनकर बाहर चल दिया। "हुँ, ये लड़कियाँ समझती हैं अहसान कर रही हैं मुझ पर !"

बिनती के जाने की तैयारी हो गयी थी और लिया-दिया जाने वाला सारा सामान पैक हो रहा था। डॉक्टर साहब भी महीने-भर की छुट्टी लेकर साथ जा रहे थे। उस दिन की घटना के बाद फिर बिनती चन्दर से बिलकुल ही नहीं बोली थी। चन्दर भी कभी नहीं बोला।

ये लोग कार पर जाने वाले थे। सारा सामान पीछे-आगे लादा जाने वाला था। डॉक्टर साहब कार लेकर बाजार गये थे। चन्दर उनका होल्डॉल सँभाल रहा था। बिनती आयी और बोली—"मैं आपसे बातें कर सकती हूँ ?"

"हाँ, हाँ ! तुम उस दिन की बात का बुरा मान गयीं ! अमूमन लड़कियाँ सच्ची बात का बुरा मान जाती हैं ! बोलो, क्या बात है ?" चन्दर ने इस तरह कहा जैसे कुछ हुआ ही न हो।

बिनती की आँख में आँसू थे, "चन्दर, आज मैं जा रही हूँ!"

"हाँ, यह तो मालूम है उसी का इन्तजाम कर रहा हूँ!"

"पता नहीं मैंने क्या अपराध किया चन्दर कि तुम्हारा स्नेह खो बैठी। ऐसा ही था चन्दर, तो आते ही आते इतना स्नेह तुमने दिया ही क्यों था ?···मैं तुमसे कभी भी दीदी का स्थान नहीं माँग रही थी···तुमने मुझे गलत क्यों समझा ?"

"नहीं, बिनती ! मैं अब स्नेह इत्यादि पसन्द नहीं करता हूँ। पूर्ण परिपक्व मनुष्य हूँ और ये सब भावनाएँ अब अच्छी नहीं लगतीं मुझे। स्नेह वगैरह की दुनिया अब मुझे बड़ी उथली लगती है !"

"तभी चन्दर ! इतने दिन मैंने रोते-रोते बिताये। तुमने एक बार पूछा भी नहीं। जिन्दगी में सिवा दीदी और तुम्हारे, मेरा कौन था ? तुमने मेरे आँसुओं की परवा नहीं की। तुम्हें कसूर नहीं देती; कसूर मेरा ही होगा, चन्दर !"

"नहीं, कसूर की बात नहीं, बिनती ! औरतों के रोने की कहाँ तक परवा की जाये, वे कुत्ते, बिल्ली तक के लिए उतने ही दुःख से रोती हैं।"

"खैर, चन्दर ! ईश्वर करे तुम जीवन-भर इतने मजबूत रहो। मैंने अगर कभी

तुम्हारे लिए कुछ किया, वैसे किया भी क्या, लेकिन अगर कुछ भी किया तो सिर्फ इसलिए कि मेरे मन की जाने कितनी ममता तुमने जीत ली, या मैं हमेशा इस बात के लिए पागल रहती थी कि तुम्हें जरा-सी भी ठेस न पहुँचे, मैं क्या कर डालूँ तुम्हारे लिए। तुमने, तुम्हारे व्यक्तित्व ने मुझे जादू में बाँध लिया था। तुम मुझसे कुछ भी करने के लिए कहते तो मैं हिचक नहीं सकती थी—लेकिन खैर, तुम्हें मेरी जरूरत नहीं थी। तुम पर भार हो उठती थी मैं। मैंने अपने को खींच लिया, अब कभी तुम्हारे जीवन में आने का साहस नहीं करूँगी। यह भी कैसे कहूँ कि कभी तुम्हें मेरी जरूरत पड़ेगी। मैं जानती हूँ कि तुम्हारे तूफानी व्यक्तित्व के सामने मैं बहुत तुच्छ हूँ, तिनके से भी तुच्छ। लेकिन आज जा रही हूँ, अब कभी यहाँ आने का साहस न करूँगी। लेकिन क्या चलते वक्त आशीर्वाद भी न दोगे ? कुछ आगे का रास्ता न बताओगे ?"

विनती ने झुककर चन्दर के पैर पकड़ लिए और सिसक-सिसककर रोने लगी। चन्दर ने बिनती को उठाया और पास की कुरसी पर बिठा दिया और सिर पर हाथ रखकर बोला—"आशीर्वाद देवताओं से माँगा जाता है। मैं अब प्रेत हो चुका हूँ, बिनती !"

चन्दर अब एकान्त चाहता था और वह चन्दर को मिल गया था। पूरा घर खाली, एक महराजिन, माली और नौकर। और सारे घर में सिर्फ सन्नाटा और उस सन्नाटे का प्रेत चन्दर। चन्दर चाहे जितना टूट जाये, चाहे जितना बिखर जाये लेकिन चन्दर हारने वाला नहीं था। वह हार भी जाये लेकिन हार स्वीकार करना उसे नहीं आता था। उसके मन में अब सन्नाटा था, अपने मन के पूजागृह में स्थापित सुधा की पावन, प्रांजल देवमूर्ति को उसने कठोरता से उठाकर बाहर फेंक दिया था। मन्दिर की मूर्तिमयी पवित्रता, बिनती को अपमानित कर दिया था और मन्दिर के पूजा-उपकरणों को, अपने जीवन के आदर्शों और मानदण्डों को उसने चूर-चूर कर डाला था, और बुतशिकन विजेता की तरह क्रूरता से हँसते हुए मन्दिर के भग्नावशेषों पर कदम रखकर चल रहा था। उसका मन टूटा हुआ खण्डहर था जिसके उजाड़, बेछत के कमरों में चमगादड़ बसेरा करते हैं और जिसके ध्वंसावशेषों पर गिरगिट पहरा देते हैं। काश कि कोई उन खण्डहरों की ईंटें उलटकर देखता तो हर पत्थर के नीचे पूजा-मंत्र सिसकते हुए मिलते, हर धूल की पर्त में घण्टियों की बेहोश ध्वनियाँ मिलतीं, हर कदम पर मुरझाये हुए पूजा के फूल मिलते और हर शाम-सवेरे भग्न देवमूर्ति का करुण रोदन दीवारों पर सिर पटकता हुआ मिलता…लेकिन चन्दर ऐसा-वैसा दुश्मन नहीं था। उसने मन्दिर को

चूर-चूर कर उस पर अपने गर्व का पहरा लगा दिया था कि कभी भी कोई उस पर खण्डहर के अवशेष कुरेदकर पुराने विश्वास, पुरानी अनुभूतियाँ, पुरानी पूजाएँ फिर से न जगा दे। बुतशिकन तो मन्दिर तोड़ने के बाद सारा शहर जला देता है, ताकि शहर वाले फिर उस मन्दिर को न बना पायें—ऐसा था चन्दर। अपने मन को सुनसान कर लेने के बाद उसने अपनी जिन्दगी, अपना रहन-सहन, अपना मकान और अपना वातावरण भी सुनसान कर लिया था। अगहन आ गया था, लेकिन उसके चारों ओर जेठ की दुपहरी से भी भयानक सन्नाटा था।

बिनती जब से गयी उसने कोई खत नहीं भेजा था। सुधा के भी पत्र बन्द हो चुके थे। पम्मी के दो खत आये। पम्मी आजकल दिल्ली घूम रही थी, लेकिन चन्दर न पम्मी को कोई जवाब नहीं दिया। अकेला···अकेला···बिलकुल अकेला···सहारा मरुस्थल की नीरस भयावनी शान्ति और वह भी जब तक कि काँपता हुआ लाल सूरज बालू के क्षितिज पर अपनी आखिरी साँसें तोड़ रहा हो और बालू के टीलों की अधमरी छायाएँ लहरदार बालू पर धीरे-धीरे रेंग रही हों।

बिनती के ब्याह को पन्द्रह दिन रह गये थे कि सुधा का एक पत्र आया···

"मेरे देवता, मेरे नयन, मेर पन्थ, मेरे प्रकाश !

आज कितने दिनों बाद तुम्हें खत लिखने का मौका मिल रहा है। सोचा था बिनती के ब्याह के महीने-भर पहले गाँव आ जाऊँगी तो एक दिन के लिए तुम्हें आकर देख जाऊँगी। लेकिन इरादे इरादे हैं और जिन्दगी जिन्दगी। अब सुधा अपने जेठ और सास के लड़के की गुलाम है। ब्याह के दूसरे दिन ही चला जाना होगा। तुम्हें यहाँ बुला लेती, लेकिन यहाँ बन्धन और परदा तो ससुराल से भी बदतर है।

मैंने बिनती से तुम्हारे बारे में बहुत पूछा। वह कुछ नहीं बतायी। पापा से इतना मालूम हुआ कि तुम्हारी थीसिस छपने गयी है। कन्वोकेशन नजदीक है। तुम्हें याद है, वायदा था कि तुम्हारा गाउन पहनकर मैं फोटो खिंचवाऊँगी। वह दिन याद करती हूँ तो जाने कैसा होने लगता है। एक कन्वोकेशन की फोटो खिंचवाकर जरूर भेजना।

क्या तुमने बिनती का कुछ मन दुःखा दिया था ? बिनती हरदम तुम्हारी बात पर आँसू भर लाती है। मैंने तुम्हारे भरोसे बिनती को वहाँ छोड़ा था। मैं उससे दूर, माँ का सुख उसे मिला नहीं, पिता मर गये। क्या तुम उसे इतना भी प्यार नहीं दे सकते ? मैंने तुम्हें बार-बार सहेज दिया था। मेरी तन्दुरुस्ती अब कुछ-कुछ ठीक है लेकिन जाने कैसी है। कभी-कभी सिर में दर्द होने लगता है। जी मिचलाने लगता है। आजकल वह बहुत ध्यान रखते हैं । लेकिन वे मुझको समझ नहीं पाये। सारे सुख और आजादी के बीच मैं कितनी असन्तुष्ट हूँ। मैं कितनी परेशान हूँ। लगता है हजारों तूफान हमेशा नसों में घहराया करते हैं।

चन्दर, एक बात कहूँ अगर बुरा न माना तो। आज शादी के छह महीने बाद भी मैं यही कहूँगी चन्दर कि तुमने अच्छा नहीं किया। मेरी आत्मा सिर्फ तुम्हारे लिए बनी थी, उसके रेशे में वह तत्व हैं जो तुम्हारी ही पूजा के लिए थे। तुमने मुझे दूर फेंक दिया, लेकिन इस दूरी के अँधेरे में भी जन्म-जन्मान्तर तक भटकती हुई सिर्फ तुम्हीं को ढूँढूँगी, इतना याद रखना और इस बार अगर तुम मिल गये तो जिंदगी की कोई ताकत, कोई आदर्श, कोई सिद्धान्त, कोई प्रवंचना मुझे तुमसे अलग नहीं कर सकेगी। लेकिन मालूम नहीं पुनर्जन्म सच है या झूठ ! अगर झूठ है तो सोचो- चन्दर कि इस अनादिकाल के प्रवाह में सिर्फ एक बार''सिर्फ एक बार मैंने अपनी आत्मा का सत्य ढूँढ़ पाया था और अब अनन्तकाल के लिए उसे खो दिया। अगर पुनर्जन्म नहीं है तो बताओ मेरे देवता, क्या होगा ? करोड़ों सृष्टियाँ होंगी, प्रलय होंगे और मैं अतृप्त चिनगारी की तरह असीम आकाश में तड़पती हुई अँधेरे की हर परत से टकराती रहूँगी, न जाने कब तक के लिए। ज्यों-ज्यों दूरी बढ़ती जा रही है, त्यों-त्यों पूजा की प्यास बढ़ती जा रही है ! काश मैं सितारों के फूल और सूरत की आरती से तुम्हारी पूजा कर पाती ! लेकिन जानते हो मुझे क्या करना पड़ रहा है ? मेरे छोटे भतीजे नीलू ने पहाड़ी चूहे पाले हैं। उनके पिंजड़े के अन्दर एक पहिया लगा है और ऊपर घण्टियाँ लगी हैं। अगर कोई अभागा चूहा उस चक्र में उलझ जाता है तो ज्यों-ज्यों छूटने के लिए वह पैर चलाता है त्यों-त्यों चक्र घूमने लगता है, घण्टियाँ बजने लगती हैं। नीलू बहुत खुश होता है लेकिन चूहा थककर बेदम होकर नीचे गिर पड़ता है। कुछ ऐसे ही चक्र में फँस गयी हूँ, चन्दर! सन्तोष सिर्फ इतना है कि घण्टियाँ बजती हैं तो शायद तुम उन्हें पूजा के मन्दिर की घण्टियाँ समझते होगे। लेकिन खैर ! सिर्फ इतनी प्रार्थना है चन्दर ! कि अब थककर जल्दी ही गिर जाऊँ !

मेरे भाग्य! खत का जवाब जल्दी ही देना। पम्मी अभी आयी या नहीं ?

तुम्हारी, जन्म-जन्म की प्यासी—सुधा"

चन्दर ने खत पढ़ा और फौरन लिखा—

"प्रिय सुधा,

तुम्हारा पत्र बहुत दिनों के बाद मिला। तुम्हारी भाषा वहाँ जाकर बहुत निखर गयी है। मैं तो समझता हूँ कि अगर खत कहीं छुपा दिया जाये तो लोग इसे किसी रोमांटिक उपन्यास का अंश समझें, क्योंकि उपन्यासों के ही पात्र ऐसे खत लिखते हैं, वास्तविक जीवन के नहीं।

खैर, मैं अच्छा हूँ। हरेक आदमी जिन्दगी से समझौता कर लेता है किन्तु मैंने जिन्दगी से समर्पण कराकर उसके हथियार रख लिए हैं। अब किले के बाहर से आने वाली आवाजें अच्छी नहीं लगतीं, न खतों के पाने की उत्सुकता, न जवाब लिखने का आग्रह। अगर मुझे अकेला छोड़ दो तो बहुत अच्छा होगा। मैं विनती करता हूँ, मुझे खत मत लिखना—आज विनती करता हूँ क्योंकि आज्ञा देने का अब साहस भी नहीं,

अधिकार भी नहीं, व्यक्तित्व भी नहीं। खत तुम्हारा तुम्हें भेज रहा हूँ।

कभी जिन्दगी में कोई जरूरत आ पड़े तो जरूर याद करना—बस, इसके अलावा कुछ नहीं।

अपने में सन्तुष्ट
चन्द्रकुमार कपूर"

उसके बाद फिर वही सुनसान जिन्दगी का ढर्रा। खण्डहर के सन्नाटे में भूलकर आयी हुई बाँसुरी की आवाज की तरह सुधा का पत्र, सुधा का ध्यान आया और चला गया। खण्डहर का सन्नाटा, सन्नाटे के उल्लू, गिरगिट और पत्थर काँपे और फिर मुस्तैदी से अपनी जगह पर जम गये और उसके बाद फिर वही उदास सन्नाटा, टूटता हुआ-सा अकेलापन और मूर्च्छित दोपहरी के फूल-सां चन्दर···

नवम्बर का एक खुशनुमा बिहान; सोने के काँपते तारे सुबह की ठण्डी हवाओं में उलझे हुए थे। आकाश एक छोटे बच्चे के नीलम नयनों की तरह भोला और स्वच्छ लग रहा था। क्यारियाँ शरद् के फूलों से भर गयी थीं और एक नयी ताजगी मौसम और मन में पुलक उठी थी। चन्दर अपना पुराना कत्थई स्वेटर और पीले रंग के पश्मीने का लम्बा कोट पहने लॉन पर टहल रहा था। दो छोटे-छोटे पिल्ले दूब पर किलोल कर रहे थे। सहसा एक कार आकर रुकी और पम्मी उसमें से कूद पड़ी और क्वाँरी हिरणी की तरह दौड़कर चन्दर के पास पहुँच गयी—"हलो माई ब्वॉय, मैं आ गयी !"

चन्दर कुछ नहीं बोला—"आओ, ड्राइंगरूम में बैठो !" उसने उसी मुरदा-सी आवाज में कहा। उसे पम्मी के आने की कोई प्रसन्नता नहीं थी। पम्पी उसके उदास चेहरे को देखती रही फिर उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोली—"क्यों कपूर, कुछ बीमार हो क्या ?"

"नहीं तो, आजकल मुझे मिलना-जुलना अच्छा नहीं लगता। अकेला घर भी है !" उसने उसी फीकी आवाज में कहा।

"क्यों, मिस सुधा कहाँ है ? और डॉक्टर शुक्ला !"

"वे लोग मिस बिनती की शादी में गये हैं।"

"अच्छा, उसकी शादी भी हो गयी, डैम इट। जैसे ये लोग पागल हो गये हैं, बर्टी, सुधा, बिनती !···क्यों, मिलते-जुलते क्यों नहीं तुम ?"

"यों ही, मन नहीं होता।"

"समझ गयी, जो मुझे तीन-चार साल पहले हुआ था, कुछ निराशा हुई है तुम्हें !" पम्मी बोली।

"नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं।"

"कहना मत अपनी जबान से, स्वीकार कर लेने से पुरुष का गर्व टूट जाता है।···यही तो तुम्हारे चरित्र में मुझे प्यारा लगता है। खैर, यह ठीक हो जायेगा···! मैं तुम्हें ऐसे नहीं रहने दूँगी।"

"मसूरी में इतने दिन क्या करती रहीं ?" चन्दर ने पूछा।

"योग-साधन !" पम्मी ने हँसकर कहा, "जानते हो, आजकल मसूरी में बरफ पड़ रही है। मैंने कभी बरफ के पहाड़ नहीं देखे थे। अँगरेजी उपन्यासों में बरफ पड़ने का जिक्र सुना बहुत था। सोचा, देखती आऊँ। क्यों कपूर ! तुम खत क्यों नहीं लिखते थे ?"

"मन नहीं होता था। अच्छा बर्टी की शादी कब होगी ?" चन्दर ने बात टालने के लिए कहा।

"हो भी गयी। मैं आ भी नहीं पायी कि सुनते हैं जेनी एक दिन बर्टी को पकड़कर खींच ले गयी और पादरी से बोली, 'अभी शादी करा दो।' उसने शादी करा दी। लौटकर जेनी ने बर्टी का शिकारी सूट फाड़ डाला और अच्छा-सा सूट पहना दिया। बड़े विचित्र हैं दोनों। एक दिन सर्दी के वक्त बर्टी स्वेटर उतारकर जेनी के कमरे में गया तो मारे गुस्से के जेनी ने सिवा पतलून के सारे कपड़े उतारकर बर्टी को कमरे से बाहर निकाल दिया। मैं तो जब से आयी हूँ, रोज नाटक देखती हूँ। हाँ, देखो यह तो मैं भूल ही गयी थी···" और उसने अपनी जेब से पीतल की एक छोटी-सी मूर्ति निकालकर मेज पर रखी—"एक भोटिया औरत इसे बेच रही थी। मैंने इसे माँगा तो वह बोली—'यह सिर्फ मरदों के लिए है।' मैंने पूछा, 'क्यों ?' तो बोली—'इसे अगर मरद पहन ले तो उस पर किसी औरत का जादू नहीं चलता। वह औरत या तो मर जाती है या भाग जाती है या उसका ब्याह किसी दूसरे से हो जाता है।' तो मैंने सोचा, तुम्हारे लिए लेती चलूँ।"

चन्दर ने देखा वह अवलोकितेश्वर की महायानी मूर्ति थी। उसने हँसकर उसे ले लिया फिर बोला—"और क्या लायी अपने लिए ?"

"अपने लिए एक नया रहस्य लायी हूँ।"

"क्या ?"

"इधर देखो, मेरी ओर, मैं सुन्दर लगती हूँ ?"

चन्दर ने देखा। पम्मी अठारह साल की लड़की-सी लगने लगी है। चेहरे के कोने भी जैसे गोल हो गये थे और मुँह पर बहुत ही भोलापन आ गया था, आँखों में क्वाँरापन आ गया था, चेहरे पर सोना और केसर, चम्पा, हरसिंगार घुल-मिल गये थे।

"सचमुच पम्मी, लगता है जैसे कौमार्य लौट आया है तुम पर तो ! परियों के कुंज से अपना बचपन फिर चुरा लायी क्या ?"

"नहीं कपूर, यही तो रहस्य लायी हूँ, हमेशा सुन्दर बने रहने का और परियों के कुंजों से नहीं, गुनाहों के कुंजों से । मैंने हिमालय की छाँह में एक नया संगीत सुना

कपूर, मांसलता का संगीत। मसूरी के समाज में घुल-मिल गयी और मादक अनुभूतियाँ बटोरती रही—बिना किसी पश्चात्ताप के और मैंने देखा कि दिनों-दिन निखरती जा रही हूँ। कपूर, सेक्स इतना बुरा नहीं जितना मैं समझती थी। तुम्हारी क्या राय है ?"

"हाँ, मैं देख रहा हूँ, सेक्स लोगों को उतना बुरा नहीं लगता, जितना मैं समझता था।"

"नहीं चन्दर, सिर्फ इतना ही नहीं, अच्छा मान लो जैसे तुम आजकल उदास हो और तुम्हारा सिर इस तरह अपनी गोद में रख लूँ तो कुछ सन्तोष नहीं होगा तुम्हें ?" और पम्मी ने चन्दर का सिर सचमुच अपने श्वासान्दोलित वक्ष से चिपका लिया। चन्दर झल्लाकर अलग हट गया। कैसी अजब लड़की है। थोड़ी देर चुप बैठा रहा, फिर बोला—

"क्यों पम्मी, तुम एक लड़की हो, मैं तुम्हीं से पूछता हूँ—क्या लड़कियों के प्रेम में सेक्स अनिवार्य है ?"

"हाँ।" पम्मी ने स्पष्ट स्वरों में जोर देकर कहा।

"लेकिन पम्मी, मैं तुमसे नाम तो नहीं बताऊँगा लेकिन एक लड़की है जिसको मैंने प्यार किया है लेकिन शायद वह मुझसे शादी नहीं कर पायेगी। मेरे उसके कोई शारीरिक सम्बन्ध भी नहीं हैं। क्या तुम इसे प्यार नहीं कहोगी ?"

"कुछ दिन बाद जब उसकी शादी हो जाये तो तब पूछना, तुम्हारा सारा प्रेम मर जायेगा। पहले मैं भी तुमसे कहती थी—पुरुष और नारी के सम्बन्धों में एक अन्तर जरूरी है। अब लगता है यह सब एक भुलावा है।" अपने को पम्मी बोली।

"लेकिन दूसरी बात तो सुनो, उसी की एक सखी है। वह जानती है कि मैं उसकी सखी को प्यार करता हूँ, उसे नहीं कर सकता। कहीं सेक्स की तृप्ति का सवाल नहीं फिर भी वह मुझे प्यार करती है। इसे तुम क्या कहोगी !" चन्दर ने पूछा।

"यह और दूसरे ढंग की परिस्थिति है। देखो कपूर, तुमने हिप्नोटिज्म के बारे में नहीं पढ़ा । ऐसा होता है कि अगर कोई हिप्नोटिज्म एक लड़की को हिप्नोटाइज कर रहा है और बगल में एक दूसरी लड़की बैठी है जो चुपचाप यह देख रही है तो वातावरण के प्रभाव से अकसर ऐसा देखा जाता है कि वह भी हिप्नोटाइज हो जाती है लेकिन वह एक क्षणिक मानसिक मूर्च्छा होती है जो टूट जाती है।" पम्मी ने कहा।

चन्दर को लगा जैसे बहुत कुछ सुलझ गया। एक क्षण में उसके मन का बहुत-सा भार उतर गया।

"पम्मी, मुझे तुम्हीं एक लड़की मिली जो साफ बातें करती हो और एक शुद्ध तर्क और बुद्धि के धरातल से। बस, मैं आजकल बुद्धि का उपासक हूँ, भगवान से चिढ़ है।"

"बुद्धि और शरीर बस यही दो आदमी के मूल तत्त्व हैं। हृदय तो दोनों के अन्तःसंघर्ष की उलझन का नाम है।" पम्मी ने कहा और सहसा घड़ी देखते हुए बोली—"नौ बज रहे हैं, चलो साढ़े नौ से मैटिनी है। आओ, देख आयें !"

"मुझे कॉलेज जाना है, मैं जाऊँगा नहीं कहीं !"

"आज इतवार है, प्रोफेसर कपूर ?" पम्मी चन्दर को उठाकर बोली—"मैं तुम्हें उदास नहीं होने दूँगी, मेरे मीठे सपने ! तुमने भी मुझे इस उदासी के इन्द्रजाल से छुड़ाया था, याद है न ?" और चन्दर के माथे पर अपने गरम मुलायम हाथ रख दिये।

माथे पर पम्मी के होंठों की गुलाबी आग चन्दर की नसों को गुदगुदा गयी। वह क्षण-भर के लिए अपने को भूल गया··पम्मी के रेशमी फ्राक के गुदगुदाते हुए स्पर्श, उसके वक्ष की अलभ्य गरमाई और उसके स्पर्श के जादू में खो गया। उसके अंग-अंग में सुवह की शवनम ढलकने लगी। पम्मी उसके वालों को अँगुलियों से सुलझाती रही। फिर कपूर के गाल थपथपाकर बोली—"चलो !" कपूर जाकर बैठ गया। "तुम ड्राइव करो।" पम्मी बोली। चन्दर ड्राइव करने लगा और पम्मी कभी उसके कालर, कभी उसके बाल, कभी उसके होंठों से खेलती रही।

सात चाँद की रानी ने आखिर अपनी निगाहों के जादू के सन्नाटे के प्रेत को जीत लिया। स्पर्शों के सुकुमार रेशमी तारों ने नगर की आग को शबनम से सींच दिया। ऊबड़-खाबड़ खण्डहर को अंगों के गुलाब की पाँखुरियों से ढक दिया और पीड़ा के अँधियारे को सीपिया पलकों से झरने वाली दूधिया चाँदनी से धो दिया। एक संगीत की लय थी जिसमें स्वर्गभ्रष्ट देवता खो गया, संगीत की लय थी या उद्दाम यौवन का उभरा हुआ ज्वार था जो चन्दर को एक मासूम फूल की तरह बहा ले गया··जहाँ पूजा-दीप बुझ गया था वहाँ तरुणाई की साँस की इन्द्रधनुषी शमा झिलमिला उठी, जहाँ फूल मुरझाकर धूल में मिल गये थे वहाँ पुखराजी स्पर्शों के सुकुमार हरसिंगार झर पड़े···आकाश के चाँद के लिए जिन्दगी के आँगन में मचलता हुआ कन्हैया, थाली के प्रतिविम्ब में ही भूल गया··

चन्दर की शामें पम्मी के अदम्य रूप की छाँह में मुसकरा उठीं। ठीक चार बजे पम्मी आती, कार पर चन्दर को ले जाती और चन्दर आठ बजे लौटता। प्यार के विना कितने महीने कट गये, पम्मी के विना एक शाम नहीं वीत पाती, लेकिन अव भी चन्दर ने अपने को इतना दूर रखा था कि कभी पम्मी के होंठों के गुलाबों ने चन्दर के होंठों के मूँगे से बातें भी नहीं की थीं।

एक दिन रात को जब वह लौटा तो देखा कि अपनी कार आ गयी है। उसका मन फूल उठा। जैसे कोई अनाथ भटका हुआ बच्चा अपने संरक्षक की गोद के लिए तड़प उठता है वैसे ही वह पिछले डेढ़-महीने से डॉक्टर साहब के लिए तरस गया था। जहाँ इस वक्त उसके जीवन में सिर्फ नशा और नीरसता थी, वहीं हृदय के एक कोने में

सिर्फ एक सुकुमार भावना शेष रह गयी थी, वह थी डॉक्टर शुक्ला के प्रति। वह भावना कृतज्ञता की भावना नहीं थी, डॉक्टर शुक्ला इतने दूर नहीं थे कि अब वह उनके प्रति कृतज्ञ हो, इतने बड़े हो जाने पर भी वह जब कभी डॉक्टर को देखता था तो लगता था जैसे कोई नन्हा बच्चा अपने अभिभावक की गोद में आकर निश्चिन्त हो जाता हो।

उसने पास आकर देखा, डॉक्टर साहब बरामदे में टहल रहे थे। चन्दर दौड़कर उनके पाँव पर गिर पड़ा। डॉक्टर साहब ने उसे उठाकर गले से लगा लिया और बड़े प्यार से उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले–

"कन्वोकेशन हो गया ? डिग्री जीत लाये ?"

"जी हाँ !" बड़ी विनम्रता से चन्दर ने कहा।

"बहुत ठीक, अब डी॰ लिट्॰ की तैयारी करो। तुम्हें जल्दी ही सेण्ट्रल गवर्नमेण्ट में जाना है।" डॉक्टर साहब बोले–"मैं तो 15 जनवरी को दिल्ली जा रहा हूँ, कम-से-कम साल भर के लिए ?"

"इतनी जल्दी; ऑफर कब आया ?" चन्दर ने अचरज से पूछा।

"मैं उन दिनों दिल्ली गया था न, तभी एजुकेशन मिनिस्टर से बात हुई थी !" डॉक्टर साहब ने चन्दर को देखते हुए कहा–"अरे, तुम कुछ दुबले हो रहे हो ! क्यों, महराजिन ने ठीक से काम नहीं किया ?"

"नहीं !" चन्दर हँसकर बोला–"बिनती की शादी ठीक-ठाक हो गयी ?"

"बिनती की शादी !" डॉक्टर साहब ने सिर झुकाये हुए, टहलते हुए एक बड़ी फीकी हँसी हँसकर कहा–"बिनती और तुम्हारी बुआजी दोनों अन्दर हैं।"

"अन्दर हैं !" चन्दर को यह रहस्य कुछ समझ में ही नहीं आता था। "इतनी जल्दी बिनती लौट आयी ?"

"बिनती गयी ही कहाँ ?" डॉक्टर साहब ने बहुत चुपचाप सिर झुक कर कहा और बहुत करुण उदासी उनके मुँह पर छा गयी। वह बेचैनी से बरामदे में टहलने लगे। चन्दर का साहस नहीं हुआ कुछ पूछने का। कुछ अमंगल अवश्य हुआ है।

वह अन्दर गया। बुआजी अपनी कोठरी में सामान रख रही थीं, और बिनती बैठी सिल पर उरद की भीगी दाल पीस रही थी ! बिनती ने चन्दर को देखा, दाल में सने हुए हाथ जोड़कर प्रणाम किया, सिर को आँचल से ढककर चुपचाप दाल पीसने लगी, कुछ बोली नहीं। चन्दर ने प्रणाम किया और जाकर बुआ के पैर छू लिये।

"अरे चन्दर है; आओ बेटवा, हम तो लुट गये !" और बुआ वहीं देहरी पर सिर थामकर बैठ गयीं।

"क्या हुआ, बुआजी ?"

"होता का भइया ! जौन बदा रहा भाग में ओ ही भवा।" और बुआ अपनी धोती से आँसू पोंछकर बोलीं–"ई हमरी छाती पर मूँग दरै के लिए बदी रही तौन जमी है। भगवान कौनों को ऐसी कलंकिनी बिटिया न दे। तीन भाँवरी के बाद बारात

उठ गयी, भइया ! हमारा तो कुल डूब गया।" और बुआजी ने उच्च स्वर में रोदन शुरू किया। विनती ने चुपचाप हाथ धोये और उठकर छत पर चली गयी।

"चुप रहो हो। अब रोय-रोय के काहे जिउ हलकान करत हउ। गुनवन्ती बिटिया बाय, हज्जारन आय के बिटिया के लिए गोड़े गिरिहैं। अपना एकान्त होई के बैठो !" महराजिन ने पूड़ी उतारते हुए कहा।

"आखिर बात क्या हुई, महराजिन !" चन्दर ने पूछा।

महराजिन ने जो बताया उससे पता लगा कि लड़के वाले बहुत ही संकीर्णमना और स्वार्थी थे। पहले मालूम हुआ कि लड़का उन्होंने ग्रेजुएट बताया था। वह था इण्टर फेल। फिर दरवाजे पर झगड़ा किया उन्होंने। डॉक्टर साहब बहुत बिगड़ गये, अन्त में मड़वे में लोगों ने देखा कि लड़के के बायें हाथ की अँगुलियाँ गायब हैं। डॉक्टर साहब इस बात पर बिगड़े और उन्होंने मड़वे से बिनती को उठवा दिया। फिर बहुत लड़ाई हुई। लाठी तक चलने की नौबत आ गयी। जैसे तैसे झगड़ा निपटा। तीन भाँवरों के बाद ब्याह टूट गया।

"अब बताओ, भइया !" सहसा बुआ आँसू पोंछकर गरज उठीं—"ई इन्हें का हुइ गवा रहा, इनकी मति मारी गयी। गुस्से में आय के बिनती को उठवाय लिहिन। अब हम एत्ती बड़ी बिटिया लै के कहाँ जाईं ? अब हमरी बिरादरी में कौन पूछी एका। एत्ता पढ़-लिख के इन्हें का सूझा। अरे लड़की वाले हमेशा दब के चलै चाही।"

"अरे तो क्या आँख बन्द कर लेते। लँगड़े-लूले लड़के से कैसे ब्याह कर देते, बुआ ! तुम भी गजब करती हो !" चन्दर बोला।

"भइया, जेके भाग में लँगड़ा-लूला बदा होई ओका ओही मिली। लड़कियन को निबाह करै चाही कि सकल देखै चाही। अबहिन ब्याह के बाद कौनों के हाथ-गोड़ टूट जाये तो औरत अपने आदमी को छोड़ के गली-गली की हाँड़ी चाटै। हम रहे तो जब बिनती तीन बरस की हुई गयी, तब उनकी सकल उजेले में देखा रहा। जैसा भाग में रहा तैसा होता !"

चन्दर ने विचित्र हृदय-हीन तर्क को सुना और आश्चर्य से बुआ की ओर देखने लगा।···बुआजी बकती जा रही थीं—

"अब कहते हैं कि बिनती को पढ़उबै ! ब्याह न करबै ! रही-सही इज्जत भी बेच रहे हैं। हमार तो किस्मत फूट गयी···" और वे फिर रोने लगीं, "पैदा होते काहे नहीं मर गयी कुलबोरनी··कुलच्छनी···अभागिन !"

सहसा बिनती छत से उतरी और आँगन में आकर खड़ी हो गयी, उसकी आँखों में आग भरी थी—"बस करो, माँजी !" वह चीखकर बोली—"बहुत सुन लिया मैंने। अब और बरदाश्त नहीं होता। तुम्हारे कोसने से अब तक नहीं मरी, न मरूँगी। अब मैं सुनूँगी नहीं, मैं साफ कह देती हूँ। तुम्हें मेरी शकल अच्छी नहीं लगती तो जाओ तीरथ-यात्रा में अपना परलोक सुधारो ! भगवान का भजन करो। समझी कि नहीं !"

चन्दर ने ताज्जुब से बिनती की ओर देखा। यह वही बिनती है जो माँजी की

ज़रा-ज़रा-सी बात से लपटकर रोया करती थी। बिनती का चेहरा तमतमाया हुआ था और गुस्से से बदन काँप रहा था। बुआ उछलकर खड़ी हो गयीं और दुगुनी चीखकर बोलीं—"अब बहुत जबान चलै लगी है। कौन है तोर जे के बल पर ई चमक दिखावत है। हम काट के धर देबै, तोके बताय देइत हई। मुँहझौंसी ! ऐसी न होती तो काहे ई दिन देखै पड़त। उन्हें तो खाय गयी, हमहूँ का खाय लेव !" अपना मुँह पीटकर बुआ बोलीं।

"तुम इतनी मीठी नहीं हो माँजी कि तुम्हें खा लूँ !" बिनती ने और तड़पकर जवाब दिया।

चन्दर स्तब्ध हो गया। यह बिनती पागल हो गयी है। अपनी माँ को क्या कह रही है !

"छिः, बिनती ! पागल हो गयी हो क्या ? चलो उधर !" चन्दर ने डाँटकर कहा।

"चुप रहो, चन्दर ! हम भी आदमी हैं, हमने जितना बरदाश्त किया है, हमीं जानते हैं। हम क्यों बरदाश्त करें ! और तुमसे क्या मतलब ? तुम कौन होते हो हमारे बीच में बोलने वाले ?"

"क्या है यह सब ? तुम लोग सब पागल हो गये हो क्या ? बिनती, यह क्या हो रहा है ?" सहसा डॉक्टर साहब ने आकर कहा।

बिनती दौड़कर डॉक्टर साहब से लिपट गयी और रोकर बोली, "मामाजी, मुझे दीदी के पास भेज दीजिए ! मैं यहाँ नहीं रहूँगी।"

"अच्छा बेटी ! अच्छा ! जाओ चन्दर !" डॉक्टर साहब ने कहा। बिनती चली गयी तो बुआ जी से बोले—"तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। उस पर गुस्सा उतारने से क्या फायदा ? हमारे सामने ये सब बातें करोगी तो ठीक नहीं होगा।"

"अरे हम काहे बोलबै ! हम तो मर जाईं तो अच्छा है···" बुआजी पर जैसे देवी माँ आ गयी हों इस तरह से झूम-झूमकर रो रही थीं···"हम तो वृन्दावन जाय के डूब मरीं ! अब हम तुम लोगन की सकल न देखबै। हम मर जाई तो चाहे बिनती को पढ़ायो चाहे नचायो-गवायो। हम अपनी आँख से न देखबै।"

उस रात को किसी ने खाना नहीं खाया। एक विचित्र-सा विषाद सारे घर पर छाया हुआ था। जाड़े की रात का गहन अँधेरा खामोश छाया हुआ था, महज एक अमंगल छाया की तरह कभी-कभी बुआजी का रोदन अँधेरे को झकझोर जाता था।

सभी चुपचाप भूखे सो गये···

दूसरे दिन बिनती उठी और महराजिन के आने के पहले ही उसने चूल्हा जलाकर चाय चढ़ा दी। थोड़ी देर में चाय बनाकर और टोस्ट भूनकर वह डॉक्टर साहब के सामने रख आयी। डॉक्टर साहब कल की बातों से बहुत ही व्यथित थे। रात को भी उन्होंने खाना नहीं खाया था, इस वक्त भी उन्होंने मना कर दिया। बिनती चन्दर के कमरे में गयी—"चन्दर, मामा जी ने कल रात को भी कुछ नहीं खाया, तुमने भी नहीं खाया, चलो चाय पी लो !"

चन्दर ने भी मना किया तो बिनती बोली—"तुम पी लोगे तो मामाजी भी शायद पी लें।" चन्दर चुपचाप गया। बिनती थोड़ी देर में गयी तो देखा दोनों चाय पी रहे हैं। वह आकर मेवा निकालने लगी।

चाय पीते-पीते डॉक्टर साहब ने कहा—"चन्दर, यह पास-बुक लो। पाँच सौ निकाल लो और दो हजार का हिसाब अलग करवा दो।...अच्छा, देखो, मैं तो चला जाऊँगा दिल्ली, बिनती को शाहजहाँपुर भेजना ठीक नहीं है। वहाँ चार रिश्तेदार हैं, बीस तरह की बातें होंगी। लेकिन मैं चाहता हूँ अब आगे जब तक यह चाहे, पढ़े ! अगर कहो तो यहाँ छोड़ जाऊँ, तुम पढ़ाते रहना !"

बिनती आ गयी और तश्तरी में भुना मेवा रखकर उसमें नमक मिला रही थी। चन्दर ने एक स्लाइस उठायी और उस पर नमक लगाते हुए बोला—"वैसे आप यहाँ छोड़ जायें तो कोई बात नहीं है, लेकिन अकेले घर में अच्छा नहीं लगता। दो-एक रोज की बात दूसरी होती है। एकदम से साल-भर के लिए...आप समझ लें।"

"हाँ बेटा, कहते तो तुम ठीक हो ! अच्छा, कॉलेज के होस्टल में अगर रख दिया जाये !" डॉक्टर साहब ने पूछा।

"मैं लड़कियों के होस्टल में रखना ठीक नहीं समझता हूँ।" चन्दर बोला—"घर के वातावरण और वहाँ के वातावरण में बहुत अन्तर होता है।"

"हाँ, यह भी ठीक है। अच्छा तो इस साल मैं इसे दिल्ली लिये जा रहा हूँ। अगले साल देखा जायेगा...चन्दर, इस महीने-भर में मेरा सारा विश्वास हिल गया। सुधा का विवाह कितनी अच्छी जगह किया गया, मगर सुधा पीली पड़ गयी है। कितना दुख हुआ देखकर। और बिनती के साथ यह हुआ ! सचमुच यह जाति, विवाह सभी परम्पराएँ बहुत ही बुरी हैं। बुरी तरह सड़ गयी हैं। उन्हें तो काट फेंकना चाहिए। मेरा तो वैसे इस अनुभव के बाद सारा आदर्श ही बदल गया।"

चन्दर बहुत अचरज से डॉक्टर साहब की ओर देखने लगा। यही जगह थी, इसी तरह बैठकर डॉक्टर साहब ने जाति-बिरादरी, विवाह आदि सामाजिक परम्पराओं की कितनी प्रशंसा की थी। जिन्दगी की लहरों ने हर एक को दस महीने में कहाँ से कहाँ लाकर पटक दिया है। डॉक्टर साहब कहते गये..."हम लोग जिन्दगी से दूर रहकर सोचते हैं कि हमारी सामाजिक संस्थाएँ स्वर्ग हैं, यह तो जब उनमें धँसो तब उनकी गन्दगी मालूम होती है। चन्दर, तुम कोई गैर जात का अच्छा-सा लड़का ढूँढ़ो। मैं बिनती की शादी दूसरी बिरादरी में कर दूँगा।"

बिनती, जो और चाय ला रही थी, फौरन बड़े दृढ़ स्वर में बोली—"मामा जी, आप जहर दे दीजिए लेकिन मैं शादी नहीं करूँगी। क्या आपको मेरी दृढ़ता पर विश्वास नहीं ?"

"क्यों नहीं, बेटी ! अच्छा, जब तक तेरी इच्छा हो, पढ़ !"

दूसरे दिन डॉक्टर साहब ने बुआज़ी को बुलाया और रुपये दे दिये।

"लो, यह पाँच सौ पहले खर्चे के हैं और दो हजार में से तुम्हें धीरे-धीरे मिलता रहेगा।"

दो-तीन दिन के अन्दर बुआ ने जाने की सारी तैयारी कर ली, लेकिन तीन दिन तक बराबर रोती रहीं। उनके आँसू थमे नहीं। बिनती चुप थी। वह भी कुछ नहीं बोली। चौथे दिन जब वह सामान मोटर पर रखवा चुकीं तो उन्होंने चन्दर से बिनती को बुलवाया । बिनती आयी तो उन्होंने उसे गले से लगा लिया—और बेहद रोयीं। लेकिन डॉक्टर साहब को देखते ही फिर बोल उठीं—"हमरी लड़की का दिमाग तुम ही बिगाड़े हो। दुनिया में भाइयौ अपना नै होत। अपनी लड़की का बिया दियौ ! हमरी लड़की···" फिर बिनती को चिपटाकर रोने लगीं।

चन्दर चुपचाप खड़ा सोच रहा था, अभी तक बिनती खराब थी। अब डॉक्टर साहब खराब हो गये। बुआ ने रुपये सँभालकर रख लिये और मोटर पर बैठ गयीं। समस्त लांछनों के बावजूद डॉक्टर साहब उन्हें पहुँचाने स्टेशन तक गये।

बिनती बहुत ही चुप-सी हो गयी थी। वह किसी से कुछ नहीं बोलती और चुपचाप काम किया करती थी। जब काम से फुरसत पा लेती तो सुधा के कमरे में जाकर लेट जाती और जाने क्या सोचा करती। चन्दर को बड़ा ताज्जुब होता था बिनती को देखकर। जब बिनती खुश थी, बोलती-चालती थी तो चन्दर बिनती से चिढ़ गया था, लेकिन बिनती के जीवन का यह नया रूप देखकर पहले की सभी बातें भूल गया। और उससे फिर बात करने की कोशिश करने लगा। लेकिन बिनती ज्यादा बोलती ही नहीं।

एक दिन दोपहर को चन्दर युनिवर्सिटी से लौटकर आया और उसने रेडियो खोल दिया। बिनती एक तश्तरी में अमरूद काटकर ले आयी और रखकर जाने लगी। "सुनो बिनती, क्या तुमने मुझे माफ नहीं किया ! मैं कितना व्यथित हूँ, बिनती ! अगर तुमको भूल से कुछ कह दिया तो तुम उसका इतना बुरा मान गयीं कि दो-तीन महीने बाद भी नहीं भूलीं !"

"नहीं, बुरा मानने की क्या बात है, चन्दर !" बिनती एक फीकी हँसी हँसकर बोली—"आखिर नारी का भी एक स्वाभिमान है, मुझे माँ बचपन से कुचलती रही, मैंने तुम्हें दीदी से बढ़कर माना। तुम भी ठोकरें लगाने से बाज नहीं आये फिर भी मैं सब सहती गयी । उस दिन जब मण्डप के नीचे मामाजी ने जबरदस्ती हाथ पकड़कर खड़ा कर दिया तो मुझे उसी क्षण लगा कि मुझमें भी कुछ सत्त्व है, मैं इसीलिए नहीं बनी हूँ कि दुनिया मुझे कुचलती ही रहे। अब मैं विरोध करना, विद्रोह करना भी सीख

गयी हूँ। जिन्दगी में स्नेह की जगह है लेकिन स्वाभिमान भी कोई चीज है। और तुम्हें अपनी जिन्दगी में किसी की जरूरत भी तो नहीं है !" कहकर बिनती धीरे-धीरे चली गयी।

अपमान से चन्दर का चेहरा काला पड़ गया। उसने रेडियो बन्द कर दिया। और तश्तरी उठाकर नीचे रख दी और बिना कपड़े बदले पम्मी के यहाँ चल दिया।

मनुष्य का एक स्वभाव होता है। जब वह दूसरे पर दया करता है तो वह चाहता है कि याचक पूरी तरह विनम्र होकर उसे स्वीकार करे। अगर याचक दान लेने में कहीं भी स्वाभिमान दिखलाता है तो आदमी अपनी दानवृत्ति और दयाभाव भूलकर नृशंसता से उसके स्वाभिमान को कुचलने में व्यस्त हो जाता है। आज हफ्तों के बाद चन्दर के मन में बिनती के लिए कुछ स्नेह, कुछ दया जागी थी, बिनती को उदास मौन देखकर; लेकिन बिनती के इस स्वाभिमान-भरे उत्तर ने फिर उसके मन का सोया हुआ साँप जगा दिया था। वह इस स्वाभिमान को तोड़कर रहेगा, उसने सोचा।

पम्मी के यहाँ पहुँचा तो अभी धूप थी। जेनी कहीं गयी थी, बर्टी अपने तोते को कुछ खिला रहा था। कपूर को देखते ही हँसकर अभिवादन किया और बोला—"पम्मी अन्दर है !" वह सीधा अन्दर चला गया। पम्मी अपने शयन-कक्ष में बैठी हुई थी। कमरे में लम्बी-लम्बी खिड़कियाँ थीं जिनमें लकड़ी के चौखटों में रंग-बिरंगे शीशे लगे हुए थे। खिड़कियाँ बन्द थीं और सूरज की किरणें इन शीशों पर पड़ रही थीं और पम्मी पर सातों रंग की छायाएँ खेल रही थीं। वह झुकी हुई सोफे पर अधलेटी कोई किताब पढ़ रही थी। चन्दर ने पीछे से जाकर उसकी आँखें बन्द कर लीं और बगल में बैठ गया।

"कपूर !" अपनी सुकुमार अँगुलियों से चन्दर के हाथ को आँखों पर से हटाते हुए पम्मी बोली और पलकों में बेहद नशा भरकर सोनजुही की मुसकान बिखेरकर चन्दर को देखने लगी। चन्दर ने देखा, वह ब्राउनिंग की कविता पढ़ रही थी। वह पास बैठ गया।

पम्मी ने उसे अपने वक्ष पर खींच लिया और उसके बालों से खेलने लगी। चन्दर थोड़ी देर चुप लेटा रहा फिर पम्मी के गुलाबी होंठों पर अँगुलियाँ रखकर बोला—"पम्मी, तुम्हारे वक्ष पर सिर रखकर मैं जाने क्यों सब कुछ भूल जाता हूँ ? पम्मी, दुनिया वासना से इतना घबराती क्यों है ? मैं ईमानदारी से कहता हूँ कि अगर किसी को वासनाहीन प्यार करके, किसी के लिए त्याग करके मुझे जितनी शान्ति मिलती है, पता नहीं क्यों मांसलता में भी उतनी ही शान्ति मिलती है। ऐसा लगता है कि शरीर के विकार अगर

आध्यात्मिक प्रेम में जाकर शान्त हो जाते हैं तो लगता है आध्यात्मिक प्रेम में प्यासे रह जाने वाले अभाव फिर किसी के मांसल-बन्धन में ही आकर बुझ पाते हैं। कितना सुख है तुम्हारी ममता में।"

"शी !" चन्दर के होंठों को अपनी अँगुलियों से दबाती हुई पम्मी बोली—"चरम शान्ति के क्षणों को अनुभव किया करो। बोलते क्यों हो ?"

चन्दर चुप हो गया। चुपचाप लेट रहा।

पम्मी की केसर श्वासें उसके माथे को रह-रहकर चूम रही थीं और चन्दर के गालों को पम्मी के वक्ष में धड़कता हुआ संगीत गुदगुदा रहा था। चन्दर का एक हाथ पम्मी के गले में पड़ी इमीटेशन हीरे की माला से खेलने लगा। सारस के पंखों से भी ज्यादा मुलायम सुकुमार गरदन से छूटने पर अँगुलियाँ लाजवन्ती की पत्तियों की तरह सकुचा जाती थीं। माला खोल ली और उसे उतारकर अपने हाथ में ले लिया। मम्मी ने माला लेने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि गले के बटन टच से टूट गये··बरफानी चाँदनी उफनकर छलक पड़ी। चन्दर को लगा उसके गालों के नीचे बिजलियों के फूल सिहर उठे हैं और एक मदमादा नशा टूटते हुए सितारों की तरह उसके शरीर को चीरता हुआ निकल गया। वह काँप उठा, सचमुच काँप उठा। नशे में चूर वह उठकर बैठ गया और उसने पम्मी को अपनी गोद में डाल लिया। पम्मी अनग के धनुष की प्रत्यंचा की तरह दोहरी होकर उसकी गोद में पड़ रही। तरुणाई का चाँट टूटकर दो टुकड़े हो गया था और वासना के तूफान ने झीने बादल भी हटा दिये थे। जहरीली चाँदनी ने नागिन बनकर चन्दर को लपेट लिया। चन्दर ने पागल होकर पम्मी को अपनी बाँहों में कस लिया, इतनी प्यास से लगा कि पम्मी का दीपशिखा-सा तन चन्दर के तन में समा जायेगा। पम्मी निश्चेष्ट आँखें बन्द किये थी लेकिन उसके गालों पर जाने क्या खिल उठा था ! चन्दर के गले में उसने मृणाल-सी बाँहें डाल दी थीं। चन्दर ने पम्मी के होंठों को जैसे अपने होंठों में समेट लेना चाहा··इतनी आग··इतनी आग··नशा···

"ठाँय !" सहसा बाहर बन्दूक की आवाज हुई । चन्दर चौंक उठा। उसने अपने बाहुपाश ढीले कर दिये। लेकिन पम्मी उसके गले में बाँहें डाले बेहोश पड़ी थी। चन्दर ने क्षण-भर पम्मी के भरपूर रूप यौवन को आँखों से पी लेना चाहा। पम्मी ने अपनी बाँहें हटा लीं और नशे में मखमूर-सी चन्दर की गोद से एक ओर लुढ़क गयी। उसे अपने तन-बदन का होश नहीं था। चन्दर ने उसके वस्त्र ठीक किये और फिर झुककर उसकी नशे में चूर पलकें चूम लीं।

"ठाँय !" बन्दूक की दूसरी आवाज हुई। चन्दर घबराकर उठा।

"यह क्या है, पम्मी ?"

"होगा कुछ, जाओ मत।" अलसायी हुई नशीली आवाज में पम्मी ने कहा और उसे फिर खींचकर बिठा लिया। और फिर बाँहों में उसे समेटकर उसका माथा चूम लिया।

"ठाँय !" फिर तीसरी आवाज हुई।

चन्दर उठ खड़ा हुआ और जल्दी से बाहर दौड़ गया। देखा बर्टी की बन्दूक बरामदे में पड़ी है, और वह पिंजड़े के पास मरे हुए तोते का पंख पकड़कर उठाये हुए है। उसके घावों से बर्टी के पतलून पर खून चू रहा था। चन्दर को देखते ही बर्टी हँस पड़ा, "देखा ! तीन गोली में इसे बिलकुल मार डाला, वह तो कहो सिर्फ एक ही लगी वरना···" और पंख पकड़कर तोते की लाश को झुलाने लगा।

"छिः ! फेंको उसे; हत्यारे कहीं के ! मार क्यों डाला उसे ?" चन्दर ने कहा।

"तुमसे मतलब ! तुम कौन होते हो पूछने वाले ? मैं प्यार करता था उसे, मैंने मार डाला !" बर्टी बोला और आहिस्ते से उसे एक पत्थर पर रख दिया। रूमाल निकालकर फाड़ डाला। आधा रूमाल उसके नीचे बिछा दिया और आधे से उसका खून पोंछने लगा। फिर चन्दर के पास आया। घन्दर के कन्धे पर हाथ रखकर बोला—"कपूर ! तुम मेरे दोस्त हो न ! जरा रूमाल दे दो।" और चन्दर का रूमाल लेकर तोते के पास खड़ा हो गया। बड़ी हसरत से उसकी ओर देखता रहा। फिर झुककर उसे चूम लिया और उस पर रूमाल ओढ़ा दिया। और बड़े मातम की मुद्रा में उसी के पास सिर झुकाकर बैठ गया।

"बर्टी, बर्टी, पागल हो गये क्या ?" चन्दर ने उसका कन्धा पकड़कर हिलाते हुए कहा—"यह क्या नाटक हो रहा है ?"

बर्टी ने आँख खोली और चन्दर को भी हाथ पकड़कर वहीं बिठा लिया और बोला—"देखो कपूर, एक दिन तुम आये थे तो मैंने तोता और जेनी दोनों को दिखाकर कहा था कि जेनी से मैं नफरत करता हूँ, उससे शादी कर लूँगा और तोते से मैं प्यार करता हूँ, इसे मार डालूँगा। कहा था कि नहीं ? कहो हाँ।"

"हाँ, कहा था।" चन्दर बोला—"लेकिन क्यों कहा था ?"

"हाँ, अब पूछा तुमने ! तुम पूछोगे 'मैंने क्यों मार डाला' तो मैं कहूँगा कि इसे अब मर जाना चाहिए था, इसलिए इसे मार डाला। तुम पूछोगे, 'इसे क्यों मर जाना चाहिए ?' तो मैं कहूँगा, 'जब कोई जीवन की पूर्णता पर पहुँच जाता है तो उसे मर जाना चाहिए। अगर वह अपनी जिन्दगी का लक्ष्य पूरा कर चुका है और नहीं मरता तो यह उसका अन्याय है। वह अपनी जिन्दगी का लक्ष्य पूरा कर चुका था फिर भी नहीं मरता था। मैं इसे प्यार करता था लेकिन यह अन्याय नहीं सह सकता था, अतः मैंने इसे मार डाला !"

"अच्छा, तो तुम्हारे तोते की भी जिन्दगी का कोई लक्ष्य था ?"

"हरेक की जिन्दगी का लक्ष्य होता है। और वह लक्ष्य होता है सत्य को, चरम सत्य को जान जाना। वह सत्य जान लेने के बाद आदमी अगर जिन्दा रहता है तो उसकी यह असीम बेहयाई है। मैंने इसे वह सत्य सिखा दिया। फिर भी यह नहीं मरा तो मैंने मार डाला। फिर तुम पूछोगे कि वह चरम सत्य क्या है ? वह सत्य है कि मौत आदमी के शरीर की हत्या करती है। और आदमी की हत्या गला घोंट देती है।

मसलन तुम अगर किसी औरत के पास जा रहे हो या किसी औरत के पास से आ रहे हो और सम्भव है उसने तुम्हारी आत्मा की हत्या कर डाली हो···"

"ऊँह ! अब तुम जल्दी ही पूरे पागल हो जाओगे ?" चन्दर ने कहा और फिर वह पम्मी के पास लौट गया। पम्मी उसी तरह मदहोश लेटी थी। उसने जाते ही फिर बाँहें फैलाकर चन्दर को समेट लिया और चन्दर उसके वक्ष की रेशमी गरमाई में डूब गया।

जब वह लौटा तो बर्टी हाथ में खुरपा लिये एक गड्ढा बन्द कर रहा था। "सुनो, कपूर ! यहाँ मैंने उसे गाड़ दिया। यह उसकी समाधि है। और देखो, आते-जाते यहाँ सिर झुका देना। वह बेचारा जीवन का सत्य जान चुका है। समझ लो वह सेण्ट पैरट (सन्त शुकदेव) हो गया है !"

"अच्छा, अच्छा !" चन्दर सिर झुकाकर हँसते हुए आगे बढ़ा।

"सुनो, रुको कपूर !" फिर बर्टी ने पुकारा और पास आकर चन्दर के कन्धे पर हाथ रखकर बोला—"कपूर, तुम मानते हो कि नहीं कि पहले मैं एक असाधारण आदमी था।"

"अब भी हो।" चन्दर हँसते हुए बोला।

"नहीं, अब मैं असाधारण नहीं हूँ, कपूर ! देखो, तुम्हें आज रहस्य बताऊँ। वही आदमी असाधारण होता है जो किसी परिस्थिति में किसी भी तथ्य को स्वीकार नहीं करता, उनका निषेध करता चलता है। जब वह किसी को भी स्वीकार कर लेता है, तब वह पराजित हो जाता है। मैं तो कहूँगा असाधारण आदमी बनने के लिए सत्य को भी स्वीकार नहीं करना चाहिए।"

"क्या मतलब, बर्टी ! तुम तो दर्शन की भाषा में बोल रहे हो। मैं अर्थशास्त्र का विद्यार्थी हूँ, भाई !" चन्दर ने कौतूहल से कहा।

"देखो, अब मैंने विवाह स्वीकार कर लिया। जेनी को स्वीकार कर लिया। चाहे यह जीवन का सत्य ही क्यों न हो पर महत्ता तो निषेध में होती है। सबसे बड़ा आदमी वह होता है जो अपना निषेध कर दे···लेकिन मैं अब साधारण आदमी हूँ। सस्ते किस्म का अदना व्यक्ति। मुझे कितना दुख है आज। मेरा तोता भी मर गया और मेरी असाधारणता भी।" और बर्टी फिर तोते की कब्र के पास सिर झुकाकर बैठ गया।

वह घर पहुँचा तो उसके पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। उसने उफनी हुई चाँदनी चूमी थी, उसने तरुणाई के चाँद को स्पर्शों से सिहरा दिया था, उसने नीली बिजलियाँ

चूमी थीं। प्राणों की सिहरन और गुदगुदी से खेलकर वह आ रहा था, वह पम्मी के होंठों के गुलाबों को चूम-चूमकर गुलाबों के देश में पहुँच गया था और उसकी नसों में बहते हुए रस में गुलाब झूम उठे थे। वह सिर से पैर तक एक मदहोश प्यास बना हुआ था। घर पहुँचा तो जैसे उल्लास से उसका अंग-अंग नाच रहा हो। बिनती के प्रति दोपहर को जो आक्रोश उसके मन में उभर आया था, वह भी शान्त हो गया था।

बिनती ने आकर खाना रखा। चन्दर ने बहुत हँसते हुए, बड़े मीठे स्वर में कहा—"बिनती, आज तुम भी खाओ।"

"नहीं, मैं नीचे खाऊँगी।"

"अरे चल बैठ, गिलहरी !" चन्दर ने बहुत दिन पहले के स्नेह के स्वर में कहा और बिनती के पीठ में एक घूँसा मारकर उसे पास बिठा लिया—"आज तुम्हें नाराज नहीं रहने देंगे। ले खा, पगली ?"

नफरत से नफरत बढ़ती है, प्यार से प्यार जागता है। बिनती के मन का सारा स्नेह सूख-सा गया था। वह चिड़चिड़ी, स्वाभिमानी, गम्भीर और रूखी हो गयी थी लेकिन औरत बहुत कमजोर होती है। ईश्वर न करे कोई उसके हृदय की ममता को छू ले। वह सब कुछ बरदाश्त कर लेती है लेकिन अगर कोई किसी तरह उसके मन के रस को जगा दे, तो वह फिर अपना सब अभिमान भूल जाती है। चन्दर ने, जब वह यहाँ आयी थी, तभी से उसके हृदय की ममता जीत ली थी। इसलिए चन्दर के सामने सदा झुकती आयी लेकिन पिछली बार से चन्दर ने ठोकरें मारकर सारा स्नेह बिखेर दिया था। उसके बाद उसके व्यक्तित्व का रस सूखता ही गया। क्रोध जैसे उसकी भौंहों पर रखा रहता था।

आज चन्दर ने उसको इतने दुलार से बुलाया तो लगा वह जाने कितने दिनों का भूला स्वर सुन रही है। चाहे चन्दर के प्रति उसके मन में कुछ भी आक्रोश क्यों न हो, लेकिन वह इस स्वर का आग्रह नहीं टाल सकती, यह वह भली प्रकार जानती थी। वह बैठ गयी। चन्दर ने एक कौर बनाकर बिनती के मुँह में दे दिया। बिनती ने खा लिया। चन्दर ने बिनती की बाँह में चुटकी काट कर कहा—

"अब दिमाग ठीक हो गया पगली का ! इतने दिनों से अकड़ी फिरती थी !"

"हूँ !" बिनती ने बहुत दिन के भूले हुए स्नेह के स्वर में कहा—"खुद ही तो अपना दिमाग बिगाड़े रहते हैं और हमें इलजाम लगाते हैं। तरकारी ठण्डी तो नहीं है ?"

दोनों में सुलह हो गयी···जाड़ा अब काफी बढ़ गया था। खाना खा चुकने के बाद बिनती शाल ओढ़े चन्दर के पास आयी और बोली—"लो, इलायची खाओगे ?" चन्दर ने ले ली। छीलकर आधे दाने खुद खा लिये, आधे बिनती के मुँह में दे दिये। बिनती ने धीरे से चन्दर की अँगुली दाँत से दबा दी। चन्दर ने हाथ खींच लिया। बिनती उसी के पलंग पर पास ही बैठ गयी और बोली—"याद है तुम्हें ? इसी पलंग पर तुम्हारा सिर दबा रही थी तो तुमने शीशी फेंक दी थी।"

"हाँ, याद है ! अब कहो तुम्हें उठाकर फेंक दूँ।" चन्दर आज बहुत खुश था।

"मुझे क्या फेंकोगे" बिनती ने शरारत से मुँह बनाकर कहा—"मैं तुमसे उठूँगी ही नहीं !"

जब अंगों का तूफान एक बार उठना सीख लेता है तो दूसरी बार उठते हुए उसे देर नहीं लगती। अभी वह अपने तूफान में पम्मी को पीसकर आया था। सिरहाने बैठी हुई बिनती, हलका बादामी शाल ओढ़े, रह-रहकर मुसकराती और गालों पर फूलों के कटोरे खिल जाते, आँख में एक नयी चमक। चन्दर थोड़ी देर देखता रहा, उसके बाद उसने बिनती को खींचकर कुछ हिचकते हुए बिनती के माथे पर अपने होंठ रख दिये। बिनती कुछ नहीं बोली। चुपचाप अपने को छुड़ाकर सिर झुकाये बैठी रही और चन्दर के हाथ को अपने हाथ में लेकर उसकी अँगुलियाँ चिटकाती रही। सहसा बोली—"अरे, तुहारे कफ का बटन टूट गया है, लाओ सिल दूँ।"

चन्दर को पहले कुछ आश्चर्य हुआ, फिर कुछ ग्लानि। बिनती कितना समर्पण करती है, उसके सामने वह···लेकिन उसने अच्छा नहीं किया। पम्मी की बात दूसरी है, बिनती की बात दूसरी। बिनती के साथ एक पवित्र अन्तर ही ठीक रहता—

बिनती आयी और उसके कफ में बटन सीने लगी···सीते-सीते बचे हुए डोरे को दाँत से तोड़ती हुई बोली—"चन्दर, एक बात कहें मानोगे ?"

"क्या ?"

"पम्मी के यहाँ मत जाया करो।"

"क्यों ?"

"पम्मी अच्छी औरत नहीं है। वह तुम्हें प्यार नहीं करती, तुम्हें बिगाड़ती है।"

"यह बात गलत है, बिनती ! तुम इसीलिए कह रही हो न कि उसमें वासना बहुत तीखी है !"

"नहीं, यह नहीं। उसने तुम्हारी जिन्दगी में सिर्फ एक नशा, एक वासना दी, कोई ऊँचाई, कोई पवित्रता नहीं। कहाँ दीदी, कहाँ पम्मी ? किस स्वर्ग से उतरकर तुम किस नरक में फँस गये !"

"पहले मैं भी यही सोचता था बिनती, लेकिन बाद में मैंने सोचा कि माना किसी लड़की के जीवन में वासना ही तीखी है, तो क्या इसी से वह निन्दनीय है ? क्या वासना स्वतः में निन्दनीय है ? गलत ! यह तो स्वभाव और व्यक्तित्व का अन्तर है, बिनती ! हरेक से हम कल्पना नहीं माँग सकते, हरेक से वासना नहीं पा सकते। बादल है, उस पर किरण पड़ेगी, इन्द्रधनुष ही खिलेगा, फूल है, उस पर किरण पड़ेगी, तवस्सुम ही आयेगा। बादल से हम माँगने लगें तवस्सुम और फूल से माँगने लगें इन्द्रधनुष, तो यह तो हमारी एक कवित्वमयी भूल होगी। माना एक लड़की के जीवन में प्यार आया, उसने अपने देवता के चरणों पर अपनी कल्पना चढ़ा दी। दूसरी के जीवन में प्यार आया, उसने चुम्बन, आलिंगन और गुदगुदी की

बिजलियाँ दीं। एक बोली—'देवता मेरे ! मेरा शरीर चाहे जिसका हो, मेरी पूजा भावना, मेरी आत्मा तुम्हारी है और वह जन्म-जन्मान्तर तक तुम्हारी रहेगी...' और दूसरी दीपशिखा-सी लहराकर बोली—'दुनिया कुछ कहे अब तो मेरा तन-मन तुम्हारा है। मैं तो बेकाबू हूँ ! मैं करूँ क्या ? मेरे तो अंग-अंग जैसे अलसाकर चूर हो रहे हैं तुम्हारी गोद में गिर पड़ने के लिए, मेरी तरुणाई पुलक उठी है तुम्हारे आलिंगन में पिस जाने के लिए। मेरे लाज के बन्धन जैसे शिथिल हुए जाते हैं ? मैं करूँ तो क्या करूँ ? कैसा नशा पिला दिया है तुमने, मैं सब कुछ भूल गयी हूँ। तुम चाहे जिसे अपनी कल्पना दो, अपनी आत्मा दो, लेकिन एक बार अपने जलते हुए होंठों में मेरे नरम गुलाबी होंठ समेट लो न ! बताओ बिनती, क्यों पहली की भावना ठीक है और दूसरी की प्यास गलत ?"

बिनती कुछ देर तक चुप रही, फिर बोली—"चन्दर, तुम बहुत गहराई से सोचते हो। लेकिन मैं तो एक मोटी-सी बात जानती हूँ कि जिसके जीवन में वह प्यास जग जाती है वह फिर किसी भी सीमा तक गिर सकता है। लेकिन जिसने त्याग किया, जिसकी कल्पना जागी, वह किसी भी सीमा तक उठ सकता है। मैंने तो तुम्हें उठते हुए देखा है।"

"गलत है, बिनती ! तुमने गिरते हुए देखा है मुझे ! तुम मानोगी कि सुधा से मुझे कल्पना ही मिली थी, त्याग ही मिला था, पवित्रता ही मिली थी। पर वह कितने दिन टिकी ! और तुम यह कैसे कह सकती हो कि वासना आदमी को नीचे ही गिराती है। तुम आज ही की घटना लो। तुम यह तो मानोगी कि अभी तक मैंने तुम्हें अपमान और तिरस्कार ही दिया था।"

"खैर, उसकी बात जाने दो !" बिनती बोली।

"नहीं, बात आ गयी तो मैं साफ कहता हूँ कि आज मैंने तुम्हारा प्रतिदान देने की सोची, आज तुम्हारे लिए मन में बड़ा स्नेह उमड़ आया। क्यों ? जानती हो ? पम्मी ने आज अपने बाहुपाश में कसकर जैसे मेरे मन की सारी कटुता, सारा विष खींच लिया। मुझे लगा बहुत दिन बाद मैं फिर पिशाच नहीं, आदमी हूँ। यह वासना का ही दान है। तुम कैसे कहोगी कि वासना आदमी को नीचे ही ले जाती है !"

बिनती कुछ नहीं बोली, चन्दर भी थोड़ी देर चुप रहा। फिर बोला—"लेकिन एक बात पूछूँ, बिनती ?"

"क्या ?"

"बहुत अजब-सी बात है। सोच रहा हूँ पूछूँ या न पूछूँ !"

"पूछो न !"

"अभी मैंने तुम्हारे माथे पर होंठ रख दिये, तुम कुछ भी नहीं बोलीं, और मैं जानता हूँ यह कुछ अनुचित-सा था। तुम पम्मी नहीं हो ! फिर भी तुमने कुछ भी विरोध नहीं किया...?"

बिनती थोड़ी देर तक चुपचाप अपने पाँव की ओर देखती रही। फिर शाल के छोर से एक डोरा खींचते हुए बोली—"चन्दर, मैं अपने को कुछ समझ नहीं पाती। सिर्फ इतना जानती हूँ कि मेरे मन में तुम जाने क्या हो; इतने महान हो, इतने महान हो कि मैं तुम्हें प्यार नहीं कर पाती, लेकिन तुम्हारे लिए कुछ भी करने से अपने को रोक नहीं सकती। लगता है तुम्हारा व्यक्तित्व, उसकी शक्ति और उसकी दुर्बलताएँ, उसकी प्यास और उसका सन्तोष, इतना महान् है, इतना गहरा है कि उसके सामने मेरा व्यक्तित्व कुछ भी नहीं है। मेरी पवित्रता, मेरी अपवित्रता, इन सबसे ज्यादा महान् तुम्हारी प्यास है।···लेकिन अगर तुम्हारे मन में मेरे लिए जरा भी स्नेह है तो तुम पम्मी से सम्बन्ध तोड़ लो। दीदी से अगर मैं बताऊँगी तो जाने क्या हो जायेगा। और तुम जानते नहीं, दीदी अब कैसी हो गयी हैं ? तुम देखो तो आँसू···"

"बस ! बस !" चन्दर ने अपने हाथ से बिनती का मुँह बन्द करते हुए कहा, "सुधा की बात मत करो, तुम्हें कसम है। जिन्दगी के जिस पहलू को हम भूल चुके हैं, उसे कुरेदने से क्या फायदा ?"

"अच्छा, अच्छा !" चन्दर का हाथ हटाकर बिनती बोली—"लेकिन पम्मी को अपनी जिन्दगी से हटा दो।"

"यह नहीं हो सकता, बिनती ?" चन्दर बोला—"और जो कहो, वह मैं कर दूँगा। हाँ, तुम्हारे प्रति आज तक जो दुर्व्यवहार हुआ है, उसके लिए मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ।"

"छिः, चन्दर ! मुझे शरमिन्दा मत करो।" काफी रात हो गयी थी। चन्दर लेट गया। बिनती ने उसे रजाई उढ़ा दी और टेबल पर बिजली का स्टैण्ड रखकर बोली—"अब चुपचाप सो जाओ।"

बिनती चली गयी। चन्दर पड़ा-पड़ा सोचने लगा, दुनिया गलत कहती है कि वासना पाप है। वासना से भी पवित्रता और क्षमाशीलता आती है। पम्मी से उसे जो कुछ मिला, वह अगर पाप है तो आज चन्दर ने जो बिनती को दिया, उसमें इतनी क्षमा, इतनी उदारता और इतनी शान्ति क्यों थी ?

उसके बाद बिनती को वह बहुत दुलार और पवित्रता से रखने लगा। कभी-कभी जब वह घूमने जाता तो बिनती को भी ले जाता था। न्यू-ईयर्स-डे के दिन पम्मी ने दोनों की दावत की। बिनती पम्मी के पीछे चाहे चन्दर से पम्मी का विरोध कर ले पर पम्मी के सामने बहुत शिष्टता और स्नेह का बरताव करती थी।

डॉक्टर साहब की दिल्ली जाने की तैयारी हो गयी। बिनती ने कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन करा लिया था। अब वह पहले डॉक्टर साहब के साथ शाहजहाँपुर जायेगी और तब दिल्ली।

निश्चय करते-करते अन्त में पहली फरवरी को वे लोग गये। स्टेशन पर बहुत-से विद्यार्थी और डॉक्टर साहब के मित्र उन्हें विदा देने के लिए आये थे। बिनती

विद्यार्थियों की भीड़ से घबराकर इधर चली आयी और चन्दर को बुलाकर कहने लगी—"चन्दर ! दीदी के लिए एक खत तो दे दो !"

"नहीं।" चन्दर ने बहुत रूखे और दृढ़ स्वर में कहा।

बिनती कुछ क्षण तक एकटक चन्दर की ओर देखती रही; फिर बोली—"चन्दर, मन की श्रद्धा चाहे अब भी वैसी हो, लेकिन तुम पर अब विश्वास नहीं रहा।"

चन्दर ने कुछ जवाब नहीं दिया, सिर्फ हँस पड़ा। फिर बोली—"चन्दर, अगर कभी कोई जरूरत हो तो जरूर लिखना, मैं चली आऊँगी, समझे ?" और फिर चुपचाप जाकर बैठ गयी।

जब चन्दर लौटा तो उसके साथ कई साथी प्रोफेसर थे। घर पहुँचकर वह कार लेकर पम्मी के यहाँ चल दिया। पता नहीं क्यों बिनती के जाने का चन्दर को कुछ थोड़ा-सा दुख था।

गरमी का मौसम आ गया था। चन्दर सुबह कॉलेज जाता, दोपहर को सोता और शाम को वह नियमित रूप से पम्मी को लेकर घूमने जाता। डॉक्टर साहब कार छोड़ गये थे। कार पम्मी और चन्दर को लेकर दूर-दूर का चक्कर लगाया करती थी। इस बार उसने अपनी छुट्टियाँ दिल्ली में ही बिताने की सोची थी। पम्मी ने भी तय किया था कि मंसूरी से लौटते समय जुलाई में वह एक हफ़्ते आकर डॉक्टर शुक्ला की मेहमानी करेगी और दिल्ली के पूर्वपरिचितों से भी मिल लेगी।

यह नहीं कहा जा सकता कि चन्दर के दिन अच्छी तरह बीत रहे थे। उसने अपना अतीत भुला दिया था और वर्तमान को वह पम्मी की नशीली निगाहों में डुबो चुका था। भविष्य की उसे कोई खास चिन्ता नहीं थी। उसे लगता था कि यह पम्मी की निगाहों के बादलों और स्पर्शों के फूलों की जादूभरी दुनिया अमर है, शाश्वत है। इस जादू ने हमेशा के लिए उसकी आत्मा को अभिभूत कर लिया है, ये होंठ कभी अलग न होंगे, यह बाहुपाश इसी तरह उसे घेरे रहेगा और पम्मी की गरम तरुण साँसें सदा इसी प्रकार उसके कपोलों को सिहराती रहेंगी। आदमी का विश्वास हमेशा सीमाएँ और अन्त भूल जाने का आदी होता है। चन्दर भी सब कुछ भूल चुका था।

अप्रैल की एक शाम। दिन-भर लू चलकर अब थक गयी थी। लेकिन दिन भर की लू की वजह से आसमान में इतनी धूल भर गयी थी कि धूप भी हलकी पड़ गयी थी। माली बाहर छिड़काव कर रहा था। चन्दर सोकर उठा था और सुस्ती मिटा रहा था। थोड़ी देर बाद वह उठा, दिशाओं की ओर निरुद्देश्य देखने लगा।

बड़ी उदास-सी शाम थी। सड़क भी बिलकुल सूनी थी, सिर्फ दो-एक साइकिल-सवार लू से बचने के लिए कानों पर तौलिया लपेटे हुए चले जा रहे थे। एक बरफ का ठेला भी चला जा रहा था। "जाओ, बरफ ले आओ ?" चन्दर ने माली को पैसे देते हुए कहा। माली ने ठेलावाले को बुलाया। ठेलावाला आकर फाटक पर रुक गया। माली बरफ तुड़वा ही रहा था कि एक रिक्शा, जिस पर परदा बँधा था, वह भी फाटक के पास मुड़ा और ठेले के पास आकर रुक गया। ठेलावाले ने ठेला पीछे किया। रिक्शा अन्दर आया। रिक्शा में कोई परदानसीन औरत बैठी थी, लेकिन रिक्शा के साथ कोई नहीं था, चन्दर को ताज्जुब हुआ, कौन परदानसीन यहाँ आ सकती है ! रिक्शा पोर्टिको में आकर रुक गया। शिष्टतावश चन्दर अलग हटकर खड़ा हो गया। रिक्शा से एक लड़की उतरी जिसे चन्दर नहीं जानता था, लेकिन बाहर का परदा जितना गन्दा और पुराना था, लड़की की पोशाक उतनी ही साफ और चुस्त। वह सफेद रेशम की सलवार, सफेद रेशम का चुस्त कुरता और उस पर बहुत हलके शरबती फालसई रंग की चुन्नी ओढ़े हुई थी। वह उतरी और रिक्शावाले से बोली—"अब घण्टे भर में आकर मुझे ले जाना।" रिक्शा वाला सिर हिलाकर चल दिया और वह सीधे अन्दर चल दी। चन्दर को बड़ा अचरज हुआ। यह कौन हो सकती है जो इतनी बेतकल्लुफी से अन्दर चल दी। उसने सोचा, शायद शरणार्थियों के लिए चन्दा माँगने वाली कोई लड़की हो। मगर अन्दर तो कोई है ही नहीं ! उसने चाहा कि रोक दे फिर उसने नहीं रोका। सोचा खुद ही अन्दर खाली देखकर लौट आयेगी।

माली बरफ लेकर आया और अन्दर चला गया। वह लड़की लौटी। उसके चेहरे पर कुछ आश्चर्य और कुछ चिन्ता की रेखाएँ थीं। अब चन्दर ने उसे देखा। एक साँवली लड़की थी, कुछ उदास, कुछ बीमार-सी लगती थी। आँखें बड़ी-बड़ी लगती थीं जो रोना भूल चुकी हैं। और हँसने में भी अशक्त हैं। चेहरे पर एक पीली छाँह थी। ऐसा लगता था, देखने ही से कि लड़की दुखी है पर अपने को सँभालना जानती है।

वह आयी, और बड़ी फीकी मुसकान के साथ, बड़ी शिष्टता के स्वर में बोली—"चन्दर भाई, सलाम ! सुधा क्या ससुराल में है ?"

चन्दर का आश्चर्य और भी बढ़ गया। यह तो चन्दर को जानती भी है !

"जी हाँ, वह ससुराल में है। आप···"

"और बिनती कहाँ है ?" लड़की ने बात काटकर पूछा।

"बिनती दिल्ली में है।"

"क्या उसकी भी शादी हो गयी ?"

"जी नहीं, डॉक्टर साहब आजकल दिल्ली में हैं। वह उन्हीं के पास पढ़ रही है। बैठ तो जाइए !" चन्दर ने कुरसी खिसकाकर कहा।

"अच्छा, तो आप यहीं रहते हैं अब ? नौकर हो गये होंगे ?"

"जी हाँ !" चन्दर ने अचरज में डूबकर कहा—"लेकिन आप इतनी जानकारी और परिचय की बातें कर रही हैं, मैंने आपको पहचाना नहीं, क्षमा कीजिएगा···"

वह लड़की हँसी, जैसे अपनी किस्मत, जिन्दगी, अपने इतिहास पर हँस रही हो।

"आज मुझको कैसे पहचान सकते हैं ? मैं जरूर आपको देख चुकी थी। मेरे-आपके बीच में दरअसल एक रोशनदान था, मेरा मतलब सुधा से है !"

"ओह ! मैं समझा, आप गेसू हैं !"

"जी हाँ !" और गेसू ने बहुत तमीज से अपनी चुन्नी ओढ़ ली।

"आप तो शादी के बाद जैसे बिलकुल खो ही गयीं। अपनी सहेली को भी एक खत नहीं लिखा। अख्तर मियाँ मजे में हैं ?"

"आपको यह सब कैसे मालूम ?" बहुत आकुल होकर गेसू बोली और उसकी पीली आँखों में और भी मैलापन आ गया।

"मुझे सुधा से मालूम हुआ था। मैं तो उम्मीद कर रहा था कि आप हम लोगों को एक दावत जरूर देंगी। लेकिन कुछ मालूम ही नहीं हुआ। एक बार सुधाजी ने मुझे आपके यहाँ भेजा तो मालूम हुआ कि आप लोगों ने मकान ही छोड़ दिया है।"

"जी हाँ, मैं देहरादून में थी। अम्मीजान वगैरह सभी वहीं थीं। अभी हाल में वहाँ कुछ पनाहगीर पहुँचे···"

"पनाहगीर ?"

"जी, पंजाब के सिख वगैरह। कुछ झगड़ा हो गया तो हम लोग चले आये। अब हम लोग यहीं हैं।"

"अख्तर मियाँ कहाँ हैं ?"

"मिरजापुर में पीतल का रोजगार कर रहे हैं !"

"और उनकी बीवी देहरादून में थी। यह सजा क्यों दी आपने उन्हें ?"

"सजा की कोई बात नहीं।" गेसू का स्वर घुटता हुआ-सा मालूम दे रहा था। "उनकी बीवी उनके साथ है।"

"क्या मतलब ? आप तो अजब-सी बातें कर रही हैं। अगर मैं भूल नहीं करता तो आपकी शादी..."

"जी हाँ !" बड़ी ही उदास हँसी हँसकर गेसू बोली—"आपसे चन्दर भाई, मैं क्या छिपाऊँगी, जैसे सुधा वैसे आप ! मेरी शादी उनसे नहीं हुई !"

"अरे ! गुस्ताखी माफ कीजिएगा, सुधा तो मुझसे कह रही थी कि अख्तर..."

"मुझसे मुहब्बत करते हैं !" गेसू बात काटकर बोली और बड़ी गम्भीर हो गयी और अपनी चुन्नी के छोर में टँके हुए सितारे को तोड़ती हुई बोली—"मैं सचमुच नहीं समझ पायी कि उनके मन में क्या था। उनके घर वालों ने मेरे बजाय फूल

को ज्यादा पसन्द किया। उन्होंने फूल से ही शादी कर ली। अब अच्छी तरह निभ रही है दोनों की। फूल तो इतने अरसे में एक बार भी हम लोगों से मिलने नहीं आयी !"

"अच्छा..." चन्दर चुप होकर सोचने लगा। कितनी बड़ी प्रवंचना हुई इस लड़की की ज़िन्दगी में। और कितने दबे शब्दों में यह कहकर चुप हो गयी। एक भी आँसू नहीं, एक भी सिसकी नहीं। संयत स्वर और फीकी मुसकान, बस। चन्दर चुपचाप उठकर अन्दर गया। महराजिन आ गयी थी। कुछ नाश्ता और शरबत भेजने के लिए कहकर चन्दर बाहर आया। गेसू चुपचाप लॉन की ओर देख रही थी, शून्य निगाहों से। चन्दर आकर बैठ गया और बोला–

"बहुत धोखा दिया आपको !"

"छिः ! ऐसी बात नहीं कहते, चन्दर भाई ! कौन जानता है यह अख्तर की मजबूरी रही हो ! जिसको मैंने अपना सिरताज माना उसके लिए ऐसा खयाल भी दिल में लाना गुनाह है। मैं इतनी गिरी हुई नहीं कि यह सोचूँ कि उन्होंने धोखा दिया !" गेसू दाँत तले जबान दबाकर बोली।

चन्दर दंग रह गया। क्या गेसू अपने दिल से कह रही है ? इतना अखण्ड विश्वास है गेसू को अख्तर पर ! शरबत आ गया था। गेसू ने तकल्लुफ नहीं किया। लेकिन बोली–"आप बड़े भाई हैं। पहले आप शुरू कीजिए।"

"आपकी फिर कभी अख्तर से मुलाकात नहीं हुई ?" चन्दर ने एक घूँट पीकर कहा।

"हुई क्यों नहीं ? कई बार वह अम्मीजान के पास आये।"

"आपने कुछ नहीं कहा ?"

"कहती क्या ? यह सब बातें कहने-सुनने की होती हैं ! और फिर फूल वहाँ आराम से है, अख्तर भी फूल को जान से ज्यादा प्यार से रखते हैं, यही मेरे लिए बहुत है। और अब कहकर क्या करूँगी। जब फूल से शादी तय हुई और वे राजी हो गये तभी मैंने कुछ नहीं कहा, अब तो फूल की माँग, फूल का सुहाग मेरे लिए सुबह की अजान से ज्यादा पाक है।" गेसू ने शरबत में निगाह डुबाये हुए कहा। चन्दर क्षण-भर चुप रहा फिर बोला–

"अब आपकी शादी अम्मीजान कब कर रही हैं ?"

"कभी नहीं ! मैंने कस्द कर लिया है कि मैं शादी ताउम्र नहीं करूँगी। देहरादून के मैटर्निटी सेण्टर में काम सीख रही थी। कोर्स पूरा हो गया। अब किसी अस्पताल में काम करूँगी।"

"आप !"

"क्यों, आपको ताज्जुब क्यों हुआ ? मैंने अम्मीजान को इस बात के लिए राजी कर लिया है। मैं अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती हूँ।"

चन्दर ने शरबत से बरफ निकालकर फेंकते हुए कहा–

"मैं आपकी जगह होता तो दूसरी शादी करता और अख्तर से भरसक बदला लेता !"

"बदला !" गेसू मुसकराकर बोली–"छिः, चन्दर भाई ! बदला, गुरेज, नफरत इससे आदमी न कभी सुधरा है न सुधरेगा ? बदला और नफरत तो अपने मन की कमजोरी को जाहिर करते हैं। और फिर बदला मैं लूँ किससे ? उससे, दिल की तनहाइयों में मैं जिसके सजदे पड़ती हूँ। यह कैसे हो सकता है ?"

गेसू के माथे पर विश्वास का तेज दमक उठा, उसकी बीमार आँखों में धूप लहलहा उठी और उसका कंचनलता-सा तन जगमगाने लगा। कुछ ऐसी दृढ़ता थी उसकी आवाज़ में, ऐसी गहराई थी उसकी ध्वनि में कि चन्दर देखता ही रह गया। वह जानता था कि गेसू के दिल में अख्तर के लिए कितना प्रेम था, वह यह भी जानता था कि गेसू अख्तर की शादी के लिए किस तरह पागल थी। वह सारा सपना ताश के महल की तरह गिर गया। और परिस्थितियों ने नहीं, खुद अख्तर ने धोखा दिया, लेकिन गेसू है कि माथे पर शिकन नहीं, भौंहों में बल नहीं, होंठों पर शिकायत नहीं। नारी के जीवन का यह कैसा अमिट विश्वास था। यानी जिसे गेसू ने अपने प्रेम का स्वर्णमन्दिर समझा था, वह ज्वालामुखी बनकर फूट गया और उसने दर्द की पिघली आग की धारा में गेसू को डुबो देने की कोशिश की लेकिन गेसू है कि अटल चट्टान की तरह खड़ी है।

चन्दर के मन में कहीं कोई टीस उठी। उसके दिल की धड़कनों ने कहीं पर उससे पूछा। '⋯और चन्दर तुमने क्या किया ? तुम पुरुष थे। तुम्हारे सबल कन्धे किसी के प्यार का बोझ क्यों नहीं ढो पाये, चन्दर ?' लेकिन चन्दर ने अपनी अन्तःकरण की आवाज को अनसुनी करते हुए कहा–

"तो आपके मन में जरा भी दर्द नहीं अख्तर को न पाने का ?"

"दर्द ?" गेसू की आवाज डूबने लगी, निगाहों की जर्द पाँखुरियों पर हलकी पानी की लहर दौड़ गयी–"दर्द, यह तो सिर्फ सुधा समझ सकती है, चन्दर भाई ! बचपन से वह मेरे लिए क्या थे, यह वही जानती है। मैं तो उनका सपना देखते-देखते उनका सपना ही बन गयी थी, लेकिन खैर दर्द इनसान के यकीदे को और मजबूत न कर दे, आदमी के कदमों को और ताकत न दे, आदमी के दिल को ऊँचाई न दे तो इनसान क्या ? दर्द का हाल पूछते हैं आप ! कयामत के रोज तक मेरी मय्यत उन्हीं का आसरा देखेगी, चन्दर भाई ! लेकिन इसके लिए जिन्दगी में तो खामोश ही रहना होगा। बन्द घर में जलते हुए चिराग की तरह घुलना होगा। और अगर मैंने उनको अपना माना है तो वह मिलकर ही रहेंगे। आज न सही कयामत के बाद सही। मुहब्बत की दुनिया में जैसे एक दिन उनके बिना कट जाता है वैसे एक जिन्दगी उनके बिना कट जायेगी⋯लेकिन उसके बाद वे मेरे होकर रहेंगे।"

चन्दर का दिल काँप उठा। गेसू की आवाज में तारे बरस रहे थे⋯

"और आपसे क्या कहूँ, चन्दर भाई ! क्या आपकी बात मुझसे छिपी है ? मैं जानती हूँ। सब कुछ जानती हूँ। सच पूछिये तो जब मैंने देखा कि आप कितनी खामोशी से अपनी दुनिया में आग लगते देख रहे हैं, और फिर भी हँस रहे हैं, तो मैंने आपसे सबक लिया। हमें नहीं मालूम था कि हम और आप, दोनों भाई-बहनों की किस्मत एक-सी है !"

चन्दर के मन में जाने कितने घाव कसक उठे। उसके मन में जाने कितना दर्द उमड़ने-सा लगा। गेसू उसे क्या समझ रही है मन में और वह कहाँ पहुँच चुका है ! जिसने चन्दर की जिन्दगी से अपने मन का दीप जलाया, वह आज देवता के चरण तक पहुँच गया, लेकिन चन्दर के मन की दीपशिखा ? उसने अपने प्यार की चिता जला डाली। चन्दर के मुँह पर ग्लानि की कालिमा छा गयी। गेसू चुपचाप बैठी थी। सहसा बोली—"चन्दर भाई, आपको याद है, पिछले साल इन्हीं दिनों मैं सुधा से मिलने आयी थी और हसरत आपको मेरा सलाम कहने गया था ?"

"याद है !" चन्दर ने बहुत भारी स्वर में कहा।

"इस एक साल में दुनिया कितनी बदल गयी !" गेसू ने एक गहरी साँस लेकर कहा—"एक बार ये दिन चले जाते हैं, फिर बेदर्द कभी नहीं लौटते ! कभी-कभी सोचती हूँ कि सुधा होती तो फिर कॉलेज जाते, क्लास में शोर मचाते, भागकर घास में लेटते, बादलों को देखते, शेर कहते और वह चन्दर की और हम अख्तर की बातें करते···" गेसू का गला भर आया और एक आँसू चू पड़ा···"सुधा और सुधा की ब्याह-शादी का हाल बताइए। कैसे हैं उनके शौहर ?"

चन्दर के मन में आया कि वह कह दे, गेसू क्यों लज्जित करती हो ! मैं वह चन्दर नहीं हूँ। मैंने अपने विश्वास का मन्दिर भ्रष्ट कर दिया···मैं प्रेत हूँ···मैंने सुधा के प्यार का गला घोंट दिया है···लेकिन पुरुष का गर्व ! पुरुष का छल ! उसे यह भी नहीं मालूम होने दिया कि उसका विश्वास चूर-चूर हो चुका है और पिछले कितने ही महीनों से उसने सुधा को खत लिखना भी वन्द कर दिया है और यह भी नहीं मालूम करने का प्रयास किया कि सुधा मरती है या जीती !

घण्टे-भर तक दोनों सुधा के बारे में बातें करते रहे। इतने में रिक्शावाला लौट आया। गेसू ने उसे ठहरने का इशारा किया और बोली—"अच्छा, जरा सुधा का पता लिख दीजिए।" चन्दर ने एक कागज पर पता लिख दिया। गेसू ने उठने का उपक्रम किया तो चन्दर बोला—"बैठिए अभी, आपसे बातें कर के आज जाने कितने दिनों की बातें याद आ रही हैं !"

गेसू हँसी और बैठ गयी। चन्दर बोला—"आप अभी तक कविताएँ लिखती हैं ?"

"कविताएँ···" गेसू फिर हँसी और बोली—"जिन्दगी कितनी हमागीर है, कितनी पुरशोर, और इस शोर में नगमों की हकीकत कितनी ? अब हड्डियाँ, नसें, प्रेसरप्वाइण्ट, पट्टियाँ और मरहमों में दिन बीत जाता है। अच्छा चन्दर भाई, सुधा अभी उतनी ही शोख है ? उतनी ही शरारती है !"

"नहीं।" चन्दर ने बहुत उदास स्वर में कहा—"जाओ, कभी देख आओ न !"

"नहीं, जब तक कहीं जगह नहीं मिल जाती, तब तक तो इतनी आजादी नहीं मिलेगी। अभी यही हूँ। उसी को बुलवाऊँगी और उसके पति देवता को लिखूँगी। कितना सूना लग रहा है घर जैसे भूतों का बसेरा हो। जैसे परेत रहते हों !"

"क्यों परेत बना रही हैं आप ? मैं रहता हूँ इसी घर में।" चन्दर बोला।

"अरे, मेरा मतलब यह नहीं था," गेसू हँसते हुए बोली—"अच्छा, अब मुझे तो अम्मीजान नहीं भेजेंगी, आज जाने कैसे अकेले आने की इजाजत दे दी। आपको किसी दिन बुलवाऊँ तो आइएगा जरूर !"

"हाँ, आऊँगा गेसू, जरूर आऊँगा !" चन्दर ने बहुत स्नेह से कहा।

"अच्छा भाईजान, सलाम !"

"नमस्ते !"

गेसू जाकर रिक्शा पर बैठ गयी और परदा तन गया। रिक्शा चल दिया। चन्दर एक अजीब-सी निगाह से देखता रहा जैसे अपने अतीत की कोई खोयी हुई चीज ढूँढ़ रहा हो फिर धीरे-धीरे लौट आया। सूरज डूब गया था। वह गुसलखाना बन्द कर नहाने बैठ गया। जाने कहाँ-कहाँ मन भटक रहा था उसका। चन्दर मन का अस्थिर था, मन का बुरा नहीं था। गेसू ने आज उसके सामने अचानक वह तसवीर रख दी थी जिसमें वह स्वर्ग की ऊँचाइयों पर मँडराया करता था। और जाने कैसा दर्द-सा उसके मन में उठ गया था, गेसू ने अपने अजाने में ही चन्दर के अविश्वास, चन्दर की प्रतिहिंसा को बहुत बड़ी हार दी थी। उसने सिर पर पानी डाला तो उसे लगा यह पानी नहीं है जिन्दगी की धारा है, पिघले हुए अंगारों की धारा जिसमें पड़कर केवल वही जिन्दा बच पाया है, जिसके अंगों में प्यार का अमृत है और चन्दर के मन में क्या है ? महज वासना का विष...वह सड़ा हुआ, गला हुआ शरीर मात्र जो केवल सन्निपात के जोर से चल रहा है। उसने अपने मन के अमृत को गली में फेंक दिया है···उसने क्या किया है ?

वह नहाकर आया और शीशे के सामने खड़ा होकर बाल काढ़ने लगा— फिर शीशे की ओर एकटक देखकर बोला—"मुझे क्यों देख रहे हो, चन्दर बाबू ! मुझे तो तुमने बरबाद कर डाला। आज कई महीने हो गये और तुमने एक चिट्ठी तक नहीं लिखी, छिः !" और उसने शीशा उलटकर रख दिया।

महराजिन खाना ले आयी। उसने खाना खाया और सुस्त-सा पड़ रहा। "भइया, आज घूमै न जाबो ?"

"नहीं !" चन्दर ने कहा और पड़ा-पड़ा सोचने लगा। पम्मी के यहाँ नहीं गया।

यह गेसू दूसरे कमरे में बैठी थी। इस कमरे में बिनती उसे कैलाश का चित्र दिखा रही थी।···चित्र उसके मन में घूमने लगे···चन्दर क्या इस दुनिया में तुम्हीं रह गये थे फोटो दिखाकर पसन्द कराने के लिए···चन्दर का हाथ उठा। तड़ से एक तमाचा···चन्दर, चोट तो नहीं आयी···मान लिया कि मेरे मन ने मुझसे न कहा हो,

तुमसे तो मेरा मन कोई बात नहीं छिपाता···तो चन्दर, तुम शादी कर क्यों नहीं लेते ? पापा लड़की देख आयेंगे···हम भी देख लेंगे···तो फिर तुम बैठो तो हम पढ़ेंगे, वरना हमें शरम लगती है···चन्दर, तुम शादी मत करना, तुम इस सबके लिए नहीं बने हो...नहीं सुधा, तुम्हारे वक्ष पर सिर रखकर कितना सन्तोष मिलता है···

आसमान में एक-एक करके तारे टूटते जा रहे थे।

वह पम्मी के यहाँ नहीं गया। एक दिन···दो दिन...तीन दिन···अन्त में चौथे दिन शाम को पम्मी खुद आयी। चन्दर खाना खा चुका था और लॉन पर टहल रहा था। पम्मी आयी। उसने स्वागत किया लेकिन उसकी मुसकराहट में उल्लास नहीं था।

"कहो कपूर, आये क्यों नहीं ? मैं समझी, तुम बीमार हो गये !" पम्मी ने लॉन पर पड़ी एक कुरसी पर बैठते हुए कहा—"आओ, बैठो न !" उसने चन्दर की ओर कुरसी खिसकायी।

"नहीं, तुम बैठो, मैं टहलता रहूँगा !" चन्दर बोला और कहने लगा—"पता नहीं क्यों पम्मी, दो-तीन दिन से तबीयत बहुत उदास-सी है। तुम्हारे यहाँ आने को तबीयत नहीं हुई !"

"क्यों, क्या हुआ ?" पम्मी ने पूछा और चन्दर का हाथ पकड़ लिया। चन्दर पम्मी की कुरसी के पीछे खड़ा हो गया। पम्मी ने चन्दर के दोनों हाथ पकड़कर अपने गले में डाल लिये और अपना सिर चन्दर से टिकाकर उसकी ओर देखने लगी। चन्दर चुप था। न उसने पम्मी के गाल थपथपाये, न हाथ दबाया, न अलकें बिखेरीं और न निगाहों में नशा ही बिखेरा।

औरत अपने प्रति आने वाले प्यार और आकर्षण को समझने में चाहे एक बार भूल कर जाये, लेकिन वह अपने प्रति आने वाली उदासी और उपेक्षा को पहचानने में कभी भूल नहीं करती। वह होंठों पर होंठों के स्पर्शों के गूढ़तम अर्थ समझ सकती है, वह आपके स्पर्श में आपकी नसों से चलती हुई भावना पहचान सकती है, वह आपके वक्ष से सिर टिकाकर आपके दिल की धड़कनों की भाषा समझ सकती है, यदि उसे थोड़ा-सा भी अनुभव है और आप उसके हाथ पर हाथ रखते हैं तो स्पर्श की अनुभूति से ही जान जायेगी कि आप उससे कोई प्रश्न कर रहे हैं ? कोई याचना कर रहे हैं ? सान्त्वना दे रहे हैं या सान्त्वना माँग रहे है या क्षमा माँग रहे हैं या क्षमा दे रहे हैं ? प्यार का प्रारम्भ कर रहे हैं या समाप्त कर रहे हैं ? स्वागत कर रहे हैं या विदा दे रहे हैं ? यह पुलक का स्पर्श है या उदासी का चाव और नशे का स्पर्श है या खिन्नता और बेमनी का ?

पम्मी चन्दर के हाथों को छूते ही जान गयी कि हाथ चाहे गरम हों, लेकिन स्पर्श बड़ा शीतल है, बड़ा नीरस। उसमें वह पिघली हुई आग की शराब नहीं है जो अभी तक चन्दर के होंठों पर धधकती थी, चन्दर के स्पर्शों में बिखरती थी।

"कुछ तबीयत खराब है कपूर, बैठ जाओ !" पम्मी ने उठकर चन्दर को जबरदस्ती बिठाल दिया, "आजकल बहुत मेहनत पड़ती है, क्यों ? चलो, तुम हमारे यहाँ रहो !"

पम्मी में केवल शरीर की प्यास थी, यह कहना पम्मी के प्रति अन्याय होगा। पम्मी में एक बहुत गहरी हमदर्दी थी चन्दर के लिए। चन्दर अगर शरीर की प्यास को जीत भी लेता तो उसकी हमदर्दी को वह नहीं ठुकरा पाता था। उस हमदर्दी का तिरस्कार होने से पम्मी दुखी होती थी और उसे वह तभी स्वीकृत समझती थी जब चन्दर उसके रूप के आकर्षण में डूबा रहे। अगर पुरुषों के होंठों में तीखी प्यास न हो, बाहुपाशों में जहर न हो तो वासना की इस शिथिलता से नारी फौरन समझ जाती है कि सम्बन्धों में दूरी आती जा रही है। सम्बन्धों की घनिष्ठता को नापने का नारी के पास एक ही मापदण्ड है, चुम्बन का तीखापन !

चन्दर के मन में ही नहीं वरन् स्पर्शों में भी इतनी बिखरती हुई उदासी थी, इतनी उपेक्षा थी कि पम्मी मर्माहत हो गयी। उसके लिए यह पहली पराजय थी ! आजकल पम्मी के हाथों को हाथ में लेते ही चन्दर की नस-नस में अँगड़ाइयाँ मचलने लगती थीं और पम्मी जान जाती थी कि चन्दर का रोम-रोम इस वक्त पम्मी की साँसों में डूबा हुआ है।

लेकिन पम्मी ने देखा कि चन्दर उसकी बाँहों में होते हुए भी दूर, बहुत दूर न जाने किन विचारों में उलझा हुआ है। वह उससे दूर चला जा रहा है, बहुत दूर। पम्मी की धड़कनें अस्त-व्यस्त हो गयीं। उसकी समझ में नहीं आया वह क्या करे। चन्दर को क्या हो गया। क्या पम्मी का जादू टूट रहा है ! पम्मी ने अपनी पराजय से कुण्ठित होकर अपना हाथ हटा लिया और चुपचाप मुँह फेरकर उधर देखने लगी। चन्दर चाहे जितना उदास हो लेकिन पम्मी की उदासी वह नहीं सह सकता था। बुरी या भली, पम्मी इस वक्त उसकी सूनी जिन्दगी का अकेला सहारा थी। और पम्मी की हमदर्दी का वह बहुत कृतज्ञ था। वह समझ गया, पम्मी क्यों उदास है। उसने पम्मी का हाथ खींच लिया और अपने होंठ उसकी हथेलियों पर रख दिये और खींचकर पम्मी का सिर अपने कन्धे पर रख लिया...

पुरुष के जीवन में एक क्षण आता है जब वासना उसकी कमजोरी, उसकी प्यास, उसका नशा, उसका आवेश नहीं रह जाती। जब वासना उसकी हमदर्दी का, उसकी सान्त्वना का साधन बन जाती है। जब वह नारी को इसलिए बाँहों में नहीं समेटता कि उसकी बाँहें प्यासी हैं, वह इसलिए उसे बाँहों में समेट लेता है कि नारी अपना दुख भूल जाये। जिस वक्त वह नारी की सीपिया पलकों के नशे में नहीं वरन् उसकी आँखों के आँसू सुखाने के लिए उसकी पलकों पर होंठ रख देता है, जीवन के

उस क्षण में पुरुष जिस नारी से सहानुभूति रखता है, उसके मन की पराजय को भुलाने के लिए वह नारी को बाहुपाशों के नशे में बहला देना चाहता है ! लेकिन इन बाहुपाशों में प्यास जरा भी नहीं होती, आग जरा भी नहीं होती, सिर्फ नारी को बहलावा देने का प्रयास मात्र होता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि चन्दर के मन पर छाया हुआ पम्मी के रूप का गुलाबी बादल उचटता जा रहा था, नशा उखड़-सा रहा था। लेकिन चन्दर पम्मी को दुखी नहीं करना चाहता था, वह भरसक पम्मी को बहलाये रखता था··· लेकिन उसके मन में कहीं-न-कहीं फिर अन्तर्द्वन्द्व का एक तूफान चलने लगा था···

गेसू ने उसके सामने उसकी साल-भर पहले की जिन्दगी का वह चित्र रख दिया था, जिसकी एक झलक उस अभागे को पागल कर देने के लिए काफी थी। चन्दर जैसे-तैसे मन को पत्थर बनाकर, अपनी आत्मा को रूप की शराब में डुबोकर, अपने विश्वासों में छलकर उसको भुला पाया था। उसे जीत पाया था। लेकिन गेसू ने और गेसू की बातों ने जैसे उसके मन में मूर्च्छित पड़ी अभिशाप की छाया में फिर प्राण-प्रतिष्ठा कर दी थी और आधी रात के सन्नाटे में फिर चन्दर को सुनाई देता था कि उसके मन में कोई काली छाया बार-बार सिसकने लगती है और चन्दर के हृदय से टकराकर वह रोदन बार-बार कहता था—"देवता ! तुमने मेरी हत्या कर डाली ! मेरी हत्या, जिसे तुमने स्वर्ग और ईश्वर से बढ़कर माना था···" और चन्दर इन आवाजों से घबरा उठता था।

विस्मरण की एक तरंग जहाँ चन्दर को पम्मी के पास खींच लायी थी, वहाँ अतीत के स्मरण की दूसरी तरंग उसे वेग में उलझाकर जैसे फिर उसे दूर खींच ले जाने के लिए व्याकुल हो उठी। उसको लगा कि पम्मी के लिए उसके मन में जो मादक नशा था, उस पर ग्लानि का कोहरा छाता जा रहा है और अभी तक उसने जो कुछ किया था उसके लिए उसी के मन में कहीं-न-कहीं पर हल्की-सी अरुचि झलकने लगी थी। लेकिन फिर भी पम्मी का जादू बदस्तूर कायम था। वह पम्मी के प्रति कृतज्ञ था और वह पम्मी को कहीं, किसी भी हालत में दुखी नहीं करना चाहता था। भले वह गुनाह करके अपनी कृतज्ञता जाहिर क्यों न कर पाये, लेकिन जैसे बिनती के मन में चन्दर के प्रति जो श्रद्धा थी, वह नैतिकता-अनैतिकता के बन्धन से ऊपर उठकर थी, लगता था, वैसे ही चन्दर के मन में पम्मी के प्रति कृतज्ञता पुण्य और पाप के बन्धन से ऊपर उठकर थी। बिनती ने एक दिन चन्दर से कहा था कि यदि वह चन्दर को असन्तुष्ट करती है, तो वह उसे इतना बड़ा गुनाह लगता है कि उसके सामने उसे किसी-भी पाप-पुण्य की परवा नहीं है। उसी तरह चन्दर सोचता था कि सम्भव है कि उसका और पम्मी का यह सम्बन्ध पापमय हो, लेकिन इस सम्बन्ध को तोड़कर पम्मी को असन्तुष्ट और दुखी करना इतना बड़ा पाप होगा जो अक्षम्य है।

लेकिन वह नशा टूट चुका था, वह साँस धीमी पड़ गयी थी···अपनी हर कोशिश के बावजूद वह पम्मी को उदास होने से बचा न पाता था।

एक दिन सुबह जब वह कॉलेज जा रहा था कि पम्मी की कार आयी। पम्मी बहुत ही उदास थी। चन्दर ने आते ही उसका स्वागत किया। उसके कानों में एक नीले पत्थर का बुन्दा था, जिसकी हलकी छाँह गालों पर पड़ रही थी। चन्दर ने झुककर वह नीली छाँह चूम ली।

पम्मी कुछ नहीं बोली। वह बैठ गयी और फिर चन्दर से बोली—"मैं लखनऊ जा रही हूँ, कपूर !"

"कब, आज ?"

"हाँ, अभी कार से।"

"क्यों ?"

"यों ही, मन ऊब गया ! पता नहीं, कौन-सी छाँह मुझ पर छा गयी है। मैं शायद लखनऊ से मंसूरी चली जाऊँ।"

"मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगा, पहले तो तुमने बताया नहीं !"

"तुम्हीं ने कहाँ पहले बताया था !"

"क्या ?"

"कुछ भी नहीं ! अच्छा, चल रही हूँ।"

"सुनो तो !"

"नहीं, अब रोक नहीं सकते तुम··बहुत दूर जाना है, चन्दर···" वह चल दी। फिर वह लौटी और जैसे युगों-युगों की प्यास बुझा रही हो, चन्दर के गले में झूल गयी और कस लिया चन्दर को··पाँच मिनट बाद सहसा वह अलग हो गयी और फिर बिना कुछ बोले अपनी कार में बैठ गयी। "पम्मी··तुम्हें हुआ क्या यह ?"

"कुछ नहीं, कपूर" पम्मी कार स्टार्ट करते हुए बोली—"मैं तुमसे जितनी ही दूर रहूँ उतना ही अच्छा है, मेरे लिए भी तुम्हारे लिए भी ! तुम्हारे इन दिनों के व्यवहार ने मुझे बहुत कुछ सिखा दिया है ?"

चन्दर सिर से पैर तक ग्लानि से कुण्ठित हो उठा। सचमुच वह कितना अभागा है। वह किसी को भी सन्तुष्ट नहीं रख पाया। उसके जीवन में सुधा भी आयी और पम्मी भी, एक को उसके पुण्य ने उससे छीन लिया, दूसरी को उसका गुनाह उससे छीने लिये जा रहा है। जाने उसके ग्रहों का मालिक कितना क्रूर खिलाड़ी है कि हर कदम पर उसकी राह उलट देता है। नहीं, वह पम्मी को नहीं खो सकता—उसने पम्मी का कालर पकड़ लिया, "पम्मी, तुम्हें हमारी कसम है— बुरा मत मानो ! मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगा।"

पम्मी हँसी—बड़ी ही करुण लेकिन सशक्त हँसी। अपने कालर को धीमे-से छुड़ाकर चन्दर की अँगुलियों को कपोलों से दबा दिया और फिर वक्ष के पास से एक लिफाफा निकालकर चन्दर के हाथों में दे दिया और कार स्टार्ट कर दी··· पीछे मुड़कर नहीं देखा··नहीं देखा।

कार कड़वे धुएँ का बादल चन्दर की ओर उड़ाकर आगे चल दी।

जब कार ओझल हो गयी, तब चन्दर को होश आया कि उसके हाथ में एक लिफाफा भी है। उसने सोचा, फौरन कार लेकर जाये और पम्मी को रोक ले। फिर सोचा, पहले पढ़ तो ले, यह है क्या चीज ? उसने लिफाफा खोला और पढ़ने लगा–

"कपूर, एक दिन तुम्हारी आवाज और बर्टी की चीख सुनकर अपूर्ण वेश में ही अपने शृंगार-गृह से भाग आयी थी और तुम्हें फूलों के बीच में पाया था, आज तुम्हारी आवाज मेरे लिए मूक हो गयी है और असन्तोष और उदासी के काँटों के बीच में तुम्हें छोड़कर जा रही हूँ।

जा रही हूँ, इसलिए कि अब तुम्हें मेरी जरूरत नहीं रही। झूठ क्यों बोलूँ, अब क्या, कभी भी तुम्हें मेरी जरूरत नहीं रही थी, लेकिन मैंने हमेशा तुम्हारा दुरुपयोग किया। झूठ क्यों बोलें, तुम मेरे पति से भी अधिक समीप रहे हो। तुमसे कुछ छिपाऊँगी नहीं। मैं तुमसे मिली थी, जब मैं एकाकी थी, उदास थी, लगता था कि उस समय तुम मेरी सुनसान दुनिया में रोशनी के देवदूत की तरह आये थे। तुम उस समय बहुत भोले, बहुत सुकुमार, बहुत ही पवित्र थे। मेरे मन में उस दिन तुम्हारे लिए जाने कितना प्यार उमड़ आया। मैं पागल हो उठी। मैंने तुम्हें उस दिन सेलामी की कहानी सुनाई थी, सिनेमा घर में, उसी अभागिन सेलामी की तरह मैं भी पैगम्बर को चूमने के लिए व्याकुल हो उठी।

देखा, तुम पवित्रता को प्यार करते हो। सोचा, यदि तुमसे प्यार ही जीतना है, तो तुमसे पवित्रता की ही बातें करूँ। मैं जानती थी कि सेक्स प्यार का आवश्यक अंग है। लेकिन मन में तीखी प्यास लेकर भी मैंने तुमसे सेक्स-विरोधी बातें करनी शुरू कीं। मुँह पर पवित्रता और अन्दर में भोग का सिद्धान्त रखते हुए भी मेरा अंग-अंग प्यासा हो उठा था··तुम्हें होंठों तक खींच लायी थी, लेकिन फिर साहस नहीं हुआ।

फिर मैंने उस छोकरी को देखा, उस नितान्त प्रतिभाहीन दुर्बलमना छोकरी मिस सुधा को। वह कुछ भी नहीं थी, लेकिन मैं देखते ही जान गयी थी कि वह तुम्हारे भाग्य का नक्षत्र है, जाने क्यों उसे देखते ही मैं अपना आत्मविश्वास खो-सा बैठी। उसके व्यक्तित्व में, कुछ न होते हुए भी कम-से-कम अजब-सा जादू था, यह मैं भी स्वीकार करती हूँ, लेकिन थी वह छोकरी ही !

तुम्हें न पाने की निराशा, और तुम्हें न पाने की असीम प्यास, दोनों के पीस डालने वाले संघर्ष से भागकर, मैं हिमालय में चली आयी। जितना तीखा आकर्षण होता है कपूर, कभी-कभी नारी उतनी ही दूर भागती है। अगर कोई प्याला मुँह से न लगाकर दूर फेंक दे, तो समझ लो कि वह बेहद प्यासा है, इतना प्यासा कि तृप्ति की कल्पना से भी घबराता है। दिन-रात उस पहाड़ी की धवल चोटियों में तुम्हारी निगाहें मुसकराती थीं, पर मैं लौटने का साहस न कर पाती थी।

लौटी तो देखा कि तुम अकेले हो, निराश हो। और थोड़ा-थोड़ा उलझे हुए भी हो। पहले मैंने तुम पर पवित्रता की आड़ में विजय पानी चाही थी, अब तुम पर

वासना का सहारा लेकर छा गयी। तुम मुझे बुरा समझ सकते हो, लेकिन काश कि तुम मेरी प्यास को समझ पाते, कपूर ! तुमने मुझे स्वीकार किया। वैसे नहीं जैसे कोई फूल शबनम को स्वीकार करे। तुमने मुझे उस तरह स्वीकार किया जैसे कोई बीमार आदमी माफिया (अफीम) के इन्जेक्शन को स्वीकार करे। तुम्हारी प्यासी और बीमारी प्रवृत्तियाँ बदली नहीं, सिर्फ़ बेहोश होकर सो गयीं।

लेकिन कपूर, पता नहीं किसके स्पर्श से वे यकायक बिखर गयीं। मैं जानती हूँ, इधर तुममें क्या परिवर्तन आ गया है। मैं तुम्हें उसके लिए अपराधी नहीं ठहराती, कपूर ! मैं जानती हूँ तुम मेरे प्रति अब भी कितने कृतज्ञ हो, कितने स्नेहशील हो लेकिन अब तुममें वह प्यास नहीं, वह नशा नहीं। तुम्हारे मन की वासना अब मेरे लिए एक तरस में बदलती जा रही है।

मुझे वह दिन याद है, अच्छी तरह याद है चन्दर, जब तुम्हारे जलते हुए होंठों ने इतनी गहरी वासना से मेरे होंठो को समेट लिया था कि मेरे लिए अपना व्यक्तित्व ही एक सपना बन गया था। लगता था, सभी सितारों का तेज भी इसकी एक चिनगारी के सामने फीका है। लेकिन आज होंठ होंठ हैं, आग के फूल नहीं रहे—पहले मेरी एक झलक से तुम्हारे रोम-रोम में सैकड़ों इच्छाओं की आँधियाँ गरज उठती थीं…आज तुम्हारी नसों का खून ठण्डा है। तुम्हारी निगाहें पथरायी हुई हैं और तुम इस तरह वासना मेरी ओर फेंक देते हो, जैसे तुम किसी पालतू बिल्ली को पावरोटी का टुकड़ा दे रहे हो।

मैं जानती हूँ कि हम दोनों के सम्बन्धों की उष्णता खत्म हो गयी है। अब तुम्हारे मन में महज एक तरस है, एक कृतज्ञता है, और कपूर, वह मैं स्वीकार नहीं कर सकूँगी। क्षमा करना, मेरा भी स्वाभिमान है।

लेकिन मैंने कह दिया कि मैं तुमसे छिपाऊँगी नहीं ! तुम इस भ्रम में कभी मत रहना कि मैंने तुम्हें प्यार किया था। पहले मैं भी यही सोचती थी। कल मुझे लगा कि मैंने अपने को आज तक धोखा दिया था। मैंने इधर तुम्हारी खिन्नता के बाद अपने जीवन पर बहुत सोचा, तो मुझे लगा कि प्यार जैसी स्थायी और गहरी भावना शायद मेरे-जैसे रंगीन बहिर्मुख स्वभावशाली के लिए है ही नहीं। प्यार-जैसी गम्भीर और खतरनाक तूफानी भावना को अपने कन्धों पर ढोने का खतरा देवता या बुद्धिहीन ही उठा सकते हैं—तुम उसे वहन कर सकते हो (कर रहे हो। प्यार की प्रतिक्रिया भी प्यार की ही परिचायक है कपूर), मेरे लिए आँसुओं की लहरों में डूब जाना सम्भव नहीं। या तो प्यार आदमी को बादलों की ऊँचाई तक उठा ले जाता है, या स्वर्ग से पाताल में फेंक देता है। लेकिन कुछ प्राणी हैं, जो न स्वर्ग के हैं न नरक के, वे दोनों लोकों के बीच में अन्धकार की परतों में भटकते रहते हैं। वे किसी को प्यार नहीं करते, छायाओं को पकड़ने का प्रयास करते हैं, या शायद प्यार करते हैं या निरन्तर नयी अनुभूतियों के पीछे दीवाने रहते हैं और प्यार बिल्कुल करते ही नहीं। उनको न दुख होता है न सुख, उनकी दुनिया में केवल संशय, अस्थिरता और प्यास होती

है···कपूर, मैं उसी अभागे लोक की एक प्यासी आत्मा थी। अपने एकान्त से घबराकर तुम्हें अपने बाहुपाश में बाँधकर तुम्हारे विश्वास को स्वर्ग से खींच लायी थी। तुम स्वर्ग-भ्रष्ट देवता, भूलकर मेरे अभिशप्त लोक में आ गये थे।

आज मालूम होता है कि फिर तुम्हारे विश्वास ने तुम्हें पुकारा है। मैं अपनी प्यास में खुद धधक उठूँ, लेकिन तुम्हें मैंने अपना मित्र माना था। तुम पर मैं आँच नहीं आने देना चाहती। तुम मेरे योग्य नहीं, तुम अपने विश्वासों के लोक में लौट जाओ।

मैं जानती हूँ तुम मेरे लिए चिन्तित हो। लेकिन मैंने अपना रास्ता निश्चित कर लिया है। स्त्री बिना पुरुष के आश्रय के नहीं रह सकती। उस अभागी को जैसे प्रकृति ने कोई अभिशाप दे दिया है।···मैं थक गयी हूँ इस प्रेमलोक की भटकन से।···मैं अपने पति के पास जा रही हूँ। वे क्षमा कर देंगे, मुझे विश्वास है।

उन्हीं के पास क्यों जा रही हूँ ? इसलिए मेरे मित्र, कि मैं अब सोच रही हूँ कि स्त्री स्वाधीन नहीं रह सकती। उसके पास पत्नीत्व के सिवा कोई चारा नहीं। जहाँ बस जरा स्वाधीन हुई कि बस उसी अन्धकूप में जा पड़ती है जहाँ मैं थी। वह अपना शरीर भी खोकर तृप्ति नहीं पाती। फिर प्यार से तो मेरा विश्वास जैसे उठा जा रहा है, प्यार स्थायी नहीं होता। मैं ईसाई हूँ, पर सभी अनुभवों के बाद मुझे पता लगता है कि हिन्दुओं के यहाँ प्रेम नहीं वरन् धर्म और सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर विवाह की रीति बहुत वैज्ञानिक और नारी के लिए सबसे ज्यादा लाभदायक है। उसमें नारी को थोड़ा बन्धन चाहे क्यों न हो लेकिन दायित्व रहता है, सन्तोष रहता है, वह अपने घर की रानी रहती है। काश कि तुम समझ पाते कि खुले आकाश में इधर-उधर भटकने के बाद, तूफानों से लड़ने के बाद मैं कितना आतुर हो उठी हूँ बन्धनों के लिए, और किसी सशक्त डाल पर बने हुए सुखद, सुकोमल नीड़ में बसेरा लेने के लिए। जिस नीड़ को मैं इतने दिनों पहले उजाड़ चुकी थी, आज वह फिर मुझे पुकार रहा है। हर नारी के जीवन में यह क्षण आता है और शायद इसीलिए हिन्दू प्रेम के बजाय विवाह को अधिक महत्त्व देते हैं।

मैं तुम्हारे पास नहीं रुकी। मैं जानती थी कि हम दोनों के सम्बन्धों में प्रारम्भ से इतनी विचित्रताएँ थीं कि हम दोनों का सम्बन्ध स्थायी नहीं रह सकता था, फिर भी जिन क्षणों में हम दोनों एक ही तूफान में फँस गये थे, वे क्षण मेरे लिए अमूल्य निधि रहेंगे। तुम बुरा न मानना। मैं तुमसे जरा भी नाराज नहीं हूँ। मैं न अपने को गुनहगार मानती हूँ, न तुम्हें, फिर भी अगर तुम मेरी सलाह मान सको तो मान लेना। किसी अच्छी-सी सीधी-सादी हिन्दू लड़की से अपना विवाह कर लेना। किसी बहुत बौद्धिक लड़की, जो तुम्हें प्यार करने का दम भरती हो, उसके फन्दे में न फँसना कपूर, मैं उम्र और अनुभव दोनों में तुमसे बड़ी हूँ। विवाह में भावना या आकर्षण अकसर जहर बिखेर देता है। ब्याह करने के बाद एक-आध महीने के लिए अपनी पत्नी सहित मेरे पास जरूर आना, कपूर। मैं उसे देखकर वह सन्तोष पा लूँगी, जो

हमारी सभ्यता ने हम अभागों से छीन लिया है।

अभी मैं साल भर तक तुमसे नहीं मिलूँगी। मुझे तुमसे अब भी डर लगता है। लेकिन इस बीच में तुम बर्टी का ख्याल रखना। कभी-कभी उसे देख लेना। रुपये की कमी तो उसे न होगी। बीवी भी उसे ऐसी मिल गयी है, जिसने उसे ठीक कर दिया है··उस अभागे भाई से अलग होते हुए मुझे कैसा लग रहा है, यह तुम जानते, अगर तुम बहन होते।

अगला पत्र तुम्हें तभी लिखूँगी जब मेरे पति से मेरा समझौता हो जायेगा·· नाराज तो नहीं हो ?

—प्रमिला डिक्रूज"

चन्दर पम्मी को लौटाने नहीं गया। कॉलेज भी नहीं गया। एक लम्बा-सा खत बिनती को लिखता रहा और इसकी प्रतिलिपि कर दोनों नत्थी कर भेज दिये और उसके बाद थककर सो गया··बिना खाना खाये !

तीन

गरमियों की छुट्टियाँ हो गयी थीं और चन्दर छुट्टियाँ बिताने दिल्ली गया था। सुधा भी आयी हुई थी। लेकिन चन्दर और सुधा में बोलचाल नहीं थी। एक दिन शाम के वक्त डॉक्टर साहब ने चन्दर से कहा—"चन्दर, सुधा इधर बहुत अनमनी रहती है, जाओ इसे कहीं घुमा लाओ।" चन्दर बड़ी मुश्किल से राजी हुआ। दोनों पहले कनॉट प्लेस पहुँचे। सुधा ने बहुत फीकी और टूटती हुई आवाज में कहा—"यहाँ बहुत भीड़ है, मेरी तबीयत घबराती है।" चन्दर ने कार घुमा दी शहर से बाहर रोहतक की सड़क पर दिल्ली से पन्द्रह मील दूर। चन्दर ने एक बहुत हरी-भरी जगह में कार रोक दी। किसी बहुत पुराने पीर का टूटा-फूटा मजार था और कब्र के चबूतरे को फोड़कर एक नीम का पेड़ उग आया था। चबूतरे के दो-तीन पत्थर गिर गये थे। चार-पाँच नीम के पेड़ लगे थे और कब्र के पत्थर के पास एक चिराग बुझा हुआ पड़ा था और कई एक सूखी हुई फूल-मालाएँ हवा से उड़कर नीचे गिर गयी थीं। कब्र के आस-पास ढेरों नीम के तिनके और सूखे हुए नीम के फूल जमा थे।

सुधा जाकर चबूतरे पर बैठ गयी। दूर-दूर तक सन्नाटा था। न आदमी न आदमजाद। सिर्फ गोधूलि के अलसाते हुए झोंकों में नीम चरमरा उठते थे। चन्दर आकर सुधा की दूसरी ओर बैठ गया। चबूतरे पर इस ओर सुधा और उस ओर चन्दर, बीच में चिर-नीरव कब्र···

सुधा थोड़ी देर बाद मुड़ी और चन्दर की ओर देखा। चन्दर एकटक कब्र की ओर देख रहा था। सुधा ने एक सूखा हार उठाया और चन्दर पर फेंककर कहा—"चन्दर, क्या हमेशा मुझे इसी भयानक नरक में रखोगे ? क्या सचमुच हमेशा के लिए तुम्हारा प्यार खो दिया है मैंने ?"

"मेरा प्यार ?" चन्दर हँसा, उसकी हँसी उस सन्नाटे से भी ज्यादा भयंकर थी···"मेरा प्यार ! अच्छी याद दिलायी तुमने ! मैं आज प्यार में विश्वास नहीं करता। या यह कहूँ कि प्यार के उस रूप में विश्वास नहीं करता !"

"फिर ?"

"फिर क्या, उस समय मेरे मन में प्यार का मतलब था त्याग, कल्पना, आदर्श। आज मैं समझ चुका हूँ कि यह सब झूठी बातें हैं, खोखले सपने हैं !"

"तब ?"

"तब ! आज मैं विश्वास करता हूँ कि प्यार के माने सिर्फ एक है; शरीर का सम्बन्ध ! कम-से-कम औरत के लिए। औरत बड़ी बातें करेगी, आत्मा, पुनर्जन्म, परलोक का मिलन, लेकिन उसकी सिद्धि सिर्फ शरीर में है और वह अपने प्यार की मंजिलें पार कर पुरुष को अन्त में एक ही चीज देती है—अपना शरीर। मैं तो अब यह विश्वास करता हूँ सुधा कि वही औरत मुझे प्यार करती है जो मुझे शरीर दे सकती है। बस इसके अलावा प्यार का कोई रूप अब मेरे भाग्य में नहीं।" चन्दर की आँख में कुछ धधक रहा था···सुधा उठी, और चन्दर के पास खड़ी हो गयी—"चन्दर, तुम भी एक दिन ऐसे हो जाओगे, इसकी मुझे कभी उम्मीद नहीं थी। काश कि तुम समझ पाते कि···" सुधा ने बहुत दर्द भरे स्वर में कहा।

"स्नेह है !" चन्दर ठठाकर हँस पड़ा—और उसने सुधा की ओर मुड़कर कहा—"और अगर मैं उस स्नेह का प्रमाण माँगूँ तो ? सुधा !" दाँत पीसकर चन्दर बोला—"अगर तुमसे तुम्हारा शरीर माँगूँ तो ?"

"चन्दर !" सुधा चीखकर पीछे हट गयी चन्दर उठा और पागलों की तरह उसने सुधा को पकड़ लिया—"यहाँ कोई नहीं है—सिवा इस कब्र के। तुम क्या कर सकती हो ? बहुत दिन से मन में एक आग सुलग रही है। आज तुम्हें बरबाद कर दूँ तो मन की नारकीय वेदना बुझ जाये··बोलो !" उसने अपनी आँख की पिघली हुई आग सुधा की आँखों में भरकर कहा।

सुधा क्षणभर सहमी-पथरायी दृष्टि से चन्दर की ओर देखती रही फिर सहसा शिथिल पड़ गयी और बोली—"चन्दर मैं किसी की पत्नी हूँ। यह जन्म उनका है। यह माँग का सिन्दूर उनका है। इस शरीर का शृंगार उनका है। मुझे गला घोंटकर मार डालो। मैंने तुम्हें बहुत तकलीफ दी है। लेकिन···"

"लेकिन···" चन्दर हँसा और सुधा को छोड़ दिया—"'मैं तुम्हें स्नेह करती हूँ, लेकिन यह जन्म उनका है। यह शरीर उनका है—हः ! हः ! क्या अन्दाज हैं प्रवंचना के। जाओ सुधा··मैं तुमसे मजाक कर रहा था। तुम्हारे इस जूठे तन में रखा क्या है ?"

सुधा अलग हटकर खड़ी हो गयी। उसकी आँखों से चिनगारियाँ झरने लगीं, "चन्दर, तुम जानवर हो गये; मैं आज कितनी शरमिन्दा हूँ। इसमें मेरा कसूर है, चन्दर ! मैं अपने को दण्ड दूँगी, चन्दर ! मैं मर जाऊँगी ! लेकिन तुम्हें इनसान बनना पड़ेगा, चन्दर !" और सुधा ने अपना सिर एक टूटे हुए खम्भे पर पटक दिया।

चन्दर की आँख खुल गयी, वह थोड़ी देर तक सपने पर सोचता रहा। फिर उठा। बहुत अजब-सा मन था उसका। बहुत पराजित, बहुत खोया हुआ-सा, बेहद खिसियाहट से भरा हुआ था। उसके मन में यकायक ख्याल आया कि वह किसी

मनोरंजन में जाकर अपने को डुबो दे— बहुत दिनों से उसने सिनेमा नहीं देखा था। उन दिनों बर्नार्ड शॉ का 'सीजर एण्ड क्लियोपेट्रा' लगा हुआ था, उसने सोचा कि पम्मी की मित्रता का परिपाक सिनेमा में हुआ था, उसका अन्त भी वह सिनेमा देखकर मनायेगा। उसने कपड़े पहने, चार बजे से मैटिनी था, और वक्त हो रहा था। कपड़े पहनकर वह शीशे के सामने आकर बाल सँवारने लगा। उसे लगा शीशे में पड़ती हुई उसकी छाया उससे कुछ भिन्न है, उसने और गौर से देखा—छाया रहस्यमय ढंग से मुसकरा रही थी ; वह सहसा बोली—

"क्या देख रहा है ? 'मुखड़ा क्या देखे दरपन में।' एक लड़की से पराजित और दूसरी से सपने में प्रतिहिंसा लेने का कलंक नहीं दीख पड़ता तुझे ? अपनी छवि निरख रहा है ? पापी ! पतित !"

कमरे की दीवारों ने दोहराया—'पापी ! पतित !...'

चन्दर तड़प उठा, पागल-सा हो उठा। कंघा फेंककर बोला—"कौन है पापी ? मैं हूँ पापी ? मैं हूँ पतित ? गलत ! मुझे तुम नहीं समझते। मैं चिर-पवित्र हूँ। मुझे कोई नहीं जानता।"

"कोई नहीं जानता ! हा, हा !" प्रतिबिम्ब हँसा—"मैं तुम्हारी नस-नस जानता हूँ। तुम वही हो न जिसने आज से डेढ़ साल पहले सपना देखा सुधा के हाथ से लेकर अमृत बाँटने का, दुनिया को नया सन्देश देकर पैगम्बर बनने का। नया सन्देश ! खूब नया सन्देश दिया मसीहा ! पम्मी...बिनती...सुधा...कुछ और छोकरियाँ बटोर ले। चरित्रहीन !"

"मैंने किसी को नहीं बटोरा ! जो मेरी जिन्दगी में आया अपने-आप आया, जो चला गया उसे मैंने रोका नहीं। मेरे मन में कहीं भी अहम की प्यास नहीं थी, कभी भी स्वार्थ नहीं था। क्या मैं चाहता तो सुधा को अपने एक इशारे से अपनी बाँहों में नहीं बाँध सकता था !"

"शाबास ! और नहीं बाँध पाये तो सुधा से भी जी भरकर बदला निकाल रहा है। वह मर रही है और तू उस पर नमक छिड़कने से बाज नहीं आया। और आज तो उसे एकान्त में भ्रष्ट करने का सपना देख अपनी पलकों को देवमन्दिर की तरह पवित्र बना लिया तूने ! कितनी उन्नति की है तेरी आत्मा ने ! इधर आ, तेरा हाथ चूम लूँ।"

"चुप रहो ! पराजय की इस वेला में कोई भी व्यंग्य करने से बाज नहीं आता। मैं पागल हो जाऊँगा।"

"और अभी क्या पागलों से कम है तू ? अहंकारी पशु ! तू बर्टी से भी गया-गुजरा है। बर्टी पागल था, लेकिन पागल कुत्तों की तरह काटना नहीं जानता था। तू काटना भी जानता है और अपने भयानक पागलपन को साधना और त्याग भी साबित करता रहता है। दम्भी !"

"बस करो, अब तुम सीमा लाँघ रहे हो।" चन्दर ने मुट्ठियाँ कसकर जवाब दिया।

"क्यों, गुस्सा हो गये, मेरे दोस्त ! अहंवादी इतने बड़े हो और अपनी तसवीर देखकर नाराज होते हो ! आओ, तुम्हें आहिस्ते से समझाऊँ, अभागे ! तू कहता है तूने स्वार्थ नहीं किया। विकलांग देवता ! वही स्वार्थी है जो अपने से ऊपर नहीं उठ पाता ! तेरे लिए अपनी एक साँस भी दूसरे के मन के तूफान से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण रही है। तूने अपने मन की उपेक्षा के पीछे सुधा को भट्ठी में झोंक दिया। पम्मी के अस्वस्थ मन को पहचानकर भी उसके रूप का उपभोग करने में नहीं हिचका, बिनती को प्यार न करते हुए भी बिनती को तूने स्वीकार किया, फिर सबों का तिरस्कार करता गया···और कहता है तू स्वार्थी नहीं। बर्टी पागल हो लेकिन स्वार्थी नहीं है।"

"ठहरो, गालियाँ मत दो, मुझे समझाओ न कि मेरे जीवन-दर्शन में कहाँ पर गलती रही है ! गालियों से मेरा कोई समझौता नहीं।"

"अच्छा, समझो ! देखो, मैं यह नहीं कहता कि तुम ईमानदार नहीं हो, तुम शक्तिशाली नहीं हो, लेकिन तुम अन्तर्मुखी रहे, घोर व्यक्तिवादी रहे, अहंकारग्रस्त रहे। अपने मन की विकृतियों को भी तुमने अपनी ताकत समझने की कोशिश की। कोई भी जीवन-दर्शन सफल नहीं होता अगर उसमें बाह्य-यथार्थ और व्यापक-सत्य धूप-छाँह की तरह न मिला हो। मैं मानता हूँ कि तूने सुधा के साथ ऊँचाई निभायी, लेकिन अगर तेरे व्यक्तित्व को, तेरे मन को, जरा-सी ठेस पहुँचती तो तू गुमराह हो गया होता। तूने सुधा के स्नेह का निषेध कर दिया। तूने बिनती की श्रद्धा का तिरस्कार किया। तूने पम्मी की पवित्रता भ्रष्ट की···और इसे अपनी साधना समझता है ? तू याद कर; कहाँ था तू एक वर्ष पहले और अब कहाँ है ?"

चन्दर ने बड़ी कातरता से प्रतिबिम्ब की ओर देखा और बोला—"मैं जानता हूँ, मैं गुमराह हूँ लेकिन बेईमान नहीं ! तुम मुझे क्यों धिक्कार रहे हो ! तुम कोई रास्ता बता दो न ! एक बार उसे भी आजमा लूँ।"

"रास्ता बताऊँ ! जो रास्ता तुमने एक बार बनाया था, उसी पर तुम मजबूत रह पाये ? फिर क्या एक के बाद दूसरे रास्ते पर चहलकदमी करना चाहते हो ? देखो कपूर, ध्यान से सुनो। तुमसे शायद किसी ने कभी कहा था, शायद बर्टी ने कहा था कि आदमी तभी तक बड़ा रहता है जब तक वह निषेध करता चलता है। पता नहीं किस मानसिक आवेश में वह एक के बाद दूसरे तत्व का विध्वंस और विनाश करता चलता है। हर चट्टान को उखाड़कर फेंकता रहता है और तुमने यही जीवन-दर्शन अपना लिया था, भूल से या अपने अनजाने में ही। तुम्हारी आत्मा में एक शक्ति थी, एक तूफान था। लेकिन यह लक्ष्य भ्रष्ट था। तुम्हारी जिन्दगी में लहरें उठने लगीं लेकिन गहराई नहीं। और याद रखो चन्दर, सत्य उसे मिलता है जिसकी आत्मा शान्त और गहरी होती है समुद्र के अन्तराल की तरह। समुद्र की ऊपरी सतह की तरह जो विक्षुब्ध और तूफानी होता है, उसके अन्तर्द्वन्द्व में चाहे कितनी गरज हो लेकिन सत्य की शान्त अमृतमयी आवाज नहीं होती।"

"लेकिन वह गहराई मुझे मिली नहीं ?"

"बताता हूँ—घबड़ाते क्यों हो। देखो, तुममें बहुत बड़ा अधैर्य रहा है। शक्ति रही, पर धैर्य और दृढ़ता बिलकुल नहीं। तुम गम्भीर समुद्रतल न बनकर एक सशक्त लेकिन अशान्त लहर बन गये जो हर किनारे से टकराकर उसे तोड़ने के लिए व्यग्र हो उठी। तुममें ठहराव नहीं था। साधना नहीं थी ! जानते हो क्यों ? तुम्हें जहाँ से जरा भी तकलीफ मिली, अवरोध मिला वहीं से तुमने अपना हाथ खींच लिया ! वहीं तुम भाग खड़े हुए। तुमने हमेशा उसका निषेध किया— पहले तुमने समाज का निषेध किया, व्यक्ति को साधना का केन्द्र बनाया; फिर व्यक्ति का भी निषेध किया। अपने विचारों में, अन्तर्मुखी भावनाओं में डूब गये, कर्म का निषेध किया। फिर तो कर्म में ऐसी भागदौड़, ऐसी विमुखता शुरू हुई कि बस ! न मानवता का प्यार जीवन में प्रतिफलित कर सका, न सुधा का। पम्मी हो या बिनती, हरेक से तू निष्क्रिय खिलौने की तरह खेलता गया। काश कि तूने समाज के लिए कुछ किया होता ! सुधा के लिए कुछ किया होता लेकिन तू कुछ न कर पाया। जिसने तुझे जिधर चाहा उधर उत्प्रेरित कर दिया और तू अन्धे और इच्छाविहीन परतन्त्र अन्धड़ की तरह उधर ही हू-हू करता हुआ दौड़ गया। माना मैंने कि समाज के आधार पर बने जीवन-दर्शन में कुछ कमियाँ हैं: लेकिन अंशतः ही उसे स्वीकार कर कुछ काम करता, माना कि सुधा के प्यार से तुझे तकलीफ हुई पर उसकी महत्ता के ही आधार पर तू कुछ निर्माण कर ले जाता। लेकिन तू तो जरा-से अवरोध के बहाने सम्पूर्ण का निषेध करता गया। तेरा जीवन निषेधों की निष्क्रियता की मानसिक प्रतिक्रियाओं की शृंखला रहा है। अभागे, तूने हमेशा जिन्दगी का निषेध किया है। दुनिया को स्वीकार करता, यथार्थ को स्वीकार करता, जिन्दगी को स्वीकार करता और उसके आधार पर अपने मन को अपने मन के प्यार को, अपने जीवन को सन्तुलित करता, आगे बढ़ता लेकिन तूने अपनी मन की गंगा को व्यक्ति की छोटी-सी सीमा में बाँध लिया, उसे एक पोखरा वना दिया, पानी सड़ गया, उसमें गन्ध आने लगी, सुधा के प्यार की सीपी जिसमें सत्य और सफलता का मोती बन सकता था, वह मर गयी और रुके हुए पानी में विकृति और वासना के कीड़े कुलबुलाने लगे। शाबाश ! क्या अमृत पाया है तूने ! धन्य है, अमृत-पुत्र !"

"बस करो ! यह व्यंग्य मैं नहीं सह सकता ! मैं क्या करता !"

"कैसी लाचारी का स्वर है ! छिः, असफल पैगम्बर ! साधना यथार्थ को स्वीकार करके चलती है, उसका निषेध करके नहीं। हमारे यहाँ ईश्वर को कहा गया है नेति, नेति, इसका मतलब यह नहीं कि ईश्वर, परम निषेध स्वरूप है। गलत, नेति में 'न' तो केवल एक वर्ण है। 'इति' दो वर्ण हैं। एक निषेध तो कम-से-कम दो स्वीकृतियाँ। इसी अनुपात में कल्पना और यथार्थ का समन्वय क्यों नहीं किया तूने ?"

"मैं नहीं समझ पाता—यह दर्शन मेरी समझ में नहीं आता !"

"देखो, इसको ऐसे समझो। घबराओ मत ! कैलाश ने अगर नारी के व्यक्तित्व

को नहीं समझा, सुधा की पवित्रता को तिरस्कृत किया, लेकिन उसने समाज के लिए कुछ तो किया। गेसू ने अपने विवाह का निषेध किया, लेकिन अख़्तर के प्रति अपने प्यार का निषेध तो नहीं किया। अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया। अपने चरित्र का निर्माण किया। यानी गेसू, एक लड़की से तुम हार गये, छिः !"

"लेकिन मैं कितना थक गया था, यह तो सोचो। मन को कितनी ऊँची-नीची घाटियों से मौत से भी भयानक रास्तों से गुजरने में और कोई होता तो मर गया होता। मैं जिन्दा तो हूँ !"

"वाह, क्या जिन्दगी है !"

"तो क्या करूँ, यह रास्ता छोड़ दूँ ? यह व्यक्तित्व तोड़ डालूँ ?"

"फिर वही निषेध और विध्वंस की बातें। छिः देखो, चलने को तो गाड़ी का बैल भी रास्ते पर चलता है ! लेकिन सैकड़ों मील चलने के बाद भी वह गाड़ी का बैल ही बना रहता है। क्या तुम गाड़ी के बैल बनना चाहते हो ? नहीं कपूर ! आदमी जिन्दगी का सफर तय करता है। राह की ठोकरें और मुसीबतें उसके व्यक्तित्व को पुख़्ता बनाती चलती हैं, उसकी आत्मा को परिपक्व बनाती चलती हैं, क्या तुममें परिपक्वता आयी ? नहीं। मैं जानता हूँ, तुम अब मेरा भी निषेध करना चाहते हो। तुम मेरी आवाज को भी चुप करना चाहते हो। आत्म-प्रवंचना तो तेरा पेशा हो गया है। कितना खतरनाक है तू अब...तू मेरा भी...तिरस्कार...करना... चाहता...है" और छाया, धीरे-धीर वह एक बिन्दु बनकर अदृश्य हो गयी।

चन्दर चुपचाप शीशे के सामने खड़ा रहा।

फिर वह सिनेमा नहीं गया।

चन्दर सहसा बहुत शान्त हो गया। एक ऐसे भोले बच्चे की तरह जिसने अपराध कम किया, जिससे नुकसान ज्यादा हो गया था, और जिस पर डाँट बहुत पड़ी थी। अपने अपराध की चेतना से वह बोल भी नहीं पाता था। अपना सारा दुख अपने ऊपर उतार लेना चहता था। वहाँ एक ऐसा सन्नाटा था जो न किसी को आने के लिए आमन्त्रित कर सकता था, न किसी को जाने से रोक सकता था। वह एक ऐसा मैदान था जिस पर कि सारी पगडण्डियाँ तक मिट गयी हों; एक ऐसी डाल थी जिस पर के सारे फूल झर गये हों, सारे घोंसले उजड़ गये हों। मन में उसके असीम कुण्ठा और वेदना थी, ऐसा था कि कोई उसके घाव छू ले तो वह आँसुओं में बिखर पड़े। वह चाहता था, वह सबसे क्षमा माँग ले, बिनती से, पम्मी से, सुधा से और फिर हमेशा के लिए उनकी दुनिया से चला जाये। कितना दुख दिया था उसने सबको।

इसी मनःस्थिति में एक दिन गेसू ने उसे बुलाया। वह गया। गेसू की अम्मीजान तो सामने आयीं पर गेसू ने परदे में से ही बातें कीं। गेसू ने बताया कि सुधा का खत आया है कि वह जल्दी ही आयेगी, गेसू से मिलने। गेसू को बहुत ताज्जुब हुआ कि चन्दर के पास कोई खबर क्यों नहीं आयी !

चन्दर जब घर पहुँचा तो कैलाश का एक खत मिला–

"प्रिय चन्दर,

बहुत दिन से तुम्हारा कोई खत नहीं आया, न मेरे पास न इनके पास। क्या नाराज हो हम दोनों से ? अच्छा तो लो, तुम्हें एक खुशखबरी सुना दूँ। मैं सांस्कृतिक मिशन में शायद आस्ट्रेलिया जाऊँ। डॉक्टर साहब ने कोशिश कर दी है। आधा रुपया मेरा, आधा सरकार का।

तुम्हें भला क्या फुरसत मिलेगी यहाँ आने की ! मैं ही इन्हें लेकर दो रोज के लिए आऊँगा। इनकी कोई मुसलमान सखी है वहाँ, उससे ये भी मिलना चाहती हैं। हमारी खातिर का इन्तजाम रखना– मैं 11 मई को सुबह की गाड़ी से पहुँचूँगा।

तुम्हारा–कैलाश"

सुधा के आने के पहले चन्दर ने घर की ओर नजर दौड़ायी। सिवा ड्राइंगरूम और लॉन के सचमुच बाकी घर इतना गन्दा पड़ा था कि गेसू सच ही कह रही थी कि जैसे घर में प्रेत रहते हों। आदमी चाहे जितना सफाई-पसन्द और सुरुचिपूर्ण क्यों न हो लेकिन औरत के हाथ में जाने क्या जादू है कि वह घर को छूकर ही चमका देती है। औरत के बिना घर की व्यवस्था सँभल ही नहीं सकती। सुधा और बिनती कोई भी नहीं थी और तीन ही महीने में बँगले का रूप बिगड़ गया था।

उसने सारा बँगला साफ कराया। हालाँकि दो ही दिन के लिए सुधा और कैलाश आ रहे थे। लेकिन उसने इस तरह बँगले की सफाई करायी जैसे कोई नया समारोह हो। सुधा का कमरा बहुत सजा दिया था और सुधा की छत पर दो पलंग डलवा दिये थे। लेकिन इन सब इन्तजामों के पीछे उतनी ही निष्क्रिय भावहीनता थी जैसे कि वह एक होटल का मैनेजर हो और दो आगन्तुकों का इन्तजाम कर रहा हो। बस।

मानसून के दिनों में अगर कभी किसी ने गौर किया हो तो बारिश होने के पहले ही हवा में एक नमी, पत्तियों पर एक हरियाली और मन में एक उमंग-सी छा जाती है। आसमान का रंग बतला देता है कि बादल छानेवाले हैं, बूँदें रिमझिमाने वाली हैं। जब बादल बहुत नजदीक आ जाते हैं, बूँदें पड़ने के पहले ही दूर पर गिरती हुई बूँदों की आवाज़ वातावरण पर छा जाती है जिसे धुरवा कहते हैं।

ज्यों-ज्यों सुधा के आने का दिन नजदीक आ रहा था, चन्दर के मन में हवाएँ करवटें बदलने लग गयी थीं। मन के उदास सुनसान में धुरवा उमड़ने-घुमड़ने लगा था। मन उदास सुनसान आकुल प्रतीक्षा में बेचैन हो उठा था। चन्दर अपने को समझ नहीं पा रहा था। नसों में एक अजब-सी घबराहट मचलने लगी थी जिसका वह

विश्लेषण नहीं करना चाहता था। उसका व्यक्तित्व अब पता नहीं क्यों कुछ भयभीत-सा था।

इम्तहान खत्म हो रहे थे, और जब मन की बेचैनी बहुत बढ़ जाती थी तो परीक्षकों की आदत के मुताबिक वह कॉपियाँ जाँचने बैठ जाता था। जिस समय परीक्षकों के घर में पारिवारिक कलह हो, मन में अन्तर्द्वन्द्व हो या दिमाग में फितूर हो उस समय उन्हें कॉपियाँ जाँचने से अच्छा शरणस्थल नहीं मिलता। अपने जीवन की परीक्षा में फेल हो जाने की खीझ उतारने के लिए लड़कों को फेल करने के अलावा कोई अच्छा रास्ता ही नहीं है। चन्दर जब बेहद दुखी होता तो वह कॉपियाँ जाँचता।

जिस दिन सुबह सुधा आ रही थी, उस रात को तो चन्दर का मन बिलकुल बेकाबू-सा हो गया। लगता था जैसे उसने सोचने-विचारने से ही इनकार कर दिया हो। उस दिन चन्दर एक क्षण को भी अकेला न रहकर भीड़-भाड़ में खो जाना चाहता था। सुबह वह गंगा नहाने गया, कार लेकर। कॉलेज से लौटकर दोपहर को अपने एक मित्र के यहाँ चला गया। लौटकर आया तो नहाकर एक किताब की दुकान पर चला गया और शाम होने तक वहीं खड़ा-खड़ा किताबें उलटता और खरीदता रहा। वहाँ उसने बिसरिया का गीत-संग्रह देखा जो 'बिनती' नाम बदल उसने 'विप्लव' नाम से छपवा लिया था और प्रमुख प्रगतिशील कवि बन गया था। उसने वह संग्रह भी खरीद लिया।

अब सुधा के आने में मुश्किल से बारह घण्टे की देर थी। उसकी तबीयत बहुत घबराने लगी थी और वह बिसरिया के काव्य-संग्रह में डूब गया। उन सड़े हुए गीतों में ही अपने को भुलाने की कोशिश करने लगा और अन्त में उसने अपने को इतना थका डाला कि तीन बजे का अलार्म लगाकर वह सो गया। सुधा की गाड़ी साढ़े चार बजे आती थी।

जब वह जागा तो रात अपने मखमली पंख पसारे नींद में डूबी हुई दुनिया पर शान्ति का आशीर्वाद बिखेर रही थी। ठण्डे झोंके लहरा रहे थे और उन झोंकों पर पवित्रता छायी हुई थी। यह पछुआ के झोंके थे। ब्रह्म मुहूर्त में प्राचीन आर्यों ने जो रहस्य पाया था वह धीरे-धीरे चन्दर की आँखों के सामने खुलने-सा लगा। उसे लगा जैसे यह उसके व्यक्तित्व की नयी सुबह है। एक बड़ा शान्त संगीत उसकी पलकों पर ओस की तरह थिरकने लगा।

क्षितिज के पास एक बड़ा-सा सितारा जगमगा रहा था ! चन्दर को लगा जैसे यह उसके प्यार का सितारा है जो जाने किस अज्ञात पाताल में डूब गया था और आज से वह फिर उग गया है। उसने एक अन्धविश्वासी भोले बच्चे की तरह उस सितारे को हाथ जोड़कर कहा—"मेरी कंचन जैसी सुधा रानी के प्यार, तुम कहाँ खो गये थे ? तुम मेरे सामने नहीं रहे, मैं जाने किन तूफानों में उलझ गया था। मेरी आत्मा में सारी गुरुता सुधा के प्यार की थी। उसे मैंने खो दिया। उसके बाद मेरी आत्मा पीले पत्ते की तरह तूफान में उड़कर जाने किस कीचड़ में फँस गयी थी। तुम

मेरी सुधा के प्यार हो न ! मैंने तुम्हें सुधा की भोली आँखों में जगमगाते हुए देखा था। वेदमन्त्रों-जैसे इस पवित्र सुबह में आज फिर मेरे पाप में लिप्त तन को अमृत से धोने आये हो। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि आज सुधा के चरणों पर अपने जीवन के सारे गुनाहों को चढ़ाकर हमेशा कि लिए क्षमा माँग लूँगा। लेकिन मेरी साँसों की साँस सुधा !. मुझे क्षमा कर दोगी न ?" और विचित्र-से भावावेश और पुलक से उसकी आँख में आँसू आ गये। उसे याद आया कि एक दिन सुधा ने उसकी हथेलियों को होंठों से लगाकर कहा था–जाओ, आज तुम सुधा के स्पर्श से पवित्र हो··काश कि आज भी सुधा अपने मिसरी-जैसे होंठों से चन्दर की आत्मा को चूमकर कहे–जाओ चन्दर, अभी तक जिन्दगी के तूफान ने तुम्हारी आत्मा को बीमार, अपवित्र कर दिया था···आज से तुम वही चन्दर हो। अपनी सुधा के चन्दर। हरिणी-जैसी भोली-भाली सुधा के महान् पवित्र चन्दर···

तैयार होकर चन्दर जब स्टेशन पहुँचा तो वह जैसे मोहाविष्ट-सा था। जैसे वह किसी जादू या टोना पढ़ा-हुआ-सा घूम रहा था और वह जादू था सुधा के प्यार का पुनरावर्तन।

गाड़ी घण्टे-भर लेट थी। चन्दर को एक पल काटना मुश्किल हो रहा था। अन्त में सिगनल डाउन हुआ। कुलियों में हलचल मची और चन्दर पटरी पर झुककर देखने लगा। सुबह हो गयी थी और इंजन दूर पर एक काले दाग-सा दिखाई पड़ रहा था। धीरे-धीरे वह दाग बड़ा लगा और लम्बी-सी हरी पूँछ की तरह लहराती हुई ट्रेन आती दिखाई पड़ी। चन्दर के मन में आया वह पागल की तरह दौड़कर वहाँ पहुँच जाये। जिस दिन एक घोर अविश्वासी में विश्वास जाग जाता है उस दिन वह पागल-सा हो उठता है। उसे लग रहा था जैसे इस गाड़ी में सभी डिब्बे खाली हैं। सिर्फ एक डिब्बे में अकेली सुधा होगी। जो आते ही चन्दर को अपनी प्यार-भरी निगाहों में समेट लेगी।

गाड़ी के प्लेटफार्म पर आते ही हलचल बढ़ गयी। कुलियों की दौड़धूप मुसाफिरों की हड़बड़ी, सामान की उठा-धरी से प्लेटफॉर्म भर गया। चन्दर पागलों-सा इस सब भीड़ को चीरकर डिब्बे देखने लगा। एक दफे पूरी गाड़ी का चक्कर लगा गया। कहीं भी सुधा नहीं दिखाई दी। जैसे आँसू से उसका गला रुँधने लगा। क्या आये नहीं ये लोग ! किस्मत कितना व्यंग्य करती है उससे ! आज जब वह किसी के चरणों पर अपनी आत्मा उत्सर्ग कर फिर पवित्र होना चाहता था तो सुधा ही नहीं आयी। उसने एक चक्कर और लगाया और निराश होकर लौट पड़ा। सहसा सेकेण्ड क्लास के एक छोटे से डिब्बे में से कैलाश ने झाँककर कहा–"कपूर !"

चन्दर मुड़ा, देखा कि कैलाश झाँक रहा है। एक कुली सामान उतारकर खड़ा है। सुधा नहीं है।

जैसे किसी ने झोंके से उसके मन का दीप बुझा दिया। सामान बहुत थोड़ा-सा था। वह डिब्बे में चढ़कर बोला–"सुधा नहीं आयी ?"

"आयी हैं, देखो न ! कुछ तबीयत खराब हो गयी है। जी मितला रहा है।" और उसने बाथरूम की ओर इशारा कर दिया। सुधा बाथरूम में बगल में लोटा रखे सिर झुकाये बैठी थी–"देखो ! देखती हो ?" कैलाश बोला, "देखो, कपूर आ गया।" सुधा ने देखा और मुश्किल से हाथ जोड़ पायी होगी कि उसे मितली आ गयी... कैलाश दौड़ा और उसकी पीठ पर हाथ फेरेने लगा और चन्दर से बोला–"पंखा लाओ !" चन्दर हतप्रभ था। उसके मन ने सपना देखा था...सुधा सितारों की तरह जगमगा रही होगी और अपनी रोशनी की बाँहों में चन्दर के प्राणों को सुला देगी। जादूगरनी की तरह अपने प्यार के पंखों से चन्दर की आत्मा के दाग पोंछ देगी। लेकिन यथार्थ कुछ और था। सुधा जादूगरनी, आत्मा की रानी, पवित्रता की साम्राज्ञी सुधा, बाथरूम में बैठी है और उसका पति उसे सान्त्वना दे रहा था।

"क्या कर रहे हो, चन्दर !...पंखा उठाओ जल्दी से।" कैलाश ने व्यग्रता से कहा। चन्दर चौंक उठा और जाकर पंखा झलने लगा। थोड़ी देर बाद मुँह धोकर सुधा उठी और कराहती हुई-सी जाकर सीट पर बैठ गयी। कैलाश ने एक तकिया पीछे लगा दिया और वह आँख बन्द करके लेट गयी।

चन्दर ने अब सुधा को देखा। सुधा उजड़ चुकी थी। उसका रस मर चुका था। वह अपने यौवन और रूप, चंचलता और मिठास की एक जर्द छाया मात्र रह गयी थी। चेहरा दुबला पड़ गया था और हड्डियाँ निकल आयी थीं। चेहरा दुबला होने से लगता था आँखें फटी पड़ती हैं। वह चुपचाप आँख बन्द किये पड़ी थी। चन्दर पंखा हाँक रहा था, कैलाश एक सूटकेस खोलकर दवा निकाल रहा था। गाड़ी यहीं आकर रुक जाती है, इसलिए कोई जल्दी नहीं थी। कैलाश ने दवा दी। सुधा ने दवा पी और फिर उदास, बहुत बारीक, बहुत बीमार स्वर में बोली–"चन्दर, अच्छे तो हो ! इतने दुबले कैसे लगते हो ? अब कौन तुम्हारे खाने-पीने की परवा करता होगा !" सुधा ने एक गहरी साँस ली। कैलाश बिस्तर लपेट रहा था।

"तुम्हें क्या हो गया है, सुधा ?"

"मुझे सुख-रोग हो गया है !" सुधा बहुत क्षीण हँसी हँसकर बोली–"बहुत सुख में रहने से ऐसा ही हो जाता है।"

चन्दर चुप हो गया। कैलाश ने बिस्तर कुली को देते हुए कहा–"इन्होंने तो बीमारी के मारे हम लोगों को परेशान कर रखा है। जाने बीमारियों को क्या मुहब्बत है इनसे ! चलो उठो।" सुधा उठी।

कार पर सुधा के साथ पीछे सामान रख दिया गया और आगे कैलाश और चन्दर बैठे। कैलाश बोला–"चन्दर, तुम बहुत धीमे ड्राइव करना वरना इन्हें चक्कर

आने लगेगा···" कार चल दी। चन्दर कैलाश की विदेश-यात्रा और कैलाश चन्दर के कॉलेज के बारे में बात करता रहा। मुश्किल से घर तक कार पहुँची होगी कि कैलाश बोला–"यार चन्दर, तुम्हें तकलीफ तो होगी लेकिन एक दिन के लिए कार तुम मुझे दे सकते हो ?"

"क्यों ?"

"मुझे जरा रीवाँ तक बहुत जरूरी काम से जाना है, वहाँ कुछ लोगों से मिलना है, कल दोपहर तक मैं चला आऊँगा।"

"इसके मतलब मेरे पास नहीं रहोगे एक दिन भी।"

"नहीं, इन्हें छोड़ जाऊँगा। लौटकर दिन-भर रहूँगा।"

"इन्हें छोड़ जाओगे ? नहीं भाई, तुम जानते हो कि आजकल घर में कोई नहीं है।" चन्दर ने कुछ घबराकर कहा।

"तो क्या हुआ, तुम तो हो !" कैलाश बोला और चन्दर के चेहरे की घबराहट देखकर हँसकर बोला–"अरे यार, अब तुम पर इतना अविश्वास नहीं है। अविश्वास करना होता तो ब्याह के पहले ही कर लेते।"

चन्दर मुसकरा उठा, कैलाश ने चन्दर के कन्धे पर हाथ रखकर धीमे से कहा ताकि सुधा न सुन पाये–"वैसे चाहे मुझे कुछ भी असन्तोष क्यों न हो, लेकिन इनका चरित्र तो सोने का है, यह मैं खूब परख चुका हूँ। इनका ऐसा चरित्र बनाने के लिए तो मैं तुम्हें बधाई दूँगा, चन्दर ! और फिर आज के युग में !"

चन्दर ने कुछ जवाब नहीं दिया।

कार पोर्टिको में लगी। सुधा, कैलाश, चन्दर उतरे। माली और नौकर दौड़ आये, सुधा ने उन सबसे उनका हाल पूछा। अन्दर जाते ही महराजिन दौड़कर सुधा से लिपट गयी। सुधा को बहुत दुलार किया।

कैलाश मुँह-हाथ धो चुका था, नहाने चला गया। महराजिन चाय बनाने लगी। सुधा भी मुँह-हाथ धोने और नहाने चली गयी। कैलाश तौलिया लपेटे नहाकर आया और बैठ गया। बोला–"आज और कल की छुट्टी ले लो, चन्दर ! इनकी तबीयत ठीक नहीं है और मुझे जाना जरूरी है !"

"अच्छा, लेकिन आज तो जाकर हाजिरी देना जरूरी होगा। फिर लौट आऊँगा !" महराजिन चाय और नाश्ता ले आयी। कैलाश ने नाश्ता लौटा दिया तो महराजिन बोली–"वाह, दामाद हइके अकेली चाय पीबो भइया, अबहिन डॉक्टर साहब सुनिहैं तो का कहिहैं।"

"नहीं माँजी, मेरा पेट ठीक नहीं है। दो दिन के जागरण से आ रहा हूँ। फिर लौटकर खाऊँगा। लो चन्दर, चाय पियो।"

"सुधा को आने दो !" चन्दर बोला।

"वह पूजा-पाठ करके खाती हैं।"

"पूजा-पाठ !" चन्दर दंग रह गया–"सुधा पूजा-पाठ करने लगी ?"

"हाँ भाई, तभी तो हमारी माताजी अपनी बहू पर मरती हैं। असल में वह पूजा-पाठ करती थीं। शुरुआत की इन्होंने पूजा की बरतन धोने से और अब तो उनसे भी ज्यादा पक्की पुजारिन बन गयी हैं। कैलाश ने इधर-उधर देखा और बोला—"यार, यह मत समझना मैं सुधा की शिकायत कर रहा हूँ, लेकिन तुम लोगों ने मुझे ठीक नहीं चुना !"

"क्यों ?" चन्दर कैलाश के व्यवहार पर मुग्ध था।

"इन जैसी लड़कियों के लिए तुम कोई कवि या कलाकार या भावुक लड़का ढूँढ़ते तो ठीक था। मेरे जैसा व्यावहारिक और नीरस राजनीतिक इनके उपयुक्त नहीं है। घर भर इनसे बेहद खुश है। जब से ये गयी हैं, माँ और शंकर भइया दोनों ने मुझे नालायक करार दे दिया है। इन्हीं से पूछकर सब करते हैं, लेकिन मैंने जो सोच रखा था। वह मुझे नहीं मिल पाया !"

"क्यों, क्या बात है ?" चन्दर ने पूछा—"गलती बताओ तो हम इन्हें समझायें।"

"नहीं, देखो गलत मत समझो। मैं यह नहीं कहता कि इनकी गलती है। यह तो गलत चुनाव की बात है।" कैलाश बोला—"न इसमें मेरा कसूर न इनका ! मैं चाहता था कोई लड़की जो मेरे साथ राजनीति का काम करती, मेरी सबलता और दुर्बलता दोनों की संगिनी होती। इसीलिए इतनी पढ़ी-लिख लड़की से शादी की। लेकिन इन्हें धर्म और साहित्य से जितनी रुचि है उतनी राजनीति से नहीं। इसलिए मेरे व्यक्तित्व को ग्रहण भी नहीं कर पायीं। वैसे मेरी शारीरिक प्यास को इन्होंने चाहे समर्पण किया, वह भी एक बेमनी से, उससे तन की प्यास भले ही बुझ जाती हो कपूर, लेकिन मन तो प्यासा ही रहता है···बुरा न मानना। मैं बहुत स्पष्ट बातें करता हूँ। तुमसे छिपाना क्या ?···और स्वास्थ्य के मामले में ये इतनी लापरवाह हैं कि मैं बहुत दुखी रहता हूँ।" इतने में सुधा नहाकर आती हुई दीख पड़ी। कैलाश चुप हो गया। सुधा की ओर देखकर बोला—"मेरी अटैची भी ठीक कर दो। मैं अभी चला जाऊँ वरना दोपहर में तपना होगा।" सुधा चली गयी। सुधा के जाते ही कैलाश बोला—"भरसक मैं इन्हें दुखी नहीं होने देता, हाँ, अकसर ये दुखी हो जाती हैं; लेकिन मैं क्या करूँ, यह मेरी मजबूरी है, वैसे मैं इन्हें भरसक सुखी रखने का प्रयास करता हूँ···और ये भी जायज-नाजायज हर इच्छा के सामने झुक जाती हैं, लेकिन इनके दिल में मेरे लिए कोई जगह नहीं है वह जो एक पत्नी के मन में होती है। लेकिन खैर, जिन्दगी चलती जा रही है। अब तो जैसे हो निभाना ही है !"

इतने में सुधा आयी और बोली—"देखिए, अटैची सँवार दी है, आप भी देख लीजिए···" कैलाश उठकर चला गया। चन्दर बैठा-बैठा सोचने लगा—कैलाश कितना अच्छा है, कितना साफ और स्वच्छ दिल का है। लेकिन सुधा ने अपने को किस तरह मिटा डाला···

इतने में सुधा आयी और चन्दर से बोली—"चन्दर ! चलो, वो बुला रहे हैं।"

चन्दर चुपचाप उठा और अन्दर गया। कैलाश ने तब तक यात्रा के कपड़े पहन

लिये थे। देखते ही बोला—"अच्छा चन्दर, मैं चलता हूँ। कल शाम तक आ जाने की कोशिश करूँगा। हाँ देखो, इन्हें ज्यादा घुमाना मत। इनकी सखी को यहाँ बुलवा लो तो अच्छा।" फिर बाहर निकलता हुआ बोला—"इनकी जिद थी आने की, वरना इनकी हालत आने लायक नहीं थी। माताजी से मैं कह आया हूँ कि लखनऊ मेडिकल कॉलेज ले जा रहा हूँ।"

कैलाश कार पर बैठ गया। फिर बोला—"देखो चन्दर, दवा इन्हें दे देना याद से, वहीं रखी है।" कार स्टार्ट हो गयी।

चन्दर लौटा। बरामदे में सुधा खड़ी थी। चुपचाप बुझी हुई-सी। चन्दर ने उसकी ओर देखा, उसने चन्दर की ओर देखा, फिर दोनों ने निगाहें झुका लीं। सुधा वहीं खड़ी रही। चन्दर ड्राइंग-रूम में जाकर किताबें वगैरह उठा लाया और कॉलेज जाने के लिए निकला। सुधा अब भी बरामदे में खड़ी थी। गुम-सुम···चन्दर कुछ कहना चाहता था···लेकिन क्या ? कुछ था, जो न जाने कब से संचित होता आ रहा था, जो वह व्यक्त करना चाहता था, लेकिन सुधा कैसी हो गयी है। यह वह सुधा तो नहीं जिसके सामने वह अपने को सदा व्यक्त कर देता था। कभी संकोच नहीं करता था, लेकिन यह सुधा कैसी है अपने में सिमटी-सकुची, अपने में बँधी-बँधायी, अपने में इतनी छिपी हुई कि लगता था दुनिया के प्रति इसमें कहीं कोई खुलाव ही नहीं। चन्दर के मन में जाने कितनी आवाजें तड़प उठीं लेकिन···कुछ नहीं बोल पाया। वह बरामदे में ठिठक गया, निरुद्देश्य वहाँ अपनी किताबें खोलकर देखने लगा, जैसे वह याद करना चाहता था कि कहीं भूल तो नहीं आया है कुछ लेकिन उसके अन्तर्मन में केवल एक ही बात थी। सुधा कुछ तो बोले। यह इतना गहरा, इतनी घुटनवाला मौन, यह तो जैसे चन्दर के प्राणों पर घुटने की तरह बैठता जा रहा था। सुधा···निर्वात निवास में दीपशिखा-सी अचल, निस्पन्द, थमे हुए तूफान की तरह मौन। चन्दर ने अन्त में नोट लिये, घड़ी देखी और चल दिया। जब वह सीढ़ी तक पहुँचा तो सहसा सुधा की छायामूर्ति में हरकत हुई। सुधा ने पाँव के अँगूठे से फर्श पर एक लकीर खींचते हुए नीचे निगाह झुकाये हुए कहा—"कितनी देर में आओगे ?" चन्दर रुक गया। जैसे चन्दर को सितारों का राज मिल गया हो। सुधा भला बोली तो ! लेकिन, फिर भी अपने मन का उल्लास उसने जाहिर नहीं होने दिया, बोला—"कम-से-कम दो घण्टे तो लगेंगे ही।"

सुधा कुछ नहीं बोली, चुपचाप रह गयी। चन्दर ने दो क्षण प्रतीक्षा की कि सुधा अब कुछ बोले लेकिन सुधा फिर भी चुप। चन्दर फिर मुड़ा। क्षण-भर बाद सुधा ने पूछा—"चन्दर, और जल्दी नहीं लौट सकते ?"

जल्दी ! सुधा अगर कहे तो चन्दर जाये भी न, चाहे उसे स्तीफा देना पड़े। क्या सुधा भूल गयी कि चन्दर के व्यक्तित्व पर अगर किसी का शासन है तो सुधा का ! वह जो अपनी जिद से, उछलकर, लड़कर, रूठकर चन्दर से हमेशा मनचाहा काम करवाती रही है···आज वह इतनी दीनता से, इतनी विनय से, इतने अन्तर और इतनी

दूरी से क्यों कह रही है कि जल्दी नहीं लौट सकते ? क्यों नहीं वह पहले की तरह दौड़कर चन्दर का कालर पकड़ लेती और मचलकर कहती—"ए, अगर जल्दी नहीं लौटे तो···" लेकिन अब तो सुधा बरामदे में खड़ी होकर गम्भीर-सी, डूबती हुई-सी आवाज में पूछ रही है—जल्दी नहीं लौट सकते ! चन्दर का मन टूट गया। चन्दर की उमंग चट्टान से टकराकर बिखर गयी··उसने बहुत भारी-सी आवाज में पूछा—"क्यों ?"

"जल्दी लौट आते तो पूजा करके तुम्हारे साथ नाश्ता कर लेते ! लेकिन अगर ज्यादा काम हो तो रहने दो, मेरी वजह से हरज मत करना !" उसने उसे ठण्डे, शिष्ट और भावहीन स्वर में कहा।

हाय सुधा ! अगर तुम जानती होती कि महीनों उद्भ्रान्त चन्दर का टूटा और प्यासा मन तुमसे पुराने स्नेह की एक बूँद के लिए तरस उठा है तो भी क्या तुम इसी दूरी से बातें करती ! काश, कि तुम समझ पाती कि चन्दर ने अगर तुमसे कुछ दूरी भी निभायी है तो उससे खुद चन्दर कितना बिखर गया है। चन्दर ने अपना देवत्व खो दिया है, अपना सुख खो दिया है, अपने को बरबाद कर दिया है और फिर भी चन्दर के बाहर से शान्त और सुगठित दीखने वाले हृदय के अन्दर तुम्हारे प्यार की कितनी गहरी प्यास धधक रही है, उसके रोम-रोम में कितनी जहरीली तृष्णा की बिजलियाँ कौंध रही हैं, तुमसे अलग होने के बाद अतृप्ति का कितना बड़ा रास्ता उसने आग की लपटों में झुलसते हुए बिताया है। अगर तुम इसे समझ लेती तो तुम चन्दर को एक बार दुलारकर उसके जलते हुए प्राणों पर अमृत की चाँदनी बिखेरने के लिए व्यग्र हो उठती; लेकिन सुधा, तुमने अपने बाह्य विद्रोह को ही समझा, तुमने उस गम्भीर प्यार को समझा ही नहीं जो इस बाहरी विद्रोह, इस बाहरी विध्वंस के मूल में पयस्विनी की पावन धारा की तरह बहता जा रहा है। सुधा, अगर तुम एक क्षण के लिए इसे समझ लो··एक क्षण-भर के लिए चन्दर को पहले की तरह दुलार लो, बहला लो, रूठ लो, मना लो तो सुधा, चन्दर की जलती हुई आत्मा, नरक चिताओं में फिर से अपना गौरव पा ले, फिर से अपनी खोयी हुई पवित्रता जीत ले, फिर से अपना विस्मृत देवत्व लौटा ले··लेकिन सुधा, तुम बरामदे में चुपचाप खड़ी इस तरह की बातें कर रही हो जैसे चन्दर कोई अपरिचित हो सुधा, यह क्या हो गया है तुम्हें ? चन्दर, बिनती, पम्मी सभी की जिन्दगी में जो भयंकर तूफान आ गया है, जिसने सभी को झकोरकर थका डाला है, इसका समाधान सिर्फ तुम्हारे प्यार में था, सिर्फ तुम्हारी आत्मा में था लेकिन अगर तुमने इनके चरित्रों का अन्तर्निहित सत्य न देखकर बाहरी विध्वंस से ही अपना आगे का व्यवहार निश्चित कर लिया तो कौन इन्हें इस चक्रवात से खींच निकालेगा ! क्या ये अभागे इसी चक्रवात में फँसकर चूर हो जायेंगे··सुधा··

लेकिन सुधा और कुछ नहीं बोली। चन्दर चल दिया। जाकर लगा जैसे कॉलेज के परीक्षा भवन में जाना भी भारी मालूम दे रहा था। वह जल्दी ही भाग आया।

हालाँकि सुधा के व्यवहार ने उसका मन जैसे तोड़-सा दिया था लेकिन फिर भी जाने क्यों वह अब आज सुधा को एक प्रकाशवृत्त बनकर लपेट लेना चाहता था।

जब चन्दर लौट आया तो उसने देखा—सुधा तो उसी के कमरे में है। उसने उसके कमरे के एक कोने से दरी हटा दी है, वहाँ पानी छिड़क दिया और एक कुश के आसन पर सामने चौकी पर कोई पोथी धरे बैठी है। चौकी पर एक श्वेत वस्त्र बिछाकर धूपदानी रख दी है जिसमें धूप सुलग रही है। लॉन से शायद कुछ फूल तोड़ लायी थी जो धूपदानी के पास रखे हुए थे। बगल में एक रुद्राक्ष की माला रखी थी। एक शुद्ध श्वेत रेशम की धोती और केवल एक चोली पहने हुए पल्ले से बाँहों तक ढके हुए वह एकाग्र मनोयोग से ग्रन्थ का पारायण कर रही थी। धूपदानी से धूम्र-रेखाएँ मचलती हुई लहराती हुई, उसके कपोलों पर झूलती हुई सूखी-रूखी अलकों से उलझ रही थीं। उसने नहाकर केश बाँधे नहीं थे···चन्दर ने जूते बाहर ही उतार दिये और चुपचाप पलँग पर बैठकर सुधा को देखने लगा। सुधा ने सिर्फ एक बार वहुत शान्त, बहुत गहरी आकाश-जैसी स्वच्छ निगाहों से चन्दर को देखा और तब पढ़ने लगी। सुधा के चारों ओर एक विचित्र-सा वातावरण था, एक अपार्थिव स्वर्गिक ज्योति के रेशों से बुना हुआ झीना प्रकाश उस पर छाया हुआ था। गले में पड़ा हुआ आँचल, पीठ पर बिखरे हुए सुनहले बाल, अपना सब कुछ खोकर विरक्ति में खिन्न सुहाग पर छाये हुए वैधव्य की तरह सुधा लग रही थी। माँग सूनी थी, माथे पर रोली का एक बड़ा-सा टीका था और चेहरे पर स्वर्ग के मुरझाये हुए फूलों की घुलती हुई उदासी, जैसे किसी ने चाँदनी पर हरसिंगार के पीले छींटे दे दिये हों।

थोड़ी देर तक सुधा अस्पष्ट स्वरों में पढ़ती रही। उसके बाद उसने पोथी बन्द कर रख दी। उसके बाद आँख बन्द कर जाने किस अज्ञात देवता को हाथ जोड़कर नमस्कार किया···फिर उठ खड़ी हुई और फर्श पर चन्दर के पास बैठ गयी। आँचल कमर में खोंस लिया और बिना सिर उठाये बोली—"चलो, नाश्ता कर लो !"

"यहीं ले आओ !" चन्दर बोला। सुधा उठी और नाश्ता ले आयी। चन्दर ने उठाकर एक टुकड़ा मुँह में रख लिया। लेकिन जब सुधा उसी तरह फर्श पर चुपचाप बैठी रही तो चन्दर ने कहा—"तुम भी खाओ !"

"मैं !" वह एक फीकी हँसी-हँसकर बोली—"मैं खा लूँ तो अभी कै हो जाये। मैं सिवा नींबू के शरबत और खिचड़ी के अब कुछ नहीं खाती। और वह भी एक वक्त !"

"क्यों ?"

"असल में पहले मैंने एक व्रत किया, पन्द्रह दिन तक केवल प्रातःकाल खाने का, तब से कुछ ऐसा हो गया कि शाम को खाते ही मन बिगड़ जाता है। इधर और कई रोग हो गये हैं।"

चन्दर का मन रो आया। "सुधा, तुम चुपचाप इस तरह अपने को मिटाती रहीं ! मान लिया चन्दर ने एक खत में तुम्हें लिख ही दिया था कि अब पत्र-व्यवहार बन्द कर दो ! लेकिन क्या अगर तुम पत्र भेजतीं तो चन्दर की हिम्मत थी कि वह उत्तर न देता ! अगर तुम समझ पातीं कि चन्दर के मन में कितना दुख है !"

चन्दर चाहता था कि सुधा की गोद में अपने मन की सभी बातें बिखेर दे···लेकिन सुधा कुछ कहे, कुछ शिकायत करे तो चन्दर अपनी सफाई दे···लेकिन सुधा तो है कि शिकायत ही नहीं करती, सफाई देने का मौका ही नहीं देती··· यह देवत्व की मूर्ति-सी पथरीली सुधा ! यह चन्दर की सुधा तो नहीं ! चन्दर का मन बहुत भर आया। उसने रुँधे गले से पूछा, "सुधा, तुम बहुत बदल गयी हो। खैर और तो जो कुछ है उसके लिए अब मैं क्या कहूँ, लेकिन अपनी तन्दुरुस्ती बिगाड़कर क्यों तुम मुझे दुख दे रही हो ! अब यों भी मेरी जिन्दगी में क्या रहा है। लेकिन एक ही सन्तोष था कि तुम सुखी हो। लेकिन तुमने मुझसे वह सहारा छीन लिया···पूजा किसकी करती हो ?"

"पूजा कहाँ, पाठ करती हूँ, चन्दर ! गीता का और भागवत का कभी-कभी सूर-सागर का !···पूजा अब भला किसकी करूँगी ? मुझ जैसी अभागिनी की पूजा भला स्वीकर कौन करेगा ?"

"तब यह एक वक्त का भोजन क्यों ?"

"यह तो प्रायश्चित्त है, चन्दर !" सुधा ने एक गहरी साँस लेकर कहा।

"प्रायश्चित्त···" चन्दर ने अचरज से कहा।

"हाँ, प्रायश्चित्त···" सुधा ने अपने पाँव की बिछियों को धोती के छोर से रगड़ते हुऐ कहा—"हिन्दू-गृह तो एक ऐसा जेल होता है जहाँ कैदी को उपवास करके प्राण छोड़ने की भी इजाजत नहीं रहती, अगर धर्म का बहाना न हो ! धर्म के बहाने उपवास करके कुछ सुख मिल जाता है।"

एक क्षण आता है कि आदमी प्यार से विद्रोह कर चुका है, अपने जीवन की प्रेरणा-मूर्ति की गोद से बहुत दिन तक निर्वासित रह चुका है, उसका मन पागल हो उठता है फिर से प्यार करने को, बेहद प्यार करने को, अपने मन का दुलार फूलों की तरह बिखरा देने को। आज विद्रोह का तूफान उतर जाने के बाद अपनी उजड़ी हुई जिन्दगी में बीमार सुधा को पाकर चन्दर का मन तड़प उठा। सुधा की पीठ पर लहराती हुई सूखी अलकें हाथ में ले लीं। उन्हें गूँथने का असफल प्रयास करते हुए बोला—

"सुधा, यह तो सच है कि मैंने तुम्हारे मन को बहुत दुखाया है, लेकिन तुम तो हमारी हर बात को, हमारे हर क्रोध को क्षमा करती रही हो, इस बात का तुम इतना बुरा मान गयी ?"

"किस बात का, चन्दर !" सुधा ने चन्दर की ओर देखकर कहा—"मैं किस बात का बुरा मान गयी !"

"किस बात का प्रायश्चित्त कर रही हो तुम, इस तरह अपने को मिटाकर !"

"प्रायश्चित्त तो मैं अपनी दुर्बलता का कर रही हूँ, चन्दर !"

"दुर्बलता ?" चन्दर ने सुधा की अलकों को घटाओं की तरह छिटकाकर कहा।

"दुर्बलता—चन्दर ! तुम्हें ध्यान होगा एक दिन हम लोगों ने निश्चय किया था कि हमारे प्यार की कसौटी यह रहेगी चन्दर, दूर रहकर भी हम लोग ऊँचे उठेंगे, पवित्र रहेंगे। दूर हो जाने के बाद चन्दर, तुम्हारा प्यार तो मुझमें एक दृढ़ आत्मा और विश्वास भरता रहा, उसी के सहारे मैं अपने जीवन के तूफानों को पार कर ले गयी; लेकिन पता नहीं मेरे प्यार में कौन-सी दुर्बलता रही कि तुम उसे ग्रहण नहीं कर पाये···मैं तुमसे कुछ नहीं कहती। मगर अपने मन में कितनी कुण्ठित हूँ कि कह नहीं सकती। पता नहीं दूसरा जन्म होता है या नहीं; लेकिन इस जन्म में तुम्हें पाकर तुम्हारे चरणों पर अपने को न चढ़ा पायी। तुम्हें अपने मन की पूजा में यकीन न दिला पायी, इससे बढ़कर और दुर्भाग्य क्या होगा ? मैं अपने व्यक्तित्व को कितना गर्हित, कितना छिछला समझने लगी हूँ, चन्दर !"

चन्दर ने नाश्ता खिसका दिया। अपनी आँख में झलकते हुए आँसू को छिपाते हुए चुपचाप बैठ गया।

"नाश्ता कर लो, चन्दर ! इस तरह तुम्हें अपने पास बिठाकर खिलाने का सुख अब कहाँ नसीब होगा। लो !" और सुधा ने अपने हाथ से उसे एक नमकीन सेव खिला दिया। चन्दर के भरे आँसू सुधा के हाथों पर चू पड़े।

"छिः, यह क्या, चन्दर !"

"कुछ नहीं···" चन्दर ने आँसू पोंछ डाले।

इतने में महराजिन आयी और सुधा से बोली—"बिटिया रानी ! लेव ई नानखटाई हम कल्है से बनाय के रख दिया रहा कि तोके खिलाइबे !"

"अच्छा ! हम भी महराजिन इतने दिन से तुम्हारे हाथ का खाने के लिए तरस गये, तुम चलो हमारे साथ !"

"हियाँ चन्दर भइया के कौन देखी ? अब बिटिया इनहूँ के ब्याह कर देव, तो हम चली तोहरे साथ !"

सुधा हँस पड़ी, चन्दर चुपचाप बैठा रहा। महराजिन खिचड़ी डालने चली गयी। सुधा ने चुपचाप नानखटाई की तश्तरी उठाकर एक ओर रख दी—चन्दर चुप, अब क्या बात करे। पहले वह दोनों घण्टों क्या बात करते थे ! उसे बड़ा ताज्जुब हुआ। इस वक्त कोई बात ही नहीं सूझती है। पहले जाने कितना वक्त गुजर जाता था, दोनों की बातों का खात्मा ही नहीं होता था। सुधा भी चुप थी। थोड़ी देर बाद चन्दर बोला—"सुधी, तुम सचमुच पूजा-पाठ में विश्वास रखती हो··· ?"

"क्यों, करती तो हूँ, चन्दर ! हाँ, मूर्ति जरूर नहीं पूजती, पर कृष्ण को जरूर

पूजती हूँ। जब सभी सहारे टूट गये, तुमने भी मुझे छोड़ दिया, तब मुझे गीता और रामायण में बहुत सन्तोष मिला। पहले मैं खुद ताज्जुब करती थी कि औरतें इतना पूजा-पाठ क्यों करती हैं, फिर मैंने सोचा—हिन्दू नारी इतनी असहाय होती है, उसे पति से, पुत्र से सभी से इतना लांछन, अपमान और तिरस्कार मिलता है कि पूजा-पाठ न हो तो पशु बन जाये। पूजा-पाठ ही ने हिन्दू नारी का चरित्र अभी तक इतना ऊँचा रखा है।"

"मैं तो समझता हूँ यह अपने को भुलावा देना है।"

"मानती हूँ चन्दर, लेकिन अगर कोई हिन्दू धर्म की इन किताबों को ध्यान से पढ़े तब वह जाने क्या है इनमें ! जाने कितनी ताकत देती हैं ये ! अभी तक जिन्दगी में मैंने यह सोचा है कि पुरुष हो या नारी, सभी के जीवन का एकमात्र सम्बल विश्वास है, और इन ग्रन्थों में सभी संशयों को मिटाकर विश्वास का इतना गहन उपदेश है कि मन पुलक उठता है।···मैं तुमसे कुछ नहीं छिपाती। चन्दर, जब बिनती के ब्याह में तुमने मेरा पत्र लौटा दिया तो मैं तड़प उठी। एक अविश्वास मेरी नस-नस में गुँथ गया। मैंने समझ लिया कि तुम्हारी सारी बातें झूठी थीं। एक जाने कैसी आग मुझे हरदम झुलसाती रहती थी। मेरा स्वभाव बहुत बिगड़ गया था। मुझे हरेक से नफरत हो गयी थी। हरेक पर झल्ला उठती थी···किसी बात में मुझे चैन नहीं मिलता था। धीरे-धीरे मैंने इन किताबों को पढ़ना शुरू किया। मुझे लगने लगा कि शान्ति धीरे-धीरे मेरी आत्मा पर उतर रही है। मुझे लगा कि यह सभी ग्रन्थ पुकार-पुकारकर कह रहे हैं—अविश्वास पाप है, संशय पाप है। इन सबों का एक ही अन्त था—'संशयात्मा विनश्यति !' धीरे-धीरे मैंने इन बातों को अपने जीवन पर घटाना शुरू किया, तो मैंने देखा कि सारी भक्ति की किताबें और उनका दर्शन बड़ा मनोहर रूपक है, चन्दर ! कृष्ण प्यार के देवता हैं। वंशी की ध्वनि विश्वास की पुकार है। धीरे-धीरे तुम्हारे प्रति मेरे मन में जगा हुआ अविश्वास मिट गया, मैंने कहा— तुम मुझसे अलग ही कहाँ हो। मैं तो तुम्हारी आत्मा का एक टुकड़ा हूँ जो एक जन्म के लिए अलग हो गयी। लेकिन हमेशा तुम्हारे चारों ओर चन्द्रमा की तरह चक्कर लगाती रहूँगी, जिस दिन मैंने पढ़ा—

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।'

तो मुझे लगा कि तुम्हारा खोया हुआ प्यार मुझे पुकारकर कह रहा है—मेरी शरण में चले आओ, और सिवा तुम्हारे प्यार के मेरा भगवान् और है ही क्या··· उसके बाद से चन्दर, मेरे मन में विश्वास और प्रेम झलक आया, अपने जीवन की परिधि में आने वाले हर व्यक्ति के लिए। सभी मुझे बहुत चाहने लगे···लेकिन चन्दर, जब बिनती यहाँ से दिल्ली जाते वक्त मेरे साथ गयी और उसने सब हाल बताया तो मुझे कितना दुख हुआ। कितनी ग्लानि हुई। तुम्हारे ऊपर नहीं, अपने ऊपर।"

बातें भावनात्मक स्तर से उठकर बौद्धिक स्तर पर आ चुकी थीं। चन्दर फौरन

बोला—"सुधा, ग्लानि की तो कोई बात नहीं, कम-से-कम मैंने जो कुछ किया है उस पर मुझे जरा-सी भी शरम नहीं !" चन्दर के स्वर में फिर एक बार गर्व और कड़वाहट-सी आ गयी थी—"मैंने जो कुछ किया है उसे मैं पाप नहीं मानता। तुम्हारे भगवान् ने तुम्हें जो कुछ रास्ता दिखलाया वह तुमने किया। मेरे भगवान् ने जो रास्ता मुझे दिखलाया, वह मैंने किया। तुम जानती ही हो मेरी जिन्दगी की पवित्रता तुम थीं, तुम्हारी भोली निष्पाप साँसें मेरे सभी गुनाह, मेरी सभी कमजोरियाँ सुलाती रही हैं। जिस दिन तुम मेरी जिन्दगी से चली गयीं, कुछ दिन तक मैंने अपने को सँभाला। इसके बाद मेरी आत्मा का कण-कण द्रोह कर उठा। मैंने कहा—स्वर्ग के मालिक साफ-साफ सुनो। तुमने मेरी जिन्दगी की पवित्रता को छीन लिया है, मैं तुम्हारे स्वर्ग में वासना की आग धधकाकर उसे नरक से बदतर बना दूँगा। और मैंने होंठों के किनारे चुम्बन की लपटें सुलगानी शुरू कर दीं··· धीरे-धीरे महाश्मशान के सन्नाटे में करोड़ों वासना की लपटें जहरीले साँपों की तरह फुँफकारने लगीं। मेरे मन को इसमें बहुत सन्तोष मिला, बहुत शान्ति मिली। यहाँ तक कि बिनती के लिए मैं अपने मन की सारी कटुता भूल गया। मैं कैसे कह दूँ कि यह बस गुनाह था। सुधा, अगर ठीक से देखो, गम्भीरता से समझो तो जो कुछ तुम्हारे लिए मेरे मन में था उसी की प्रतिक्रिया वह है जो मेरे मन में पम्मी के लिए है। तुम्हारा दुलार और पम्मी की वासना दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। अपने पहलू को सही और दूसरे पहलू को गलत क्यों कहती हो ? देवता की आरती में जलता हुआ दीपक पवित्र है और उससे निकला हुआ धुआँ अपवित्र ! दीप-शिखा नैतिक है और धूम-रेखा अनैतिक ? ग्लानि किस बात की, सुधा ?" चन्दर ने बहुत आवेश में कहा।

"छिः, चन्दर ! तुम मुझे समझे नहीं ! मैं नैतिक-अनैतिक की बात ही नहीं करती। मेरे भगवान ने, मेरे प्यार ने मुझे अब उस दुनिया में पहुँचा दिया है जो नैतिक-अनैतिक से उठकर है। तुमने अपने भगवान से विद्रोह किया लेकिन उन्होंने तुम्हारी बात पर कोई फैसला भी तो दिया होता। वे इतने दयालु हैं कि कभी मानव के कार्यों पर फैसला ही नहीं देते। दण्ड तो दूर की बात, वे तो केवल आदमी को समझाकर, उसकी कमजोरियाँ समझकर उसे क्षमा करने और उसे प्यार करने की बात कहते हैं, चन्दर ! वहाँ नैतिकता-अनैतिकता का प्रश्न ही नहीं।"

"तब ? यह ग्लानि किस बात की तुम्हें !" चन्दर ने पूछा।

"ग्लानि तो मुझ अपने पर थी, चन्दर ! रहा तुम्हारा पम्मी से सम्बन्ध तो मैं बिनती की तरह नहीं सोचती, इतना विश्वास रखो। मेरी पाप और पुण्य की तराजू ही दूसरी है। फिर कम-से-कम अब इतना देख-सुनकर मैं यह नहीं मानती कि शरीर की प्यास ही पाप है ! नहीं चन्दर, शरीर की प्यास भी उतनी ही पवित्र और स्वाभाविक है जितनी आत्मा की पूजा। आत्मा की पूजा और शरीर की प्यास दोनों अभिन्न हैं। आत्मा की अभिव्यक्ति शरीर से है, शरीर का संस्कार, शरीर का सन्तुलन आत्मा से है। जो आत्मा और शरीर को अलग कर देता है वही मन के भयंकर तूफानों में

उलझकर चूर-चूर हो जाता है। चन्दर, मैं तुम्हारी आत्मा थी। तुम मेरे शरीर थे। पता नहीं कैसे हम लोग अलग हो गये। तुम्हारे बिना मैं केवल सूक्ष्म आत्मा रह गयी। शरीर की प्यास, शरीर की रंगीनियाँ मेरे लिए अपरिचित हो गयीं। पति को शरीर देकर भी मैं सन्तोष न दे पायी···और मेरे बिना तुम केवल शरीर रह गये। शरीर में डूब गये··पाप का जितना हिस्सा तुम्हारा उतना ही मेरा··पाप की वैतरणी के इस किनारे जब तक तुम तड़पोगे, तभी तक मैं भी तड़पूँगी··दोनों में से किसी को भी चैन नहीं और कभी चैन नहीं मिलेगा···"

"लेकिन फिर···"

"हटाओ इन सब बातों को, चन्दर ! तुमने व्यर्थ यह बात उठायी। मैं अब बात करना भूलती जा रही हूँ। मैं तो आयी थी तुम्हें देखकर कुछ मन का ताप मिटाने। उठो, खाना खायें !" सुधा बोली।

"नहीं, मैं चाहता हूँ, बातें सुलझ जायें, सुधा !" चन्दर ने सुधा के हाथ पर अपना सिर रखकर कहा–"मेरी तकलीफ अब बेहद बढ़ती जा रही है। मैं पागल न हो जाऊँ !"

"छिः, ऐसी बात नहीं सोचते। उठो !" चन्दर को उठाकर सुधा बोली। दोनों ने खाना खाया। महराजिन बड़े दुलार से परसती रहीं और सुधा से बातें करती रहीं। खाना खाकर चन्दर लेट गया और सोचने लगा–अब क्या सचमुच उसके और सुधा के बीच में कोई इतना भयंकर अन्तर आ गया है कि दोनों पहले जैसे नहीं हो सकते।

लगभग चार बजे वह जागा तो उसने देखा कि उसके पाँवों के पास सिर रखकर सुधा सो रही है। पंखे की हवा वहाँ तक नहीं पहुँचती। वह पसीने से तर-बतर हो रही है। चन्दर उठा, उसे नींद में ऐसा लगा कि जैसे इधर कुछ हुआ ही नहीं है। सुधा वही सुधा है, चन्दर वही चन्दर है। उसने सुधा के पल्ले से सुधा के माथे और गले का पसीना पोंछ दिया और हाथ बढ़ाकर पंखा उसकी ओर घुमा दिया। सुधा ने आँखें खोलीं, एक अजीब-सी निगाह से चन्दर की ओर देखा और चन्दर के पाँव को खींचकर वक्ष से लगा फिर आँख बन्द करके लेट गयी। चन्दर ने अपना एक हाथ सुधा के माथे पर रख लिया और वह चुपचाप बैठा सोचने लगा, आज से लगभग साल-भर पहले की बात, जब उसने पहले-पहल सुधा को कैलाश का चित्र दिखाया था, और सुधा रो-धोकर उसके पाँवों में इसी तरह मुँह छिपाकर सो गयी थी··और आज··सुधा साल-भर में कहाँ से कहाँ जा पहुँची है। चन्दर कहाँ से कहाँ पहुँच गया है। काश कि कोई उनकी जिन्दगी की स्लेट से इस वर्ष-भर में खींची हुई मानसिक रेखाओं को मिटा सके तो कितनी सुखी हो जायें दोनों। चन्दर ने सुधा को हिलाया और बोला–

"सुधा, सो रही हो ?"

"नहीं।"

"उठो।"

"नहीं चन्दर, पड़ी रहने दो। तुम्हारे चरणों में सब कुछ भूलकर एक क्षण के लिए भी सो सकूँगी, मुझे इसका विश्वास नहीं था। सब कुछ छीन लिया है तुमने, एक क्षण की आत्म-प्रवंचना क्यों छीनते हो ?" सुधा ने उसी तरह पड़े हुए जवाब दिया।

"अरी, उठ पगली !" चन्दर के मन में जाने कहाँ मरा पड़ा हुआ उल्लास फिर से जिन्दा हो उठा था। उसने सुधा की बाँह में जोर से चुटकी काटते हुए कहा—"उठती है या नहीं, आलसी कहीं की !"

सुधा उठकर बैठ गयी। क्षण-भर चन्दर की ओर पथरायी हुई निगाह से देखती रही और बोली—"चन्दर, मैं जाग रही हूँ। तुम्हीं ने उठाया है मुझे···चन्दर। कहीं सपना तो नहीं है कि फिर टूट जाये !" और सुधा सिसक-सिसक कर रो पड़ी। चन्दर की आँखों में आँसू आ गये। थोड़ी देर बाद वह बोला—"सुधा, कोई जादूगर अगर हम लोगों के मन से यह काँटा निकाल देता तो मैं कितना सुखी होता ! लेकिन सुधा, अब मैं तुम्हें दुखी नहीं करूँगा।"

"यह तो तुमने पहले भी कहा था, चन्दर ! लेकिन तुम इधर जाने कैसे हो गये। लगता है तुम्हारे चरित्र में कहीं स्थायित्व नहीं···इसी का तो मुझे दुख है, चन्दर !"

"अब रहेगा, सुधा ! तुम्हें खोकर, तुम्हारे प्यार को खोकर मैं देख चुका हूँ कि मैं आदमी नहीं रह पाता, जानवर बन जाता हूँ। सुधा, अगर तुम आज से महीनों पहले मिल जातीं तो जो जहर मेरे मन में घुट रहा है वह तुम्हारे सामने व्यक्त करके मैं बिलकुल निश्चिन्त हो जाता। अच्छा सुधा, यहाँ आओ। चुपचाप लेट जाओ, मैं तुमसे सब कुछ कह डालूँ, फिर सब भूल जाऊँ। बोलो, सुनोगी ?"

सुधा चुपचाप लेट गयी और बोली—"चन्दर ! या तो मत बताओ या फिर सभी स्पष्ट बता दो···"

"हाँ, बिलकुल स्पष्ट सुधी; तुमसे कुछ छिपा सकता हूँ भला !" चन्दर ने हलकी-सी चपत मारकर कहा—"आज मन जैसे पागल हो रहा है तुम्हारे चरणों पर बिखर जाने के लिए···जादूगरनी कहीं की ! देखो सुधा—पिछली दफे तुमने मुझे बहुत कुछ बताया था, कैलाश के बारे में !"

"हाँ।"

"बस, उसके बाद से एक अजीब-सी अरुचि मेरे मन में तुम्हारे लिए होने लगी थी; मैं तुमसे कुछ छिपाऊँगा नहीं। तुम्हारे जाने के बाद बर्टी आया। उसने मुझसे कहा कि औरत केवल नयी संवेदना, नया स्वाद चाहती है और कुछ नहीं, अविवाहित लड़कियाँ विवाह, और विवाहित लड़कियाँ नये प्रेमी··बस यही उनका चरम लक्ष्य है। लड़कियाँ शरीर की प्यास के अलावा और कुछ नहीं चाहतीं··जैसे अराजकता के दिनों में किसी देश में कोई भी चालाक नेता शक्ति छीन लेता है, वैसे ही मानसिक शून्यता के क्षणों में बर्टी जैसे मेरा दार्शनिक गुरु हो गया। उसके बाद आयी पम्मी। उससे मैंने कहा कि क्या आवश्यक है कि पुरुष और नारी के सम्बन्धों में सेक्स

हो ही ? उसने कहा–'हाँ, और यदि नहीं है तो प्लेटानिक (आदर्शवादी) प्यार की प्रतिक्रिया सेक्स की ही प्यास में होती है।' अब मैं तुम्हें अपने मन का चोर बतला दूँ। मैंने सोचा कि तुम भी अपने वैवाहिक जीवन में रम गयी हो। शरीर की प्यास ने तुम्हें अपने में डुबा दिया है और जो अरुचि तुम मेरे सामने व्यक्त करती हो वह केवल दिखावा है। इसलिए मन-ही-मन मुझे तुमसे चिढ़-सी हो गयी। पता नहीं क्यों यह संस्कार मुझमें दृढ़-सा हो गया और इसी के पीछे मैं तुम्हीं को नहीं, पम्मी को छोड़कर सभी लड़कियों से नफरत-सी करने लगा। बिनती को भी मैंने बहुत दुख दिया। ब्याह में जाने के पहले वह बहुत दुखी होकर गयी। रही पम्मी की बात तो मैं उस पर इसलिए खुश था कि उसने बड़ी यथार्थ-सी बात कही थी। लेकिन उसने मुझसे कहा कि आदर्शवादी प्यार की प्रतिक्रिया शारीरिक प्यास में होती है। तुमको इसका अपराधी मानकर तुमसे तो नाराज हो गया लेकिन अन्दर-ही-अन्दर वह संस्कार मेरा व्यक्तित्व बदलने लगा। सुधा, पता नहीं, तुम्हारे जीवन में प्रतिक्रिया के रूप में शारीरिक प्यास जागी या नहीं पर मेरे मन के गुनाह तो तूफान की तरह लहरा उठे। लेकिन तुमसे एक बात नहीं छिपाऊँगा। वह यह कि ऐसे भी क्षण आये हैं जब पम्मी के समर्पण ने मेरे मन की सारी कटुता धो दी है...बोलो, तुम कुछ तो बोलो, सुधा !"

"तुम कहते चलो, चन्दर ! मैं सुन रही हूँ।"

"हाँ...लेकिन उस दिन गेसू आयी। उसने मुझे फिर पुराने दिनों की याद दिला दी और फिर जैसे पम्मी के लिए आकर्षण उखड़-सा गया। अच्छा सुधा, एक बात बताओ। तुम यह मानती हो कि कभी-कभी एक व्यक्ति के माध्यम से दूसरे व्यक्ति की भावनाओं की अनुभूति होने लगती है ?"

"क्या मतलब ?"

"मेरा मतलब जैसे मुझे गेसू की बातों में उस दिन ऐसा लगा, जैसे तुम बोल रही हो। और दूसरी बात तुम्हें बताऊँ। तुम्हारे पीछे बिनती रही मेरे पास। सारे अँधेरे में वही एक रोशनी थी, बड़ी क्षीण, टिमटिमाती हुई, सारहीन-सी रोशनी। बल्कि मुझे तो लगता था कि वह रोशन ही इसलिए थी कि उसमें रोशनी तुम्हारी थी। मैंने कुछ दिन बिनती को बहुत प्यार किया। मुझे ऐसा लगता था कि अभी तक तुम मेरे सामने थीं, अब तुम उसके माध्यम से आती हो। लगता था जैसे वह एक व्यक्तित्व नहीं है, तुम्हारे व्यक्तित्व का ही अंश है। उस लड़की में जिस अंश तक तुम थीं वह अंश बार-बार मेरे मन में रस उभार देता था। क्यों सुधा ! मन की यह भी कैसी अजब-सी गति है !"

सुधा थोड़ी देर तक चुप रही फिर बोली–"भागवत में एक जगह एक टीका में हमने पढ़ा था चन्दर कि जिसको भगवान् बहुत प्यार करते हैं, उसमें उनकी अंशाभिव्यक्ति होती है। बहुत बड़ा वैज्ञानिक सत्य है यह ! मैं बिनती को बहुत प्यार करती हूँ, चन्दर !"

"समझ गया मैं।" चन्दर बोला—"अब मैं समझा, मेरे मन में इतने गुनाह कहाँ से आये। तुमने मुझे बहुत प्यार किया और वही तुम्हारे व्यक्तित्व के गुनाह मेरे व्यक्तित्व में उतर आये !"

सुधा खिलखिलाकर हँस पड़ी। चन्दर के कन्धे पर हाथ रखकर बोली—"इसी तरह हँसते-बोलते रहते तो क्यों यह हाल होता ? मनमौजी हो। जब चाहो खुश हो गये जब चाहो नाराज हो गये !"

उसके बाद वह उठी और बाहर से एक तश्तरी में कुछ फल काटकर लायी। चन्दर ने देखा—आम। "अरे आम ! अभी कहाँ से आम ले आयी ? कौन लाया ?"

"लखनऊ उतरी थी ? वहाँ से तुम्हारे लिए लेती आयी।"

चन्दर ने एक आम की फाँक उठाकर खायी और किसी पुरानी घटना की याद दिलाने के लिए आँचल से हाथ पोंछ दिये। सुधा हँस पड़ी और बड़ी दुलार-भरी ताड़ना के स्वर में बोली—"बोलो, अब तो दिमाग नहीं बिगाड़ोगे अपना ?"

"कभी नहीं सुधी, लेकिन पम्मी का क्या होगा ? पम्मी से मैं सम्बन्ध नहीं तोड़ सकता। व्यवहार चाहे जितना सीमित कर दूँ।"

"मैं कब कहती हूँ, मैं तुम्हें कहीं से कभी बाँधना ही नहीं चाहती। जानती हूँ कि अगर चाहूँ भी तो कभी अपने मन के बाहुपाश ढीले कर तुम्हें चिरमुक्ति तो मैं न दे पाऊँगी, तो भला बन्धन ही क्यों बाँधूँ। पम्मी शाम को आयेगी ?"

"शायद···"

दरवाजा खटका और गेसू ने प्रवेश किया। आकर, दौड़कर सुधा से लिपट गयी। चन्दर उठकर चला आया। "चले कहाँ भाई जान, बैठिए न।"

"नहा लूँ, तब आता हूँ···" चन्दर चल दिया। वह इतना खुश था, इतना खुश कि बॉथ-रूम में खूब गाता रहा और नहा चुकने के बाद उसे खयाल आया कि उसने बनियाइन उतारी ही नहीं थी। नहाकर कपड़े बदलकर वह आया तब भी गुनगुना रहा था। कमरे में आया तब देखा गेसू अकेली बैठी है।

"सुधा कहाँ गयी ?" चन्दर ने नाचते हुए स्वर में कहा।

"गयी है शरबत बनाने।" गेसू ने चुन्नी से सिर ढकते हुए और पाँवों को सलवार से ढकते हुए कहा। चन्दर इधर-उधर बक्स में रूमाल ढूँढ़ने लगा।

"आज बड़े खुश हैं, चन्दर भाई ! कोई खोयी हुई चीज मिल गयी है क्या ? अरे, मैं बहन हूँ कुछ इनाम ही दे दीजिए।" गेसू ने चुटकी ली।

"इनाम की बात क्या, कहो तो वह चीज ही तुम्हें दे दूँ !"

"हाँ, कैलाश बाबू के दिल से पूछिए।" गेसू बोली।

"उनके दिल से तुम्हीं बात कर सकती हो !"

गेसू ने झेंपकर मुँह फेर लिया।

सुधा हाथ में दो गिलास लिये आयी। "लो गेसू, पियो।" एक गिलास गेसू को देकर बोली—"चन्दर, लो।"

"तुम पियो न !"

"नहीं, मैं नहीं पिऊँगी। बरफ मुझे नुकसान करेगी !" सुधा ने चुपचाप कहा। चन्दर को याद आ गया। पहले सुधा चिढ़-चिढ़कर अपने आप चाय, शरबत पी जाती थी···और आज···

"क्या ढूँढ़ रहे हो, चन्दर ?" सुधा बोली।

"रूमाल, कोई मिल ही नहीं रहा !"

"साल-भर में रूमाल खो दिये होंगे ! मैं तो तुम्हारी आदत जानती हूँ। आज कपड़ा ला दो, कल सुवह रूमाल सी दूँ तुम्हारे लिए।" और उठकर उसने कैलाश के वक्स से एक रूमाल निकालकर दे दिया।

उसके वाद चन्दर वाजार गया और कैलाश के लिए तथा सुधा के लिए कुछ कपड़े खरीद लाया। इसके साथ ही कुछ नमकीन जो सुधा को पसन्द था, पेठा, एक तरबूज, एक बोतल गुलाब का शरबत, एक सुन्दर-सा पेन और जाने क्या-क्या खरीद लाया। सुधा ने देखकर कहा—"पापा नहीं हैं, फिर भी लगता है मैं मायके आयी हूँ !" लेकिन वह कुछ खा-पी नहीं सकी।

चन्दर खाना खाकर लॉन में बैठ गया, वहीं उसने अपनी चारपाई डलवा ली। सुधा के बिस्तर छत पर लगे थे। उसके पास महराजिन सोने वाली थीं। सुधा एक तश्तरी में तरबूज काटकर ले आयी और कुरसी डालकर चन्दर भी चारपाई के पास बैठ गया। चन्दर तरबूज खाता रहा···थोड़ी देर बाद सुधा बोली—

"चन्दर, बिनती के बारे में तुम्हारी क्या राय है ?"

"राय ? राय क्या होती ? बहुत अच्छी लड़की है ! तुमसे तो अच्छी ही है !" चन्दर ने छेड़ा।

"अरे, मुझसे अच्छी तो दुनिया है, लेकिन एक बात पूछें ? बहुत गम्भीर बात है।"

"क्या ?"

"तुम बिनती से ब्याह कर लो।"

"बिनती से ? कुछ दिमाग तो नहीं खराब हो गया है ?"

"नहीं ! इस बारे में पहले-पहले 'ये' बोले कि चन्दर से बिनती का ब्याह क्यों नहीं करती, तो मैंने चुपचाप पापा से पूछा। पापा बिलकुल राजी हैं, लेकिन बोले मुझसे कि तुम्हीं कहो चन्दर से। कर लो; चन्दर ! बुआजी अब दखल नहीं देंगी।"

चन्दर हँस पड़ा—"अच्छी खुराफातें तुम्हारे दिमाग में उठती हैं ! याद है, एक बार और तुमने ब्याह करने के लिए कहा था ?"

सुधा के मुँह से एक हलका निःश्वास निकल पड़ा—"हाँ, याद है ! खैर, तब की बात दूसरी थी, अब तो तुम्हें कर लेना चाहिए।"

"नहीं सुधा, शादी तो मुझे नहीं ही करनी है। तुम कह क्यों रही हो ? तुम मेरे-बिनती के सम्बन्धों को कुछ गलत तो नहीं समझ रही हो।"

"नहीं जी, लेकिन यह जानती हूँ कि बिनती तुम पर अन्धश्रद्धा रखती है। उससे अच्छी लड़की तुम्हें मिलेगी नहीं। कम-से-कम जिन्दगी तुम्हारी व्यवस्थित हो जायेगी।"

चन्दर हँसा– "मेरी जिन्दगी शादी से नहीं, प्यार से सुधरेगी, सुधा ! कोई ऐसी लड़की ढूँढ़ दो जो तुम्हारी जैसी हो और प्यार करे तो मैं समझूँ भी कि तुमने कुछ किया मेरे लिए। शादी-वादी बेकार है और कोई बात करनी है या नहीं ?"

"नहीं चन्दर, शादी तो तुम्हें करनी ही होगी। अब मैं ऐसे तुम्हें नहीं रहने दूँगी। बिनती से न करो तो दूसरी लड़की ढूँढूँगी। लेकिन शादी करनी होगी और मेरी पसन्द से करनी होगी।"

चन्दर एक उपेक्षा की हँसी हँसकर रह गया।

सुधा उठ खड़ी हुई।

"क्यों, चल दीं ?"

"हाँ, अब नींद आ रही होगी तुम्हें, सोओ।"

चन्दर ने रोका नहीं। उसने सोचा था, सुधा बैठेगी। जाने कितनी बातें करेंगे। वह सुधा से उसका सब हाल पूछेगा, लेकिन सुधा तो जाने कैसी तटस्थ निरपेक्ष और अपने में सीमित-सी हो गयी है कि कुछ समझ में नहीं आता। उसने चन्दर से सब कुछ जान लिया लेकिन चन्दर के सामने उसने अपने मन को कहीं जाहिर ही नहीं होने दिया, सुधा उसके पास होकर भी जाने कितनी दूर थी। सरोवर में डूबकर पंछी प्यासा था।

करीब घण्टा-भर बाद सुधा दूध का गिलास लेकर आयी। चन्दर को नींद आ गयी थी। वह चन्दर के सिरहाने बैठ गयी–"चन्दर, सो गये क्या ?"

"क्यों ?" चन्दर घबराकर उठ बैठा।

"लो, दूध पी लो।" सुधा बोली।

"दूध हम नहीं पियेंगे।"

"पी लो, देखो बरफ और शरबत मिला दिया है, पीकर तो देखो !"

"नहीं, हम नहीं पियेंगे। अब जाओ हमें नींद लग रही है।" चन्दर गुस्सा था।

"पी लो मेरे राजदुलारे, चमक रहे हैं चाँद-सितारे···" सुधा ने लोरी गाते हुए चन्दर को अपनी गोद में खींचकर बच्चों की तरह गिलास चन्दर के मुँह से लगा दिया। चन्दर ने चुपचाप दूध पी लिया। सुधा ने गिलास नीचे रखकर कहा–"वाह, ऐसे तो मैं नीलू को दूध पिलाती हूँ।"

"नीलू कौन ?"

"अरे, मेरा भतीजा ! शंकर बाबू का लड़का।"

"अच्छा !"

"चन्दर, तुमने पंखा तो छत पर लगा दिया है। तुम कैसे सोओगे।"

"मुझे नींद आ जायेगी।"

चन्दर फिर लेट गया। सुधा उठी नहीं। वह दूसरी पाटी से हाथ टेककर चन्दर के वक्ष के आर-पार फूलों के धनुष-सी झुककर बैठ गयी। एकादशी का स्निग्ध पवित्र चन्द्रमा आसमान की नीली लहरों पर अधखिले बेल के फूल की तरह काँप रहा था। दूध में नहाये हुए झोंके चाँदनी से आँखमिचौली खेल रहे थे। चन्दर आँखें बन्द किये पड़ा था और उसकी पलकों पर, उसके माथे पर, उसके होंठों पर चाँदी की पाँखुरियाँ बरस रही थीं। सुधा ने चन्दर का कालर ठीक किया और बड़े ही मधुर स्वर में पूछा—"चन्दर, नींद आ रही है ?"

"नहीं, नींद उचट गयी !" चन्दर ने आँख खोलकर देखा। एकादशी का पवित्र चन्द्रमा आकाश में था, और पूजा से अभिषिक्त एकादशी की उदास चाँदनी उसके वक्ष पर झुकी बैठी थी। उसे लगा जैसे पवित्रता और अमृत का चम्पई बादल उसके प्राणों में लिपट गया है।

उसने करवट बदलकर कहा—"सुधा, जिन्दगी का एक पहलू खत्म हुआ। दर्द की एक मंजिल खत्म हो गयी। थकान भी दूर हो गयी, लेकिन अब आगे का रास्ता समझ में नहीं आता। क्या करूँ ?"

"करना बहुत है, चन्दर ! अपने अन्दर की बुराई से लड़ लिये, अब बाहर की बुराई से लड़ो। मेरा तो सपना था चन्दर कि तुम बहुत बड़े आदमी बनोगे। अपने बारे में तो जो कुछ सोचा था वह सब नसीब ने तोड़ दिया। अब तुम्हीं को देखकर कुछ सन्तोष मिलता है। तुम जितने ऊँचे बनोगे उतना ही चैन मिलेगा। वरना मैं तो नरक में भुन रही हूँ।"

"सुधा, तुम्हारी इसी बात से मेरी सारी हिम्मत, सारा बल टूट जाता है। अगर तुम अपने परिवार में सुखी होती तो मेरा भी साहस बँधा रहता। तुम्हारा यह हाल, तुम्हारा यह स्वास्थ्य, यह असमय वैराग्य और पूजा, यह घुटन देखकर लगता है क्या करूँ ? किसके लिए करूँ ?"

"मैं भी क्या करूँ, चन्दर ! मैं यह जानती हूँ कि अब ये भी मेरा बहुत ख्याल रखते हैं, लेकिन इस बात पर मुझे और भी दुख होता है। मैं इन्हें सन्तुलित नहीं कर पाती और उनकी खुलकर उपेक्षा भी नहीं कर पाती। यह अजब-सा नरक है मेरा जीवन भी, लेकिन यह जरूर है चन्दर कि तुम्हें ऊँचा देखकर मैं यह नरक भी भोग ले जाऊँगी। तुम दिल मत छोटा करो। एक ही जिन्दगी की तो बात है, उसके बाद···"

"लेकिन मैं तो पुनर्जन्म में विश्वास ही नहीं करता।"

"तब तो और भी अच्छा है, इसी जन्म में जो सुख दे सकते हो दे लो। जितना ऊँचे उठ सकते हो उठ लो।"

"तुम जो रास्ता बताओ वह मैं अपनाने के लिए तैयार हूँ। मैं सोचता हूँ अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठूँ···लेकिन मेरे साथ एक शर्त है। तुम्हारा प्यार मेरे साथ रहे !"

"तो वह अलग कब रहा, चन्दर !" तुम्हीं ने जब चाहा मुँह फेर लिया। लेकिन अब नहीं। काश कि तुम एक क्षण का भी अनुभव कर पाते कि तुमसे दूर वहाँ,

वासना के कीचड़ में फँसी हुई मैं कितनी व्याकुल, कितनी व्यथित हूँ तो तुम ऐसा कभी न करते। मेरे जीवन में जो कुछ अपूर्णता रह गयी है चन्दर, उसकी पूर्णता, उसकी सिद्धि तुम्हीं हो। तुम्हें मेरे जन्म-जन्मान्तर की शान्ति की सौगन्ध है, तुम अब इस तरह न करना ! बस ब्याह कर लो और दृढ़ता से ऊँचाई की ओर चलो।"

"ब्याह के अलावा तुम्हारी सब बातें स्वीकार हैं। लेकिन फिर भी तुम अपना प्यार वापस नहीं लोगी कभी ?"

"कभी नहीं।"

"और हम कभी नाराज भी हो जायें तो बुरा नहीं मानोगी ?"

"नहीं !"

"और हम कभी फिसले तो तुम तटस्थ होकर नहीं बैठोगी बल्कि बिना डरे हुए मुझे खींच लाओगी उस दलदल से ?"

"यह कठिन है चन्दर, आखिर मेरे भी बन्धन हैं। लेकिन खैर...अच्छा यह बताओ, तुम दिल्ली कब जाओगे ?"

"अब दिल्ली तो दशहरे में आऊँगा। गरमियों में यहीं रहूँगा।...लेकिन हो सका तो लौटने के बाद शाहजहाँपुर आऊँगा।"

सुधा चुपचाप बैठी रही। चन्दर भी चुपचाप लेटा रहा। थोड़ी देर बाद चन्दर ने सुधा की हथेली अपने हाथों पर रख ली और आँखें बन्द कर लीं। जब वह सो गया तो सुधा ने धीरे-से हाथ उठाया, खड़ी हो गयी। थोड़ी देर अपलक उसे देखती रही और धीरे-धीरे चली आयी।

•

दूसरे दिन सुबह सुधा ने आकर चन्दर को जगाया। चन्दर उठ बैठा तो सुधा बोली—

"जल्दी से नहा लो, आज तुम्हारे साथ पूजा करेंगे !"

चन्दर उठ बैठा। नहा-धोकर आया तो सुधा ने चौकी के सामने दो आसन बिछा रखे थे। चौकी पर धूप सुलग रही थी और फूल गमक रहे थे। ढेर-के-ढेर बेले और अगस्त के फूल। चन्दर को बिठाकर सुधा बैठी। उसने फिर वही वेश धारण कर लिया था। रेशम की धोती और रेशम का एक अन्तर्वासक, गीले बाल पीठ पर लहरा रहे थे।

"लेकिन मैं बैठा-बैठा क्या करूँगा ?" उसने पूछा।

सुधा कुछ नहीं बोली। चुपचाप अपना काम करती गयी। थोड़ी देर बाद उसने भागवत खोली और बड़े मधुर स्वरों में गोपिका-गीत पढ़ती रही। चन्दर संस्कृत नहीं समझता था, पूजा में विश्वास नहीं करता था, लेकिन वह क्षण जाने कैसा लग रहा

था। चन्दर की साँस में धूप की पावन सौरभ के डोरे गुँथ गये थे। उसके घुटनों पर रह-रहकर सद्यःस्नाता सुधा के भीगे केशों से गीले मोती चू पड़ते थे। कृशकाय, उदास और पवित्र सुधा के पूजा के प्रसाद जैसे मधुर स्वर में श्रीमद्‌भागवत के श्लोक उसकी आत्मा को अमृत से धो रहे थे। लगता था, जैसे इस पूजा की श्रद्धान्वित वेला में उसके जीवन-भर की भूलें, कमजोरियाँ, गुनाह सभी धुलता जा रहा था।···जब सुधा ने भागवत बन्द करके रख दिया तो पता नहीं क्यों चन्दर ने प्रणाम कर लिया—भागवत को या भागवत की पूजारिन को, यह नहीं मालूम।

थोड़ी देर बाद सुधा ने पूजा की थाली उठायी और उसने चन्दर के माथे पर रोली लगा दी।

"अरे मैं !"

"हाँ तुम ! और कौन···मेरे तो दूसरा न कोई !" सुधा बोली और ढेर-के-ढेर फूल चन्दर के चरणों पर चढ़ाकर, झुककर चन्दर के चरणों को प्रणाम कर लिया। चन्दर ने घबराकर पाँव खींच लिये—"मैं इस योग्य नहीं हूँ, सुधा ! क्यों लज्जित कर रही हो ?"

सुधा कुछ नहीं बोली···अपने आँचल से एक छलकता हुआ आँसू पोंछकर नाश्ता लाने चली गयी।

जब वह युनिवर्सिटी से लौटा तो देखा, सुधा मशीन रखे कुछ सिल रही है। चन्दर ने कपड़े बदलकर पूछा—"कहो, क्या सिल रही हो ?"

"रूमाल और बनियाइन ! कैसे काम चलता था तुम्हारा ? न सन्दूक में एक भी रूमाल है, न एक भी बनियाइन। लापरवाही की भी हद है। तभी कहती हूँ ब्याह कर लो !"

"हाँ, किसी दर्जी की लड़की से ब्याह करवा दो !" चन्दर खाट पर बैठ गया और सुधा मशीन पर बैठी-बैठी सिलती रही। थोड़ी देर बाद सहसा उसने मशीन रोक दी और एकदम से घबराकर उठी।

"क्या हुआ, सुधा···"

"बहुत दर्द हो रहा है···" वह उठी और खाट पर बेहोश-सी पड़ रही। चन्दर दौड़कर पंखा उठा लाया। और झलने लगा। "डॉक्टर बुला लाऊँ ?"

"नहीं, अभी ठीक हो जाऊँगी। उबकाई आ रही है !" सुधा उठी।

"जाओ मत, मैं पीकदान उठा लाता हूँ।" चन्दर ने पीकदान उठाकर रख दिया और सुधा की पीठ सहलाने लगा। फिर सुधा हाँफती-सी लेट गयी। चन्दर दौड़कर इलायची और पानी ले आया। सुधा ने इलायची खायी और फिर पड़ रही। उसके माथे पर पसीना झलक आया।

"अब कैसी तबीयत है, सुधा ?"

"बहुत दर्द है अंग-अंग में···मशीन चलाना नुकसान कर गया।" सुधा ने बहुत क्षीण स्वरों में कहा।

"जाऊँ किसी डॉक्टर को बुला लाऊँ ?"

"बेकार है, चन्दर ! मैं तो लखनऊ में दिखा आयी। इस रोग का क्या इलाज है। यह तो जिन्दगी-भर का अभिशाप है !"

"क्या बीमारी बतायी तुम्हें ?"

"कुछ नहीं।"

"बताओ न ?"

"क्या बताऊँ, चन्दर ?" सुधा ने बड़ी कातर निगाहों से चन्दर की ओर देखा और फूट-फूटकर रो पड़ी। बुरी तरह सिसकने लगी। सुधा चुपचाप पड़ी कराहती रही। चन्दर ने अटैची में से दवा निकालकर दी। कॉलेज नहीं गया। दो घण्टे बाद सुधा कुछ ठीक हुई। उसने एक गहरी साँस ली और तकिये के सहारे उठकर बैठ गयी। चन्दर ने और कई तकिये पीछे रख दिये। दो ही घण्टे में सुधा का चेहरा पीला पड़ गया। चन्दर चुपचाप उदास बैठा रहा।

उस दिन सुधा ने खाना नहीं खाया। सिर्फ फल लिये। दोपहर को दो बजे भयंकर लू में कैलाश वापस आया और आते ही चन्दर से पूछा—"सुधा की तबीयत तो ठीक रही ?" यह जानकर कि सुबह खराब हो गयी थी, वह कपड़े उतारने के पहले सुधा के कमरे में गया और अपने हाथ से दवा देकर फिर कपड़े बदलकर सुधा के कमरे में जाकर सो गया। बहुत थका मालूम पड़ता था।

चन्दर आकर अपने कमरे में कॉपियाँ जाँचता रहा। शाम को कामिनी, प्रभा तथा कई लड़कियाँ, जिन्हें गेसू ने खबर दे दी थी, आयीं और सुधा और कैलाश को घेरे रहीं। चन्दर उनकी खातिर-तवज्जो में लगा रहा। रात को कैलाश ने उसे अपनी छत पर बुला लिया और चन्दर के भविष्य के कार्यक्रम के बारे में बात करता रहा। जब कैलाश को नींद आने लगी तब वह उठकर लॉन पर लौट आया और लेट गया।

बहुत देर तक उसे नींद नहीं आयी। वह सुधा की तकलीफों के बारे में सोचता रहा। उधर सुधा बहुत देर तक करवटें बदलती रही। यह दो दिन सपनों की तरह बीत गये और कल वह फिर चली जायेगी चन्दर से दूर, न जाने कब तक के लिए।

सुबह से ही सुधा जैसे बुझ गयी थी। कल तो जो उसमें उल्लास वापस आ गया था, वह जैसे कैलाश की छाँह ने ही ग्रस लिया था। चन्दर के कॉलेज का आखिरी दिन था। चन्दर कैलाश को ले गया और अपने मित्रों से, प्रोफेसरों से उसका परिचय करा लाया। एक प्रोफेसर, जिनकी आदत थी कि वे कांग्रेस सरकार से सम्बन्धित हर व्यक्ति को दावत जरूर देते थे, उन्होंने कैलाश को भी दावत दी क्योंकि वह सांस्कृतिक मिशन में जा रहा था।

वापस जाने के लिए रात की गाड़ी तय रही। हफ्ते-भर बाद ही कैलाश को जाना था अतः वह ज्यादा नहीं रुक सकता था। दोपहर का खाना दोनों ने साथ खाया। सुधा महराजिन का लिहाज करती थी अतः वह कैलाश के साथ खाने नहीं

बैठी। निश्चय हुआ कि अभी से सामान बाँध लिया जाये ताकि पार्टी के बाद सीधे स्टेशन जा सकें।

जब सुधा ने चन्दर के लाये हुए कपड़े कैलाश को दिखाये तो उसे बड़ा ताज्जुब हुआ। लेकिन उसने कुछ नहीं कहा, कपड़े रख लिये और चन्दर से जाकर बोला—"अब जब तुमने लेने-देने का व्यवहार ही निभाया है तो यह बता दो, तुम बड़े हो या छोटे ?"

"क्यों ?" चन्दर ने पूछा।

"इसलिए कि बड़े हो तो पैर छूकर जाऊँ, और छोटे हो तो रुपया देकर जाऊँ !" कैलाश बोला। चन्दर हँस पड़ा।

घर में दोपहर से ही उदासी छा गयी। न चन्दर दोपहर को सोया, न कैलाश और न सुधा। शाम की पार्टी में सब लोग गये। वहाँ से लौटकर आये तो सुधा को लगा कि उसका मन अभी डूब जायेगा। उसे शादी में भी जाना इतना नहीं अखरा था जितना आज अखर रहा था। मोटर पर सामान रखा जा रहा था तो वह खम्भे से टिककर खड़ी रो रही थी। महराजिन एक टोकरी में खाने का सामान बाँध रही थी।

कैलाश ने देखा तो बोला—"रो क्यों रही हो ? छोड़ जायें तुम्हें यहीं ? चन्दर से सँभलेगा !" सुधा ने आँसू पोंछकर आँखों से डाँटा—"महराजिन सुन रही हैं कि नहीं।" मोटर तक पहुँचते-पहुँचते सुधा फूट-फूटकर रो पड़ी और महराजिन उसे गले से लगाकर आँसू पोंछने लगीं। फिर बोलीं—"रोवौ न बिटिया ! अब छोटे बाबू का बियाह कर देव तो दुइ-तीन महीना आयके रह जाव। तोहार सास छोड़िहै कि नैं ?"

सुधा ने कुछ जवाब नहीं दिया और पाँच रुपये का नोट महराजिन के हाथ में थमाकर आ बैठी।

ट्रेन प्लेटफार्म पर आ गयी थी। सेकेण्ड क्लास में चन्दर ने इन लोगों का विस्तर लगवा दिया। सीट रिजर्व करवा दी। गाड़ी छूटने में अभी घण्टे-भर देर थी। सुधा की आँखों में विचित्र-सा भाव था। कल तक की दृढ़ता, तेज, उल्लास बुझ गया था और अजब-सी कातरता आ गयी थी। वह चुप बैठी थी। चन्दर से जब नहीं देखा गया तो वह उठकर प्लेटफार्म पर टहलने लगा। कैलाश भी उतर आया। दोनों बातें करने लगे। सहसा कैलाश ने चन्दर के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"हाँ यार, एक बात बहुत जरूरी थी।"

"क्या ?"

"इन्होंने तुमसे बिनती के बारे में कुछ कहा ?"

"कहा था !"

"तो क्या सोचा तुमने ?"

"मैं शादी-वादी नहीं करूँगा।"

"यह सब आदर्शवाद मुझे अच्छा नहीं लगा, और फिर उससे शादी करके सच

पूछो तो बहुत बड़ी बात करोगे तुम ! उस घटना के बाद अब ब्राह्मणों में तो वर उसे मिलने से रहा। और ये कह रही थीं कि वह तुम्हें मानती भी बहुत है।"

"हाँ, लेकिन इसके मतलब यह नहीं कि मैं शादी कर लूँ। मुझे बहुत कुछ करना है।"

"अरे जाओ, यार, तुम सिवा बातों के कुछ नहीं कर सकते।"

"हो सकता है।" चन्दर ने बात टाल दी। वह शादी तो नहीं ही करेगा।

थोड़ी देर बाद चन्दर ने पूछा—"इन्हें दिल्ली कब भेजोगे ?"

"अभी तो जिस दिन मैं जाऊँगा, उस दिन ये दिल्ली मेरे साथ जायेंगी, लेकिन दूसरे दिन शाहजहाँपुर लौट जायेंगी।"

"क्यों ?"

"अभी माँ बहुत बिगड़ी हुई हैं। वह इन्हें आने थोड़े ही देती थीं। वह तो लखनऊ के बहाने मैं इन्हें ले आया। तुम शंकर भइया से कभी जिक्र मत करना—अब दिल्ली तो इसलिए चली जायें कि मैं दो-तीन महीने बाद लौटूँगा···फिर शायद सितम्बर, अक्टूबर में ये तीन-चार महीने के लिए दिल्ली जायेंगी। यू नो शी इज कैरीइङ् !"

"हाँ, अच्छा !"

"हाँ, यही तो बात है, पहला मौका है।"

दोनों लौटकर कम्पार्टमेण्ट में बैठ गये।

सुधा बोली—"तो सितम्बर में आओगे न, चन्दर ?"

"हाँ-हाँ !"

"जरूर से ? फिर उस वक्त कोई बहाना न बना देना।"

"जरूर आऊँगा !"

कैलाश उतरकर कुछ लेने गया तो सुधा ने अपनी आँखों से आँसू पोंछकर झुककर चन्दर के पाँव छू लिये और रोकर बोली—"चन्दर, अब बहुत टूट चुकी हूँ···अब हाथ न खींच लेना···" उसका गला रुँध गया।

चन्दर ने सुधा के हाथों को अपने हाथ में ले लिया और कुछ भी नहीं बोला। सुधा थोड़ी देर चुप रही, फिर बोली—

"चन्दर, चुप क्यों हो ? अब तो नफरत नहीं करोगे ? मैं बहुत अभागी हूँ, देवता ! तुमने क्या बनाया था और अब क्या हो गयी !···देखो अब चिट्ठी लिखते रहना। नहीं तो सहारा टूट जाता है···" और फिर वह रो पड़ी।

कैलाश कुछ किताबें और पत्रिकाएँ खरीदकर वापस आ गया। दोनों बैठकर बातें करते रहे। यह निश्चय हुआ कि जब कैलाश लौटेगा तो बजाय बम्बई से सीधे दिल्ली जाने के, वह प्रयाग से होता हुआ जायेगा।

गाड़ी चली तो चन्दर ने कैलाश को बहुत प्यार से गले लगा लिया। जब तक गाड़ी प्लेटफॉर्म के अन्दर रही, सुधा सिर निकाले झाँकती रही। प्लेटफॉर्म के बाहर भी

पीली चाँदनी में सुधा का फहराता हुआ आँचल दिखता रहा। धीरे-धीरे वह एक सफेद विन्दु बनकर अदृश्य हो गया। गाड़ी एक विशाल अजगर की तरह चाँदनी में रेंगती चली जा रही थी।

जब मन में प्यार जाग जाता है तो प्यार की किरन वादलों में छिप जाती है। अजब थी चन्दर की किस्मत। इस बार तो, सुधा गयी थी तो उसके तन-मन को एक गुलाबी नशे में सराबोर कर गयी थी। चन्दर उदास नहीं था। वह बेहद खुश था। खूब घूमता था, और गरमी के बावजूद खूब काम करता था। अपने पुराने नोट्स निकाल लिये थे और एक नयी किताब की रूपरेखा सोच रहा था। उसे लगता था कि उसका पौरुष, उसकी शक्ति, उसका ओज, उसकी दृढ़ता, सभी कुछ लौट आया है। उसे हरदम लगता कि गुलाबी पाँखुरियों की एक छाया हमेशा उसकी आत्मा को चूमती रहती है। वह जब कभी लेटता तो उसे लगता कि सुधा फूलों के धनुष की तरह उसके पलँग के आर-पार पाटी पर हाथ टेके बैठी है। उसे लगता—कमरे में अब भी धूप की सौरभ लहरा रही है और हवाओं में सुधा के मधुर कण्ठ के श्लोक गूँज रहे हैं।

दो ही दिन में चन्दर को लग रहा था कि उसकी जिन्दगी में जहाँ जो कुछ टूट-फूट गया है वह सब सँभल रहा है। वह सब अभाव धीरे-धीरे भर रहा है। उनके मन का पूजा-गृह खण्डहर हो चुका था, सहसा उस पर जैसे किसी ने आँसू छिड़ककर जीवन के वरदान से अभिषिक्त कर दिया था। पत्थर के बीच दबकर पिसे हुए पूजा-गीत फिर से सस्वर हो उठे थे। मुरझाये हुए पूजा-फूलों की पाँखुरियों में फिर रस छलक आया था और रंग चमक उठे थे। धीरे-धीरे मन्दिर का कँगूरा फिर सितारों से समझौता करने की तैयारी करने लगा था। चन्दर की नसों में वेद-मन्त्रों की पवित्रता और ब्रज की बंशी की मधुराई पलकों में पलकें डालकर नाच उठी थी। सारा काम जैसे वह किसी अदृश्य आत्मा की आज्ञा से करता था। वह आत्मा सिवा सुधा के और भला किसकी थी ! वह सुधामय हो रहा था। उसके कदम-कदम में, बात-बात में, साँस-साँस में सुधा का प्यार फिर से लौट आया था।

तीसरे दिन बिनती का एक पत्र आया। विनती ने उसे दिल्ली बुलाया था और मामाजी (डॉक्टर शुक्ला) भी चाहते थे कि चन्दर कुछ दिन के लिए दिल्ली चला आये तो अच्छा है। चन्दर के लिए कुछ कोशिश भी कर रहे थे। उसने लिख दिया कि वह मई के अन्त में या जून के प्रारम्भ में आयेगा। और बिनती को बहुत, बहुत-सा स्नेह। उसने सुधा के आने की बात नहीं लिखी क्योंकि कैलाश ने मना कर दिया था।

सुबह चन्दर गंगा नहाता, नयी पुस्तकें पढ़ता, अपने नोट्स दोहराता। दोपहर

को सोता और रेडियो बजाता, शाम को घूमता और सिनेमा देखता, सोते वक्त कविताएँ पढ़ता और सुधा के प्यार के बादलों में मुँह छिपाकर सो जाता। जिस दिन कैलाश जाने वाला था, उसी दिन उसका एक पत्र आया कि वह और सुधा दिल्ली आ गये हैं। शंकर भइया और नीलू उसे पहुँचाने बम्बई जायेंगे। चन्दर सुधा के इलाहाबाद जाने का जिक्र किसी को भी न लिखे। यह उसके और चन्दर के बीच की बात थी। खत के नीचे सुधा की कुछ लाइनें थीं।

"चन्दर,

राम-राम। तुमने मुझे जो साड़ी दी थी वह क्या अपनी भावी श्रीमती के नाप की थी ? वह मेरे घुटनों तक आती है। बूढ़ी होकर घिस जाऊँगी तो उसे पहना करूँगी—अच्छा स्नेह। और जो तुमसे कह आयी हूँ उंन बातों का ध्यान रहेगा न ? मेरी तन्दुरुस्ती ठीक है। इधर मैंने गान्धीजी की आत्मकथा पढ़नी शुरू की है।

तुम्हारी—सुधा"

"—और हाँ, लालाजी ! मिठाई खिलाओ, दिल्ली में बहुत खबर है कि शरणार्थी विभाग में प्रयाग के एक प्रोफेसर आने वाले हैं !"

कैलाश तो अब बम्बई चल दिया होगा। बम्बई के पते से उसने बधाई का एक तार भेज दिया और सुधा को एयर मेल से उसने एक खत भेजा जिसमें उसने बहुत-सी मिठाइयों का चित्र बना दिया था।

लेकिन वह पशोपेश में पड़ गया। दिल्ली जाये या न जाये। वह अपने अन्तर्मन से सरकारी नौकरी का विरोधी था। उसे तत्कालीन भारतीय सरकार और ब्रिटिश सरकार में ज्यादा अन्तर नहीं लगता था। फिर हर दृष्टिकोण से वह समाजवादियों के अधिक समीप था। और अब वह सुधा से वायदा कर चुका था कि वह काम करेगा। ऊँचा बनेगा। प्रसिद्ध होगा, लेकिन पद स्वीकार कर ऊँचा बनना उसके चरित्र के विरुद्ध था। किन्तु डॉक्टर शुक्ला कोशिश कर रहे थे। चन्दर केन्द्रीय सरकार के किसी ऊँचे पद पर आये, यह उनका सपना था। चन्दर को कॉलेज की स्वच्छन्द और ढीली नौकरी पसन्द थी। अन्त में उसने यह सोचा कि पहले नौकरी स्वीकार कर लेगा। बाद में फिर कॉलेज चला आयेगा—एक दिन रात को जब वह बिजली बुझाकर, किताब बन्द कर सीने पर रखकर सितारों को देख रहा था और सोच रहा था कि अब सुधा दिल्ली लौट गयी होगी, अगर दिल्ली रह गया तो बँगले में किसे टिकाया जायेगा…इतने में किसी व्यक्ति ने फाटक खोलकर बँगले में प्रवेश किया। उसे ताज्जुब हुआ कि इतनी रात को कौन आ सकता है, और वह भी साइकिल लेकर ! उसने बिजली जला दी। तार वाला था।

साइकिल खड़ी कर, तारवाला लॉन पर चला गया और तार दे दिया। दस्तखत करके उसने लिफाफा फाड़ा। तार डॉक्टर साहब का था। लिखा था कि "अगली ट्रेन से फौरन चले आओ। स्टेशन पर सरकारी कार होगी सलेटी रंग की।" उसके मन ने फौरन कहा—चन्दर, हो गये तुम केन्द्र में !

उसकी आँखों से नींद गायब हो गयी। वह उठा, अगली ट्रेन सुबह तीन बजे जाती थी। ग्यारह बजे थे। अभी चार घण्टे थे। उसने एक अटैची में कुछ अच्छे-से-अच्छे सूट रखे, किताबें रखीं, और माली को सहेजकर चल दिया। मोटर को स्टेशन से वापस लाने की दिक्कत होती, ड्राइवर अब था नहीं, अतः नौकर को अटैची देकर पैदल चल दिया। राह में सिनेमा से लौटता हुआ रिक्शा मिल गया।

चन्दर ने सेकेण्ड क्लास का टिकट लिया और ठाठ से चला। कानपुर में उसने सादी चाय पी और इटावा में रेस्तराँ-बार में जाकर खाना खाया। उसके बगल में मारवाड़ी दम्पति बैठे थे जो सेकेण्ड क्लास का किराया खर्च करके प्रायश्चित्त स्वरूप एक आने की पकौड़ी और दो आने की दालमोठ से उदर-पूर्ति कर रहे थे। हाथरस स्टेशन पर एक मजेदार घटना घटी । हाथरस में छोटी और बड़ी लाइनें क्रॉस करती हैं। छोटी लाइन ऊपर पुल पर खड़ी होती है। स्टेशन के पास जब ट्रेन धीमी हुई तो सेठजी सो रहे थे। सेठानी ने बाहर झाँककर देखा और निस्संकोच उनके पृथुल उदर पर कर-प्रहार करके कहा—"हो ! देखो रेलगाड़ी के सिर पर रेलगाड़ी !" सेठ एकदम चौंककर जागे और उछलकर बोले—"बाप रे बाप ! उलट गयी रेलगाड़ी। जल्दी सामान उतार। लुट गये राम ! ये तो जंगल है। कहते थे जेवर न ले चल।"

चन्दर खिलखिलाकर हँस पड़ा। सेठजी ने परिस्थिति समझी और चुपचाप बैठ गये। चन्दर करवट बदलकर फिर पढ़ने लगा।

इतने में ऊपर की गाड़ी से उतर कर कोई औरत हाथ में एक गठरी लिये आयी और अन्दर ज्यों ही घुसी कि मारवाड़ी बोला—"बुड्ढी, यह सेकेण्ड क्लास है।"

"होई ! सेकेण्ड-थर्ड तो सब गोविन्द की माया है, बच्चा !"

चन्दर का मुँह दूसरी ओर था, लेकिन उसने सोचा गोविन्दजी की माया का वर्णन और विश्लेषण करते हुए रेल के डब्बों के वर्गीकरण को भी मायाजाल बताना शायद भागवतकार की दिव्यदृष्टि से सम्भव होगा। लेकिन यह भी मारवाड़ी कोई सुधा तो था नहीं कि वैष्णव साहित्य और गोविन्दजी की माया का भक्त होता। जब उसने कहा—गार्ड साहब को बुलाऊँ ? तो बुढ़िया गरज उठी—"बस-बस, चल हुआँ से, गार्ड का तोर दमाद लगत है जौन बुलाइ हैं। मोटका कद्दू !"

चन्दर हँस पड़ा, कम-से-कम गाली की नवीनता पर। दूसरी बात; गाड़ी उस समय ब्रजक्षेत्र में थी, वहाँ यह अवधी का सफल वक्ता कौन है ! उसने घूमकर देखा। एक बुढ़िया थी, सिर मुड़ाये। उसने कहीं देखा है इसे !

"कहाँ जाओगी, माई ?"

"कानपुर जावै।"

"लेकिन यह गाड़ी तो दिल्ली जायेगी ?"

"तुहूँ बोल्यो टुप्प से ! हम ऐसे धमकावे में नै आइत। ई कानपुर जइहै !" उसने हाथ नचाकर चन्दर से कहा। और फिर जाने क्यों रुक गयी और चन्दर की ओर देखने लगी। फिर बोली—"अरे चन्दर बेटवा, कहाँ से आवत हौ तू !"

"ओह ! बुआजी हैं। सिर मुड़ा लिया तो पहचान में ही नहीं आतीं !" चन्दर ने फौरन उठकर पाँव छुए। बुआजी वृन्दावन से आ रही थीं। वह बैठ गयीं, बोली—"ऊ नटिनियाँ मर गयी कि अबहिन है ?"

"कौन ?"

"ओही बिनती !"

"मरेगी क्यों ?"

"भइया ! सुकुल तो हमार कुल डुबोय दिहिन। लेकिन जैसे ऊ हमरी बिटिया के मड़वा तरे से उठाय लिहिन वैसे भगवान् चाही तो उनहू का लड़की से समझी !"

चन्दर कुछ नहीं बोला। थोड़ी देर बाद खुद बड़बड़ाती हुई बुआजी बोलीं—"अब हमें का करै को है। हम सब मोह-माया त्याग दिया। लेकिन हमरे त्याग में कुच्छौ समरथ है तो सुकुल को बदला मिलिहै !"

कानुपर की गाड़ी आयी तो चन्दर खुद उन्हें बिठाल आया। विचित्र थीं बुआजी, बेचारी कभी समझ ही नहीं पायीं कि बिनती को उठाकर डॉक्टर साहब ने उपकार किया या अपकार और मजा तो यह है कि एक ही वाक्य के पूर्वार्द्ध में मायामोह से विरक्ति की घोषणा और उत्तरार्द्ध में दुर्वासा का शाप…हिन्दुस्तान के सिवा ऐसे नमूने कहीं भी मिलने मुश्किल हैं। इतने में चन्दर की गाड़ी ने सीटी दी। वह भागा। बुआजी ने चन्दर का ख्याल छोड़कर अपने बगल के मुसाफिर से लड़ना शुरू कर दिया।

वह दिल्ली पहुँचा। दो-तीन साल पहले भी वह दिल्ली आया था लेकिन अब दिल्ली स्टेशन की चहल-पहल ही दूसरी थी। गाड़ी घण्टा-भर लेट थी। नौ बज चुके थे। अगर मोटर न मिली तो भी इतनी मशहूर सड़क पर डॉक्टर साहब का बंगला था कि चन्दर को विशेष दिक्कत न होती। लेकिन ज्यों ही वह प्लेटफॉर्म से बाहर निकला तो उसने देखा कि जहाँ मरकरी की बड़ी सर्चलाइट लगी है, ठीक उसी के नीचे सलेटी रंग की शानदार कार खड़ी थी जिसके आगे-पीछे क्राउन लगा था और सामने तिरंगा, आगे लाल वर्दी पहने एक खानसामा बैठा है। और पीछे एक सिख ड्राइवर खड़ा है। चन्दर का सूट चाहें जितना अच्छा हो लेकिन इस शान के लायक तो नहीं ही था। फिर भी वह बड़े रोब से गया और ड्राइवर से बोला—"यह किसकी मोटर है ?"

"स्रकारी गड्डी हैज्जी।" सिख ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

"क्या यह डॉक्टर शुक्ला ने भेजी है ?"

"जी हाँ, हुजूर !" एकदम उसका स्वर बदल गया—"आप ही उनके लड़के हैं—चन्दर बहादुर साहब ?" उसने उतरकर सलाम किया। दरवाजा खोला, चन्दर बैठ गया। कुली को एक अटैची के लिए एक अठन्नी दी। मोटर उड़ चली।

चन्दर बहुत उदार विचारों का था लेकिन आज तक वह डॉक्टर साहब की उन्नीसवीं सदी वाली पुरानी कार पर ही चढ़ा था। इस राजमुकुट और राष्ट्रीय ध्वज से सुशोभित मोटर पर खानसामे के साथ चढ़ने का उसका पहला ही मौका था। उसे

लगा जैसे इस समय तिरंगे का गौरव और महान् ब्रिटिश साम्राज्य के इस क्राउन का शासनदम्भ उसके मन को उड़ाये लिये जा रहा है। चन्दर तनकर बैठा लेकिन थोड़ी देर बाद स्वयं उसे अपने मन पर हँसी आ गयी। फिर वह सोचने लगा कि जिन लोगों के हाथ में आज शासन-सत्ता है; मोटरों और खानसामों ने उनके हृदयों को इस तरह बदल दिया है। वे भी तो बेचारे आदमी हैं, इतने दिनों से प्रभुता के प्यासे। बेकार हम लोग उन्हें गाली देते हैं। फिर चन्दर उन लोगों का ख्याल करके हँस पड़ा।

दिल्ली में इलाहाबाद की अपेक्षा कम गरमी थी। कार एक बँगले के अन्दर मुड़ी और पोर्टिको में रुक गयी। बँगला नये सादे अमेरिकन ढंग का बना हुआ था। खानसामे ने उतरकर दरवाजा खोला। चन्दर उतर पड़ा। ड्राइवर ने हॉर्न दिया। दरवाजा खुला और बिनती निकली। उसका मुँह सूखा हुआ था, बाल अस्त-व्यस्त थे और आँखें जैसे रो-रोकर सूज गयी थीं। चन्दर का दिल धक् से हो गया, राह-भर के सुनहरे सपने टूट गये।

"क्या बात है, बिनती ? अच्छी तो हो ?" चन्दर ने पूछा।

"आओ, चन्दर ?" बिनती ने कहा और अन्दर जाते ही दरवाजा बन्द कर दिया और चन्दर की बाँह पकड़कर सिसक-सिसककर रो पड़ी। चन्दर घबरा गया। "क्या बात है ? बताओ न ! डॉक्टर साहब कहाँ हैं ?"

"अन्दर हैं ?"

"तब क्या हुआ ? तुम इतनी दुःखी क्यों हो ?" चन्दर ने बिनती के सिर पर हाथ रखकर पूछा···उसे लगा जैसे इस समस्त वातावरण पर किसी बड़े भयानक मृत्यु-दूत के पंखों की काली छाया है···"क्या बात है ? बताती क्यों नहीं ?"

बिनती बड़ी मुश्किल से बोली—"दीदी···सुधा दीदी···"

चन्दर को लगा जैसे उस पर बिजली टूट पड़ी—"क्या हुआ सुधा को ?" बिनती कुछ नहीं बोली, उसे ऊपर ले गयी और कमरे के पास जाकर बोली—"उसी में हैं दीदी !"

कमरे के अन्दर की रोशनी उदास, फीकी और बीमार थी। एक नर्स सफेद पोशाक पहने पलंग के सिरहाने खड़ी थी, और कुरसी पर सिर झुकाये डॉक्टर साहब बैठे थे। पलँग पर चादर ओढ़े सुधा पड़ी थी, नर्स सामने थी, अतः सुधा का चेहरा नहीं दिखाई पड़ रहा था। चन्दर के भीतर पाँव रखते ही नर्स ने आँख के इशारे से कहा—"बाहर जाइए।" चन्दर ठिठककर खड़ा हो गया, डॉक्टर साहब ने देखा और वे भी उठकर चले आये।

"क्या हुआ सुधा को ?" चन्दर ने बहुत व्याकुल, बहुत कातर स्वर में पूछा। डॉक्टर साहब कुछ नहीं बोले। चुपचाप चन्दर के कन्धे पर हाथ रखे हुए अपने कमरे में आये और बहुत भारी स्वर में बोले—"हमारी बिटिया गयी, चन्दर !" और आँसू छलक आये।

"क्या हुआ उसे ?" चन्दर ने फिर उतने ही दुखी स्वर में पूछा।

डॉक्टर साहब क्षण-भर पथरायी आँखों से चन्दर की ओर देखते रहे फिर सिर झुकाकर बोले—"एबॉर्शन !" थोड़ी देर बाद सिर उठाकर व्याकुल की तरह चन्दर का कन्धा पकड़कर बोले—"चन्दर, किसी तरह बचाओ सुधा को, क्या करें कुछ समझ में नहीं आता···अब बचेगी नहीं··परसों से होश नहीं आया। जाओ कपड़े बदलो, खाना खा लो, रात-भर जागरण होगा···"

लेकिन चन्दर उठा नहीं, कुरसी पर सिर झुकाये बैठा रहा।

सहसा नर्स आकर बोली—"ब्लीडिङ् फिर शुरू हो गयी और नाड़ी डूब रही है। डॉक्टर को बुलाइए··फौरन !" और वह लौट गयी।

डॉक्टर साहब उठ खड़े हुए। उनकी आँखों में बड़ी निराशा थी। बड़ी उदासी से बोले—"जा रहा हूँ, चन्दर ! अभी आता हूँ !" चन्दर ने देखा, कार बड़ी तेजी से जा रही है। बिनती आकर बोली—"खाना खा लो, चन्दर !" चन्दर ने सुना ही नहीं।

"यह क्या हुआ, बिनती !" उसने घबरायी आवाज में पूछा।

"कुछ समझ में नहीं आता, उस दिन सुबह जीजाजी गये। दोपहर में पापा ऑफिस गये थे। मैं सो रही थी, सहसा जीजी चीखी। मैं जागी तो देखी दीदी बेहोश पड़ी हैं। मैंने जल्दी से फोन किया। पापा आये, डॉक्टर आये। उसके बाद से पापा और नर्स के अलावा किसी को नहीं जाने देते दीदी के पास। मुझे भी नहीं।"

और बिनती रो पड़ी। चन्दर कुछ नहीं बोला। चुपचाप पत्थर की मूर्ति-सा कुरसी पर बैठा रहा। खिड़की से बाहर की ओर देख रहा था।

थोड़ी देर में डॉक्टर साहब वापस आये। उनके साथ तीन डॉक्टर थे और एक नर्स। डॉक्टरों ने करीब दस मिनट देखा, फिर अलग कमरे में जाकर सलाह करने लगे। जब लौटे तो डॉक्टर साहब ने बहुत विह्वल होकर कहा—"क्या उम्मीद है ?"

"घबराइए मत, घबराइए मत—अब तो जब तक अन्दरूनी सब साफ नहीं हो जायेगा तब तक खून जायेगा। नब्ज के लिए और होश के लिए एक इंजेक्शन देते हैं—अभी।"

इंजेक्शन देने के बाद डॉक्टर चले गये। पापा वहीं जाकर बैठ गये। बिनती और चन्दर चुपचाप बैठे रहे। करीब पाँच मिनट के बाद सुधा ने भयंकर स्वर में कराहना शुरू किया। उन कराहों में जैसे उसका कलेजा उलटा आता हो। डॉक्टर साहब उठकर यहाँ चले आये। और चन्दर से बोले—"वेहीमेण्ट ब्लीडिङ्···" और कुरसी पर सिर झुकाकर बैठ गये। बगल के कमरे से सुधा की दर्दनाक कराहें उठती थीं और सन्नाटे में छटपटाने लगती थीं। अगर आपने किसी जिन्दा मुर्गी के पंख और पूँछ नोचे जाते

हुए देखा हो तभी आप उसका अनुमान कर सकते हैं; उस भयानकता का, जो उन कराहों में थी। थोड़ी देर बाद कराहें बन्द हो गयीं फिर सहसा इस बुरी तरह से सुधा चीखी जैसे गाय डकार रही हो। पापा उठकर भागे—वह भयंकर चीख उठी और सन्नाटे में मँडराने लगी— बिनती रो रही थी—चन्दर का चेहरा पीला पड़ गया था और पसीने से तर हो गया था वह।

पापा लौटकर आये, "हम लोग देख सकते हैं ?" चन्दर ने पूछा।

"अभी नहीं— अब ब्लीडिङ् खत्म है।...नर्स अभी कपड़े बदल दे तो चलेंगे।"

थोड़ी देर में तीनों गये और जाकर खड़े हो गये। अब चन्दर ने सुधा को देखा। उसका चेहरा सफेद पड़ गया था। जैसे जाड़े के दिनों में थोड़ी देर पानी में रहने के बाद उँगलियों का रंग रक्तहीन श्वेत हो जाता है। गालों की हड्डियाँ निकल आयी थीं। और होंठ काले पड़ गये थे। पलकों के चारों ओर कालापन गहरा गया था और आँखें जैसे बाहर निकली पड़ती थीं। खून इतना अधिक गया था कि लगता था बदन पर चमड़े की एक हलकी झिल्ली मढ़ दी गयी हो। यहाँ तक कि भीतर की हड्डी के उतार-चढ़ाव तक स्पष्ट दीख रहे थे। चन्दर ने डरते-डरते माथे पर हाथ रखा। सुधा के होंठों में कुछ हरकत हुई, उसने मुँह खोल दिया और आँख बन्द किये हुए ही उसने करवट बदली, फिर कराही और सिर से पैर तक उसका बदन काँप उठा। नर्स ने नाड़ी देखी और कहा अब ठीक है। कमजोरी बहुत है। थोड़ी देर बाद पसीना निकलना शुरू हुआ। पसीना पोंछते-पोंछते एक बज गया। बिनती बोली डॉक्टर साहब से— "मामाजी, अब आप सो जाइए। चन्दर देख लेंगे आज। नर्स है ही।"

डॉक्टर साहब की आँखें लाल हो रही थीं। सबके कहने पर वह अपनी सीट पर लेट रहे। नर्स बोली—"मैं बाहर आराम कुरसी पर थोड़ा बैठ लूँ। कोई जरूरत हो तो बुला लेना।" चन्दर जाकर सुधा के सिरहाने बैठ गया। बिनती बोली—"तुम थके हुए आये हो। चलो तुम भी सो रहो। मैं देख रही हूँ !"

चन्दर ने कुछ जवाब नहीं दिया। चुपचाप बैठा रहा। बिनती ने सभी खिड़कियाँ खोल दीं। और चन्दर के पास ही बैठ गयी। सुधा सो रही थी चुपचाप। थोड़ी देर बाद बिनती उठी, घड़ी देखी, मुँह खोलकर दवा दी। सहसा डॉक्टर साहब घबराये हुए-से आये—

"क्या बात है, सुधा क्यों चीखी !"

"कुछ नहीं, सुधा तो सो रही है चुपचाप !" बिनती बोली।

"अच्छा, मुझे नींद में लगा कि वह चीखी है।" फिर वह खड़े-खड़े सुधा का माथा सहलाते रहे और फिर लौट गये। नर्स अन्दर थी। बिनती चन्दर को बाहर ले आयी और बोली—"देखो, तुम कल जीजाजी को एक तार दे देना !"

"लेकिन अब वह होंगे कहाँ ?"

"विजगापट्टम या कोलम्बो में जहाजी कम्पनी के पते से दिलवा देना तार।"

दोनों फिर जाकर सुधा के पास बैठ गये। नर्स बाहर सो रही थी। साढ़े तीन

बज गये थे। ठण्डी हवा चल रही थी। बिनती चन्दर के कन्धे पर सिर रखकर सो गयी। सहसा सुधा के होंठ हिले और उसने कुछ अस्फुट स्वर में कहा। चन्दर ने सुधा के माथे पर हाथ रखा। माथा सहसा जलने लगा था; चन्दर घबरा उठा। उसने नर्स को जगाया। नर्स ने बगल में थर्मामीटर लगाया। तापक्रम एक सौ पाँच था। सारा बदन जल रहा था और रह-रहकर वह काँप उठती थी। चन्दर ने फ़िर घबराकर नर्स की ओर देखा। "घबराइए मत ! डॉक्टर अभी आयेगा।" लेकिन थोड़ी देर में हालत और बिगड़ गयी। और फिर उसी तरह दर्दनाक कराहें सुबह की हवा में सिर पटकने लगीं। नर्स ने इन लोगों को बाहर भेज दिया और बदन अँगोछने लगी।

थोड़ी देर में सुधा ने चीखकर पुकारा—"पापा···" इतनी भयानक आवाज थी कि जैसे सुधा को नरक के दूत पकड़े ले जा रहे हों। पापा गये। सुधा का चेहरा लाल था और वह हाथ पटक रही थी।··पापा को देखते ही बोली—"पापा··चन्दर को इलाहाबाद से बुलवा दो।"

"चन्दर आ गया बेटा, अभी बुलाते हैं," ज्यों ही पापा ने माथे पर हाथ रखा कि सुधा चीख उठी—"तुम पापा नहीं हो··कौन हो तुम ?··दूर हटो, छुओ मत··अरे बिनती···."

डॉक्टर शुक्ला ने नर्स की ओर देखा। नर्स बोली—

"डेलीरियम (सन्निपात) ! डॉक्टर को बुलाइए।"

सुधा ने फिर करवट बदली और नर्स को देखकर बोली—"कौन गेसू···आओ बैठो। चन्दर नहा रहा है। अभी बुलाती हूँ। अरे चन्दर···" और फिर हाँफने लगी, आँखें बन्द कर लीं और रोकर बोली—"पापा तुम कहाँ चले गये ?"

नर्स ने चन्दर और बिनती को बुलाया। बिनती पास जाकर खड़ी हो गयी—आँसू पोंछकर बोली—"दीदी, हम आ गये।" और सुधा की बाँह पर हाथ रख दिया। सुधा ने आँखें नहीं खोलीं, बिनती के हाथ पर हाथ रखकर बोली—"बिनती, पापा कहाँ गये हैं ?"

"खड़े तो हैं मामाजी !"

"झूठ मत बोल कम्बख्त···अच्छा ले, शरबत तैयार है, जा चन्दर स्टडीरूम में पढ़ रहा है बुला ला, जा !" बिनती फफककर रो पड़ी।

"रोती क्यों है ?" सुधा ने कराहकर कहा—"मैं जाऊँगी तो चन्दर को तेरे पास छोड़ जाऊँगी। जा चन्दर को बुला ला, नहीं बरफ घुल जायेगी—शरबत छान लिया है ?"

चन्दर आगे आया। रुँधे गले से आँसू पीते हुए बोला—"सुधा, आँखें खोलो। हम आ गये सुधी !"

डॉक्टर साहब कुरसी पर पड़े सिसक रहे थे···सुधा ने आँखें खोलीं और चन्दर को देखते ही फिर बहुत जोर से चीखी···"तुम··तुम आस्ट्रेलिया से लौट आये ? झूठे ! तुम चन्दर हो ? क्या मैं तुम्हें पहचानती नहीं ? अब क्या चाहिए ? इतना

कहा, तुमसे हाथ जोड़ा, मेरी क्या हालत है ? लेकिन तुम्हें क्या ? जाओ यहाँ से वरना मैं अभी सिर पटक दूँगी···" और सुधा ने सिर पटक दिया—"नहीं गये ?" नर्स ने इशारा किया—चन्दर कमरे के बाहर आया और कुरसी पर सिर झुकाकर बैठ गया। सुधा ने आँखें खोलीं और फटी-फटी आँखों से चारों ओर देखने लगी। फिर नर्स से बोली—

"गेसू, तुम बहुत बहादुर हो ! तुमने अपने को बेचा नहीं; अपने पैर पर खड़ी हो। किसी के आश्रय में नहीं हो। कोई खाना-कपड़ा देकर तुम्हें खरीद नहीं सकता गेसू, बिनती कहाँ गयी···"

"मैं खड़ी हूँ दीदी ?"

"हैं ···अच्छा, पापा कहाँ हैं ?" सुधा ने कराहकर पूछा।

डॉक्टर साहब उठकर आ गये—"बेटा !" बड़े दुलार से सुधा के माथे पर हाथ रखकर बोले। सुधा रो पड़ी—"कहाँ थे पापा, अभी तक तुम ? हमने इतना पुकारा न तुम बोले न चन्दर बोला··हमें तो डर लग रहा था, इतना सूना था··जाओ महराजिन ने रोटी सेंक ली है—खा लो। हाँ, ऐसे बैठ जाओ। लो पापा, हमने नानखटाई बनायी···"

डॉक्टर शुक्ला रोते हुए चले गये—बिनती ने चन्दर को बुलाया। देखा चन्दर कुरसी पर हथेली में मुँह छिपाये बैठा था। बिनती गयी और चन्दर के कन्धे पर हाथ रखा। चन्दर ने देखा और सिर झुका लिया, "चलो चन्दर, दीदी फिर बेहोश हो गयीं।"

इतने में नर्स बोली। "वह फिर होश में आयी हैं; आप लोग वहीं चलिए।"

सुधा ने आँखें खोल दी थीं—चन्दर को देखते ही बोली—"चन्दर आओ, कोई मास्टर ठीक किया तुमने ? जो कुछ पढ़ा था वह भूल रही हूँ। अब इस इम्तहान में पास नहीं होऊँगी।"

"डेलीरियम अब भी है," नर्स बोली। सहसा सुधा ने चन्दर का हाथ छोड़ दिया और झट से हथेलियाँ आँखों पर रख लीं और बोली—"ये कौन आ गया ? यह चन्दर नहीं है। चन्दर नहीं है। चन्दर होता तो मुझे डाँटता—क्यों बीमार पड़ीं ? अब बताओ मैं चन्दर को क्या जवाब दूँगी··चन्दर को बुला दो, गेसू ! जिन्दगी में दुश्मनी निभायी, अब मौत में तो न निभाये।"

"उफ ! मरीज के पास इतने आदमी ? तभी डेलीरियम होता है।" सहसा डॉक्टर ने प्रवेश किया। कोई दूसरा डॉक्टर था, अँगरेज था। बिनती और चन्दर बाहर चले आये। बिनती बोली—"ये सिविल सर्जन हैं।" उसने खून मँगवाया, देखा फिर डॉक्टर शुक्ला को भी हटा दिया। सिर्फ नर्स रह गयी। थोड़ी देर बाद वह निकला तो उसका चेहरा स्याह था। "क्या यह प्रेग्नैन्सी पहली मर्तबा थी ?"

"जी हाँ ?"

डॉक्टर ने सिर हिलाया और कहा—"अब मामला हाथ से बाहर है। इंजेक्शन लगेंगे। अस्पताल ले चलिए।"

"डॉक्टर शुक्ला, मवाद आ रहा है, कल तक सारे बदन में फैल जायेगा, किस बेवकूफ डॉक्टर ने देखा था..."

चन्दर ने फोन किया। ऐम्बुलेन्स कार आ गयी। सुधा को उठाया गया...

दिन बड़ी ही चिन्ता में बीता। तीन-तीन घण्टे पर इंजेक्शन लग रहे थे। दोपहर को दो बजे इंजेक्शन खत्म कर डॉक्टर ने एक गहरी साँस ली और बोला—"कुछ उम्मीद है—अगर बारह घण्टे तक हार्ट ठीक रहा तो मैं आपकी लड़की आपको वापस दूँगा।"

बड़ा भयानक दिन था। बहुत ऊँची छत का कमरा, दालानों में टाट के परदे पड़े थे। और बाहर गरमी की भयानक लू हू-हू करती हुई दानवों की तरह मुँह फाड़े दौड़ रही थी। डॉक्टर साहब सिरहाने बैठे थे, पथरीली निगाहों से सुधा के पीले मृतप्राय चेहरे की ओर देखते हुए...बिनती और चन्दर बिना कुछ खाये-पिये चुपचाप बैठे थे—रह-रहकर बिनती सिसक उठती थी, लेकिन चन्दर ने मन पर पत्थर रख लिया था। वह एकटक एक ओर देख रहा था...कमरे में वातावरण शान्त था—रह-रहकर बिनती की सिसकियाँ, पापा की निश्वासें तथा घड़ी की निरन्तर टिक-टिक सुनाई पड़ रही थी।

चन्दर का हाथ बिनती की गोद में था। एक मूक संवेदना ने बिनती को सँभाल रखा था। चन्दर कभी बिनती की ओर देखता, कभी घड़ी की ओर। सुधा की ओर नहीं देख पाता था। दुख अपनी पूरी चोट करने के वक्त अकसर आदमी की आत्मा और मन को क्लोरोफार्म सुँघा देता है। चन्दर कुछ भी सोच नहीं पा रहा था। संज्ञा-हत, नीरव, निश्चेष्ट...

घड़ी की सूई अविराम गति से चल रही थी। सर्जन कई दफे आये। नर्स ने आकर टेम्परेचर लिया। रात को ग्यारह बजे टेम्परेचर उतरने लगा। डॉक्टर शुक्ला की आँखें चमक उठीं। ठीक बारह बजकर पाँच मिनट पर सुधा ने आँखें खोल दीं। चन्दर ने विनती का हाथ मारे ख़ुशी से दबा दिया।

"बिनती कहाँ है ?" बड़े क्षीण स्वर में पूछा।

सुधा ने आँख घुमाकर देखा। पापा को देखते ही मुसकरा पड़ी।

बिनती और चन्दर उठकर आ गये।

"आहा, चन्दर तुम आ गये ? हमारे लिए क्या लाये ?"

"पगली कहीं की !" मारे खुशी के चन्दर का गला भर गया।

"लेकिन तुम इतनी देर में क्यों आये, चन्दर !"

"कल रात को ही आ गये थे हम।"

"चलो-चलो, झूठ बोलना तो तुम्हारा धर्म बन गया। कल रात को आ गये होते तो अभी तक हम अच्छे भी हो गये होते।" और वह हाँफने लगी।

सर्जन आया—"बात मत करो..." उसने कहा।

उसने एक मिक्स्चर दिया। फिर आला लगाकर देखा, और डॉक्टर शुक्ला को

अलग ले जाकर कहा—"अभी दो घण्टे और खतरा है। लेकिन परेशान मत होइए। अब सत्तर प्रतिशत आशा है। मरीज जो कहे, उसमें बाधा मत दीजिएगा। उसे जरा भी परेशानी न हो।"

सुधा ने चन्दर को बुलाया—"चन्दर, पापा से मत कहना। अब मैं बचूँगी नहीं। अब कहीं मत जाना, यहीं बैठो।"

"छिः पगली ! डॉक्टर कह रहा है अब खतरा नहीं है।" चन्दर ने बहुत प्यार से कहा—"अभी तो तुम हमारे लिए जिन्दा रहोगी न !"

"कोशिश तो कर रही हूँ चन्दर, मौत से लड़ रही हूँ ! चन्दर, उन्हें तार दे दो ! पता नहीं देख पाऊँगी या नहीं।"

"दे दिया, सुधा !" चन्दर ने कहा और सिर झुकाकर सोचने लगा।

"क्या सोच रहे हो, चन्दर ! उन्हें इसलिए देखना चाहती हूँ कि मरने के पहले उन्हें क्षमा कर दूँ, उनसे क्षमा माँग लूँ !⋯चन्दर, तुम तकलीफ का अन्दाजा नहीं कर सकते।"

डॉक्टर शुक्ला आये। सुधा ने कहा—"पापा, आज तुम्हारी गोद में लेट लें।" उन्होंने सुधा का सिर गोद में रख लिया। "पापा, चन्दर को समझा दो, ये अब अपना ब्याह तो कर लें।⋯हाँ पापा, हमारी भागवत मँगवा दो⋯"

"शाम को मँगवा देंगे बेटी, अब एक बज रहा है⋯"

"देखा⋯" सुधा ने कहा—"बिनती, यहाँ आओ !"

बिनती आयी। सुधा ने उसका माथा चूमकर कहा—"रानी, जो कुछ तुझे आज तक समझाया वैसा ही करना, अच्छा ! पापा तेरे जिम्मे हैं।"

बिनती रोकर बोली—"दीदी, ऐसी बातें क्यों करती हो⋯"

सुधा कुछ न बोली। गोद से हटाकर सिर तकिये पर रख लिया।

"जाओ पापा, अब सो रहो तुम।"

"सो लूँगा, बेटी⋯"

"जाओ। नहीं फिर हम अच्छे नहीं होंगे ! जाओ⋯"

सर्जन का आदेश था कि मरीज के मन के विरुद्ध कुछ नहीं होना चाहिए—डॉक्टर शुक्ला चुपचाप उठे, और बाहर बिछे पलंग पर लेट रहे।

सुधा ने चन्दर को बुलाया, बोली—"मैं झुक नहीं सकती—बिनती यहाँ आ— हाँ, चन्दर के पैर छू⋯अरे अपने माथे में नहीं पगली मेरे माथे से लगा दे। मुझसे झुका नहीं जाता।" बिनती ने रोते हुए सुधा के माथे में चरण-धूल लगा दी—"रोती क्यों है, पगली ! मैं मर जाऊँ तो चन्दर तो है ही। अब चन्दर तुझे कभी नहीं रुलायेंगे⋯चाहे पूछ लो ! इधर आओ, चन्दर ! बैठ जाओ, अपना हाथ मेरे होंठों पर रख दो⋯ऐसे⋯अगर मैं मर जाऊँ तो रोना मत, चन्दर ! तुम ऊँचे बनोगे तो मुझे बहुत चैन मिलेगा। मैं जो कुछ नहीं पा सकी वह शायद तुम्हारे ही माध्यम से मिलेगा मुझे। और देखो पापा को अकेले

दिल्ली में न छोड़ना···लेकिन मैं मरूँगी नहीं, चन्दर···यह नरक भोगकर भी तुम्हें प्यार करूँगी···मैं मरना नहीं चाहती, जाने फिर कभी तुम मिलो या न मिलो, चन्दर ···उफ कितनी तकलीफ है, चन्दर ! हम लोगों ने कभी ऐसा नहीं सोचा था···अरे हटो··हटो···चन्दर !" सहसा सुधा की आँखों में फिर अँधेरा छा गया—"भागो, चन्दर ! तुम्हारे पीछे कौन खड़ा है ?" चन्दर घबराकर उठ गया—पीछे कोई नहीं था···"अरे चन्दर, तुम्हें पकड़ रहा है। चन्दर, तुम मेरे पास आओ।" सुधा ने चन्दर का हाथ पकड़ लिया—बिनती भागकर डॉक्टर साहब को बुलाने गयी। नर्स भी भागकर आयी। सुधा चीख रही थी—"तुम हो कौन ? चन्दर को नहीं ले जा सकते। मैं चल तो रही हूँ। चन्दर, मैं जाती हूँ इसके साथ, घबराना मत। मैं अभी आती हूँ। तुम तब तक चाय पी लो—नहीं, मैं तुम्हें उस नरक में नहीं जाने दूँगी, मैं जा तो रही हूँ—बिनती मेरी चप्पल ले आ··अरे पापा कहाँ हैं··पापा···"

और सुधा का सिर चन्दर की बाँह पर लुढ़क गया—बिनती को नर्स ने सँभाला और डॉक्टर शुक्ला पागल की तरह सर्जन के बँगले की ओर दौड़े··घड़ी ने टन-टन दो बजाये··

जब एम्बुलेन्स कार पर सुधा का शव बँगले पहुँचा तो शंकर बाबू आ गये थे—बहू को विदा कराने··

उपसंहार

जिन्दगी का यन्त्रणा-चक्र एक वृत्त पूरा कर चुका था। सितारे एक क्षितिज से उठकर, आसमान पार कर दूसरे क्षितिज तक पहुँच चुके थे। साल-डेढ़ साल पहले सहसा जिन्दगी की लहरों में उथल-पुथल मच गयी थी और विक्षुब्ध महासागर की तरह भूखी लहरों की बाँहें पसारकर वह किसी को दबोच लेने के लिए हुंकार उठी थी। अपनी भयानक लहरों के शिकंजे में सभी को झकझोरकर, सभी के विश्वासों और भावनाओं को चकनाचूर कर अन्त में सबसे प्यारे, सबसे मासूम और सबसे सुकुमार व्यक्तित्व को निगलकर अब धरातल शान्त हो गया—तूफान थम गया था, बादल खुल गये थे और सितारे फिर आसमान के घोंसलों से भयभीत विहंग-शावकों की तरह झाँक रहे थे।

डॉक्टर शुक्ला छुट्टी लेकर प्रयाग चले आये थे। उन्होंने पूजा-पाठ छोड़ दिया था। उन्हें कभी किसी ने गाते हुए नहीं सुना था। अब वह सुबह उठकर लॉन पर टहलते और एक भजन गाते—"जागहु री वृषभानु दुलारी···" एक पंक्ति के अलावा वह दूसरी पंक्ति नहीं गाते थे। बिनती, जो इतनी सुन्दर थी, अब केवल खामोश पीड़ा और अवशेष स्मृति की छाया मात्र थी। चन्दर शान्त था, पत्थर हो गया था, लेकिन उसके माथे का तेज बुझ गया था और वह बूढ़ा-सा लगने लगा था और यह सब केवल पन्द्रह दिनों में।

जेठ दशहरे के दिन डॉक्टर साहब बोले—"चन्दर, आज जाओ, उसके फूल छोड़ आओ, लेकिन देखो शाम को जाना जब वहाँ भीड़-भाड़ न हो, अच्छा !" और चुपचाप टहलकर गुनगुनाने लगे।

शाम को चन्दर चला तो बिनती भी चुपचाप साथ हो ली; न बिनती ने आग्रह किया—न चन्दर ने स्वीकृति दी। दोनों खामोश चल दिये। कार पर चन्दर ने बिनती की गोद में गठरी रख दी। त्रिवेणी पर कार रुक गयी। हलकी चाँदनी मैले कफन की तरह लहरों की लाश पर पड़ी हुई थी। दिन-भर कमाकर मल्लाह थककर सो रहे थे। एक बूढ़ा बैठा चिलम पी रहा था! चुपचाप उसकी नाव पर चन्दर बैठ गया। बिनती

उसकी बगल में बैठ गयी। दोनों खामोश थे, सिर्फ पतवारों की छप-छप सुन पड़ती थी। मल्लाह ने तख्त के पास नाव बाँध दी और बोला—"नहा लें बाबू !" वह समझता था बाबू सिर्फ घूमने आये हैं।

"जाओ !"

वह दूर तख्तों की कतार के उस छोर पर ज़ाकर खो गया। फिर दूर-दूर तक फैला संगम···और सन्नाटा···चन्दर सिर झुकाये बैठा रहा···बिनती सिर झुकाये बैठी रही। थोड़ी देर बाद बिनती सिसक पड़ी। चन्दर ने सिर उठाया और फौलादी हाथों से बिनती का कन्धा झकझोरकर बोला—"बिनती, यदि रोयी तो यही फेंक देंगे उठाकर कमबख्त, अभागी !"

बिनती चुप हो गयी।

चन्दर चुपचाप बैठा तख्त के नीचे से गुजरती हुई लहरों को देखता रहा। थोड़ी देर बाद उसने गठरी खोली···फिर रुक गया, शायद फेंकने का साहस नहीं हो रहा था···बिनती ने पीछे से आकर एक मुट्ठी राख उठा ली और अपने आँचल में बाँधने लगी। चन्दर ने चुपचाप उसकी ओर देखा, फिर झपटकर उसने बिनती का आँचल पकड़कर राख छीन ली और गुर्राता हुआ बोला—"बदतमीज कहीं की ! ···राख ले जायेगी—अभागी !" और झट से कपड़े सहित राख फेंक दी और आग्नेय दृष्टि से बिनती की ओर देखकर फिर सिर झुका लिया। लहरों में राख एक जहरीले पनियाले साँप की तरह लहराती हुई चली जा रही थी।

बिनती चुपचाप सिसक रही थी।

"नहीं चुप होगी !" चन्दर ने पागलों की तरह बिनती को ढकेल दिया—बिनती ने बाँस पकड़ लिया और चीख पड़ी।

चीख से चन्दर जैसे होश में आ गया। थोड़ी देर चुपचाप रहा फिर झुककर अंजलि में पानी लेकर मुँह धोया और बिनती के आँचल से पोंछकर बहुत मधुर स्वर में बोला—"बिनती, रोओ मत ! मेरी समझ में नहीं आता कुछ भी ! रोओ मत !" चन्दर का गला भर आया और आँख में आँसू छलक आये—"चुप हो जाओ, रानी ! मैं अब इस तरह कभी नहीं करूँगा—उठो ! अब हम दोनों को निभाना है, बिनती !" चन्दर ने तख्त पर छीना झपटी में बिखरी हुई राख चुटकी में उठायी और बिनती की माँग में भरकर माँग चूम ली। उसके होंठ राख में सन गये।

सितारे टूट चुके थे। तूफान खत्म हो चुका था।

नाव किनारे पर आकर लग गयी थी—मल्लाह को चुपचाप रुपये देकर बिनती का हाथ थामकर चन्दर ठोस धरती पर उतर पड़ा···मुरदा चाँदनी में दोनों छायाएँ मिलती-जुलती हुई चल दीं।

गंगा की लहरों में बहता हुआ राख का साँप टूट-फूटकर बिखर चुका था और नदी फिर उसी तरह बहने लगी थी जैसे कभी कुछ हुआ ही न हो। □

सूरज का सातवाँ घोड़ा

आगे बढ़ो,
सूर्योदय रुका हुआ है !
सूरज को मुक्त करो ताकि संसार में प्रकाश हो,
देखो उसके रथ का चक्र कीचड़ में फँस गया है
आगे बढ़ो साथियो !
सूरज के लिए यह सम्भव नहीं कि वह अकेले उदित हो सके
घुटने जमा कर, सीना अड़ा कर
उसके रथ को कीचड़ से उबारो !
देखो, हम सब उसको सहारा दे रहे हैं
क्योंकि हम सब
सूरज के अंश हैं।

—एंजेलो सिकेलियानो

भूमिका

लेखक को दो चीजों से बचना चाहिए : एक तो भूमिकाएँ लिखने से, दूसरे अपने समवर्ती लेखकों के बारे में मत प्रकट करने से। यहाँ मैं ये दोनों भूलें करने जा रहा हूँ; पर इसमें मुझे जरा भी झिझक नहीं है, खेद की तो बात ही क्या। मैं मानता हूँ; कि धर्मवीर भारती हिन्दी की उन उठती हुई प्रतिभाओं में से हैं जिन पर हिन्दी का भविष्य निर्भर करता है और जिन्हें देखकर हम कह कसते हैं कि हिन्दी उस अँधियारे अन्तराल को पार कर चुकी है जो इतने दिनों से मानो अन्तहीन दीख पड़ता था।

प्रतिभाएँ और भी हैं, कृतित्व औरों का भी उल्लेख्य है। पर उनसे धर्मवीर जी में एक विशेषता है। एक केवल अच्छे, परिश्रमी, रोचक लेखक नहीं हैं; वह नयी पौध के सबसे मौलिक लेखक हैं। मेरे निकट यह बहुत बड़ी विशेषता है, और इसी की दाद देने के लिए मैंने यहाँ वे दोनों भूलें करना स्वीकार किया है जिनमें से एक से तो मैं सदा बचता आया हूँ; हाँ, दूसरी से बचने की कोशिश नहीं की क्योंकि अपने बहुत-से समकालीनों के अभ्यास के प्रतिकूल मैं अपने समकालीनों की रचनाएँ पढ़ता हूँ; और पढ़ता हूँ तो उनके बारे में कुछ मत प्रकट करना बुद्धिमानी न हो तो अस्वाभाविक तो नहीं है !

भारती जीनियस नहीं हैं : किसी को जीनियस कह देना उसकी प्रतिभा को बहुत भारी विशेषण देकर उड़ा देना ही है। जीनियस क्या है, यह हम जानते ही नहीं। लक्षणों को ही जानते हैं : अथक श्रम-सामर्थ्य और अध्यवसाय, बहुमुखी क्रियाशीलता, प्राचुर्य, चिरजाग्रत् चिर-निर्माणशील कल्पना, सतत जिज्ञासा और पर्यवेक्षण, देश-काल या युग-सत्य के प्रति सतर्कता, परम्पराज्ञान, मौलिकता, आत्मविश्वास और—हाँ,—एक गहरी विनय। भारती में ये सभी विद्यमान हैं; अनुपात इनका जीनियसों में भी समान नहीं होता। और भारती में एक चीज और भी है जो प्रतिभा के साथ जरूरी तौर पर नहीं आती—हास्य।

ये सब बातें जो मैं कह रहा हूँ, इन्हें वही पाठक समझेगा जिसने भारती की अन्य रचनाएँ भी पढ़ी हैं, जैसे कि मैंने पढ़ी हैं। जिसने वे नहीं पढ़ीं, वह सोच सकता है कि इस तरह की साधारण बातें कहने से क्या लाभ जिनकी कसौटी प्रस्तुत सामग्री से न हो सके ? और उसका सोचना ठीक होगा : स्थाली-पुलाक न्याय कहीं लगता है

तो मौलिक प्रतिभा की परख में, उसकी छाप छोटी-सी अलग कृति पर भी स्पष्ट होती है; और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' पर भी धर्मवीर की विशिष्ट प्रतिभा की छाप है।

सबसे पहली बात है उसका गठन। बहुत सीधी, बहुत सादी, पुराने ढंग की—बहुत पुराने, जैसा आप बचपन से जानते हैं—अलफलैला वाला ढंग, पंचतंत्र वाला ढंग, बोकैच्छियो वाला ढंग, जिसमें रोज किस्सागोई की मजलिस जुटती है, फिर कहानी में से कहानी निकलती है। ऊपरी तौर पर देखिए तो यह ढंग उस जमाने का है जब सब काम फ़ुरसत और इत्मीनान से होते थे; और कहानी भी आराम से और मजे लेकर कही जाती थी। पर क्या भारती को वैसी कहानी वैसे कहना अभीष्ट है ? नहीं, यह सीधापन और पुरानापन इसलिए है कि आपको भारती की बात के प्रति एक खुलापन पैदा हो जाये; बात वह फ़ुरसत का वक्त काटने या दिल बहलाने वाली नहीं है, हृदय को कचोटने, बुद्धि को झँझोड़कर रख देने वाली है। मौलिकता अभूतपूर्व, पूर्ण शृंखला-विहीन नयेपन में नहीं, पुराने में नयी जान डालने में भी है (और कभी पुरानी जान को नयी काया देने में भी); और भारती ने इस ऊपर से पुराने जान पड़ने वाले ढंग का भी बिलकुल नया और हिन्दी में अनूठा उपयोग किया है। और वह केवल प्रयोग-कौतुक के लिए नहीं, बल्कि इसलिए कि वह जो कहना चाहते हैं उसके लिए यह उपयुक्त ढंग है।

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' एक कहानी में अनेक कहानियाँ नहीं, अनेक कहानियों में एक कहानी है। वह एक पूरे समाज का चित्र और आलोचन है; और जैसे उस समाज की अनन्त शक्तियाँ परस्पर-सम्बद्ध, परस्पर आश्रित और परस्पर सम्भूत हैं, वैसे ही उनकी कहानियाँ भी। प्राचीन चित्रों में जैसे एक ही फलक पर परस्पर कई घटनाओं का चित्रण करके उसकी वर्णनात्मकता को सम्पूर्ण बनाया जाता है, उसमें एक घटना-चित्र की स्थिरता के बदले एक घटनाक्रम की प्रवाहमयता लायी जाती है, उसी प्रकार इस समाज-चित्र में एक ही वस्तु को कई स्तरों पर, कई लोगों से और कई कालों में देखने और दर्शाने का प्रयत्न किया गया है, जिससे उसमें देश और काल दोनों का प्रसार प्रतिबिम्बित हो सके। लम्बाई और चौड़ाई के दो आयामों के फलक में गहराई का तीसरा आयाम छांही द्वारा दिखाया जाता है; समाज-चित्र में देश के तीन आयामों के अतिरिक्त काल के भी आयाम आवश्यक होते हैं और उन्हें दर्शाने के लिए चित्रकार को अन्य उपाय ढूँढ़ना आवश्यक होता है।

वह चित्र सुन्दर, प्रीतिकर या सुखद नहीं है; क्योंकि उस समाज का जीवन वैसा नहीं है और भारती ने चित्र को यथाशक्य सच्चा उतारना चाहा है। पर वह असुन्दर या अप्रीतिकर भी नहीं, क्योंकि वह मृत नहीं है, न मृत्युपूजक ही है। उसमें दो चीजें हैं जो उसे इस खतरे से उबारती हैं—और इनमें से एक भी काफी होती है : एक तो उसका हास्य, भले ही वह वक्र और कभी कुटिल या विद्रूप भी हो; दूसरे एक अदम्य और निष्ठामयी आशा। वास्तव में जीवन के प्रति यह अडिग आस्था ही सूरज का सातवाँ घोड़ा है, "जो हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन

आकलन भेजता है ताकि हम वह रास्ता बना सकें जिस पर होकर भविष्य का घोड़ा आयेगा।" इस वस्तु का इतना सुन्दर निर्वाह, उसके गम्भीरतर तात्पर्यों का इस साहसपूर्ण और ईमानदार ढंग से स्वीकार, और उस स्वीकृति में भी उससे न हारकर उठने का निश्चय—ये सब 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' को एक महत्त्वपूर्ण कृति बनाते हैं।

"पर कोई न कोई चीज ऐसी है जिसने हमेशा अँधेरे को चीरकर आगे बढ़ने, समाज-व्यवस्था को बदलने और मानवता के सहज मूल्यों को पुनः स्थापित करने की ताकत और प्रेरणा दी है। चाहे उसे आत्मा कह लो, चाहे कुछ और। और विश्वास, साहस, सत्य के प्रति निष्ठा, उस प्रकाशवाही आत्मा को उसी तरह आगे ले चलते हैं जैसे सात घोड़े सूर्य को आगे बढ़ा ले चलते हैं।" ये पुस्तक के कथा-गायक और प्रमुख पात्र माणिक मुल्ला के शब्द हैं। किसी उक्ति के निमित्त से एक पात्र के साथ लेखक को सम्पूर्ण रूप से एकात्म करने की प्रचलित मूर्खता मैं नहीं करूँगा, पर इस उक्ति में बोलने वाला विश्वास स्वयं भारती का भी विश्वास है, ऐसा मुझे लगता है; और वह विश्वास हम सबमें अटूट रहे, ऐसी मेरी कामना है।

वसन्त-पंचमी, 2008

—'अज्ञेय'

निवेदन

'गुनाहों का देवता' के बाद यह मेरी दूसरी कथा-कृति है। दोनों कृतियों में काल-क्रम का अन्तर पड़ने के अलावा उन बिन्दुओं में भी अन्तर आ गया है जिन पर होकर मैंने समस्या का विश्लेषण किया है।

कथा-शैली भी कुछ अनोखे ढंग की है, जो है तो वास्तव में पुरानी ही, पर इतनी पुरानी कि आज के पाठक को थोड़ी नयी या अपरिचित-सी लग सकती है। बहुत छोटे-से चौखटे में काफी लम्बा घटना-क्रम और काफी विस्तृत क्षेत्र का चित्रण करने की विवशता के कारण यह ढंग अपनाना पड़ा है।

मेरा दृष्टिकोण इन कथाओं में स्पष्ट है; किंतु इनमें आये हुए मार्क्सवाद के जिक्र के कारण थोड़ा-सा विवाद किसी क्षेत्र से उठाया जा सकता है। जो लोग सत्य की ओर से आँख मूँदकर अपने पक्ष को गलत या सही ढंग से प्रचारित करने को समालोचना समझते हैं, उनसे मुझे कुछ नहीं कहना है, क्योंकि साहित्य की प्रगति में उनका कोई रचनात्मक महत्त्व मैं मानता ही नहीं; हाँ जिसमें थोड़ी-सी समझदारी, सहानुभूति और परिहास-प्रवृत्ति है उनसे मुझे एक स्पष्ट बात कहनी है :

पिछले तीन-चार वर्षों में मार्क्सवाद के अध्ययन से मुझे जितनी शान्ति, जितना बल और जितनी आशा मिली है, हिन्दी की मार्क्सवादी समीक्षा और चिन्तना से उतनी ही निराशा और असन्तोष। अपने समाज, अपनी जन-संस्कृति और उसकी परम्पराओं से वे नितान्त अनभिज्ञ रहे हैं। अतः उनके निष्कर्ष ऐसे ही रहे हैं कि उन पर या तो रोया जा सकता है या दिल खोलकर हँसा जा सकता है । फिर उसकी कमियों की ओर इशारा करने पर वे जिस तरह खीज उठते हैं, वह और भी हास्यास्पद और दयनीय है।

इसके बावजूद मेरी आस्था कभी भी मार्क्सवाद में कम नहीं हुई और न मैंने अपनी जनता के दुःख-दर्द से मुँह फेरा है। धीरे-धीरे अपने दृष्टिकोण में अधिकाधिक सामाजिकता विकसित करने की ओर मैं ईमानदारी से रहा हूँ और रहूँगा। और उसी दृष्टि से जहाँ मुझे मार्क्सवादी शब्दजाल के पीछे भी असन्तोष, अहंवाद और गुटबन्दी दीख पड़ी है उसकी ओर साहस से स्पष्ट निर्देश करना मैं अनिवार्य समझता हूँ क्योंकि ये तत्व हमारे जीवन और हमारी संस्कृति की स्वस्थ प्रगति में खतरे पैदा करते

हैं। मैं जानता हूँ कि जो मार्क्सवादी अपने व्यक्तित्व में सामाजिक तथा मार्क्सवाद की पहली शर्त ऑब्जेक्टिविटी विकसित कर चुके हैं, वे मेरी बात समझेंगे और इतना मेरे सन्तोष के लिए यथेष्ट है।

इसकी भूमिका श्री 'अज्ञेय' ने लिखनी स्वीकार कर ली, इसके लिए मैं उनका कितना आभारी हूँ यह शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। वे मेरे अन्तर की आस्था और ईमानदारी को पहचानते हैं और आज के युग में किसी भी लेखक को इससे अधिक क्या चाहिए। उन्होंने इसकी शैली तथा विषय-वस्तु के मर्म को जैसे प्रस्तुत किया है, वह केवल उन्हीं के लिए सम्भव था। मेरे प्रति उन्होंने जो कुछ अनुशंसात्मक वाक्य लिखे हैं, पता नहीं मैं उनके योग्य हूँ या नहीं पर मैं उन्हें स्नेह आशीर्वादों के रूप में सिर झुकाकर ग्रहण करता हूँ और चाहता हूँ कि अपने को उनके योग्य सिद्ध कर सकूँ।

अपने पाठकों से मुझे अक्सर बड़े अनोखे और स्नेहपूर्ण पत्र मिलते रहे हैं। मेरे लिए वे मूल्यवान निधियाँ हैं। उनसे मैं एक बात कहना चाहता हूँ—मैं लिख-लिखकर सीखता चल रहा हूँ और सीख-सीखकर लिखता चल रहा हूँ। जो कुछ लिखता हूँ उसमें सामाजिक उद्देश्य अवश्य है पर वह स्वान्तः सुखाय भी है। यह अवश्य है कि मेरे 'स्व' में आप सभी सम्मिलित हैं, आप सबों का सुख-दुख, वेदना-उल्लास में मेरा अपना है : वास्तव में वह कोई बहुत बड़ी कहानी है जो हम सबों के माध्यम से व्यक्त हो रही है। केवल उसी का एक अंश मेरी कलम से उतर आया है। इसीलिए इस कृति में जो कुछ श्रेयस्कर है वह आप सबों का ही है; जो कुछ कमजोरियाँ हैं वह मेरी अपनी समझी जायें।

शिवरात्रि
23 फरवरी, 1952

—धर्मवीर भारती

उपोद्घात

इसके पहले कि मैं आपके सामने माणिक मुल्ला की अद्भुत निष्कर्षवादी प्रेम-कहानियों के रूप में लिखा गया यह 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' नामक उपन्यास प्रस्तुत करूँ, यह अच्छा होगा कि पहले आप यह जान लें कि माणिक मुल्ला कौन थे, वे हम लोगों को कहाँ मिले, कैसे उनकी प्रेम-कहानियाँ हम लागों के सामने आयीं, प्रेम के विषय में उनकी धारणाएँ और अनुभव क्या थे, तथा कहानी की टेकनीक के बारे में उनकी मौलिक उद्भावनाएँ क्या थीं।

'थीं' का प्रयोग मैं इसलिए कर रहा हूँ कि मुझे यह नहीं मालूम कि आजकल वे कहाँ हैं, क्या कर रहे हैं, अब कभी उनसे मुलाकात होगी या नहीं; और अगर सचमुच वे लापता हो गये तो कहीं उनके साथ उनकी ये अद्भुत कहानियाँ भी लापता न हो जायें इसलिए मैं इन्हें आपके सामने पेश किये देता हूँ।

एक जमाना था जब वे हमारे मुहल्ले के मशहूर व्यक्ति थे। वहीं पैदा हुए, बड़े हुए, वहीं शोहरत पायी और वहीं से लापता हो गये। हमारा मुहल्ला काफी बड़ा है, कई हिस्सों में बँटा हुआ है। और वे उस हिस्से के निवासी थे जो सबसे ज्यादा रंगीन और रहस्यमय है और जिसकी नयी और पुरानी पीढ़ी दोनों के बारे में अजब-अजब-सी किंवदन्तियाँ मशहूर हैं।

मुल्ला उनका उपनाम नहीं, जाति थी। वे कश्मीरी थे। कई पुश्तों से उनका परिवार यहाँ बसा हुआ था, वे अपने भाई और भाभी के साथ रहते थे। भाई और भाभी का तबादला हो गया था और वे पूरे घर में अकेले रहते थे। इतनी सांस्कृतिक स्वाधीनता तथा इतनी कम्युनिज्म एक साथ उनके घर में थी कि यद्यपि हम लोग उनके घर से बहुत दूर रहते थे लेकिन वहीं सबका अड्डा जमा करता था। हम सब उन्हें गुरुवत् मानते थे और उनका भी हम सबों पर निश्छल प्रगाढ़ स्नेह था। वे नौकरी करते हैं या पढ़ते हैं, नौकरी करते हैं तो कहाँ, पढ़ते हैं तो क्या पढ़ते हैं—यह भी हम लोग कभी नहीं जान पाये। उनके कमरे में किताबों का नाम-निशान भी नहीं

था। हाँ, कुछ अजब-अजब की चीजें वहाँ थीं जो अमूमन दूसरे लोगों के कमरे में नहीं पायी जातीं। मसलन दीवार पर एक पुराने काले फ्रेम में एक फोटो जड़ा टँगा हुआ था : 'खाओ, बदन बनाओ !' एक ताख में एक काली बेंट का बड़ा-सा सुन्दर चाकू रखा था, एक कोने में एक घोड़े की पुरानी नाल पड़ी थी और इसी तरह की कितनी ही अजीबोगरीब चीजें वहाँ थीं जिनका औचित्य हम लोग कभी नहीं समझ पाते थे। इनके साथ ही साथ हमें ज्यादा दिलचस्पी जिस बात में थी, वह यह कि जाड़ों में मूँगफलियाँ और गरमियों में खरबूजे वहाँ हमेशा मौजूद रहते थे और उसका स्वाभाविक परिणाम यह था कि हम लोग भी हमेशा वहाँ मौजूद रहते थे।

अगर काफी फुरसत हो, पूरा घर अपने अधिकार में हो, चार मित्र बैठे हों, तो निश्चित है कि घूम-फिरकर वार्ता राजनीति पर आ टिकेगी और जब राजनीति में दिलचस्पी खत्म होने लगेगी तो गोष्ठी की वार्ता 'प्रेम' पर आ टिकेगी। कम से कम मध्यवर्ग में तो इन दो विषयों के अलावा तीसरा विषय नहीं होता। माणिक मुल्ला का दखल जितना राजनीति में था उतना ही प्रेम में था, लेकिन जहाँ तक साहित्यिक वार्ता का प्रश्न था वे प्रेम को तरजीह दिया करते थे।

प्रेम के विषय में बात करते समय वे कभी-कभी कहावतों को अजब रूप में पेश किया करते वे और उनमें से न जाने क्यों एक कहावत अभी तक मेरे दिमाग में चस्पाँ है, हालाँकि उनका सही मतलब न मैं तब समझा था न अब ! अक्सर प्रेम के विषय में अपने कड़वे-मीठे अनुभवों से हम लोगों का ज्ञानवर्धन करने के बाद खरबूजा काटते हुए कहते थे, "प्यारे बन्धुओ ! कहावत में चाहे जो कुछ हो, प्रेम में खरबूजा चाहे चाकू पर गिरे चाहे चाकू खरबूजे पर, नुकसान हमेशा चाकू का होता है। अतः जिसका व्यक्तित्व चाकू की तरह तेज और पैना हो, उसे हर हालत में इस उलझन से बचना चाहिए।" ऐसी अन्य कहावतें थीं जो याद आने पर बाद में लिखूँगा।

लेकिन जहाँ तक कहानियों का प्रश्न था उनकी निश्चित धारणा थी कि कहानियों की तमाम नस्लों में प्रेम कहानियाँ ही सवसे सफल सावित होती हैं, अतः कहानियों में रोमांस का अंश जरूर होना चाहिए। लेकिन साथ ही हमें अपनी दृष्टि संकुचित नहीं कर लेनी चाहिए और कुछ ऐसा चमत्कार करना चाहिए कि वे समाज के लिए कल्याणकारी अवश्य हों।

जब हम लोग पूछते थे कि यह कैसे सम्भव है कि कहानियाँ प्रेम पर लिखी जायें पर उनका प्रभाव कल्याणकारी हो तब वे कहते थे कि यही तो चमत्कार है तुम्हारे माणिक मुल्ला में जो अन्य किसी कहानीकार में है ही नहीं।

यद्यपि उन्होंने उस समय तक एक भी कहानी लिखी नहीं थी, फिर भी कहानियों के विषय में उनका विशाल अध्ययन था (कम से कम हम लोगों को ऐसा ही लगता था) और उनका कहानी-कला पर पूर्ण अधिकार था।

कहानियों की टेकनीक के बारे में उनका सबसे पहला सिद्धान्त था कि आधुनिक कहानी में आदि, मध्य या अन्त, तीनों में से कोई न कोई तत्त्व अवश्य छूट

जाता है। ऐसा नहीं होना चाहिए। उनका कहना था कि कहानी वही पूर्ण है जिसमें आदि में आदि हो, मध्य में मध्य हो और अन्त में अन्त हो। इनकी व्याख्या वे यों करते थे : कहानी का आदि वह है जिसके पहले कुछ न हो बाद में मध्य हो, मध्य वह है जिसके पहले आदि हो और बाद में अन्त हो, अन्त उसे कहते हैं जिसके पहले मध्य हो बाद में रद्दी की टोकरी हो।

कहानियों की टेकनीक के बारे में उनका दूसरा सिद्धान्त यह था कि कहानियाँ चाहे छायावादी हों या प्रगतिवादी, ऐतिहासिक हों या अनैतिहासिक, समाजवादी हों या मुसलिमलीगी, किन्तु उनसे कोई न कोई निष्कर्ष अवश्य निकालना चाहिए। यह निष्कर्ष समाज के लिए कल्याणकारी होना चाहिए ऐसा उनका निश्चित मत था और इसलिए यद्यपि उन्होंने जीवनभर कोई कहानी नहीं लिखी पर वे अपने को कथा-साहित्य में निष्कर्षवाद का प्रवर्तक मानते थे।

कथा-शिल्प की पूरी प्रणाली वे इस प्रकार बताते थे :

कुछ पात्र लो, और एक निष्कर्ष पहले से सोच लो, जैसे''यानी जो भी निष्कर्ष निकालना हो, फिर अपने पात्रों पर इतना अधिकार रखो, इतना शासन रखो कि वे अपने-आप प्रेम के चक्र में उलझ जायें और अन्त में उसी निष्कर्ष पर पहुँचें जो तुमने पहले से तय कर रखा है।

मेरे मन में अकसर इन बातों पर शंकाएँ भी उठती थीं, पर निष्कर्षवाद के विषय में उन्होंने मुझे बताया कि हिन्दी में बहुत-से कहानीकार इसीलिए प्रसिद्ध हो गये हैं कि उनकी कहानी में कथानक चाहे लँगड़ाता हो, पात्र चाहे पिलपिले हों, लेकिन सामाजिक तथा राजनीतिक निष्कर्ष अद्भुत होते हैं।

मेरी दूसरी शंका कथावस्तु की प्रेम सम्बन्धी अनिवार्यता के विषय में थी। मैं अकसर सोचता था कि जिन्दगी में अधिक से अधिक दस बरस ऐसे होते हैं जब हम प्रेम करते हैं। उन दस बरसों में खाना-पीना, आर्थिक संघर्ष, सामाजिक जीवन, पढ़ाई-लिखाई, घूमना-फिरना, सिनेमा और साप्ताहिक पत्र, मित्र-गोष्ठी इन सबों से जितना समय बचता है, उतने में हम प्रेम करते हैं। फिर इतना महत्व उसे क्यों दिया जाये ? सैर-सपाटा, खोज, शिकार, व्यायाम, मोटर चलाना, रोजी-रोजगार, ताँगेवाले, इक्केवाले और पत्रों के सम्पादक, सैकड़ों विषय हैं जिन पर कहानियाँ लिखी जा सकती हैं, फिर आखिर प्रेम पर ही क्यों लिखी जायें।

जब मैंने माणिक मुल्ला से यह पूछा तो सहसा वे भावुक हो गये और बोले, "तुम्हें बाङ्ला आती है ?" मैंने कहा, "नहीं, क्यों ?" तो गहरी साँस लेकर बोले, "टैगोर का नाम तो सुना ही होगा ! उन्होंने लिखा है 'अमार माझारे जो आछे से गो कोनो विरहिणी नारी'। अर्थात् मेरे मन के अन्दर जो बसा है वह कोई विरहिणी नारी है। और वही विरहिणी नारी अपनी कथा कहा करती है—बार-बार तरह-तरह से।" और फिर अपने मत की व्याख्या करते हुए बोले कि विरहिणी नारियाँ भी कई भाँति की होती हैं—अनूठा विरहिणी, ऊढ़ा विरहिणी, मुग्धा विरहिणी, प्रौढ़ा विरहिणी

आदि-आदि, तथा विरह भी कई प्रकार के होते हैं—बाह्य परिस्थितिजन्य, आन्तरिक मनःस्थितिजन्य इत्यादि। इन सबों पर कहानियाँ लिखी जा सकती हैं; और माणिक मुल्ला का चमत्कार यह था कि जैसे बाजीगर मुँह से आग निकाल देता है वैसे ही वे इन कहानियों से सामाजिक कल्याण के निष्कर्ष निकाल देने में समर्थ थे।

हालाँकि माणिक मुल्ला के बारे में प्रकाश का मत था कि "यार, हो न हो माणिक मुल्ला के बारे में भी हिन्दी के अन्य कहानीकारों की तरह नारी के लिए कुछ 'ऑबसेशन' है !" पर यह वह कभी माणिक मुल्ला के सामने कहने का साहस नहीं करता था कि वे उसका सही-सही जवाब दे सकें और जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं आज तक उनके बारे में सही फैसला नहीं कर पाता हूँ। इसीलिए मैं यह कहानियाँ ज्यों की त्यों आपके सामने प्रस्तुत कर देता हूँ; ताकि आप स्वयं निर्णय कर लें। इसका नाम 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' क्यों रखा गया इसका स्पष्टीकरण भी अन्त में मैंने कर दिया है।

हाँ, आप मुझे इसके लिए क्षमा करेंगे कि इनकी शैली में बोलचाल के लहजे की प्रधानता है और मेरी आदत के मुताबिक उनकी भाषा रूमानी, चित्रात्मक, इन्द्र-धनुष और फूलों से सजी हुई नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि ये कहानियाँ माणिक मुल्ला की हैं; मैं तो केवल प्रस्तुतकर्ता हूँ, अतः जैसे उनसे सुनी थीं उन्हें यथासम्भव वैसे ही प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ।

पहली दोपहर

आदि-आदि, तथा विरह भी कई प्रकार के होते हैं—बाह्य परिस्थितिजन्य, आन्तरिक मनःस्थितिजन्य इत्यादि। इन सबों पर कहानियाँ लिखी जा सकती हैं; और माणिक मुल्ला का चमत्कार यह था कि जैसे बाजीगर मुँह से आग निकाल देता है वैसे ही वे इन कहानियों से सामाजिक कल्याण के निष्कर्ष निकाल देने में समर्थ थे।

हालाँकि माणिक मुल्ला के बारे में प्रकाश का मत था कि "यार, हो न हो माणिक मुल्ला के बारे में भी हिन्दी के अन्य कहानीकारों की तरह नारी के लिए कुछ 'ऑबसेशन' है !" पर यह वह कभी माणिक मुल्ला के सामने कहने का साहस नहीं करता था कि वे उसका सही-सही जवाब दे सकें और जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं आज तक उनके बारे में सही फैसला नहीं कर पाता हूँ। इसीलिए मैं यह कहानियाँ ज्यों की त्यों आपके सामने प्रस्तुत कर देता हूँ; ताकि आप स्वयं निर्णय कर लें। इसका नाम 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' क्यों रखा गया इसका स्पष्टीकरण भी अन्त में मैंने कर दिया है।

हाँ, आप मुझे इसके लिए क्षमा करेंगे कि इनकी शैली में बोलचाल के लहजे की प्रधानता है और मेरी आदत के मुताबिक उनकी भाषा रूमानी, चित्रात्मक, इन्द्र-धनुष और फूलों से सजी हुई नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि ये कहानियाँ माणिक मुल्ला की हैं; मैं तो केवल प्रस्तुतकर्ता हूँ, अतः जैसे उनसे सुनी थीं उन्हें यथासम्भव वैसे ही प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ।

पहली दोपहर

नमक की अदायगी

अर्थात् जमुना का नमक
माणिक ने कैसे अदा किया

उन्होंने सबसे पहली कहानी एक दिन गरमी की दोपहर में सुनायी थी जब हम लोग लू के डर से कमरा चारों ओर से बन्द करके सिर के नीचे भीगी तौलिया रखे चुपचाप लेटे थे। प्रकाश और ओंकार ताश के पत्ते बाँट रहे थे और मैं अपनी आदत के मुताबिक कोई किताब पढ़ने की कोशिश कर रहा था। माणिक ने मेरी किताब छीनकर फेंक दी और बुजुर्गाना लहजे में कहा, "यह लड़का बिलकुल निकम्मा निकलेगा। मेरे कमरे में बैठकर दूसरों की कहानियाँ पढ़ता है। छिः, बोल कितनी कहानियाँ सुनेगा ?" सभी उठ बैठे और माणिक मुल्ला से कहानी सुनाने का आग्रह करने लगे। अन्त में माणिक मुल्ला ने एक कहानी सुनायी जिसमें उनके कथनानुसार उन्होंने इसका विश्लेषण किया था कि प्रेम नामक भावना कोई रहस्यमय, आध्यात्मिक या सर्वथा वैयक्तिक भावना न होकर वास्तव में एक सर्वथा मानवीय सामाजिक भावना है, अतः समाज-व्यवस्था से अनुशासित होती है और उसकी नींव आर्थिक-संगठन और वर्ग-सम्बन्ध पर स्थापित है।

नियमानुसार पहले उन्होंने कहानी का शीर्षक बताया : 'नमक की अदायगी।' इस शीर्षक पर उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द के 'नमक का दारोगा' का काफी प्रभाव मालूम पड़ता था पर कथावस्तु सर्वथा मौलिक थी। कहानी इस प्रकार थी—

माणिक मुल्ला के घर के बगल में एक पुरानी कोठी थी जिसके पीछे छोटा अहाता था। अहाते में एक गाय रहती थी, कोठी में एक लड़की। लड़की का नाम जमुना था, गाय का नाम मालूम नहीं। गाय बूढ़ी थी, रंग लाल था, सींग नुकीले थे। लड़की की उम्र पन्द्रह साल की थी, रंग गेहुँआ था (बढ़िया पंजाबी गेहूँ) और स्वभाव

मीठा, हँसमुख और मस्त। माणिक जिनकी उम्र सिर्फ दस बरस की थी, उसे जमुनियाँ कहकर भागा करते थे और वह बड़ी होने के नाते जब कभी माणिक को पकड़ पाती थी तो इनके दोनों कान उमेठती और मौके-बेमौके चुटकी काटकर इनका सारा बदन लाल कर देती। माणिक मुल्ला निस्तार की कोई राह न पाकर चीखते थे, माफी माँगते थे और भाग जाते थे।

लेकिन जमुना के दो काम माणिक मुल्ला के सिपुर्द थे। इलाहाबाद से निकलने वाली जितनी सस्ते किस्म की प्रेम-कहानियों की पत्रिकाएँ होती थीं वे जमुना उन्हीं से मँगवाती थी और शहर के किसी भी सिनेमाघर में अगर नयी तसवीर आयी तो उसकी गाने की किताब भी माणिक को खरीद लानी पड़ती थी। इस तरह जमुना का घरेलू पुस्तकालय दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था।

समय बीतते कितनी देर लगती है। कहानियाँ पढ़ते-पढ़ते और सिनेमा के गीत याद करते-करते जमुना बीस बरस की हो गयी और माणिक पन्द्रह बरस के, और भगवान् की माया देखो कि जमुना का ब्याह ही कहीं तय नहीं हुआ। वैसे बात चली। पास ही रहने वाले महेसर दलाल के लड़के तन्ना के बारे में सारा मुहल्ला कहा करता था कि जमुना का ब्याह इसी से होगा, क्योंकि तन्ना और जमुना में बहुत पटती थी, तन्ना जमुना की बिरादरी का भी था, हालाँकि कुछ नीचे गोत का था और सबसे बड़ी बात यह थी कि महेसर दलाल से सारा मुहल्ला डरता था। महेसर बहुत ही झगड़ालू, घमण्डी और लम्पट था, तन्ना उतना ही सीधा, विनम्र और सच्चरित्र; और सारा मुहल्ला उसकी तारीफ करता था।

लेकिन जैसा पहले कहा जा चुका है कि तन्ना थोड़े नीच गोत का था, और जमुना का खानदान सारी बिरादरी में खरे और ऊँचे होने के लिए प्रख्यात था, अतः जमुना की माँ की राय नहीं पड़ी। चूँकि जमुना के पिता बैंक में साधारण क्लर्क मात्र थे और तनख्वाह से क्या आता-जाता था, तीज त्यौहार, मूडन-देवकाज में हर साल जमा रकम खर्च करनी पड़ती थी। अतः जैसा हर मध्यम श्रेणी के कुटुम्ब में पिछली लड़ाई में हुआ है, बहुत जल्दी सारा जमा रुपया खर्च हो गया और शादी के लिए कानी कौड़ी नहीं बची।

और बेचारी जमुना तन्ना से बातचीत टूट जाने के बाद खूब रोयी, खूब रोयी। फिर आँसू पोंछे, फिर सिनेमा के नये गीत याद किये। और इस तरह से होते-होते एक दिन बीस की उम्र को भी पार कर गयी। और माणिक का यह हाल कि ज्यों-ज्यों जमुना बढ़ती जाये त्यों-त्यों वह इधर-उधर दुबली-मोटी होती जाये और ऐसी कि माणिक को भली भी लगे और बुरी भी। लेकिन एक उसकी बुरी आदत पड़ गयी थी कि चाहे माणिक मुल्ला उसे चिढ़ायें या न चिढ़ायें वह उन्हें कोने-अतरे में पाते ही इस तरह दबोचती थी कि माणिक मुल्ला का दम घुटने लगता था और इसीलिए माणिक मुल्ला उसकी छाँह से कतराते थे।

लेकिन किस्मत की मार देखिए कि उसी समय मुहल्ले में धर्म की लहर चल

पड़ी और तमाम औरतें जिनकी लड़कियाँ अनब्याही रह गयी थीं, जिनके पति हाथ से बेहाथ हुए जा रहे थे, जिनके लड़के लड़ाई में चले गये थे, जिनके जेवर बिक गये थे, जिन पर कर्ज हो गया था; सभी ने भगवान् की शरण ली और कीर्तन शुरू हो गये और कण्ठियाँ ली जाने लगीं। माणिक की भाभी ने भी हनुमान-चौतरा वाले ब्रह्मचारी से कण्ठी ली और नियम से दोनों वक्त भोग लगाने लगीं। और सुबह-शाम पहली टिक्की गऊ माता के नाम सेंकने लगीं। घर में गऊ थी नहीं अतः कोठी की बूढ़ी गाय को वह टिक्की दोनों वक्त खिलायी जाती थी। दोपहर को तो माणिक स्कूल चले जाते थे, दिन का वक्त रहता था, अतः भाभी खुद चादर ओढ़कर गाय को रोटी खिला आती थीं पर रात को माणिक मुल्ला को ही जाना पड़ता था।

गाय के अहाते के पास जाते हुए माणिक मुल्ला की रूह काँपती थी। जमुना का कान खींचना उन्हें अच्छा नहीं लगता था (और अच्छा भी लगता था !) अतः डर के मारे राम का नाम लेते हुए खुशी-खुशी वे गैया के अहाते की ओर जाया करते थे।

एक दिन ऐसा हुआ कि माणिक मुल्ला के यहाँ मेहमान आये और खाने-पीने में ज्यादा रात बीत गयी। माणिक सो गये तो उनकी भाभी ने उन्हें जगाकर टिक्की दी और कहा, "गैया को दे आओ।" माणिक ने काफी बहानेबाजी की लेकिन उनकी एक न चली। अन्त में आँख मलते-मलते अहाते के पास पहुँचे तो क्या देखते हैं कि गाय के पास भूसेवाली कोठरी के दरवाजे पर कोई छाया बिलकुल कफन-जैसे सफेद कपड़े पहने खड़ी है। इनका कलेजा मुँह को आने लगा, पर इन्होंने सुन रखा था कि भूत-प्रेत के आगे आदमी को हिम्मत बाँधे रहना चाहिए और उसे पीठ नहीं दिखलानी चाहिए वरना उसी समय आदमी का प्राणान्त हो जाता है।

माणिक मुल्ला सीना ताने और काँपते पाँवों को सँभाले हुए आगे बढ़ते गये और वह औरत वहाँ से अदृश्य हो गयी। उन्होंने बार-बार आँखें मलकर देखा, वहाँ कोई नहीं था। उन्होंने सन्तोष की साँस ली, गाय को टिक्की दी और लौट चले। इतने में उन्हें लगा कि कोई उनका नाम लेकर पुकार रहा है। माणिक मुल्ला भली-भाँति जानते थे कि भूत-प्रेत मुहल्ले भर के लड़कों का नाम जानते हैं, अतः उन्होंने रुकना सुरक्षित नहीं समझा। लेकिन आवाज नजदीक आती गयी और सहसा किसी ने पीछे से आकर माणिक मुल्ला का कालर पकड़ लिया। माणिक मुल्ला गला फाड़कर चीखने वाले थे कि किसी ने उनके मुँह पर हाथ रख दिया। वे स्पर्श पहचानते थे। जमुना !

लेकिन जमुना ने कान नहीं उमेठे। कहा, "चले आओ।" माणिक मुल्ला बेबस थे। चुपचाप चले गये और बैठ गये। अब माणिक भी चुप और जमुना भी चुप। माणिक जमुना को देखे, जमुना माणिक को देखे और गाय उन दोनों को देखे। थोड़ी देर बाद माणिक ने घबराकर कहा, "हमें जाने दो जमुना !" जमुना ने कहा, "बैठो, बातें करो माणिक। बड़ा मन घबराता है।"

माणिक फिर बैठ गये। अब बातें करें तो क्या करें ? उनकी क्लास में उन दिनों भूगोल में स्वेज नहर, इतिहास में सम्राट् जलालुद्दीन, अकबर हिन्दी में, 'इत्यादि की आत्मकथा' और अंग्रेजी में 'रेड राइडिंग हुड' पढ़ायी जा रही थी, पर जमुना से इसकी बातें क्या करें। थोड़ी देर बाद माणिक ऊबकर बोले, "हमें जाने दो जमुना, नींद लग रही है।"

"अभी कौन रात बीत गयी है। बैठो !" कान पकड़कर जमुना बोली। माणिक ने घबड़ाकर कहा, "नींद नहीं लग रही है, भूख लग रही है।"

"भूख लग रही है ! अच्छा, जाना मत ! मैं अभी आयी।" कह जमुना फौरन पिछवाड़े के सहन में से होकर अन्दर चली गयी। माणिक की समझ में नहीं आया कि आज जमुना एकाएक इतनी दयावान क्यों हो रही है; कि इतने में जमुना लौट आयी और आँचल के नीचे से दो-चार पुए निकालते हुए बोली, "लो खाओ। आज तो माँ भागवत की कथा सुनने गयी हैं।" और जमुना उसी तरह माणिक को अपनी तरफ खींचकर पुए खिलाने लगी।

एक ही पुआ खाने के बाद माणिक मुल्ला उठने लगे तो जमुना बोली, "और खाओ।" तो माणिक मुल्ला ने उसे बताया कि उन्हें मीठे पुए अच्छे नहीं लगते, उन्हें बेसन के नमकीन पुए अच्छे लगते हैं।

"अच्छा कल तुम्हारे लिए बेसन के नमकीन पुए बना रखूँगी। कल आओगे ? कथा तो सात रोज तक होगी।" माणिक ने सन्तोष की साँस ली। उठ खड़े हुए। लौटकर आये तो भाभी सो रही थीं। माणिक मुल्ला चुपचाप गऊमाता का ध्यान करते हुए सो गये।

दूसरे दिन माणिक मुल्ला ने चलने की कोशिश की, क्योंकि उन्हें जाने में डर भी लगता था और वे जाना भी चाहते थे और न जाने कौन-सी चीज थी जो अन्दर ही अन्दर उनसे कहती थी, "माणिक ! यह बहुत बुरी बात है। जमुना अच्छी लड़की नहीं !" और उनके ही अन्दर कोई दूसरी चीज थी जो कहती थी, "चलो माणिक ! तुम्हारा क्या बिगड़ता है ? चलो देखें होता क्या है।" और इन दोनों से बड़ी चीज थी नमकीन बेसन का पुआ जिसके लिए नासमझ माणिक मुल्ला अपना लोक-परलोक दोनों बिगाड़ने के लिए तैयार थे।

उस दिन माणिक मुल्ला गये तो जमुना ने धानी रंग की वाइल की साड़ी पहनी थी, अरगण्डी की पतली ब्लाउज पहनी थी, दो चोटियाँ की थीं, माथे पर चमकती हुई बिन्दी लगायी थी। माणिक अकसर देखते थे कि जब लड़कियाँ स्कूल जाती थीं तो ऐसे सज-धज कर जाती थीं, घर में तो मैली धोती पहनकर फर्श पर बैठकर बातें किया करती थीं, इसलिए उन्हें बड़ा ताज्जुब हुआ। बोले, "जमुना, क्या अभी स्कूल से लौट रही हो ?"

"स्कूल ? स्कूल जाना तो माँ ने चार साल से छुड़ा दिया। घर में बैठी-बैठी या तो कहानियाँ पढ़ती हूँ या तो सोती हूँ।" माणिक मुल्ला की समझ में नहीं आया कि

जब दिन-भर सोना ही है तो इस सज-धज की क्या जरूरत है। माणिक मुल्ला आश्चर्य से मुँह खोले देखते रहे कि जमुना बोली, "आँख फाड़-फाड़कर क्या देख रहे हो ! असली जरमनी की अरगण्डी है। चाचा कलकत्ते से लाये थे, ब्याह के लिए रखी थी। यह देखो छोटे-छोटे फूल भी बने हैं।"

माणिक मुल्ला को बहुत आश्चर्य हुआ उस अरगण्डी को छूकर जो कलकत्ते से आयी थी, असली जरमनी की थी और जिस पर छोटे-छोटे फूल बने थे।

माणिक मुल्ला जब गाय को टिक्की खिला चुके तो जमुना ने बेसन के नमकीन पुए निकाले। मगर कहा, "पहले बैठ जाओ तब खिलायेंगे।" माणिक चुपचाप चलने लगे। जमुना ने छोटी-सी बैटरी जला दी पर माणिक मारे डर के काँप रहे थे। उन्हें हर क्षण यही लगता था कि भूसे में से अब साँप निकला, अब बिच्छू निकला, अब काँतर निकली। रुँधते गले से बोले, "हम खायेंगे नहीं। हमें जाने दो।"

जमुना बोली, "कैथे की चटनी भी है।" अब माणिक मुल्ला मजबूर हो गये। कैथा उन्हें विशेष प्रिय था। अन्त में साँप-बिच्छू के भय का निरोध करके किसी तरह वे बैठ गये। फिर वही आलम कि जमुना को माणिक चुपचाप देखें और माणिक को जमुना और गाय इन दोनों को। जमुना बोली, "कुछ बात करो, माणिक।" जमुना चाहती थी माणिक कुछ उसके कपड़े के बारे में बातें करे, पर जब माणिक नहीं समझे तो वह खुद बोली, "माणिक, यह कपड़ा अच्छा है ?" "बहुत अच्छा है जमुना !" माणिक बोले। "पर देखो, तन्ना है न, वही अपना तन्ना···उसी के साथ जब बातचीत चल रही थी तभी चाचा कलकत्ते से ये सब कपड़े लाये थे। पाँच सौ रुपये के कपड़े थे। पंचम बनिया से एक सेट गिरवी रख के कपड़े लाये थे, फिर बात टूट गयी। अभी तो मैं उसी के यहाँ गयी थी। अकेले मन घबराता है। लेकिन अब तो तन्ना बात भी नहीं करता। इसीलिए कपड़े भी बदले थे।"

"बात क्यों टूट गयी जमुना ?"

"अरे तन्ना बहुत डरपोक है। मैंने तो माँ को राजी कर लिया था पर तन्ना को महेसर दलाल ने बहुत डाँटा। तब से तन्ना डर गया और अब तो तन्ना ठीक से बोलता भी नहीं।" माणिक ने कुछ जवाब नहीं दिया तो फिर जमुना बोली, "असल में तन्ना बुरा नहीं है पर महेसर बहुत कमीना आदमी है, और जब से तन्ना की माँ मर गयी तब से तन्ना बहुत दुःखी रहता है।" फिर सहसा जमुना ने स्वर बदल दिया और बोली, "लेकिन फिर तन्ना ने मुझे आस में क्यों रखा ? माणिक, अब न मुझे खाना अच्छा लगता है न पीना। स्कूल जाना छूट गया है। दिन-भर रोते-रोते बीतता है। हाँ, माणिक।" और उसके बाद वह चुपचाप बैठ गयी। माणिक बोले, "तन्ना बहुत डरपोक था। उसने बड़ी गलती की।" तो जमुना बोली, "दुनिया में यही होता आया है।" और उदाहरण स्वरूप उसने कई कहानियाँ सुनायीं जो उसने पढ़ी थीं या चित्रपट पर देखी थीं।

माणिक उठे तो जमुना ने पूछा कि "रोज आओगे न !" माणिक ने आना-कानी

की तो जमुना बोली, "देखो माणिक, तुमने नमक खाया है और नमक खाकर जो अदा नहीं करता उस पर बहुत पाप पड़ता है क्योंकि ऊपर भगवान् देखता है और सब बही में दर्ज करता है।" माणिक विवश हो गये और उन्हें रोज जाना पड़ा और जमुना उन्हें बिठाकर रोज तन्ना की बातें करती रही।

"फिर क्या हुआ !" जब हम लोगों ने पूछा तो माणिक बोले, "एक दिन वह तन्ना की बातें करते-करते मेरे कन्धे पर सिर रखकर खूब रोयी, खूब रोयी और चुप हुई तो आँसू पोंछे और एकाएक मुझसे वैसी बातें करने लगी जैसी कहानियों में लिखी होती हैं। मुझे बड़ा बुरा लगा और सोचा अब कभी उधर नहीं जाऊँगा, पर मैंने नमक खाया था और ऊपर भगवान सब देखता है। हाँ, यह जरूर था कि जमुना के रोने पर मैं चाहता था कि उसे अपने स्कूल की बातें बताऊँ, अपनी किताबों की बातें बताकर उसका मन बहलाऊँ। पर वह आँसू पोंछकर कहानियों-जैसी बातें करने लगी। यहाँ तक कि एक दिन मेरे मुँह से भी वैसी ही बातें निकल गयीं।"

"फिर क्या हुआ ?" हम लोगों ने पूछा।

अजब बात हुई। असल में इन लोगों को समझना बड़ा मुश्किल है। जमुना चुपचाप मेरी ओर देखती रही और फिर रोने लगी। बोली, "मै बहुत खराब लड़की हूँ। मेरा मन घबराता था इसलिए तुमसे बात करने आती हूँ, पर मैं तुम्हारा नुकसान नहीं चाहती। अब मैं नहीं आया करूँगी।" लेकिन दूसरे दिन जब मैं गया तो देखा फिर जमुना मौजूद है।

फिर माणिक मुल्ला को रोज जाना पड़ा। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन, पाँच दिन—यहाँ तक कि हम लोगों ने ऊबकर पूछा कि अन्त में हुआ क्या तो माणिक मुल्ला बोले, "कुछ नहीं, होता क्या ? जब मैं जाता तो मुझे लगता कोई कह रहा है माणिक उधर मत जाओ—यह बहुत खराब रास्ता है, पर मैं जानता था कि मेरा कुछ बस नहीं है। और धीरे-धीरे मैंने देखा कि न मैं वहाँ जाये बिना रह सकता था न जमुना आये बिना।"

"हाँ यह तो ठीक है पर इसका अन्त क्या हुआ ?"

"अन्त क्या हुआ ?" माणिक मुल्ला ने ताने के स्वर में कहा, "तब तो तुम लोग खूब नाम कमाओगे। अरे क्या प्रेम-कहानियों के दो-चार अन्त होते हैं। एक ही तो अन्त होता है—नायिका का विवाह हो गया, माणिक मुँह ताकते रह गये। अब इसी को चाहे जितने ढंग से कह लो।"

बहरहाल इतनी दिलचस्प कहानी का इतना साधारण अन्त हम लोगों को पसन्द नहीं आया।

फिर भी प्रकाश ने पूछा, "लेकिन इससे यह कहाँ साबित हुआ कि प्रेम-भावना की नींव आर्थिक सम्बन्धों पर है और वर्ग संघर्ष उसे प्रभावित करता है।"

"क्यों ? यह तो बिलकुल स्पष्ट है।" माणिक मुल्ला ने कहा, "अगर हरेक के घर में गाय होती तो यह स्थिति कैसे पैदा होती ? सम्पत्ति की विषमता ही इस प्रेम

का मूल कारण है। न उनके घर गाय होती, न मैं उनके यहाँ जाता, न नमक खाता, न नमक अदा करना पड़ता।"

"लेकिन फिर इससे सामाजिक कल्याण के लिए क्या निष्कर्ष निकला ?" हम लोगों ने पूछा।

"विना निष्कर्ष के मैं कुछ नहीं कहता। मित्रो ! इससे यह निष्कर्ष निकला कि हर घर में एक गाय होनी चाहिए जिसमें राष्ट्र का पशुधन भी बढ़े, सन्तानों का स्वास्थ्य भी बने। पड़ोसियों का भी उपकार हो और भारत में फिर से दूध-घी की नदियाँ बहें।"

यद्यपि हम लोग आर्थिक आधार वाले सिद्धान्त से सहमत नहीं थे पर यह निष्कर्ष हम सबों को पसन्द आया और हम लोगों ने प्रतिज्ञा की कि बड़े होने पर एक-एक गाय अवश्य पालेंगे।

इस प्रकार माणिक मुल्ला की प्रथम निष्कर्षवादी प्रेम-कहानी समाप्त हुई।

अनध्याय

इस कहानी ने वास्तव में हम लोगों को प्रभावित किया था। गरमी के दिन थे। मुहल्ले के जिस हिस्से में हम लोग रहते उधर छतें बहुत तपती थीं, अतः हम सभी लोग हकीमजी के चबूतरे पर सोया करते थे।

रात को जब हम लोग लेटे तो नींद नहीं आ रही थी और रह-रहकर जमुना की कहानी हम लोगों के दिमाग में घूम जाती थी और कभी कलकत्ते की अरगण्डी और कभी बेसन के पुए की याद करके हम लोग हँस रहे थे।

इतने में श्याम भी हाथ में एक बँसखट लिये और बगल में दरी-तकिया दबाये हुए आया। वह दोपहर की मजलिस में शामिल नहीं था, अतः हम लोगों को हँसते देख उत्सुकता हुई और उसने पूछा कि माणिक मुल्ला ने कौन-सी कहानी हम लोगों को बतायी है। जब हम लोगों ने जमुना की कहानी उसे बतायी तो आश्चर्य से देखा गया कि बजाय हँसने के वह उदास हो गया। हम लोगों ने एक स्वर में पूछा कि "कहो श्याम, इस कहानी को सुनकर दुःखी क्यों हो गये ? क्या तुम जमुना को जानते थे ?" तो श्याम रुँधे हुए गले से बोला, "नहीं, मैं जमुना को नहीं जानता, लेकिन आज नब्बे प्रतिशत लड़कियाँ जमुना की परिस्थिति में हैं। वे बेचारी क्या करें ! तन्ना से उसकी शादी नहीं हो पायी, उसके बाप दहेज जुटा नहीं पाये, शिक्षा और मन-बहलाव के नाम पर उसे मिलीं 'मीठी कहानियाँ', 'सच्ची कहानियाँ', 'रसभरी कहानियाँ' तो बेचारी और कर ही क्या सकती थी। यह तो रोने की बात है, इसमें हँसने की क्या बात ! दूसरे पर हँसना नहीं चाहिए। हर घर में मिट्टी के चूल्हे होते हैं, आदि-आदि···"

श्याम की बात सुनकर हम लोगों का जी भर आया और धीरे-धीरे हम लोग सो गये।

दूसरी दोपहर

घोड़े की नाल

अर्थात् किस प्रकार घोड़े की नाल सौभाग्य का लक्षण सिद्ध हुई ?

दूसरे दिन खा-पीकर हम लोग फिर उस बैठक में एकत्र हुए और हम लोगों के साथ श्याम भी आया। जब हम लोगों ने माणिक मुल्ला को बताया कि श्याम जमुना की कहानी सुनकर रोने लगा था तो श्याम झेंपकर बोला, "मैं कहाँ रो रहा था ?" माणिक मुल्ला हँसे और बोले कि "हमारी जिन्दगी की जरा-सी पर्त उखाड़कर देखो तो हर तरफ इतनी गन्दगी और कीचड़ छिपा हुआ है कि सचमुच उस पर रोना आता है लेकिन प्यारे बन्धुओ, मैं तो इतना रो चुका हूँ कि अब आँख में आँसू आता ही नहीं, अतः लाचार होकर हँसना पड़ता है। एक बात और है—जो लोग भावुक होते हैं और सिर्फ रोते हैं, वे रो-धोकर रह जाते हैं, पर जो लोग हँसना सीख लेते हैं वे कभी-कभी हँसते-हँसते उस जिन्दगी को बदल भी डालते हैं।"

फिर खरबूजा काटते हुए बोले, "हटाओ जी इन बातों को। लो आज जौनपुरी खरबूजे हैं। इनकी महक तो देखो ! गुलाब मात है। क्या है श्याम ? क्यों मुँह लटकाये बैठे हो ? अजी मुँह लटकाने से क्या होता है ! मैं अभी तुम्हें बताऊँगा कि जमुना का विवाह कैसे हुआ ?"

हम लोग तो यह सुनाना ही चाहते थे, अतः एक स्वर में बोल उठे, "हाँ, हाँ, आज जमुना के विवाह की कहानी रहे।" पर माणिक मुल्ला बोले, "नहीं पहले खरबूजे के छिलके बाहर फेंक आओ।" जब हम लोगों ने कमरा साफ कर दिया तो माणिक मुल्ला ने सबको आराम से बैठ जाने का आदेश दिया, ताख पर से घोड़े की पुरानी नाल उठा लाये और उसे हाथ में लेकर ऊपर उठाकर बोले, "यह क्या है ?"

"घोड़े की नाल।" हम लोगों ने एक स्वर से उत्तर दिया।

"ठीक !" माणिक मुल्ला ने जादूगर की तरह नाल को आश्चर्यजनक तेजी से उँगली पर नचाते हुए कहा, "यह नाल जमुना के वैवाहिक जीवन का एक महत्वपूर्ण स्मृति-चिह्न है। तुम लोग पूछोगे, कैसे ? वह मैं पूरे विस्तार से बताता हूँ।"

और माणिक मुल्ला ने विस्तार में जो बताया वह संक्षेप में इस प्रकार है :

जब बहुत दिनों तक जमुना की शादी नहीं तय हो पायी और निराश होकर उसकी माँ पूजा पाठ करने लगी और पिता बैंक में ओवरटाइम करने लगे तो एक दिन अकस्मात् उनके घर दूर की एक रिश्तेदार रामो बीबी आयीं और उन्होंने बीज छीलते हुए कहा, "हरे राम-राम ! बिटिया की बाढ़ तो देखो जैसन नाम तैसन करनी। भादों की जमुना अस फाटी पड़त है।" और फिर झुककर माँ के कान में धीमे से बोलीं, "एकर बियाहउ आह कहूँ नाहीं तय कियो ?" जब माँ ने बताया कि बिरादरीवाले दहेज बहुत माँग रहे हैं, कहीं जात-परजात में दे देने से तो अच्छा है कि माँ-बेटी गले से रस्सी बाँधकर कुएँ में गिर पड़ें, तो रामो बीबी फ़ौरन तमककर बोलीं, "ऐ है ! कैसी कुभाखा जिभ्या से निकालत हो जमुना की मर्म्मी ! कहत कुच्छो नाहीं लगत। और कुएँ में गिरैं तुम्हारे दुश्मन, कुएँ में गिरैं अड़ोसपड़ोस वाले, कुएँ में गिरैं तन्ना और महेसर दलाल, दूसरे का सुख देख के जिनके हिया फाटत है।" बहरहाल हुआ यह कि रामो बीबी ने फौरन अपनी कुरती में से अपने भतीजे की कुण्डली निकालकर दी और कहा, "बखत पड़े पर आदमियै आदमी के काम आवत है। जो हारेगाढ़े कबौ काम न आवै ऊ आदमी के रूप में जानवर है। अब ई हमार भतीजा है। घर का अकेला, न सास न ससुर, न ननद न जिठानी, कौनो किचाइन नाहीं है घर में। नाना ओके नाम जागीर लिख गये हैं। घर में घोड़ा है, ताँगा है। पुराना नामी खानदान है। लड़की रानी-महारानी अस बिलसिहै।"

जब शाम को जमुना की माँ ने यह ख़बर बाप को दी तो उसने सामने से थाली खिसका दी और कहा, "उसकी दो बीविया मर चुकी हैं। तेहाजू है लड़का। मुझसे चार-पाँच बरस छोटा होगा।"

"थाली काहे खिसका दी ? न खाओ मेरी बला से। क्यों नहीं ढूँढ़ के लाते ? जब लड़की की उमर मेरे बराबर हो रही है तो लड़का कहाँ से ग्यारह साल का मिल जायेगा ?" इस बात को लेकर पति और पत्नी में बहुत कहा-सुनी हुई। अन्त में जब पत्नी पान बनाकर ले गयी और पति को समझाकर कहा, "लड़का तिहाजू है तो क्या हुआ। मरद और दीवार—जितना पानी खाते हैं उतना पुख्ता होते हैं।"

जब जमुना के द्वारे बारात चढ़ी तो माणिक मुल्ला ने देखा और उन्होंने उस पुख़्ता दीवार का जो वर्णन दिया उससे हम लोग लोट-पोट हो गये। जमुना ने उसे देखा तो बहुत रोयी, जेवर चढ़ा तो बहुत खुश हुई—चलने लगी तो यह आलम था कि आँखों में आँसू नहीं थमते थे और हृदय में उमंगें नहीं थमती थीं।

जब जमुना लौटकर मैके आयी तो सभी सखियों के यहाँ गयी। अंग-अंग पर जेवर लदा था, रोम-रोम पुलकित था और पति की तारीफ करते जबान नहीं थकती थी। "अरी कम्मो, वो तो इतने सीधे हैं कि जरा-सी तीन-पाँच नहीं जानते। ऐ, जैसे

छोटे-से बच्चे हों। पहली दोनों के मैकेवाले सारी जायदाद लूट ले गये, नहीं तो धन फटा पड़ता था। मैंने कहा अब तुम्हारे साले-साली आवेंगे तो बाहर से ही विदा करूँगी, तुम देखते रहना। तो बोले, 'तुम घर की मालकिन हो। सुबह-शाम दाल-रोटी दे दो बस, मुझे क्या करना है।' चौबीसों घण्टा मुँह देखते रहते हैं। जरा-सी कहीं गयी—बस सुनती हो, ओ जी सुनती हो, अजी कहाँ गयीं। मेरा तो नाक में दम है कम्मो ! मुहल्ला-पड़ोसवाले देख-देखकर जलते हैं। मैंने कहा, जितना जलोगे उतना जलाऊँगी। मैं भी तब दरवाजा खोलती हूँ जब धूप सिर पर चढ़ आती है। और ख्याल इतना रखते हैं कि मैं आयी तो ढाई सौ रुपये जबरदस्ती ट्रंक में रख दिये। कहा, हमारी कसम है जो इसे न ले जाओ।"

लेकिन जमुना को जल्दी ही सुसराल लौट जाना पड़ा, क्योंकि एक दिन उसके बाप बहुत परेशान हालत में रात को आठ बजे बैंक से लौटे और बताया कि हिसाब में एक सौ सत्ताइस रुपया तेरह आने की कमी पड़ गयी है, अगर कल सुबह जाते ही उन्होंने जमा न कर दिया तो हिरासत में ले लिये जायेंगे। यह सुनते ही घर में सियापा छा गया और जमुना ने झट ट्रंक से नोट की गड्डी निकालकर छप्पर में खोंस दी और जब माँ ने कहा, "बेटी उधार दे दो !" तो ताली माँ के हाथ में देकर बोली, "देख लो न, सन्दूक में दो-चार दुअन्नियाँ पड़ी होंगी।" लेकिन जमुना ने सोचा आज बला टल गयी तो टल गयी, आखिर बकरे की माँ कब तक खैर मनायेगी। इतना तो पहले लुट गया है अब अगर जमुना भी माँ-बाप पर लुटा दे तो अपने बाल बच्चों के लिए क्या बचायेगी ? अरे माँ-बाप कै दिन के हैं ? उसे सहारा तो उसके बच्चे ही देंगे न !

यहाँ पर माणिक मुल्ला कहानी कहते-कहते रुक गये और हम लोगों की ओर देखकर बोले, "प्यारे मित्रो ! हमेशा याद रखो कि नारी पहले माँ होती है तब और कुछ ! इसका जन्म ही इसलिए होता है कि वह माँ बने। सृष्टि का क्रम आगे बढ़ावे। यही उसकी महानता है। तुमने देखा कि जमुना के मन में पहले अपने बच्चों का ख्याल आया।"

अस्तु, जमुना अपने भावी बाल-बच्चों का ख्याल करके अपनी ससुराल चली गयी और सुख से रहने लगी। सच पूछो तो यहीं जमुना की कहानी का खात्मा होता है।

"लेकिन आपने तो घोड़े की नाल दिखायी थी। इसका तो जिक्र आया ही नहीं ?"

"ओह ! मैंने सोचा देखूँ तुम लोग कितने ध्यान से सुन रहे हो।" और तब उन्होंने उस नाल की घटना भी बतायी।

असल में जमुना के पति तिहाजू यानी पुख्ता दीवार, पर उनमें और जमुना में उतना ही अन्तर था जितना पलस्तर उखड़ी हुई पुरानी दीवार और लिपेपुते तुलसी के चौंतरे में। इधर-उधर के लोग इधर-उधर की बातें करते थे। पर जमुना तन-मन से पति-परायणा थी। पति भी जहाँ उसके गहने कपड़े का ध्यान रखते थे वहीं उसे भजनामृत गंगा-माहात्म्य, गुटका रामायण आदि ग्रन्थ-रत्न लाकर दिया करते थे। और वह भी उसमें 'उत्तम के अस बस मन माहीं' आदि पढ़कर लाभान्वित हुआ करती थी। होते-होते यह हुआ कि धर्म का बीज उसके मन में जड़ पकड़ गया और

भजन-कीर्तन, कथा-सत्संग में उसका चित्त रम गया और ऐसा रमा कि सुबह-शाम, दोपहर रात वह दीवानी घूमती रहे। रोज उसके यहाँ साधु-संतों का भोजन होता रहे और साधु-संत भी ऐसे तपस्वी और रूपवान् कि मस्तक से प्रकाश फूटता था।

वैसे उसकी भक्ति बहुत निष्काम थी किन्तु जब साधु-सन्त उसे आशीर्वाद दें कि 'सन्तानवती भव' तो वह उदास हो जाया करे। उसके पति उसे बहुत समझाया करते थे, "अजी यह तो भगवान् की माया है इसमें उदास क्यों होती हो ?" लेकिन सन्तान की चिंता उन्हें भी थी क्योंकि इतनी बड़ी जागीर के जमींदार का वारिस कोई नहीं था। अन्त में एक दिन वे और जमुना दोनों एक ज्योतिषी के यहाँ गये। जिसने जमुना को बताया कि उसे कार्तिक-भर सुबह गंगा नहाकर चण्डी देवी को पीले फूल और ब्राह्मणों को चना, जौ और सोने का दान करना चाहिए।

जमुना इस अनुष्ठान के लिए तत्काल राजी हो गयी। लेकिन इतनी सुबह किसके साथ जाये ! जमुना ने पति (जमींदार साहब) से कहा कि वे साथ चला करें पर वे ठहरे बूढ़े आदमी, सुबह जरा-सी ठण्डी हवा लगते ही उन्हें ख़ाँसी का दौरा आ जाता था। अन्त में यह तय हुआ कि रामधन ताँगेवाला शाम को जल्दी छुट्टी ले लिया करेगा और सुबह चार बजे आकर ताँगा जोत दिया करेगा।

जमुना नित्य नियम से नहाने जाने लगी। कार्तिक में काफी सर्दी पड़ने लगती है और घाट से मन्दिर तक उसे केवल एक पतली रेशमी धोती पहनकर फूल चढ़ाने जाना पड़ता था। वह थर-थर-थर-थर काँपती थी। एक दिन मारे सर्दी के उसके हाथ-पैर सुन्न पड़ गये। और वह वहीं ठण्डी बालू पर बैठ गयी और यह कहो कि रामधन अगर उसे समूची उठाकर ताँगे पर न बैठा देता तो वह वहीं बैठी-बैठी ठण्ड से गल जाती।

अन्त में रामधन से न देखा गया। उसने एक दिन कहा, "बहूजी, आप काहे जान देय पर उतारु हो। ऐसन तपिस्या तो गौरा माइयो नैं किरिन होइहैं। बड़े-बड़े जोतसी का कहा कर लियो अब एक गरीब मनई का भी कहा कै लेव !" जमुना के पूछने पर उसने बताया, "जिस घोड़े के माथे पर सफेद तिलक हो, उसके अगले बायें पैर की घिसी हुई नाल चन्द्रग्रहण के समय अपने हाथ से निकालकर उसकी अँगूठी बनवाकर पहन ले तो सभी कामना पूरी हो जाती हैं।"

लेकिन जमुना को यह स्वीकार नहीं हुआ क्योंकि पता नहीं चन्द्रग्रहण कब पड़े। रामधन ने बताया कि चन्द्रग्रहण दो-तीन दिन बाद ही है। लेकिन कठिनाई यह है कि नाल अभी नया लगवाया है, वह तीन दिन के अन्दर कैसे घिसेगा और नया कुछ प्रभाव नहीं रखता।

"तो फिर क्या हो, रामधन। तुम्हीं कोई जुगत बताओ !"

"मालकिन, एक ही जुगत है।"

"क्या ?"

"ताँगा रोज कम से कम बारह मील चले। लेकिन मालिक कहीं जाते नहीं। अकेले मुझे ताँगा ले नहीं जाने देंगे। आप चलें तो ठीक रहे।"

"लेकिन हम बारह मील कहाँ जायेंगे ?"

"क्यों नहीं सरकार ! आप सुबह जरा और जल्दी दो-ढाई बजे निकल चलें। गंगापार पक्की सड़क है, बारह मील घुमाकर ठीक टाइम पर हाजिर कर दिया करूँगा। तीन दिन की ही तो बात है।"

जमुना राजी हो गयी और तीन दिन तक रोज ताँगा गंगापार चला जाया करता था। रामधन का अन्दाज ठीक निकला और तीसरे दिन चन्द्रग्रहण के समय नाल उतरवाकर अँगूठी बनवायी गयी और अँगूठी का प्रताप देखिए कि जमींदार साहब के यहाँ नौबत बजने लगी और नर्स ने पूरे एक सौ एक रुपये की बखशीश ली।

जमींदार बेचारे वृद्ध हो चुके थे और उन्हें बहुत कष्ट था, वारिस भी हो चुका था, अतः भगवान् ने उन्हें अपने दरबार में बुला लिया। जमुना पति के बिछोह में धाड़ें मार-मारकर रोयी, चूड़ी-कंगन तोड़ डाले, खाना-पीना छोड़ दिया। अन्त में पड़ोसियों ने समझाया कि छोटा बच्चा है। उसका मुँह देखना चाहिए । जो होना था सो हो गया। काल बली है। उस पर किसका बस चलता है ! पड़ोसियों के बहुत समझाने पर जमुना ने आँसू पोंछे। घर-बार सँभाला। इतनी बड़ी कोठी थी, अकेले रहना एक विधवा महिला के लिए अनुचित था, अतः उसने रामधन को एक कोठरी दी और पवित्रता से जीवन व्यतीत करने लगी।

जमुना की कहानी खत्म हो चुकी थी। लेकिन हम लोगों की शंका थी कि माणिक मुल्ला को यह घिसी नाल कहाँ से मिली, उसकी तो अँगूठी बन चुकी थी। पूछने पर मालूम हुआ कि एक दिन कहीं रेल सफर में माणिक मुल्ला को रामधन मिला। सिल्क का कुरता, पान का डब्बा, बड़े ठाठ थे उसके ! माणिक मुल्ला को देखते ही उसने अपने भाग्योदय की सारी कथा सुनायी और कहा कि सचमुच घोड़े की नाल में बड़ी तासीर होती है। और फिर उसने एक नाल माणिक मुल्ला के पास भेज दी थी, यद्यपि उन्होंने उसकी अँगूठी न बनवाकर उसे हिफाजत से रख लिया।

कहानी सुनाकर माणिक मुल्ला श्याम की ओर देखकर बोले, "देखा श्याम, भगवान् जो कुछ करता है भले के लिए करता है। आखिर जमुना को कितना सुख मिला। तुम व्यर्थ में दुःखी हो रहे थे···क्यों ?"

श्याम ने प्रसन्न होकर स्वीकार किया कि वह व्यर्थ में दुःखी हो रहा था। अन्त में माणिक मुल्ला बोले, "लेकिन अब बताओ इससे निष्कर्ष क्या निकला ?"

हम लोगों में से जब कोई नहीं बता सका तो उन्होंने बताया, इससे यह निष्कर्ष निकला कि दुनिया का कोई भी श्रम बुरा नहीं। किसी भी काम को नीची निगाह से नहीं देखना चाहिए चाहे वह ताँगा हाँकना ही क्यों न हो ?

हम सबों को इस कहानी का यह निष्कर्ष बहुत अच्छा लगा और हम सबों ने शपथ ली कि कभी किसी प्रकार के ईमानदारी के श्रम को नीची निगाह से न देखेंगे चाहे वह कुछ भी क्यों न हो ?

इस तरह माणिक मुल्ला की दूसरी निष्कर्षवादी कहानी समाप्त हुई।

अनध्याय

जमुना की जीवन-गाथा समाप्त हो चुकी थी और हम लोगों को उसके जीवन का ऐसा सुखद समाधान देखकर बहुत संतोष हुआ। ऐसा लगा कि जैसे सभी रसों की परिणति शान्त या निर्वेद में होती है, वैसे ही उस अभागिन के जीवन के सारे संघर्ष और पीड़ा की परिणति मातृत्व से प्लावित, शान्त, निष्कम्प दीपशिखा के समान प्रकाशमान, पवित्र, निष्कलंक वैधव्य में हुई।

रात को जब हम लोग हकीमजी के चबूतरे पर अपनी-अपनी खाट और बिस्तर लेकर एकत्र हुए तो जमुना की जीवन-गाथा हम सबों के मस्तिष्क पर छायी हुई थी और उसको लेकर जो बातचीत तथा वाद-विवाद हुआ उसका नाटकीय विवरण इस प्रकार है :

मैं : [खाट पर बैठकर, तकिये को उठाकर गोद में रखते हुए] भई कहानी बहुत अच्छी लगी।

ओंकार : [जम्हाई लेते हुए] रही होगी।

प्रकाश : [करवट बदलकर] लेकिन तुम लोगों ने उसका अर्थ भी समझा ?

श्याम : [उत्साह से] क्यों, उसमें कौन कठिन भाषा थी ?

प्रकाश : यही तो माणिक मुल्ला की खूबी है। अगर जरा-सा सचेत होकर उनकी बात तुम समझते नहीं गये तो फौरन तुम्हारे हाथ से तत्त्व निकल जायेगा, हलका-फुलका भूसा हाथ आयेगा। अब यह बताओ कि कहानी सुनकर क्या भावना उठी तुम्हारे मन में ? तुम बताओ ?

मैं : [यह समझकर कि ऐसे अवसर पर थोड़ी आलोचना करना विद्वत्ता का परिचायक है] भई, मेरे तो यही समझ में नहीं आया कि माणिक मुल्ला ने जमुना-ऐसी नायिका की कहानी क्यों कही ? शकुन्तला-जैसी भोली-भाली या राधा-जैसी पवित्र नायिका उठाते या अगर बड़े आधुनिक बनते हैं तो सुनीता-जैसी साहसी नायिका उठाते या देवसेना, शेखर की

शशी-वशी तमाम टाइप मिल सकते थे।

प्रकाश : [सुकरात की-सी टोन में] लेकिन यह बताओ कि जिन्दगी में अधिकांश नायिकाएँ जमुना-ऐसी मिलती हैं या राधा और सुधा और गेसू और सुनीता और देवसेना-जैसी ?

मैं : [चालाकी से अपने को बचाते हुए] पता नहीं ! मेरा नायिकाओं के बारे में कोई अनुभव नहीं। यह तो आप ही बता सकते हैं।

श्याम : भाई, हमारे चारों ओर दुर्भाग्य से नब्बे प्रतिशत लोग तो जमुना और रामधन की तरह के होते हैं, पर इससे क्या ! कहानीकार को शिवम् का चित्रण करना चाहिए।

प्रकाश : यह तो ठीक है। पर अगर किसी जमी हुई झील पर आधा इंच बरफ और नीचे अथाह पानी और वहीं एक गाइड खड़ा है जो उस पर से आने वालों को आधा इंच की तो सूचना दे देता है और नीचे के अथाह पानी की खबर नहीं देता तो वह राहगीरों को धोखा देता है या नहीं ?

मैं : क्यों नहीं ?

प्रकाश : और अगर वे राहगीर बरफ टूटने पर पानी में डूब जायें तो इसका पाप गाइड पर पड़ेगा न !

श्याम : और क्या ?

प्रकाश : बस, माणिक मुल्ला भी तुम्हारा ध्यान उस अथाह पानी की ओर दिला रहे हैं जहाँ मौत है, अँधेरा है, कीचड़ है, गन्दगी है। या तो दूसरा रास्ता बनाओ नहीं तो डूब जाओ। लेकिन आधा इंच ऊपर जमी बरफ कुछ काम न देगी। एक ओर नये लोगों का यह रोमानी दृष्टिकोण, यह भावुकता, दूसरी ओर बूढ़ों का यह थोथा आदर्श और झूठी अवैज्ञानिक मर्यादा सिर्फ आधा इंच बरफ है, जिसने पानी की खूँखार गहराई को छिपा रखा है।

मैं :

ओंकार : [ऊब जाते हैं, सोचते हैं कब यह लेक्चर बन्द हो।]

प्रकाश : [उत्साह से कहता जाता है] जमुना निम्न-मध्यवर्ग की भयानक समस्या है। आर्थिक नींव खोखली है। उसकी वजह से विवाह, परिवार, प्रेम, सभी की नींवें हिल गयी हैं। अनैतिकता छायी हुई है। पर सब उस ओर से आँखें मूँदे हैं। असल में पूरी जिन्दगी की व्यवस्था बदलनी होगी !

मैं : [ऊबकर जम्हाई लेता हूँ।]

प्रकाश : क्यों ? नींद आ रही है तुम्हें ? मैंने कै बार तुमसे कहा कि कुछ पढ़ो-लिखो। सिर्फ उपन्यास पढ़ते रहते हो। गम्भीर चीजें पढ़ो। समाज का ढाँचा, उसकी प्रगति, उसमें अर्थ, नैतिकता, साहित्य का स्थान···

मैं : [बात काटकर] मैंने क्या पढ़ा नहीं ? तुम्हीं ने पढ़ा है ? [यह देखकर कि

प्रकाश की विद्वत्ता का रोब लोगों पर जम रहा है, मैं क्यों पीछे रहूँ] मैं भी इसकी मार्क्सवादी व्याख्या दे सकता हूँ–

प्रकाश : क्या ? क्या व्याख्या दे सकते हो ?

मैं : [अकड़कर] मार्क्सवादी !

ओंकार : अरे यार रहने भी दो !

श्याम : मुझे नींद आ रही है।

मैं : देखिए, असल में इसकी मार्क्सवादी व्याख्या इस तरह हो सकती है। जमुना मानवता का प्रतीक है, मध्यवर्ग [माणिक मुल्ला] तथा सामन्तवर्ग [जमींदार] उसका उद्धार करने में सफल रहे ; अन्त में श्रमिकवर्ग [रामधन] ने उसको नयी दिशा सुझायी।

प्रकाश : क्याऽ ऽ ऽ? [क्षण-भर स्तब्ध। फिर माथा ठोंककर] बेचारा मार्क्सवाद भी ऐसा अभागा निकला कि तमाम दुनिया में जीत के झण्डे गाढ़ आया और हिन्दुस्तान में आकर इसे बड़े-बड़े राहु ग्रस गये। तुम ही क्या, उसे ऐसे-ऐसे व्याख्याकार यहाँ मिले हैं कि वह भी अपनी किस्मत को रोता होगा। [जोरों से हँसता है, मैं अपनी हँसी उड़ते देखकर उदास हो जाता हूँ।]

हकीमजी की पत्नी [नेपथ्य से] मैं कहती हूँ यह चबूतरा है या सब्जी मण्डी। जिसे देखो खाटे उठाये चला आ रहा है। आधी रात तक चख-चख-चख-चख ! कल से सबको निकालो यहाँ से।

हकीमजी: [नेपथ्य में काँपती हुई बूढ़ी आवाज] अरे बच्चे हैं। हँस-बोल लेने दे। तेरे अपने बच्चे नहीं हैं दूसरों को क्यों खाने दौड़ती है···

[हम सब पर सकता छा जाता है। मैं बहुत उदास होकर लेट जाता हूँ। नीम पर से नींद की परियाँ उतरती हैं, पलकों पर छम-छम छम-छम नृत्य करती हैं।] [यवनिका-पतन]

तीसरी दोपहर

शीर्षक माणिक मुल्ला ने नहीं बताया

हम लोग सुबह सोकर उठे तो देखा कि रात ही रात सहसा हवा बिलकुल रुक गयी है और इतनी उमस है कि सुबह पाँच बजे भी हम लोग पसीने से तर थे। हम लोग उठकर खूब नहाये मगर उमस इतनी भयानक थी कि कोई भी साधन काम न आया। पता नहीं ऐसी उमस इस शहर के बाहर भी कहीं होती है या नहीं ; पर यहाँ तो जिस दिन ऐसी उमस होती है उस दिन सभी काम रुक जाते हैं। सरकारी दफ्तरों में क्लर्क काम नहीं कर पाते, सुपरिण्टेण्डेण्ट बड़े बाबुओं को डाँटते हैं, बड़े बाबू छोटे बाबुओं पर खीझ उतारते हैं, छोटे बाबू चपरासियों से बदला निकालते हैं और चपरासी गालियाँ देते हुए पानी पिलाने वालों से, भिश्तियों से और मालियों से उलझ जाते हैं; दुकानदार माल बेचकर ग्राहकों को खिसका देते हैं और रिक्शावाले इतना किराया माँगते हैं कि सवारियाँ परेशान होकर रिक्शा न करें। और इन तमाम सामाजिक उथल-पुथल के पीछे कोई ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक प्रगति का सिद्धान्त न होकर केवल तापमान रहता है—टेम्परेचर, उमस, एक-सौ बारह डिगरी फारिनहाइट !

लेकिन इस उमस के बावजूद माणिक मुल्ला की कहानियाँ सुनने का लोभ हम लोगों से नहीं छूट पाता था अतः हम सब के सब नियत समय पर वहीं इकट्ठा हुए और मिलने पर सब में यही अभिवादन हुआ, "आज बहुत उमस है !"

"हाँ जी, बहुत उमस है; ओफ्फोह !"

सिर्फ प्रकाश जब आया और उससे सबने कहा कि आज बहुत उमस है तो फलसफा छाँटते हुए अफलातून की तरह मुँह बनाकर बोला (मेरी इस झल्लाहट-भरी टिप्पणी के लिए क्षमा करेंगे क्योंकि पिछली रात उसने मार्क्सवाद के इस सवाल पर मुझे नीचा दिखाया था और सच्चे संकीर्ण मार्क्सवादियों की तरह से झल्ला उठा था और मैंने तय कर लिया था कि वह सही बात भी करेगा तो मैं उसका विरोध करूँगा। बहरहाल प्रकाश बोला), "भाईजी, उमस हम सबों की जिन्दगी में छायी हुई है, उसके सामने तो यह कुछ

नहीं है। हम सभी निम्न-मध्य श्रेणी के लोगों की जिन्दगी में हवा का एक ताजा झोंका नहीं। चाहे दम घुट जाये पर पत्ता नहीं हिलता, धूप जिसे रोशनी देना चाहिए हमें बुरी तरह झुलसा रही है और समझ में नहीं आता कि क्या करें। किसी न किसी तरह नयी और ताजी हवा के झोंके चलने चाहिए। चाहे लू के ही झोंके क्यों न हों।"

प्रकाश की इस मूर्खता-भरी बात पर कोई कुछ नहीं बोला। (मेरे झूठ के लिए क्षमा करें क्योंकि माणिक ने इस बात की जोर से ताईद की थी, पर मैंने कह दिया था न कि मैं अन्दर ही अन्दर चिढ़ गया हूँ !)

खैर, तो माणिक मुल्ला बोले कि, "जब मैं प्रेम पर आर्थिक प्रभाव की बात करता हूँ तो मेरा मतलब यह रहता है कि वास्तव में आर्थिक ढाँचा हमारे मन पर इतना अजब-सा प्रभाव डालता है कि मन की सारी भावनाएँ उससे स्वाधीन नहीं हो पातीं और हम-जैसे लोग जो न उच्चवर्ग के हैं, न निम्नवर्ग के, जिनके यहाँ रूढ़ियाँ, परम्पराएँ, मर्यादाएँ भी ऐसी पुरानी और विषाक्त हैं कि कुल मिलाकर हम सबों पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि हम यन्त्र-मात्र रह जाते हैं। हमारे अन्दर उदार और ऊँचे सपने खत्म हो जाते हैं और एक अजब-सी जड़ मूर्च्छना हम पर छा जाती है।"

प्रकाश ने जब इसका समर्थन किया तो मैंने इनका विरोध किया और कहा, "लेकिन व्यक्ति को तो हर हालत में ईमानदार बना रहना चाहिए। यह नहीं कि टूटता-फूटता चला जाये।"

तो माणिक मुल्ला बोले, "यह सच है, पर जब पूरी व्यवस्था में बेईमानी है तो एक व्यक्ति की ईमानदारी इसी में है कि वह एक व्यवस्था द्वारा लादी गयी सारी नैतिक विकृति को भी अस्वीकार करे और उनके द्वारा आरोपित सारी झूठी मर्यादाओं को भी, क्योंकि दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। लेकिन हम यह विद्रोह नहीं कर पाते, अतः नतीजा यह होता है कि जमुना की तरह हर परिस्थिति में समझौता करते जाते हैं।"

"लेकिन सभी तो जमुना नहीं होते ?" मैंने फिर कहा।

"हाँ, लेकिन जो इस नैतिक विकृति से अपने को अलग रखकर भी इस तमाम व्यवस्था के विरुद्ध नहीं लड़ते, उनकी मर्यादाशीलता सिर्फ परिष्कृत कायरता होती है। संस्कारों का अन्धानुसरण ! और ऐसे लोग भले आदमी कहलाये जाते हैं, उनकी तारीफ भी होती है, पर उनकी जिन्दगी बेहद करुण और भयानक हो जाती है और सबसे बड़ा दुःख यह है कि वे भी अपने जीवन का यह पहलू नहीं समझते और बैल की तरह चक्कर लगाते चले जाते हैं। मसलन मैं तुम्हें तन्ना की कहानी सुनाऊँ ? तन्ना की याद है न ? वही महेसर दलाल का लड़का !"

लोग व्यर्थ के वाद-विवाद से ऊब गये थे, अतः माणिक मुल्ला ने कहानी सुनानी शुरू की :

अकस्मात् ओंकार ने रोककर कहा, "इस कहानी का शीर्षक ?" माणिक मुल्ला इस व्याघात से झल्ला उठे और बोले, "हटाओ जी, मैं क्या किसी पत्रिका को कहानी

भेज रहा हूँ कि शीर्षक के झगड़े में पड़ूँ। तुम लोग कहानी सुनने आये हो या शीर्षक सुनने ? या मैं उन कहानी-लेखकों में से हूँ जो आकर्षक विषय-वस्तु के अभाव में आकर्षक शीर्षक देकर पत्रों में सम्पादकों और पाठकों का ध्यान खींचा करते हैं !"

यह देखकर कि माणिक मुल्ला ओंकार को डाँट रहे हैं, हम लोगों ने भी ओंकार को डाँटना शुरू किया। यहाँ तक कि जब माणिक मुल्ला ने हम लोगों को डाँटा तो हम लोग चुप हुए और उन्होंने अपनी कहानी प्रारम्भ की :

तन्ना के कोई भाई नहीं था। पर तीनें बहनें थीं। उनमें से जो सबसे छोटी थी उसी के जन्म देने के बाद उसकी माँ गोलोक चली गयी थी। रह गये पिताजी जो दलाल थे। चूँकि बच्चे छोटे थे, उनकी देख-भाल करने वाला कोई नहीं था, अतः तन्ना के पिता महेसर दलाल ने अपनी यह इच्छा जाहिर की कि किसी भले घर की कोई दबी-ढँकी सुशील कन्या मिल जाये तो बच्चों का पालन-पोषण हो जाये, वरना अब उन्हें क्या बुढ़ापे में कोई औरत का शौक चढ़ा है ? राम ! राम ! ऐसी बात सोचना भी नहीं चाहिए। उन्हें तो सिर्फ बच्चों की फिक्र है वरना अब तो बचे-खुचे दिन राम के भजन में और गंगा-स्नान में काट देने हैं। रही तन्ना की माँ, सो तो देवी थी, स्वर्ग चली गयी, महेसर दलाल पापी थे सो रह गये। बच्चों का मुँह देखकर कुछ नहीं करते वरना हरद्वार जाकर बाबा काली कमलीवालों के भण्डारों में दोनों जून भोजन करते और लोक-परलोक सुधारते।

लेकिन मुहल्ले-भर की बड़ी-बूढ़ी औरतें कोई ऐसी सुशील कन्या न जुटा पायीं जो बच्चों का भरण-पोषण कर सके। अन्त में मजबूर होकर महेसर दलाल एक औरत को सेवा-टहल और बच्चों के भरण-पोषण के लिए ले आये।

उस औरत ने आते ही पहले महेसर दलाल के आराम की सारी व्यवस्था की। उनका पलँग, बिस्तर, हुक्का-चिलम ठीक किया, उसके बाद तीनों लड़कियों के चरित्र और मर्यादा की कड़ी जाँच की और अन्त में तन्ना की फिजूलखर्ची रोकने की पूरी कोशिश करने लगी। बहरहाल उसने तमाम बिखरी हुई गृहस्थी को बड़ी सावधानी से सँभाल लिया। अब उसमें अगर तन्ना और उनकी तीनों बहनों को कुछ कष्ट हुआ तो इसके लिए कोई क्या करे ?

तन्ना की बड़ी बहन घर का काम-काज, झाड़ू-बुहार, चौका-बरतन किया करती थी; मझली बहन जिसके दोनों पाँवों की हड्डियाँ बचपन से ही खराब हो गयी थीं, या तो कोने में बैठी रहती थी या आँगन-भर में घिसल-घिसलकर सभी भाई-बहनों को गालियाँ देती रहती थी; सबसे छोटी बहन पचम बनिया के यहाँ से तम्बाकू, चीनी, हल्दी, मिट्टी का तेल और मण्डी से अदरक, नींबू, हरी मिर्च, आलू और मूली वगैरह लाने में व्यस्त रहती थी। तन्ना सुबह उठकर पानी से सारा घर धोते थे, बाँस में झाड़ू बाँधकर घर-भर का जाला पोंछते थे, हुक्का भरते थे, इतने में स्कूल का वक्त हो जाता था। लेकिन खाना इतनी जल्दी कहाँ से बन सकता था, अतः बिना खाये ही स्कूल चले जाते थे। स्कूल से लौटकर आने पर उन्हें फिर शाम के लिए लकड़ी चीरना

पड़ती थी, बुरादे की अँगीठी भरनी पड़ती थी, दीया-बत्ती करना पड़ती थी, बुआ (उस औरत को सब बच्चे बुआ कहा करें यह महेसर दलाल का हुक्म था) का बदन भी अकसर दबाना पड़ता था क्योंकि बेचारी काम करते-करते थक जाती थी और तब तन्ना चबूतरे के सामने लगी हुई म्यूनिसिपैलिटी की लालटेन के मन्द-मधुर प्रकाश में स्कूल का काम किया करते थे। घर में लालटेन एक ही थी और वह बुआ के कमरे में जलती-बुझती रहती थी।

तन्ना का दिल कमजोर था। अतः तन्ना अकसर माँ की याद कर-कर रोया करते थे और उन्हें रोते देखकर बड़ी और छोटी बहन भी रोने लगती थी और मझली अपने दोनों टूटे पैर पटककर उन्हें गालियाँ देने लगती थी और दूसरे दिन वह बुआ से या बाप से शिकायत कर देती थी और बुआ माथे में आलता बिन्दी लगाते हुए रोती हुई कहती थीं, "इन कम्बख्तों को मेरा खाना-पीना, उठना-बैठना, पहनना-ओढ़ना अच्छा नहीं लगता। पानी पी-पीकर कोसते रहते हैं। आखिर कौन तकलीफ है इन्हें ! बड़े-बड़े नवाब के लड़के ऐसे नहीं रहते जैसे तन्ना बाबू बुल्ला बना के, पाटी पार के, छैल चिकनियों की तरह घूमते हैं।" और उसके बाद महेसर दलाल को परिवार की मर्यादा कायम करने के लिए तन्ना को बहुत मारना पड़ता था, यहाँ तक कि तन्ना की पीठ में नील उभर आती थी और बुखार चढ़ आता था और दोनों बहनें डर के मारे उनके पास जा नहीं पातीं और मझली बहन मारे खुशी के आँगन-भर में घिसलती फिरती थी और छोटी बहन से कहती थी, "खूब मार पड़ी। अरे अभी क्या ? राम चाहें तो एक दिन पैर टूटेंगे, कोई मुँह में दाना डालने वाला नहीं रह जायेगा। अरी चल, आज मेरी चोटी तो कर दे ! आज खूब मार पड़ी है तन्ना को।"

इन हालातों में जमुना की माँ ने तन्ना को बहुत सहारा दिया। उनके यहाँ पूजा-पाठ अकसर होता रहता था और उसमें वे पाँच बन्दर और पाँच क्वाँरी कन्याओं को खिलाया करती थीं। बन्दरों में तन्ना और कन्याओं में उनकी बहनों को आमन्त्रण मिलता था और जाते समय बुआ साफ-साफ कह देती थीं कि दूसरों के घर जाकर दीनों की तरह नहीं खाना चाहिए आधी पूड़ियाँ बचाकर ले आनी चाहिए। वे लोग यही करते, और चूँकि पूड़ी खाने से मेदा खराब हो जाता है अतः बेचारी बुआ पूड़ियाँ अपने लिए रखकर रोटी बच्चों को खिला देतीं।

तन्ना को अकसर किसी न किसी बहाने जमुना बुला लेती थी और अपने सामने तन्ना को बिठाकर खाना खिलाती थी। तन्ना खाते जाते थे और रोते जाते थे क्योंकि यद्यपि जमुना उनसे छोटी थी पर पता नहीं क्यों उसे देखते ही तन्ना को अपनी माँ की याद आ जाती थी और तन्ना को रोते देखकर जमुना के मन में भी ममता उमड़ पड़ती और जमुना घण्टों बैठकर उनसे सुख-दुःख की बातें करती रहती। होते-होते यह हो गया कि तन्ना के लिए कोई था तो जमुना थी और जमुना को चौबीसों घण्टा अगर किसी की चिन्ता थी तो तन्ना की। अब इसी को आप प्रेम कह लें या कुछ और !

जमुना की माँ से यह बात छिपी नहीं रही, क्योंकि अपनी उम्र में वे भी जमुना

ही रही होंगी—और उन्होंने बुलाकर जमुना को बहुत समझाया और कहा कि तन्ना वैसे बहुत अच्छा लड़का है पर नीच गोत का है और उसके खानदान में अभी तक अपने से ऊँचे गोत में ही ब्याह हुआ है। पर जब जमुना बहुत रोयी और उसने तीन दिन खाना नहीं खाया तो उसकी माँ ने आधे पर तोड़ कर लेने का निर्णय किया यानी उन्होंने कहा कि अगर तन्ना घरजमाई बनना पसंद करे तो इस प्रस्ताव पर गौर किया जा सकता है।

पर जैसा पहले कहा जा चुका है कि तन्ना थे ईमानदार आदमी और उन्होंने साफ कह दिया कि पिता, कुछ भी हो, आखिरकार पिता है। उनकी सेवा करना उसका धर्म है। वे घरजमाई-जैसी बात भी नहीं सोच सकते। इस पर जमुना के घर में काफी संग्राम मचा पर अन्त में जीत जमुना की माँ की रही कि जब दहेज होगा तब ब्याह करेंगे, नहीं लड़की क्वाँरी रहेगी। रास्ता नहीं सूझेगा तो लड़की पीपल से ब्याह देंगे पर नीचे गोतवालों को नहीं देंगे।

जब यह बात महेसर दलाल तक पहुँची तो उनका खून उबल उठा और उन्होंने पूछा—कहाँ है तन्ना ? मालूम हुआ मैच देखने गया है तो उन्होंने चीख मारकर कहा ताकि जमुना के घर तक सुनाई दे—"आने दो आज हरामजादे को। खाल न उधेड़ दी तो नाम नहीं। लकड़ी के ठूँठ को साड़ी पहनाकर नौबत बजवाकर ले आऊँगा पर उनके यहाँ मैं लड़के का ब्याह करूँगा जिनके यहाँ··· ?" और उसके बाद उनके यहाँ का जो वर्णन महेसर दलाल ने दिया उसे जाने ही दीजिए। बहरहाल बुआ ने तीन दिन तक खाना नहीं दिया और महेसर ने इतना मारा कि मुँह से खून निकल आया और तीसरे दिन भूख से व्याकुल तन्ना छत पर गये तो जमुना की माँ ने उन्हें देखते ही झट से खिड़की बन्द कर ली। जमुना छज्जे पर धोती सुखा रही थी, क्षण-भर इनकी ओर देखती रही फिर चुपचाप बिना धोती सुखाये नीचे उतर गयी। तन्ना चुपचाप थोड़ी देर उदास खड़े रहे फिर आँखों में आँसू भरे नीचे उतर आये और समझ गये कि उनका जमुना पर जो भी अधिकार था वह खत्म हो गया और जैसा कहा जा चुका है कि वे ईमानदार आदमी थे, अतः उन्होंने कभी उधर का रुख भी न किया हालाँकि उधर देखते ही उनकी आँखों में आँसू छलक जाते थे और लगता था जैसे गले में कोई चीज फँस रही हो, सीने में कोई सूजा चला रहा हो। धीरे-धीरे तन्ना का मन भी पढ़ने से उचट गया और वे एफ.ए. के पहले साल में ही फेल हो गये।

महेसर दलाल ने उन्हें फिर खूब मारा, उनकी मझली बहन खुश होकर अपने लुंज-पुंज पैर पटकने लगी, और हालाँकि तन्ना खूब रोये और दबी जबान इसका विरोध भी किया, पर महेसर दलाल ने उनका पढ़ना-लिखना छुड़ाकर उन्हें आर.एम.एस. में भरती करा दिया और वे स्टेशन पर डाक का काम करने लगे । उसी समय महेसर दलाल की निगाह में एक लड़की···

(यहाँ पर मैं यह साफ-साफ कह दूँ कि या तो कहानी की विषय-वस्तु के कारण हो, या उस दिन की सर्वग्रासी उमस के कारण, लेकिन उस दिन माणिक मुल्ला की

कथा-शैली में वह चटपटापन नहीं था, जो पिछली दो कहानियों में था। अजब ढंग से नीरस शैली में वे विवरण देते चले जा रहे थे और हम लोग भी किसी तरह ध्यान लगाने की कोशिश कर रहे थे। उमस बहुत थी कहानी में भी, कमरे में भी।)

खैर तो उसी समय महेसर दलाल की निगाह में एक लड़की आयी जिसके बाप मर चुके थे। माँ की अकेली सन्तान थी। माँ की उम्र चाहे कुछ रही हो पर देखकर यह कहना कठिन था माँ-बेटी में कौन उन्नीस है कौन बीस। कठिनाई एक थी, लड़की इण्टर के इम्तहान में बैठ रही थी हालाँकि उम्र में तन्ना से बहुत छोटी थी। लेकिन मुसीबत यह थी कि उस रूपवती विधवा के पास जमीन-जायदाद काफी थी, न कोई देवर था, न कोई लड़का। अतः उसकी सहायता और रक्षा के खयाल से तन्ना को इण्टरमीडिएट पास बताकर महेसर दलाल ने उस लड़की के साथ तन्ना की बात पक्की कर ली मगर इस शर्त के साथ कि शादी तब होगी जब महेसर दलाल अपनी लड़की को निबटा लेंगे और तब तक लड़की पढ़ेगी नहीं।

चूँकि लड़की की ओर से भी सारा इन्तजाम महेसर दलाल को करना था। अतः वे ग्यारह-बारह बजे रात तक लौट पाते थे। और कभी-कभी रात को भी वहीं रह जाना पड़ता था क्योंकि लड़ाई चल रही थी और ब्लैकआउट रहता था। लड़की का घर उसी मोहल्ले की एक दूसरी बस्ती में था जिसमें दोनों तरफ फाटक लगे थे, जो ब्लैकआउट में नौ बजते ही बन्द हो जाते थे।

बुआ ने इसका विरोध किया और नतीजा यह हुआ कि महेसर दलाल ने साफ-साफ कह दिया कि उसके घर में रहने से मुहल्ले में चारों तरफ चार आदमी चार तरह की बातें करते हैं। महेसर दलाल ठहरे इज्जतदार आदमी, उन्हें बेटे-बेटियों का ब्याह निबटाना है और यह ढोल कब तब अपने गले बाँधे रहेंगे। अन्त में हुआ यह कि बुआ जैसे हँसते, इठलाते हुए आयी थीं वैसे ही रोते-कलपते अपनी गठरी-मुठरी बाँधकर चली गयीं और बाद में मालूम हुआ कि तन्ना की माँ के तमाम जेवर और कपड़े जो बहन की शादी के लिए रखे हुए थे गायब हैं।

इसने तन्ना पर एक भयानक भार लाद दिया। महेसर दलाल का उन दिनों अजब हाल था। मुहल्ले में यह अफवाह फैली हुई थी कि महेसर दलाल जो कुछ करते हैं वह एक साबुन बेचनेवाली लड़की को दे आते हैं। तन्ना को घर का भी सारा खर्च चलाना पड़ता था, ब्याह की तैयारी भी करनी पड़ती थी, दोपहर को ए.आर.पी. में काम करते थे, रात को आर.एम. एस. में और नतीजा यह हुआ कि उनकी आँखें धँस गयीं, पीठ झुक गयी, रँग झुलस गया और आँखों के आगे काले धब्बे उड़ने लगे।

जैसे-तैसे करके बहन की शादी निबटी। शादी में जमुना आयी थी पर तन्ना से बोली नहीं। एक दालान में दोनों मिले तो चुपचाप बैठे रहे। जमुना नाखून से फर्श खोदती रही, तन्ना तिनके से दाँत खोदते रहे। यों जमुना बहुत सुन्दर निकल आयी थी और गुजराती जूड़ा बाँधने लगी थी, लेकिन यह कहा जा चुका है कि तन्ना ईमानदार आदमी थे। तन्ना का फलदान चढ़ा तो वह और भी सजधज से आयी और

उसने तन्ना से एक सवाल पूछा, "भाभी क्या बहुत सुन्दर हैं तन्ना ?" "हाँ !" तन्ना ने सहज भाव से बतला दिया तो रुँधते गले से बोली, "मुझसे भी !" तन्ना कुछ नहीं बोले, घबराकर बाहर चले आये और सुबह के लिए लकड़ी चीरने लगे।

तन्ना की शादी के बाद जमुना ने भाभी से काफी हेल-मेल बढ़ा लिया। रोज सुबह-शाम आती, तन्ना से बात भी न करती। दिन-भर भाभी के पास बैठी रहती। भाभी बहुत पढ़ी-लिखी थी, तन्ना से भी ज्यादा और थोड़ी घमण्डी भी थी। बहुत जल्दी मैके चली गयी तो एक दिन जमुना आयी और तन्ना से ऐसी-वैसी बातें करने लगी जैसी उसने कभी नहीं की थीं तो तन्ना ने उसके पाँव छूकर उसे समझाया कि जमुना, तुम कैसी बातें करती हो ? तो जमुना कुछ देर रोती रही और फिर फुफकारती हुई चली गयी।

उन्हीं दिनों मुहल्ले में एक अजब की घटना हुई। जिस साबुन वाली लड़की का नाम महेसर दलाल के साथ लिया जाता था वह एक दिन मरी हुई पायी गयी। उसकी लाश भी गायब कर दी गयी और महेसर दलाल पुलिस के डर के मारे जाकर समधियाने में रहने लगे।

तन्ना की जिन्दगी अजब-सी थी। पत्नी ज्यादा पढ़ी थी, ज्यादा धनी घर की थी, ज्यादा रूपवती थी, हमेशा ताने दिया करती थी, मझली बहन घिसल-घिसल कर गालियाँ देती रहती थी, "राम करे दोनों पाँव में कीड़े पडे !" अफसर ने उनको निकम्मा करार दिया था और उन्हें ऐसी ड्यूटी दे दी थी कि हफ्ते में चार दिन और चार रातें रेल के सफर में बीतती थीं और बाकी दिन हेडक्वार्टर में डाँट खाते-खाते। उनकी फाइल में बहुत शिकायतें लिख गयी थीं। उन्हीं दिनों उनके यहाँ यूनियन बनी और वे ईमानदार होने के नाते उससे अलग रहे, नतीजा यह हुआ कि अफसर भी नाराज और साथी भी।

इसी बीच में जमुना का ब्याह हो गया, महेसर दलाल गुजर गये, पहला बच्चा होने में पत्नी मरते-मरते बची और बचने के बाद वह तन्ना से गन्दी छिपकली से भी ज्यादा नफरत करने लगी। छोटी बहन ब्याह के काबिल हो गयी और तन्ना सिर्फ इतना कर पाये कि सूखकर काँटा हो गये, कनपटियों के बाल सफेद हो गये, झुककर चलने लगे, दिल का दौरा पड़ने लगा, आँख से पानी आने लगा और मेदा इतना कमजोर हो गया कि एक कौर भी हजम नहीं होता था।

डाक ले जाते हुए एक बार रेल में नीमसार जाती हुई तीर्थयात्रिणी जमुना मिली। साथ में रामधन था। जमुना बड़ी ममता से पास आकर बैठ गयी, उसके बच्चे ने मामा को प्रणाम किया। जमुना ने दोनों को खाना दिया। कौर तोड़ते हुए तन्ना की आँख में आँसू आ गये। जमुना ने कहा भी कि कोठी है, ताँगा है, खुली आबहवा है, आकर कुछ दिन रहो, तन्दुरुस्ती सँभल जायेगी पर बेचारे तन्ना ! नैतिकता और ईमानदारी बड़ी चीज होती है।

लेकिन उस सफर से जो तन्ना लौटे तो फिर पड़ ही गये। महीनों बुखार आया।

रोग के बारे में डॉक्टरों की मुख्तलिफ राय थी। कोई हड्डी का बुखार बताता था, तो कोई खून की कमी, तो कोई टी.बी. भी बता रहा था। घर का यह हाल कि एक पैसा पास नहीं, पत्नी का सारा जेवर लेकर सास अपने घर चली गयी, छोटी बहन रोया करे, मझली घिसल-घिसलकर कहे, "अभी क्या अभी तो कीड़े पड़ेंगे !" सिर्फ यूनियन क़े कुछ लोग आकर अच्छी-भली सलाहें दे जाते थे– साफ हवा में रखो, फलों का रस दो, बिस्तर रोज बदल देना चाहिए। बेचारे और करते ही क्या !

होते-होते जब नौबत यहाँ तक पहुँची कि उन्हें दफ्तर से खारिज कर दिया गया, घर में फाके होने लगे तो उनकी सास आकर अपनी लड़की को लिवा ले गयी और बोली, "जब कमर में बूता नहीं था तो भाँवरें क्यों फिरायी थीं ? और फिर यूनियन-फूनियन के गुण्डे आवारे आकर घर में हुड़दंग मचाते रहते हैं। तन्ना की बहनें उनके सामने चाहे निकलें चाहे नाचें-गायें, उनकी लड़की यह पेशा नहीं कर सकती।"

इधर यूनियन उनकी नौकरी के लिए लड़ रही थी और जब वे बहाल हो गये तो लोगों ने सलाह दी, दो हफ्ते के लिए चले जायें, बाकी लोग उनका काम करा दिया करेंगे और उसके बाद फिर छुट्टी ले लेंगे।

उनका तन हड्डी का ढाँचा-भर रह गया था। चलते हुए आप नजदीक से पसलियों की खड़खड़ाहट तक सुन सकते थे। किसी तरह हिम्मत बाँधकर गये। अफसर लोग चिढ़े हुए थे। मेल ट्रेन पर रात की ड्यूटी लगा दी और वह भी ऐन होली के दिन। रंग में भीगते हुए भी थर-थर काँपते हुए स्टेशन पहुँचे। सारा बदन जल रहा था। काम तो साथियों ने मिलकर कर दिया, वे चुपचाप पड़े रहे। डिब्बे में अन्दर सीलन थी। बदन टूट रहा था, नसें ढीली पड़ गयी थीं। सुबह हुई टूण्डला आया। थोड़ी-थोड़ी धूप निकल आयी थी। वे जाकर दरवाज़े के पास खड़े हो गये। गाड़ी चल दी। पाँव थर-थर काँप रहे थे, सहसा इंजन के पानी की टंकी की झूलती हुई बाल्टी इनकी कनपटियों में लगी और फिर इन्हें होश नहीं रहा।

आँख खुली तो टूण्डले के रेलवे अस्पताल में थे। दोनों पाँव नहीं थे। आस-पास कोई नहीं था, बेहद दर्द था। खून इतना निकल चुका था कि आँख से कुछ ठीक दिखाई नहीं पड़ता था। सोचा, किसी को बुलावें तो मुँह से जमुना का नाम निकला, फिर अपने बच्चे का, फिर बापू (महेसर) का और फिर चुप हो गये।

लोगों ने बहुत पूछा, "किसे तार दे दें, क्या किया जाये ?" पर वे कुछ नहीं बोले। सिर्फ मरने के पहले उन्होंने अपनी दोनों कटी टाँगें देखने की इच्छा प्रकट की और वे लायी गयीं तो ठीक से देख नहीं सकते थे, अतः बार-बार उन्हें छूते थे, दबाते थे, उठाने की कोशिश करते थे, और हाथ खींच लेते थे और थर-थर काँपने लगते थे।

पता नहीं मुझे कैसा लगा कि मैं निष्कर्ष सुनने की प्रतीक्षा किये बिना चुपचाप उठकर चला आया।

अनध्याय

बेहद उमस ! मन की गहरी से गहरी पर्त में एक अजब-सी बेचैनी। नींद आ भी रही है और नहीं भी आ रही। नीम की डालियाँ खामोश हैं। बिजली के प्रकाश में उनकी छायाएँ मकानों, खपरैलों, बारजों और गलियों में सहमी खड़ी हैं।

मेरे अर्धसुप्त मन में असम्बद्ध स्वप्न-विचारों का सिलसिला।

स्वर्ग का फाटक। रूप, रेखा, रंग, आकार कुछ नहीं, जैसा अनुमान कर लें। अतियथार्थवादी कविताएँ जिनका अर्थ कुछ नहीं, जैसा अनुमान कर लें। फाटक पर रामधन बाहर बैठा है। अन्दर जमुना श्वेतवसना, शान्त, गम्भीर। उसकी विशृंखल वासना, उसका वैधव्य पुरइन के पत्तों पर पड़ी ओस की तरह बिखर चुका है, वह वैसी ही है जैसी तन्ना को प्रथम बार मिली थी।

फाटक पर घोड़े की नालें जड़ी हैं। एक, दो, असंख्य ! दूर धुँधले क्षितिज से एक पतला धुएँ की रेखा-सा रास्ता चला आ रहा है। उस पर कोई दो चीजें रेंग रही हैं। रास्ता रह-रहकर काँप उठता है, जैसे तार का पुल।

बादलों में एक टार्च जल उठती है। राह पर तन्ना चले आ रहे हैं। आगे-आगे तन्ना, कटे पाँवों से घिसलते हुए, पीछे-पीछे उनकी दो कटी टाँगें लड़खड़ाती चली आ रही हैं। टाँगों पर आर.एम. एस. के रजिस्टर लदे हैं।

फाटक पर पाँव रुक जाते हैं। फाटक खुल जाते हैं। तन्ना फाइल उठाकर अन्दर चले जाते हैं। दोनों पाँव बाहर छूट जाते हैं। बिस्तुइया की कटी हुई पूँछ की तरह छटपटाते हैं।

कोई बच्चा रो रहा है। वह तन्ना का बच्चा है। दबे हुए स्वर : यूनियन, एस. एम.आर., एम. आर. एस., आर. एम. एस., यूनियन। दोनों कटे पाँव वापस चल पड़ते हैं, धुएँ का रास्ता तार के फूल की तरह काँपता है।

दूर किसी स्टेशन से कोई डाकगाड़ी छूटती है।...

चौथी दोपहर

मालवा की युवरानी देवसेना की कहानी

आँख लग जाने के थोड़ी देर बाद सहसा उमस चीरते हुए हवा का एक झोंका आया और फिर तो इतने तेज झकोरे आने लगे कि नीम की शाखें झूम उठीं। थोड़ी देर में तारों पर एक काला परदा छा गया। हवाएँ अपने साथ बादल ले आयी थीं। सुबह हम लोग वहुत देर तक सोये क्योंकि हवा चल रही थी और धूप का कोई सवाल नहीं था।

पता नहीं देर तक सोने का नतीजा हो या बादलों का, क्योंकि कालिदास ने भी कहा है—"रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च…" पर मेरा मन बहुत उदास था और मैं लेटकर कोई किताब पढ़ने लगा, शायद 'स्कन्दगुप्त' जिसमें अन्त में नायिका देवसेना राग विहाग में 'आह वेदना मिली बिदाई' गाती है और घुटने टेककर बिदा माँगती है— इस जीवन के देवता और उस जन्म के प्राप्य क्षमा ! और उसके बाद अनन्त विरह के साथ परदा गिर जाता है।

उसको पढ़ने से मेरा मन और भी उदास हो गया और मैंने सोचा चलो माणिक मुल्ला के यहाँ ही चला जाये। मैं पहुँचा तो देखा कि माणिक मुल्ला चुपचाप बैठे खिड़की की राह बादलों की ओर देख रहे हैं और कुरसी से लटकाये हुए दोनों पाँव धीरे-धीरे हिला रहे हैं। मैं समझ गया कि माणिक मुल्ला के मन में कोई बहुत पुरानी व्यथा जाग गयी है क्योंकि ये लक्षण उसी बीमारी के होते हैं। ऐसी हालत में साधारणतया माणिक-जैसे लोगों की दो प्रतिक्रियाएँ होती हैं। अगर कोई उनसे भावुकता की बात करे तो वे फौरन उसकी खिल्ली उड़ायेंगे, पर जब वह चुप हो जायेगा तो धीरे-धीरे खुद वैसी ही बातें छेड़ देंगे। यही माणिक ने भी किया। जब मैंने उनसे कहा कि मेरा मन बहुत उदास है तो वे हँसे और मैंने जब कहा कि कल रात के सपने ने मेरे मन पर बहुत असर डाला है तो वे और भी हँसे। और बोले, "उस सपने से तो दो ही बातें मालूम होती हैं।"

"क्या ?" मैंने पूछा।

"पहली तो यह कि तुम्हारा हाजमा ठीक नहीं है, दूसरे यह कि तुमने डाँटे की डिवाइन कामेडिया पढ़ी है जिसमें नायक को स्वर्ग में नायिका मिलती है और उसे ईश्वर के सिंहासन तक ले जाती है।" जब मैंने झेंपकर यह स्वीकार किया कि दोनों बातें बिलकुल सच हैं तो फिर वे चुप हो गये और उसी तरह खिड़की की राह बादलों की ओर देखकर पाँव हिलाने लगे। थोड़ी देर बाद बोले, "पता नहीं तुम लोगों को कैसा लगता है, मुझे तो बादलों को देखकर वैसा लगता है जैसे उस घर को देखकर लगता है जिसमें हमने अपना हँसी-खुशी से बचपन बिताया हो और जिसे छोड़कर हम पता नहीं कहाँ-कहाँ घूमे हों और भूलकर फिर उसी मकान के सामने बरसों बाद आ पहुँचे हों।" जब मैंने स्वीकार किया कि मेरे मन में भी यही भावना होती है तो और भी उत्साह में भरकर बोले, "देखो, अगर जिन्दगी में फूल न होते, बादल न होते, पवित्रता न होती, प्रकाश न होता, सिर्फ अँधेरा होता, कीचड़ होती, गन्दगी होती तो कितना अच्छा होता ! हम सब उसमें कीड़े की तरह बिलबिलाते और मर जाते, कभी अन्तःकरण में किसी तरह की छटपटाहट न होती। लेकिन बड़ा अभागा होता है वह दिन जिस दिन हमारी आत्मा पवित्रता की एक झलक पा लेती है, रोशनी का एक कण पा लेती है क्योंकि उसके बाद सदियों तक अँधेरे में कैद रहने पर भी रोशनी की प्यास उसमें मर नहीं पाती, उसे तड़पाती रहती है। वह अँधेरे से समझौता कर ले पर उसे चैन कभी नहीं मिलता।" मैं उनकी बातों से पूर्णतया सहमत था पर लिख चाहे थोड़ा-बहुत लूँ, मुझे उन दिनों अच्छी हिन्दी बोलने का इतना अभ्यास नहीं था अतः उनकी उदासी से सहमति प्रकट करने के लिए मैं चुपचाप मुँह लटकाये बैठा रहा या बिलकुल उन्हीं की तरह मुँह लटकाये हुए बादलों की ओर देखता रहा और नीचे पाँव झुलाता रहा। माणिक मुल्ला कहते गये–"अब यही प्रेम की बात लो। यह सच है कि प्रेम आर्थिक स्थितियों से अनुशासित होता है, लेकिन मैंने जो जोश में कह दिया था कि प्रेम आर्थिक निर्भरता का ही दूसरा नाम है, यह केवल आंशिक सत्य है। इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि प्यार–" यहाँ माणिक मुल्ला रुक गये और मेरी ओर देखकर बोले, "क्षमा करना, तुम्हारी अभ्यस्त शैली में कहूँ तो इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि प्यार आत्मा की गहराइयों में सोये हुए सौन्दर्य के संगीत को जगा देता है, हममें अजब-सी पवित्रता, नैतिक निष्ठा और प्रकाश भर देता है आदि-आदि। लेकिन···"

"लेकिन क्या ?" मैंने पूछा।

"लेकिन हम सब परम्पराओं, सामाजिक परिस्थितियों, झूठे बन्धनों में इस तरह कसे हुए हैं कि उसे सामाजिक स्तर पर ग्रहण नहीं कर पाते, उसके लिए संघर्ष नहीं कर पाते और बाद में अपनी कायरता और विवशताओं पर सुनहरा पानी फेरकर उसे चमकाने की कोशिश करते रहते हैं। इस रूमानी प्रेम का महत्त्व है, पर मुसीबत यह है कि वह कच्चे मन का प्यार होता है, उसमें सपने, इन्द्रधनुष और फूल तो काफी मिकदार में होते हैं पर वह साहस और परिपक्वता नहीं होती जो इन सपनों और

फूलों को स्वस्थ सामाजिक सम्बन्ध में बदल सके। नतीजा यह होता है कि थोड़े दिन बाद यह सब मन से उसी तरह गायब हो जाता है जैसे बादल की छाँह। आखिर हम हवा में तो नहीं रहते हैं और जो भी भावना हमारे सामाजिक जीवन की खाद नहीं बन पाती, जिन्दगी उसे झाड़-झंखाड़ की तरह उखाड़ फेंकती है।"

ओंकार, श्याम और प्रकाश भी तब तक आ गये थे। और हम सब लोग मन ही मन इन्तजार कर रहे थे कि माणिक मुल्ला कब अपनी कहानी शुरू करें, पर उनकी खोयी-सी मनःस्थिति देखकर हम लोगों की हिम्मत नहीं पड़ रही थी।

इतने में माणिक मुल्ला खुद हम लोगों के मन की बात समझ गये और सहसा अपने दिवास्वप्नों की दुनिया से लौटते हुए फीकी हँसी हँसकर बोले, "आज मैं तुम लोगों को एक ऐसी लड़की की कहानी सुनाऊँगा, जो ऐसे बादलों के दिन मुझे बार-बार याद आ जाती है। अजब थी वह लड़की !"

इसके बाद माणिक मुल्ला ने जब कहानी प्रारम्भ की तभी मैंने टोका और उनको याद दिलायी कि उनकी कहानी में समय का विस्तार इतना सीमाहीन था कि घटनाओं का क्रम बहुत तेजी से चलता गया और वे विवरण में इतनी तेजी से चले कि वैयक्तिक मनोविश्लेषण और मनःस्थिति निरूपण पर ठीक से ध्यान नहीं दे पाये। माणिक मुल्ला ने पिछली कहानी की इस कमी को स्वीकार किया, लेकिन लगता है अन्दर-अन्दर उन्हें कुछ लगा क्योंकि उन्होंने चिढ़कर बहुत कड़ुवे स्वर में कहा, अच्छा लो, आज की कहानी का घटना काल केवल चौबीस घण्टे में ही सीमित रहेगा—29 जुलाई सन् 19··· को सायंकाल छह बजे से 30 जुलाई सायंकाल छह बजे तक और उसके बाद उन्होंने कहानी प्रारम्भ की : (कहानी कहने के पहले मुझसे बोले, "शैली में तुम्हारी झलक आ जाये तो क्षमा करना।")

खिड़की पर झूलते हुए जार्जेट के हवा से भी हलके परदों को चूमते हुए शाम के सूरज की उदास पीली किरणों ने झाँककर उस लड़की को देखा जो तकिये में मुँह छिपाये सिसक रही थी। उसकी रूखी अलकें खारे आँसू से धुले गालों को छूकर सिहर उठती थीं। चम्पे की कलियों-सी उसकी लम्बी पतली कलात्मक उँगलियाँ, सिसकियों से काँप-काँप उठने वाला उसका सोनजुही-सा तन, उसके गुलाब की सूखी पाँखुरियों से होंठ, और कमरे का उदास वातावरण; पता नहीं कौन-सा वह दर्द था जिसकी उदास उँगलियाँ रह-रहकर उसके व्यक्तित्व के मृणाल तंतुओं के संगीत को झकझोर रही थीं।

थोड़ी देर बाद वह उठी। उसकी आँखों के नीचे एक हलकी फालसाई छाँह थी जो सूज आयी थी। उसकी चाल हंस की थी, पर ऐसे हंस की जो मानसरोवर से न जाने कितने दिनों के लिए विदा ले रहा हो। उसने एक गहरी साँस ली और लगा जैसे हवाओं में केसर के डोरे बिखर गये हों। वह उठी और खिड़की के पास जाकर बैठ गयी। हवाओं से जार्जेट के परदे उठकर उसे गुदगुदा जाते थे, कभी कानों के पास, कभी होंठों के पास, कभी··खैर !

बाहर सूरज की आखिरी किरनें नीम और पीपल के शिखरों पर सुनहली उदासी बिखेर रही थीं। क्षितिज के पास एक गहरी जामुनी पर्त जमी थी जिस पर गुलाब बिखरे हुए थे और उसके बाद हलकी पीली आँधी की आभा लहरा रही थी।

"आँधी आनेवाली है बेटी ! चलो खाना खा लो !" माँ ने दरवाजे पर से कहा। लड़की कुछ नहीं बोली, सिर्फ सिर हिला दिया। माँ कुछ नहीं बोली, इसरार भी नहीं किया। माँ की अकेली लड़की थी, घर-भर में माँ और बेटी ही थीं, बेटी समझो तो बेटा समझो तो ! बेटी की बात काटने की हिम्मत किसी में नहीं थी। माँ थोड़ी देर चुपचाप खड़ी रही, चली गयी। लड़की सूनी-सूनी आँखों से चुपचाप जामुनी रंग के घिसते हुए बादलों को देखती रही और उन पर धधकते हुए गुलाबों को और उन पर घिरती हुई आँधी को।

शाम ने धुँधलके का सुरमई दुपट्टा ओढ़ लिया। वह चुपचाप वहीं बैठी रही, वेले की बनी हुई कला-प्रतिमा की तरह, निगाहों में रह-रहकर नरगिस, उदास और लजीली नरगिस झूम जाती थी।

"कहिए जनाब !" माणिक ने प्रवेश किया तो वह उठी और चुपचाप लाइट ऑन कर दी। माणिक मुल्ला ने उसकी खिन्न मनःस्थिति, उसका अश्रुसिक्त मौन देखा तो रुक गये और गम्भीर होकर बोले, "क्या हुआ ? लिली ! लिली !"

"कुछ नहीं !" लड़की ने हँसने का प्रयास करते हुए कहा, मगर आँखें डबडबा आयीं और वह माणिक मुल्ला के पाँवों के पास बैठ गयी।

माणिक ने उसके बुन्दों में उलझी एक सूखी लट को सुलझाते हुए कहा, "तो नहीं बताओगी !"

"हम कभी छिपाते हैं तुमसे कोई बात !"

"नहीं, अब तक तो नहीं छिपाती थी, आज से छिपाने लगी हो !"

"नहीं, कोई बात नहीं। सच मानो !" लड़की ने जिसका नाम लीला था लिली नाम से पुकारी जाती थी, माणिक के कमीज के काँच के बटन खोलते और बन्द करते हुए कहा।

"अच्छा मत बताओ ! हम भी अब तुम्हें कुछ नहीं बतायेंगे।" माणिक ने उठने का उपक्रम करते हुए कहा।

"तो चले कहाँ—" वह माणिक के कन्धे पर झुक गयी—"बताती तो हूँ।"

"तो बताओ !"

लिली थोड़ा झेंप गयी और फिर उसने माणिक की हथेली अपनी सूजी पलकों पर रखकर कहा, "हुआ ऐसा कि आज देवदास देखने गये थे। कम्मो भी साथ थी। ख़ैर, उसकी समझ में आयी नहीं। मुझे पता नहीं कैसे लगने लगा। माणिक, क्या होगा, बताओ ? अभी तो एक दिन तुम नहीं आते हो तो न खाना अच्छा लगता है, न पढ़ना। फिर महीनों-महीनों तुम्हें नहीं देख पायेंगे। सच, वैसे चाहे जितना हँसते रहो, बोलते रहो, पर जहाँ इस बात का ध्यान आया कि मन को जैसे पाला मार जाता है।"

माणिक कुछ नहीं बोले। उनकी आँखों में एक करुण व्यथा झलक आयी और चुपचाप बैठे रहे। आँधी आ गयी थी और मेज के नीचे सिनेमा के दो आधे फटे हुए टिकट आँधी की वजह से तमाम कमरे में घायल तितलियों के जोड़े की तरह इधर-उधर उड़कर दीवारों से टकरा रहे थे।

माणिक के पाँवों पर टप से एक गरम आँसू चू पड़ा तो उन्होंने चौंक कर देखा लिली की पलकों में आँसू छलक रहे थे। उन्होंने हाथ पकड़कर लिली को पास खींच लिया और उसे सामने बिठाकर, उसके दो नन्हे उजले कबूतरों जैसे पाँवों पर उँगली से धारियाँ खींचते हुए बोले, "छिः ! यह सब रोना-धोना हमारी लिली को शोभा नहीं देता। यह सब कमजोरी है, मन का मोह और कुछ नहीं। तुम जानती हो कि मेरे मन में कभी तुम्हारे लिए मोह नहीं रहा, तुम्हारे मन में मेरे लिए कभी अधिकार की भावना नहीं रही । अगर हम दोनों जीवन में एक दूसरे के निकट आये भी तो इसलिए कि हमारी अधूरी आत्माएँ एक दूसरे को पूर्ण बनायें, एक दूसरे को बल दें, प्रकाश दें, प्रेरणा दें। और दुनिया की कोई भी ताकत कभी हमसे हमारी इस पवित्रता को छीन नहीं सकती। मैं जानता हूँ कि तमाम जीवन मैं जहाँ कहीं भी रहूँगा, जिन परिस्थितियों में भी रहूँगा, तुम्हारा प्यार मुझे बल देता रहेगा फिर तुममें इतनी अस्थिरता क्यों आ रही है ? इसके मतलब यह है कि पता नहीं मुझमें कौन-सी कमी है कि तुम्हें वह आस्था नहीं दे पा रहा हूँ !"

लिली ने आँसू डूबी निगाहें उठायीं और कायरता से माणिक की ओर देखा जिसका अर्थ था—"ऐसा न कहो, मेरे जीवन में, मेरे व्यक्तित्व में जो कुछ है तुम्हारा ही तो दिया हुआ है।" पर लिली ने यह शब्दों से नहीं कहा, निगाहों से कह दिया।

माणिक ने धीरे से उसी के आँचल से उसके आँसू पोंछ दिये। बोले, "जाओ, मुँह धो आओ ! चलो !" लिली मुँह धोकर आ गयी। माणिक बैठे हुए रेडियो की सूई इस तरह घुमा रहे थे कि कभी झम से दिल्ली बज उठता था, कभी लखनऊ की दो-एक अस्फुट संगीतलहरी सुनाई पड़ जाती थीं, कभी नागपुर, कभी कलकत्ता (इलाहाबाद में सौभाग्य से तब तक रेडियो स्टेशन था ही नहीं !)। लिली चुपचाप बैठी रही, फिर उठकर उसने रेडियो ऑफ कर दिया और आकुल आग्रह-भरे स्वर में बोली, "माणिक, कुछ बात करो ! मन बहुत घबरा रहा है।"

माणिक हँसे और बोले, "अच्छा आओ बात करें, पर हमारी लिली जितनी अच्छी बात कर लेती है, उतनी मैं थोड़े ही कर पाता हूँ। लेकिन खैर ! तो तुम्हारी कम्मो के समझ में तस्वीर नहीं आयी !"

"उहूँक !"

"कम्मो बड़ी कुन्दजेहन है, लेकिन कोशिश हमेशा यही करती है कि सब काम में टाँग अड़ाये।"

"तुम्हारी जमुना से तो अच्छी ही है !"

जमुना के जिक्र पर माणिक को हँसी आ गयी और फिर आग्रह से बेहद दुलार

और बेहद नशे से लिली की ओर देखते हुए बोले, "लिली, तुमने स्कन्दगुप्त खतम कर डाली !"

"हाँ।"

"कैसी लगी !"

लिली ने सिर हिलाकर बताया कि बहुत अच्छी लगी। माणिक ने धीरे से लिली का हाथ अपने हाथों में ले लिया और उसकी रेखाओं पर अपने काँपते हुए हाथ को रखकर बोले, "मैं चाहता हूँ मेरी लिली उतनी ही पवित्र, उतनी ही सूक्ष्म, उतनी ही दृढ़ बने जितनी देवसेना थी। तो लिली वैसी ही बनेगी न !"

किसी मानवोपरि, देवताओं के संगीत से मुग्ध, भोली हिरणी की तरह लिली ने एक क्षण माणिक की ओर देखा और उनकी हथेलियों में मुँह छिपा लिया। बाहर जामुनी बदलियों ने एक हलकी फुहार बिखेरी और नम सोंधी हवा का एक झोंका लिली की बलखाती हुई वेणी को झकझोर गया।

"वाह ! उधर देखो लिली !" माणिक ने दोनों हाथों से लिली का मुँह कमल के फूल की तरह उठाते हुए कहा। बाहर गली की बिजली पता नहीं क्यों जल नहीं रही थी, लेकिन, रह-रहकर बैंजनी रंग की बिजलियाँ चमक जाती थीं, और लम्बी पतली गली, दोनों ओर के पक्के मकान, उनके खाली चबूतरे, बन्द खिड़कियाँ, सूने बारजे, उदास छतें, उन बैंजनी बिजलियों में जाने कैसे जादू के-से, रहस्यमय-से लग रहे थे। बिजली चमकते ही अँधेरा चीरकर वे खिड़की से दीख पड़ते, और फिर सहसा अन्धकार में विलीन हो जाते और उस बीच के एक क्षण में उनकी दीवारों पर तड़पती हुई बिजली की बैंजनी रोशनी लपलपाती रहती, बारजों की कोरों से पानी की धारें गिरती रहतीं, खम्भे और बिजली के तार काँपते रहते और हवाओं में बूँदों की झालरें लहराती रहतीं। सारा वातावरण जैसे बिजली के एक क्षीण आघात से काँप रहा था, डोल रहा था।

एक तेज झोंका आया और खिड़की के पास खड़ी लिली बौछार से भीग गयी, और भौंहों से, माथे से बूँदें पोंछती हुई हटी तो माणिक बोले, "लिली वहीं खड़ी रहो, खिड़की के पास, हाँ बिलकुल ऐसे ही। बूँदें मत पोंछो। और लिली, यह एक लट तुम्हारी भीगकर झूल आयी है कितनी अच्छी लग रही है !"

लिली कभी चुपचाप लजाती हुई खिड़की के बाहर, कभी लजाती हुई अन्दर माणिक की ओर देखती हुई बौछार में खड़ी रही। जब बिजलियाँ चमकती तो ऐसा लगता जैसे प्रकाश के झरने में काँपता हुआ नील कमल। पहले माथा भीगा—लिली ने पूछा, "हटें !" माणिक बोले, "नहीं !" माथे से पानी गरदन पर आया, बूँदें उसके गले में पड़ी सुनहली मटरमाला को चूमती हुई नीचे उतरने लगीं, वह सिहर उठी। "सरदी लग रही है ?" माणिक ने पूछा। एक अजब-से अल्हड़ आत्म-समर्पण के स्वर में लिली बोली, "नहीं, सरदी नहीं लग रही है ! लेकिन तुम बड़े पागल हो !"

"हूँ तो नहीं कभी-कभी हो जाता हूँ ! लिली एक अँगरेजी की कविता है—'ए

लिली गर्ल नॉट मेड फॉर दिस वर्ल्ड्र्स पेन ! एक फूल-सी लड़की जो दुनिया के दुःख-दर्द के लिए नहीं बनी। लिली यह कवि तुम्हें जानता था क्या ? 'लिली'—तुम्हारा नाम तक लिख दिया है !"

"हूँ ! हमें तो जरूर जानता था। तुम्हें भी एक नयी बात रोज सूझती रहती है।"

"नहीं ! देखो उसने यहाँ तक तो लिखा है—'एण्ड लांगिंग आइज हॉफ़ वेल्ड विद स्लम्बरस टीयर्स, लाइक ब्लूएस्ट वाटर्स सोन थ्रू मिस्ट्स, ऑफ रेन'—लालसा-भरी निगाहें, उनींदे आँसुओं से आच्छादित जैसे पानी की बौछार में धुँधली दीखने वाली नील झील···"

सहसा तड़ककर दूर कहीं बिजली गिरी और लिली चौंककर भागी और बदहवास माणिक के पास आ गिरी। दो पल तक बिजली की दिल दहला देने वाली आवाज गूँजती रही और लिली सहमी हुई गौरैया की तरह माणिक की बाँहों के घेरे में खड़ी रही। फिर उसने आँखें खोलीं, और झुक कर माणिक के पाँवों पर दो गरम होंठ रख दिये। माणिक की आँखों में आँसू आ गये। बाहर बारिश धीमी पड़ गयी थी। सिर्फ छज्जों से, खपरैलों से टप-टप कर बूँदें चू रही थीं। हलके-हलके बादल अँधेरे में उड़े जा रहे थे।

सुबह लिली जागी—लेकिन नहीं, जागी नहीं—लिली को रात-भर नींद नहीं आयी थी। उसे पता नहीं कब माँ ने खाने के लिए जगाया, उसने कब मना कर दिया, कब और किसने उसे पलंग पर लिटाया—उसे सिर्फ इतना याद है कि रात-भर वह पता नहीं किसके पाँवों पर सिर रखकर रोती रही। तकिया आँसुओं से भीग गया था, आँखें सूज आयी थीं।

कम्मो सुबह ही आ गयी थी। आज लिली को जेवर पहनाया जाने वाला था, शाम को सात बजे लोग आने वाले थे, सास तो थी ही नहीं, ससुर आने वाले थे और कम्मो, जो लिली की घनिष्ट मित्र थी, पर उस घर को सजाने और लिली को सजाने का पूरा भार था और लिली थी कि कम्मो के कन्धे पर सिर रखकर इस तरह बिलखती थी कि कुछ पूछो मत !

कम्मो बड़ी यथार्थवादिनी, बड़ी ही अभावुक लड़की थी। उसने इतनी सहेलियों की शादियाँ होते देखी थीं। पर लिली की तरह बिना बात के बिलख-बिलखकर रोते किसी को नहीं देखा था। जब विदा होने लगे तो उस समय तो रोना ठीक है, वरना चार बड़ी-बूढ़ियाँ कहने लगती हैं कि देखो ! आजकल की लड़कियाँ हया-शरम धो के पी गयी हैं। कैसी ऊँट-सी गरदन उठाये ससुराल चली जा रही हैं। अरे हम लोग थे कि रोते-रोते भोर हो गयी थी और जब हाथ-पाँव पकड़ के भैया ने डोली में ढकेल दिया तो बैठे थे। एक ये हैं··· ! आदि।

लेकिन इस तरह रोने से क्या फायदा और वह भी तब जब माँ या और लोग सामने न हों। सामने रोये तो एक बात भी है ! बहरहाल कम्मो बिगड़ती रही और लिली के आँसू थमते ही न थे।

कम्मो ने काम बहुत जल्दी ही निबटा लिया लेकिन वह घर में कह आयी थी कि अब दिन-भर वहीं रहेगी। कम्मो ठहरी घूमने-फिरने वाली काम-काजी लड़की। उसे खयाल आया कि उसे एलनगंज जाना है, वहाँ से अपनी कढ़ाई की किताबें वगैरह वापस लानी हैं, और फिर उसे एक क्षण चैन नहीं पड़ा। उसने लिली की माँ से पूछा, जल्दी से लिली को मार-पीटकर जबरदस्ती तैयार किया और दोनों सखियाँ चल पड़ीं।

बादल छाये हुए थे और बहुत ही सुहावना मौसम था। सड़कों पर जगह-जगह पानी जमा था, जिनमें चिड़ियाँ नहा रही थीं। एलनगंज में अपना काम निबटाकर दोनों पैदल टहलने चल दीं। थोड़ी ही दूर आगे बाँध था, जिसके नीचे से एक पुरानी रेल की लाइन गयी थी जो अब बन्द पड़ी थी। लाइनों के बीच में घास उग आयी थी और बारिश के बाद घास में लाल हीरों की तरह जगमगाती हुई बीरबहूटियाँ रेंग रही थीं। दोनों सखियाँ वहीं बैठ गयीं—एक बीरबहूटी रह-रहकर उस जंग खाये हुए लोहे की लाइन को पार करने की कोशिश कर रही थी और बार-बार फिसलकर गिर जाती थी। लिली थोड़ी देर उसे देखती रही और फिर बहुत उदास होकर कम्मो से बोली, "कम्मो रानी ! अब उस पिंजरे से निस्तार नहीं होगा, कहाँ ये घूमना-फिरना, कहाँ तुम।" कम्मो जो एक घास की डण्ठल चबा रही थी तमककर बोली, "देखो लिल्ली घोड़ी ! मेरे सामने ये अँसुआ ढरकाने से कोई फायदा नहीं। समझीं ! हमें ये सब चोचला अच्छा नहीं लगता। दुनिया की सब लड़कियाँ तो पैदा होके ब्याह करती हैं, एक तुम अनोखी पैदा हुई हो क्या ? और ब्याह के पहले सभी ये कहती हैं, ब्याह के बाद भूल भी जाओगी कि कम्मो कमबख्त किस खेत की मूली थी !"

लिली कुछ नहीं बोली, खिसियानी-सी हँसी हँस दी। दोनों सखियाँ आगे चलीं। धीरे-धीरे लिली बीरबहूटियाँ बटोरने लगी। सहसा कम्मो ने उसे एक झाड़ी के पास पड़ी साँप की केंचुल दिखायी, फिर दोनों एक बहुत बड़े अमरूद के बाग के पास आयीं और दो-तीन बरसाती अमरूद तोड़कर खाये जो काफी बकठे थे, और अन्त में पुरानी कब्रों और खेतों में से होती हुई वे एक बहुत बड़े-से पोखरे के पास आयीं जहाँ धोबियों के पत्थर लगे हुए थे। केंचुल बीरबहूटी अमरूद और हरियाली ने लिली के मन को एक अंजीब-सी राहत दी और रो-रोकर थके हुए उसके मन ने उल्लास की एक करवट ली। उसने चप्पल उतार दी और भीगी हुई घास पर टहलने लगी। थोड़ी देर में लिली बिलकुल दूसरी ही लिली थी, हँसी की तरंगों पर धूप की तरह जगमगाने वाली, और शाम को पाँच बजे जब दोनों घर लौटीं तो उनकी खिलखिलाहट से मुहल्ला हिल उठा और लिली को बहुत कसकर भूख लग आयी थी।

दिन-भर घूमने से लिली को इतनी जोर की भूख लग आयी थी कि आते ही उसने माँ से नाश्ता माँगा और जब अपने आप आलमारी से निकालने लगी तो माँ ने टोका कि खुद खा जायेगी तो तेरे ससुर क्या खायेंगे तो हँस के बोली, "अरे उन्हें मैं बचा-खुचा अपने हाथ से खिला दूँगी। पहले चख तो लूँ, नहीं बदनामी हो बाद में !" इतने में मालूम हुआ वे लोग आ गये तो झट से वह नाश्ता आधा छोड़कर अन्दर

गयी। कम्मो ने उसे साड़ी पहनायी, उसे सजाया-सँवारा लेकिन उसे भूख इतनी लगी थी कि उन लोगों के सामने जाने के पहले वह फिर बैठ गयी और खाने लगी, यहाँ तक कि कम्मो ने जबरदस्ती उसके सामने से तश्तरी हटा ली और उसे खींच ले गयी।

दिन-भर खुली हवा में घूमने से और पेट भरकर खाने से सुबह लिली के चेहरे पर जो उदासी छायी थी वह बिलकुल गायब हो गयी थी और उन लोगों को लड़की बहुत पसन्द आयी और पिछले दिन शाम को उसके जीवन में जो जलजला शुरू हुआ था वह दूसरे दिन शाम को शान्त हो गया।

इतना कहकर माणिक मुल्ला बोले, "और प्यारे बन्धुओ ! देखा तुम लोगों ने ! खुली हवा में घूमने और सूर्यास्त के पहले खाना खाने से सभी शारीरिक और मानसिक व्याधियाँ शान्त हो जाती हैं अतः इससे क्या निष्कर्ष निकला ?"

"खाओ, बदन बनाओ !" हम लोगों ने उनके कमरे में टँगे फोटो की ओर देखते हुए एक स्वर में कहा।

"लेकिन माणिक मुल्ला !" ओंकार ने पूछा, "यह आपने नहीं बताया कि लड़की को आप कैसे जानते थे, क्यों जानते थे, कौन थी यह लड़की ?"

"अच्छा ! आप लोग चाहते हैं कि मैं कहानी का घटनाकाल भी चौबीस घण्टे रखूँ और उसमें आपको सारा महाभारत और इनसाइक्लोपीडिया भी सुनाऊँ ! मैं कैसे जानता था इससे आपको क्या मतलब ? हाँ, यह मैं आपको बता दूँ कि यह लीला वही लड़की थी जिसका ब्याह तन्ना से हुआ था और उस दिन शाम को महेसर दलाल उसे देखने आने वाले थे !"

पाँचवीं दोपहर

काले बेंट का चाकू

अगले दिन दोपहर को जब हम सब लोग मिले तो एक अजब-सी मनःस्थिति थी हम लोगों की। हम सब इस रंगीन रूमानी प्रेम के प्रति अपना मोह तोड़ नहीं पाते थे, और दूसरी ओर उस पर हँसी भी आती थी, तीसरी ओर एक अजब-सी ग्लानि थी अपने मन में कि हम सब, और हम सबके ये किशोरावस्था के सपने कितने निस्सार होते हैं और इन सभी भावनाओं का संघर्ष हमें एक अजीब-सी झेंप और झुँझलाहट—बल्कि उसे खिसियाहट कहना बेहतर होगा—की स्थिति में छोड़ गया था। लेकिन माणिक मुल्ला बिलकुल निर्द्वन्द्व भाव से प्रसन्नचित्त हम लोगों से हँस-हँसकर बातें करते जा रहे थे और आलमारी तथा मेज पर से धूल झाड़ते जा रहे थे जो रात को आँधी के कारण जम जाती है, और ऐसा लगता था कि जैसे आदमी पुराने फटे हुए मोजों को कूड़े पर फेंक देता है उसी तरह अपने उस सारे रूमानी भ्रम को, सारी ममता छोड़कर फेंक दिया है और उधर मुड़कर देखने का भी मोह नहीं रखा।

सहसा मैंने पूछा, "इस घटना ने तो आपके मन पर बहुत गहरा प्रभाव डाला होगा ?"

मेरे इस प्रश्न से उनके चेहरे पर दो-चार बहुत करुण रेखाएँ उभर आयीं लेकिन उन्होंने बड़ी चतुरता से अपनी मनःस्थिति छिपाते हुए कहा, "मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी, कोई घटना ऐसी नहीं जो आदमी के अन्तर्मन पर गहरी छाप न छोड़ जाये।"

"कम से कम अगर मेरे जीवन में ऐसा हो, तो मेरी सारी जिन्दगी बिलकुल मरुस्थल हो जाये। शायद दुनिया की कोई चीज मेरे मन में कभी रस का संचार न कर सके।" मैंने कहा।

माणिक मुल्ला मेरी ओर देखकर हँसे और बोले, "इसके यह मतलब हैं कि तुमने अभी न तो जिन्दगी देखी है और न तो अभी अच्छे उपन्यास ही पढ़े हैं।

ज्यादातर ऐसा ही हुआ है, और ऐसा ही सुना गया है मित्रवर, कि इस प्रकार की निष्फल उपासना के बाद फिर जिन्दगी में कोई दूसरी लड़की आती है जो बौद्धिक, नैतिक तथा आर्थिक दृष्टि से निम्नतर स्तर की होती है पर जिसमें अधिक ईमानदारी, अधिक चरित्र, अधिक वफादारी और अधिक बल होता है। मसलन शरत् चटर्जी के देवदास मुखर्जी को ही ले लो। पारो के बाद उन्हें चन्द्रा मिली। इसी तरह के अन्य कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं। माणिक मुल्ला को क्या तुम कम समझते हो ? माणिक मुल्ला ने लिली के बाद गान्धारी की तरह अपनी आँखों पर जीवन-भर के लिए पट्टी बाँध लेने की कसम खा ली। लेकिन अच्छा होता कि पट्टी ही बाँध लेता क्योंकि लिली के बाद सत्ती का आकर्षण मेरे लिए शुभ नहीं हुआ और न उसके ही लिए। लेकिन वह बिलकुल दूसरी धातु की थी, जमुना से भी अलग और लिली से भी अलग। बड़ी विचित्र है उसकी कहानी भी···"

"लेकिन मुल्ला भाई ! एक बात मैं कहूँगा, अगर तुम बुरा न मानो तो –" प्रकाश ने बात काटकर कहा, "ये कहानियाँ जो तुम कहते हो बिलकुल सीधे-सादे विवरण की भाँति होती हैं। उनमें कुछ कथाशिल्प, कुछ काट-छाँट, कुछ टेकनीक भी तो होना चाहिए !"

"टेकनीक ! हाँ टेकनीक पर ज्यादा जोर वही देता है जो कहीं न कहीं अपरिपक्व होता है, जो अभ्यास कर रहा है, जिसे उचित माध्यम नहीं मिल पाया। लेकिन फिर भी टेकनीक पर ध्यान देना बहुत स्वस्थ प्रवृत्ति है बशर्ते वह अनुपात से अधिक न हो जाये। जहाँ तक मेरा सवाल है मुझे तो कहानी कहने के दृष्टिकोण से फ्लाबेयर और मोपांसा बहुत अच्छे लगते हैं क्योंकि उनमें पाठक को अपने जादू में बाँध लेने की ताकत है, वैसे उनके बाद चेखव कहानी के क्षेत्र में विचित्र व्यक्ति रहा है और मैं उसका लोहा मानता हूँ। चेखव ने एक बार किसी महिला से कहा था, 'कहानी कहना कठिन बात नहीं है। आप कोई चीज मेरे सामने रख दें, यह शीशे का गिलास, यह ऐश-ट्रे और कहें कि मैं इस पर कहानी कहूँ। थोड़ी देर में मेरी कल्पना जागृत हो जायेगी और उससे सम्बद्ध कितने लोगों के जीवन मुझे याद आ जायेंगे और वह चीज कहानी का सुन्दर विषय बन जायेगी'।"

मैंने अवसर का लाभ उठाते हुए फौरन वह काले बेंट वाला चाकू ताख पर से उठाया और बीच में रखते हुए कहा, "अच्छा इसको सत्ती की कहानी का केन्द्र-बिन्दु बनाइए !"

"बनाइए !" माणिक मुल्ला गम्भीर होकर बोले, "यह तो उसकी कहानी का केन्द्र बिन्दु है ही ! जब मैं यह चाकू देखता हूँ तो मैं कल्पना करता हूँ इसके काले बेंट पर बहुत सुन्दर फूल की पाँखुरियों जैसे गुलाबी नाखूनों वाली लम्बी पतली उँगलियाँ आवेश से काँप रही हैं, एक चेहरा जो आवेश से आरक्त है, थोड़ी निराशा से नीला है और थोड़े डर से विवर्ण है ! यह स्मृति-चित्र है सत्ती का जब वह अन्तिम बार मुझे मिली थी और मैं आँख उठाकर उसकी ओर देख भी नहीं सका था। उसके हाथ में यही चाकू था।"

उसके बाद उन्होंने सत्ती की जो कहानी बतायी, उसे टेकनीक न निबाह कर मैं संक्षेप में बताये देता हूँ :

माणिक मुल्ला का कहना था कि वह लड़की अच्छी नहीं कही जा सकती थी, क्योंकि उसके रहन-सहन में एक अजब-सी विलासिता झलकती थी, चाल-ढाल भी बहुत उद्दीप्त करने वाली थी, वह हर आने-जाने वाले, परिचित-अपरिचित से बोलने बतियाने के लिए एत्सुक रहती थी, गली में चलते-चलते गुनगुनाती रहती थी और अकारण ही लोगों की ओर देखकर मुसकरा दिया करती थी।

लेकिन माणिक मुल्ला का कहना था कि वह लड़की बुरी भी नहीं कही जा सकती थी क्योंकि उसके बारे में कोई वैसी अफवाह नहीं थी और सभी लोग अच्छी तरह जानते थे कि अगर कोई उसकी तरफ वैसी निगाह से देखता तो वह आँखें निकाल सकती है और उसकी कमर में एक काले बेंट का चाकू हमेशा रहा करता था।

लोगों का यह कहना था कि उसका चाचा, जिसके साथ वह रहती थी, रिश्ते में उसका कोई नहीं है, वह असल में फतेहपुर के पास के किसी गाँव का नाई है जो सफरमैना पल्टन में भरती होकर क्वेटा बलूचिस्तान की ओर गया था और वहाँ किसी गाँव के नेस्तनाबूद हो जाने के बाद यह तीन-चार बरस की लड़की उसे रोती हुई मिली थी जिसे वह उठा लाया था और पालने-पोसने लगा था। बहुत दिनों तक वह लड़की उधर ही रही, और अन्त में उसका एक हाथ कट जाने के बाद उसे पेंशन मिल गयी और वह आकर यहीं रहने लगा। एक हाथ कट जाने से यह अपना पुश्तैनी पेशा तो नहीं कर सकता था, लेकिन उसने यहाँ आकर साबुनसाजी शुरू कर दी थी और चमन ठाकुर का पहिया छाप साबुन न सिर्फ मुहल्ले में, वरन् चौक तक की दूकानों पर बेचा जाता था। चूँकि उसका एक हाथ कटा हुआ था, अतः सोलह-सत्रह साल की अनिन्द्य सुन्दरी सत्ती साबुन जमाती थी, उसके टुकड़े उसी काले बेंट के चाकू से काटती थी, उन्हें दूकानदारों के यहाँ पहुँचाती थी और हर पखवारे के अन्त में जाकर उसका दाम वसूल कर लाती थी। हर दूकानदार उसके सिर पर बँधे रंग-बिरंगे रूमाल, उसके बलूची कुरते, उसके चौड़े गरारे की ओर एक दबी निगाह डालता और दूसरे साबुनों की बजाय पहिया छाप साबुन दूकान पर रखता, ग्राहकों से उसकी सिफारिश करता और उसकी यह तमन्ना रहती कि कैसे सत्ती को पखवारे के अन्त में ज्यादा से ज्यादा कलदार दे सके।

चमन ठाकुर कारखाने के बाहर खाट डालकर नारियल का हुक्का पीते रहते थे और सत्ती अन्दर काम करती थी। श्रम ने सत्ती के बदन में एक ऐसा गठन, चेहरे पर एक ऐसा तेज, बातों में एक ऐसा अदम्य आत्म-विश्वास पैदा कर दिया था कि जब उसे माणिक मुल्ला ने देखा तो उनके मन में लिली का अभाव बहुत हद तक मर गया और सत्ती के व्यक्तित्व से मन्त्रमुग्ध हो गये।

सत्ती से उनकी भेंट अजब ढंग से हुई। कारखाने के बाहर चमन और सत्ती

मिलकर गंगा महाजन के यहाँ का देना-पावना जोड़ रहे थे। चमन ने जो कुछ पढ़ा-लिखा था वह भूल चुके थे, सत्ती ने थोड़ा पढ़ा था पर यह हिसाब काफी जटिल था। उधर माणिक मुल्ला दही लेकर घर जा रहे थे कि दोनों को हिसाब पर झगड़ते देखा। सत्ती सिर झटकती थी तो उसके कानों के दोनों बुन्दे चमक उठते थे और हंसती थी तो मोती-से दाँत चमक जाते थे, मुड़ती थी तो कंचन-सा बदन झलमला उठता था और सिर झुकाती थी तो नागिन-सी अलकें झूल जाती थीं । अब अगर माणिक मुल्ला के कदम धरती से चिपक ही गये तो इसमें माणिक मुल्ला का कौन कसूर ?

इतने में चमन ठाकुर बोले, "जै राम जी की भइया !" और उनके कटे हुए दायें हाथ ने जुम्बिश खायी और फिर लटक गया। सत्ती हँसकर बोली, "लो जरा हिसाब जोड़ दो माणिक बाबू !" और माणिक बाबू भाभी के लिए दही ले जाना भूलकर इतनी देर तक हिसाब लगाते रहे कि भाभी ने खूब डाँटा। लेकिन उस दिन से अकसर उनके जिम्मे सत्ती का हिसाब जोड़ना आता रहा और गणित शास्त्र में एकाएक उनकी जैसी दिलचस्पी बढ़ गयी उसे देखकर ताज्जुब होता था।

माणिक मुल्ला की गिनती पता नहीं क्यों सत्ती अपने मित्रों में करने लगी। एक ऐसा मित्र जिस पर पूर्ण विश्वास किया जा सकता है। एक ऐसा मित्र जिसे सभी साबुन के नुस्खे निस्सन्देह बताये जा सकते थे। जिसके बारे में पूरा भरोसा था कि वह साबुन के नुस्खे को दूसरी कम्पनी वालों को नहीं बता देगा। जिस पर सारा हिसाब छोड़ा जा सकता था, जिससे यह भी सलाह ली जा सकती थी कि हरधन स्टोर्स को माल उधार दिया जा सकता है या नहीं। माणिक के आते ही सत्ती सारा काम छोड़कर उठ आती, दरी बिछा देती, जमे हुए साबुन के थाल ले आती और कमर से काला चाकू निकाल कर साबुन की सलाखें काटती जाती और माणिक को दिन-भर का सारा दुःख-सुख बताती जाती। किस बनिये ने बईमानी की, किसने सबसे ज्यादा साबुन बेचा, कहाँ किराने की नयी दूकान खुली है, वगैरह।

माणिक मुल्ला उसके पास बैठकर एक अजब-सी बात महसूस करते थे। इस मेहनत करने वाली स्वाधीन लड़की के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा था जो न पढ़ी-लिखी भावुक लिली में था और न अनपढ़ी दमित मन वाली जमुना में था। इसमें सहज स्वस्थ ममता थी जो हमदर्दी चाहती थी, हमदर्दी देती थी। जिसकी मित्रता का अर्थ था एक-दूसरे के दुःख-सुख, श्रम और उल्लास में हाथ बँटाना। उसमें कहीं से कोई गाँठ, कोई उलझन, कोई भय, कोई दमन, कोई कमजोरी नहीं थी, कोई बन्धन नहीं था। उसका मन खुली धूप की तरह स्वच्छ था। अगर उसे लिली की तरह थोड़ी शिक्षा भी मिली होती तो सोने में सुहागा होता। मगर फिर भी उसमें जो कुछ था वह माणिक मुल्ला को आकाश के सपनों में विहार करने की प्रेरणा नहीं देता था, न उन्हें विकृतियों की अँधेरी खाइयों में गिराता था। वह उन्हें धरती पर सहज मानवीय भावना से जीने की प्रेरणा देती थी। वह कुछ ऐसी भावनाएँ जगाती थी जो ऐसी ही

कोई मित्र संगिनी जगा सकती थी जो स्वाधीन हो, जो साहसी हो, जो मध्यवर्ग की मर्यादाओं के शीशों के पीछे सजी हुई गुड़िया की तरह बेजान और खोखली न हो। जो सृजन और श्रम में सामाजिक जीवन में उचित भाग लेती हो, अपना उचित देय देती हो।

मेरा यह मतलब नहीं कि माणिक मुल्ला उसके पास बैठकर यह सब चिन्तन किया करते थे। नहीं, यह सब तो उस परिस्थिति का मेरा अपना विश्लेषण है, वैसे माणिक मुल्ला को तो वह केवल बहुत अच्छी लगती थी और उन दिनों माणिक मुल्ला का मन पढ़ने में भीं लगने लगा, काम करने में भी, और उनका वजन भी बढ़ गया और उन्हें भूख खुलकर लगने लगी, वे कॉलेज के खेलों में भी हिस्सा लेने लगे।

माणिक मुल्ला ने जरा झेंपते हुए यह भी स्वीकार किया कि उनके मन में सत्ती के लिए बहुत आकर्षण जाग गया था और अकसर सत्ती की हाथीदाँत-सी गरदन को चूमते हुए उसके लम्बे झूलते बुन्दों को देखकर उनके होठ काँपने लगते थे, और माथे की नसों में गरम खून जोर से दौड़ने लगता था। पर सारी मित्रता के बावजूद कभी सत्ती के व्यवहार में उसे जमुना-सी कोई बात नहीं दिखाई पड़ी। माणिक की निगाह जब उसके झूलते हुए बुन्दों पर पड़ती और उनका माथा गरम हो जाता, तभी उनकी निगाह सत्ती की कमर से झूलते हुए चाकू पर भी पड़ती और माथा फिर ठण्डा हो जाता, क्योंकि सत्ती उन्हें बता चुकी थी कि एक बार एक बनिये ने साबुन की सलाखें रखवाते हुए कहा, "साबुन तो क्या मैं साबुन वाली को भी दूकान पर रख लूँ" तो सत्ती ने फौरन चाकू खोलकर कहा, "मुझे अपनी दूकान पर रख और ये चाकू अपनी छाती में रख, कमीने।" तो सेठ ने सत्ती के पाँव छूकर कसम खायी कि वह तो मजाक कर रहा था, वरना वह तो अपनी पहली ही सेठानी नहीं रख पाया। वही दरबान के साथ चली गयी, अब भला सत्ती को क्या रखेगा।

इसी घटना को याद कर माणिक मुल्ला कभी कुछ नहीं कहते थे, पर मन-ही-मन एक अव्यक्त करुण उदासी उनकी आत्मा पर छा गयी थी और उन दिनों वे कुछ कविताएँ भी लिखने लगे थे जो बहुत करुण विरहगीत होती थीं जिनमें कल्पना कर लेते थे कि सत्ती उनसे दूर कहीं चली गयी है और फिर वे सत्ती को विश्वास दिलाते थे कि प्रिये, तुम्हारे प्रणय का स्वप्न मेरे हृदय में पल रहा है और सदा पलता रहेगा। कभी-कभी वे बहुत व्याकुल होकर लिखते थे जिसका भावार्थ होता था कि मेघों की छाया में तो अब मुझसे तृषित नहीं रहा जाता, आदि-आदि। सारांश यह कि वे जो कुछ सत्ती से नहीं कह पाते थे उसे गीतों में बाँध डालते थे पर जब कभी सत्ती के सामने उन्होंने उसे भुनभुनाने का प्रयास किया तो सत्ती हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी और बोली, तुमने बन्ना सुना है ? साँझी सुनी है ? और तब वह मुहल्ले में गाये जाने वाले गीत इतनी दर्द-भरी आवाज में गाती थी कि माणिक मुल्ला भावविभोर हो उठते थे और अपने गीत उन्हें कृत्रिम और शब्दाडम्बरपूर्ण लगने लगते थे। ऐसी

थी सत्ती, सदैव निकट, सदैव दूर, अपने में एक स्वतन्त्र सत्ता, जिसके साथ माणिक मुल्ला के मन को सन्तोष भी मिलता था और आकुलता भी।

कभी-कभी वे सोचते थे कि अपनी भावनाओं को पत्र के माध्यम से लिख डालें और वे कभी-कभी पत्र लिखते भी थे बहुत लम्बे-लम्बे और बहुत मधुर, यहाँ तक कि अगर वे बचे होते तो उनकी गणना नेपोलियन और सीजर के प्रेम-पत्रों के साथ की जाती, मगर जब उसमें 'आत्मा की ज्योति'–'चाँद की राजकुमारी' आदि वे लिख चुकते तो उन्हें ख्याल आता कि यह भाषा तो बेचारी सत्ती समझती नहीं, और जो भाषा उसकी समझ में आती थी उसका व्यवहार करने पर कमर में लटकने वाले काले चाकू की तसवीर दिमाग में आ जाती थी। अतः उन्होंने वे सब खत फाड़ डाले।

उसी बीच में सत्ती की ममता माणिक मुल्ला के प्रति दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती गयी और जब-जब माणिक मुल्ला जाते, बाहर बैठा हुआ चमन ठाकुर अपना कटा हाथ हिलाकर उन्हें सलाम करता। हँसता और पीठ पीछे इन्हें बहुत खूनी निगाह से देखकर दाँत पीसता और पैर पटककर हुक्के के अँगारे कुरेदता। सत्ती माणिक के खाने-पीने, कपड़े-लत्ते, रहन-सहन में बहुत दिलचस्पी लेती और बाद में अपनी अड़ोसिन-पड़ोसिन को बतलाती कि माणिक बारहवें दरजे में पढ़ रहे हैं और इसके बाद बड़े लाट के दफ्तर में इन्हें नौकरी मिल जायेगी और हमेशा माणिक को याद दिलाती रहती थी कि पढ़ने में ढीलपन मत करना।

पर एक बात अकसर माणिक देखते थे कि सत्ती अब कुछ उदास-सी रहने लगी है और कोई-ऐसी बात है जो यह माणिक से छिपाती है। माणिक ने बहुत पूछा पर उसने नहीं बताया। पर वह अकसर चमन ठाकुर को झिड़क देती थी, राह में उसकी चिलम पड़ी रहती थी तो उसे ठोकर मार देती थी, खुद कभी हिसाब न करके उसके सामने कापी और वसूली के रुपये फेंक देती थी। चमन ठाकुर ने एक दिन माणिक से कहा कि मैं अगर इसे न लाकर पालता-पोसता तो इसे चील और गिद्ध नोच-नोचकर खा गये होते और यही ज़ब माणिक ने सत्ती से कहा तो वह बोली, "चील और गिद्ध खा गये होते तो वह अच्छा होता बजाय इसके कि यह राक्षस उसे नोच खाये !" माणिक ने सशंकित होकर पूछा तो वह बहुत झल्लाकर बोली, "यह मेरा चाचा बनता है। इसीलिए पाल-पोसकर बड़ा किया था ? इसकी निगाह में खोट आ गया है। पर मैं डरती नहीं। यह चाकू मेरे पास हमेशा रहता है।" और उसके बाद उन्होंने सत्ती को पहली बार रोते देखा और वह अनाथ मेहनती और निराश्रित लड़की फूट-फूटकर रोयी और उन्हें कई घटनाएँ बतायीं। यह बातें सुनकर माणिक मुल्ला को अपने कानों पर यकीन नहीं हुआ पर वे बहुत व्यथित हुए और यह जानकर कि ऐसा भी हो सकता है उनके मन को बहुत धक्का लगा। उस दिन शाम को उनसे खाना नहीं खाया गया और यह सोचकर उनकी आँख में आँसू भी आ गये कि यह जिन्दगी इतनी गन्दी और विकृत क्यों है।

उसके बाद उन्होंने देखा कि सत्ती और चमन ठाकुर में कटुता बढ़ती ही गयी,

साबुन का रोजगार भी ठण्डा होता गया और अकसर माणिक के जाने पर सत्ती रोती हुई मिलती और चमन ठाकुर चीखते-गरजते हुए मिलते। वे रिटायर्ड सोल्जर थे, अतः कहते थे—शूट कर दूँगा तुझे। संगीन से दो टुकड़े कर दूँगा। तूने समझा क्या है ? आदि-आदि।

सत्ती के चेहरे पर थोड़ी खुशी उस दिन आयी जिस दिन उसे मालूम हुआ कि माणिक बारहवाँ दरजा पास हो गये हैं। उसने उस दिन महीनों बाद पहली बार चमन ठाकुर से जाकर दो रुपये माँगे, एक की मिठाई मँगायी और दूसरे के फूल-बताशे चण्डी के चौतरे पर चढ़ा आयी। पर उस दिन माणिक आये ही नहीं। जिस दिन माणिक आये उस दिन उसे यह जानकर बड़ी निराशा हुई कि माणिक नौकरी नहीं करेंगे, बल्कि पढ़ेंगे, हालाँकि भैया-भाभी ने साफ मना कर दिया है कि अब जमाना बुरा है और वे माणिक का खर्चा नहीं उठा सकते। सत्ती की राय भैया-भाभी के साथ थी; क्योंकि वह अपनी आँख से माणिक को बड़े लाट के दफ्तर में देखना चाहती थी, पर जब उसने माणिक की इच्छा पढ़ने की देखी तो कहा—"उदास मत हो। अगर मैं यहीं रही तो तुम्हें रुपए दूँगी। अगर नहीं रही तो देखा जायेगा।"

माणिक मुल्ला ने घबराकर पूछा कि, "कहाँ जाओगी तुम" तो सत्ती ने एक और बात बतायी जिससे माणिक स्तब्ध रह गये।

महेसर दलाल, यानी जमुनावाले तन्ना का पिता, अकसर आया करता था और चूँकि दलाल होने के नाते उसकी सुनारों और सर्राफों से काफी जान-पहचान थी, अतः वह गिलट के कड़े और पायल पर पालिश कराकर और चाँदी के गहनों पर नकली सुनहरा पानी चढ़वाकर लाता था और सत्ती को देने की कोशिश करता था। जब माणिक मुल्ला ने पूछा कि चमन ठाकुर कुछ नहीं कहते तो बोली कि रोजगार तो पहले ही चौपट हो चुका है, चमन गाँजा और दारू खूब पीता है। महेसर दलाल उसे रोज नये नोट लाकर देते हैं। रोज उसे अपने साथ ले जाते हैं। रात को वह पिये हुए आता है और ऐसी बातें बकता है कि सत्ती अपना दरवाजा अन्दर से बन्द कर लेती है और रात-भर डर के मारे उसे नींद नहीं आती। इतना कहकर वह रो पड़ी और बोली, सिवा माणिक के उसका अपना कोई नहीं है और माणिक भी उसे कोई रास्ता नहीं बताते।

माणिक उस दिन बहुत ही व्यथित हुए और उस दिन उन्होंने एक बहुत ही करुण कविता लिखी और उसे लेकर किसी स्थानीय पत्र में देने ही जा रहे थे कि रास्ते में सत्ती मिली। वह बहुत घबरायी हुई थी और रोते-रोते उसकी आँखें सूज आयी थीं। उसने माणिक को रोककर कहा, "तुम मेरे यहाँ मत आना। चमन ठाकुर तुम्हारा कत्ल करने पर उतारू है। चौबीसों घण्टे नशे में धुत रहता है। तुम्हें मेरी माँग की कसम है। तुम फिकर न करना मेरे पास चाकू रहता है और फिर कोई मौका पड़ा तो तुम तो हो ही। जानते हो वह बूढ़ा पोपला महेसरा मुझसे ब्याह करने को कह रहा है !"

माणिक का मन बहुत आकुल रहा। कई बार उन्होंने चाहा कि सत्ती की ओर जायें पर सच बात है कि नशेबाज चमन का क्या ठिकाना, एक ही हाथ है पर सिपाही का हाथ ठहरा।

इस बीच में एक बात और हुई। यह सारा किस्सा माणिक मुल्ला के नाम के साथ बहुत नमक-मिर्च के साथ फैल गया और मुहल्ले की कई बूढ़ियों ने आकर बीजा छीलते हुए माणिक की भाभी को सारी कहानी बतायी और ताकीद की कि उसका ब्याह कर देना चाहिए, कई ने तो अपने नातेदारों की सुन्दर सुशील लड़कियाँ तक बतायीं। भाभी ने थोड़ी अपनी तरफ से भी जोड़कर भइया को पूरा किस्सा बताया और भइया ने दूसरे दिन माणिक को बुलाकर समझाया कि उन्हें माणिक पर पूरा विश्वास है, लेकिन माणिक अब बच्चे नहीं हैं, उन्हें दुनिया को देखकर चलना चाहिए। इन छोटे लोगों को मुँह लगाने से कोई फायदा नहीं। ये सब बहुत गन्दे और कमीने किस्म के होते हैं। माणिक के खानदान का इतना नाम है। माणिक अपने भइया के स्नेह पर बहुत रोये और उन्होंने वायदा किया कि अब वे इन लोगों से नहीं घुलें-मिलेंगे।

दो-तीन बार सत्ती आयी पर माणिक मुल्ला अपने घर से बाहर नहीं निकले और कहला दिया कि नहीं हैं। माणिक अकसर जमुना के यहाँ जाया करते थे और एक दिन जमुना के दरवाजे पर सत्ती मिली। माणिक कुछ नहीं बोले तो सत्ती रोककर बोली, "नसीब रूठ गया तो तुमने भी साथ छोड़ दिया। क्या गलती हो गयी मुझसे ?" माणिक ने घबराकर चारों ओर देखा। भइया के दफ्तर से लौटने का वक्त हो गया था। सत्ती उनकी घबराहट समझ गयी, क्षण-भर उनकी ओर बड़ी अजब निगाह से देखती रही और फिर बोली, "घबराओ न माणिक ! हम जा रहे हैं।" और आँसू पोंछकर धीरे-धीरे चली गयी।

उन्हीं दिनों भाभी और माणिक के बीच अकसर झगड़ा हुआ करता था क्योंकि भाभी-भइया साफ़ कह चुके थे कि माणिक को अब कहीं नौकरी कर लेना चाहिए। पढ़ने की कोई जरूरत नहीं। पर माणिक पढ़ना चाहते थे। भाभी ने एक दिन जब बहुत जली-कटी सुनायी तो माणिक उदास होकर एक बाग में जाकर बरगद के नीचे बेंच पर बैठ गये और सोचने लगे कि क्या करना चाहिए।

थोड़ी देर बाद उन्हें किसी ने पुकारा तो देखा सामने सत्ती। बिलकुल शान्त, मुरदे की तरह सफेद चेहरा, भावहीन जड़ आँखें, आयी और आकर पाँवों के पास जमीन पर बैठ गयी और बोली, "आखिर जो सब चाहते थे वह हो गया।"

माणिक के पूछने पर उसने बताया कि कल रात को चमन ठाकुर के साथ महेसर दलाल आया। दोनों बड़ी रात तक बैठकर शराब पीते रहे। सहसा महेसर से बहुत-से रुपयों की थैली लेकर चमन उठकर बाहर चला गया और महेसर आकर सत्ती से ऐसी बातें करने लगा जिसे सुनकर सत्ती का तन-बदन सुलगने लगा और सत्ती बाहर के दरवाजे की ओर बढ़ी तो देखा चमन उसे बाहर से बन्द करके चला गया है।

सत्ती ने फौरन अपना चाकू निकाला और महेसर दलाल को एक धक्का दिया तो महेसर दलाल लुढ़क गये। एक तो बूढ़े दूसरे शराब में चूर और सत्ती जो चाकू लेकर उनकी गरदन पर चढ़ बैठी तो उनका सारा नशा काफूर हो गया और बोले, "मार डाल मुझे, मैं उफ न करूँगा। मैं तुझ पर हाथ न उठाऊँगा। लेकिन मैंने नकद पाँच सौ रुपया दिया है। मैं बाल-बच्चेदार आदमी मर जाऊँगा।" और उसके बाद हिचकियाँ भर-भरकर रोने लगा और फिर उसने वह कागज दिखाया जिस पर चमन ठाकुर ने पाँच सौ पर उसके साथ सत्ती को भेजने की शर्त की थी और महेसर रोने लगा और सत्ती के जैसे किसी ने प्राण खींच लिये हों। महेसर के हाथ-पाँव फूल गये। फिर महेसर दलाल ने समझाया कि अब तो कानूनी कार्रवाई हो गयी है। फिर महेसर दलाल सुख से रखेगा वगैरह-वगैरह—पर सत्ती जड़ मुरदे-सी पड़ी रही। उसे याद नहीं महेसर ने क्या कहा, उसे याद नहीं क्या हुआ।

सत्ती चुपचाप नीचे निगाह किये नखों से धरती खोदती रही और फिर मेरी ओर देखकर बोली, "महेसर ने आज यह अँगूठी दी है।" माणिक ने हाथ में लेकर देखा तो मुसकराने का प्रयास करती हुई बोली, "असली है।" माणिक चुप हो रहे। सत्ती ने थोड़ी देर बाद पूछा कि माणिक उदास क्यों हैं तो माणिक ने बताया कि भाभी से पढ़ाई के बारे में चख-चख हो गयी है तो सत्ती ने अँगूठी निकालकर फौरन माणिक के हाथ में रख दी और कहा कि इससे वह फीस जमा कर दे। आगे की बात सत्ती के हाथ में छोड़ दे। माणिक ने इसे नहीं स्वीकार किया तो क्षण-भर सत्ती चुप रही फिर सहसा बोली, "मैं समझ गयी। अब तुम मुझसे कुछ नहीं लोगे। पर बताओ मैं क्या करूँ ? मुझे कोई भी तो नहीं बताता। मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ। मुझे कोई रास्ता बताओ ? कोई रास्ता—तुम जो कहोगे—मैं हर तरह से तैयार हूँ।" और सचमुच सत्ती जो अब तक पत्थर की तरह निष्प्राण बैठी थी पाँव पकड़कर फूट-फूटकर रो पड़ी। माणिक घबराकर उठे पर उसने पाँवों पर सिर रख दिया और इतना रोयी कि कुछ पूछो मत। पर माणिक ने कहा कि अब उन्हें देर हो रही है तो वह चुपचाप उठी और चली गयी।

एक बार फिर वह मिली और माणिक उस दिन भी उदास थे क्योंकि जुलाई आ गयी थी और उनके दाख़िले का कुछ निश्चय ही नहीं हो पा रहा था। सत्ती ने बहुत इसरार करके माणिक को रुपये दिये ताकि उनका काम न रुके और फिर बहुत बिलख-बिलख कर रोयी और कहा कि उसकी जिन्दगी नरक हो गयी है। उसे कोई राह नहीं बताता। माणिक मुल्ला ने सांत्वना का एक शब्द भी नहीं कहा, तो वह चुप हो गयी और पूछने लगी कि माणिक को उसकी बातें बुरी तो नहीं लगतीं क्योंकि माणिक के अलावा और कोई नहीं है जिससे वह अपना दुःख कह सके। और माणिक से न जाने क्यों वह कोई बात नहीं छिपा पाती है और उनसे कह देने पर उसका मन हलका हो जाता है और उसे लगता है कि कम-से-कम एक आदमी ऐसा है जिसके आगे उसकी आत्मा निष्पाप और अकलुष है।

माणिक के सामने कोई रास्ता नहीं था और सच तो यह है कि भइया का कहना भी उन्हें ठीक लगता था कि माणिक का और इन लोगों का क्या मुकाबला, दोनों की सोसायटी अलग, मर्यादा अलग, पर माणिक मुल्ला सत्ती से कुछ कह भी नहीं पाते थे क्योंकि उन्हें पढ़ाई भी जारी रखनी थी, और इसी अन्तर्द्वन्द्व के कारण उनके गीतों में गहन निराशा और कटुता आती जा रही थी।

और फिर एक रात एक अजब-सी घटना हुई। माणिक मुल्ला सो रहे थे कि सहसा किसी ने उन्हें जगाया और उन्होंने आँख खोली तो सामने देखा सत्ती ! उसके हाथ में चाकू था, उसकी लम्बी-पतली गुलाबी उँगलियों में चाकू काँप रहा था, चेहरा आवेश से आरक्त, निराशा से नीला, डर से विवर्ण। उसकी बगल में एक छोटा-सा बैग था जिसमें गहने और रुपये भरे थे। सत्ती माणिक के पाँव पर गिर पड़ी और बोली, "किसी तरह चमन ठाकुर से छूटकर आयी हूँ। अब डूब मरूँगी पर वहाँ नहीं लौटूँगी। तुम कहीं ले चलो ! कहीं ! मैं काम करूँगी। मजदूरी कर लूँगी। तुम्हारे भरोसे चली आयी हूँ।"

माणिक का यह हाल कि ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की साँस नीचे। कविता-उविता तो ठीक है पर यह इल्लत माणिक कहाँ पालते। और फिर भइया ठहरे भइया और भाभी उनसे सात कदम आगे। माणिक की सारी किस्मत बड़े पतले धागे पर झूल रही थी। पर आखिर दिमाग माणिक मुल्ला का ठहरा। खेल ही तो गया। फौरन बोले, "अच्छा बैठो सत्ती ! मैं अभी चलूँगा। तुम्हारे साथ चलूँगा।" और इधर पहुँचे भइया के पास। चुपचाप दो वाक्यों में सारी स्थिति बता दी। भइया बोले, "उसे बिठाओ, मैं चमन को बुला लाऊँ।" माणिक गये और सत्ती जितना इसरार करे जल्दी निकल चलने को कि कहीं महेसर दलाल या चमन ही न आ पहुँचे उतना माणिक किसी-न-किसी बहाने टालते जायें और जब सत्ती ने चाकू चमकाकर कहा कि, "अगर नहीं चलोगे तो आज या तो मेरी जान जायेगी या और किसी की" तो माणिक का रोम-रोम थर्रा उठा और मन-ही-मन माणिक भइया को स्मरण करने लगे।

सत्ती उनसे पूछती रही, "कहाँ चलोगे ? कहाँ ठहरोगे ? कहाँ नौकरी दिलाओगे ? मैं अकेली नहीं रहूँगी।" इतने में एक हाथ में लाठी लिये महेसर और एक में लालटेन लिये चमन ठाकुर आ पहुँचे और पीछे-पीछे भइया और भाभी। सत्ती देखते ही नागिन की तरह उछलकर कोने में चिपक गयी और क्षण-भर में ही स्थिति समझकर चाकू खोलकर माणिक की ओर लपकी—"दगाबाज ! कमीना !" पर भइया ने फौरन माणिक को खींच लिया, महेसर ने सत्ती को दबोचा और भाभी चीखकर भागीं।

उसके बाद कमरे में भयानक दृश्य रहा। सत्ती काबू में ही न आती थी पर जब चमन ठाकुर ने अपने एक ही फौजी हाथ से पटरा उठाकर सत्ती को मारा तो वह बेहोश होकर गिर पड़ी। इसी अवस्था में सत्ती का चाकू वहीं छूट गया और उसके गहनों का बैग भी पता नहीं कहाँ गया। माणिक का अनुमान था कि भाभी ने उसे

सुरक्षा के खयाल से ले जाकर अपने सन्दूक में रख लिया था।

बेहोश सत्ती को भइया और महेसर उठाकर उसके घर पहुँचा आये और माणिक मुल्ला डर के मारे भइया के कमरे में सोये।

दूसरे दिन चमन ठाकुर के घर पर काफी जमाव था क्योंकि घर खुला पड़ा था, सामान बिखरा पड़ा था, और चमन ठाकुर तथा सत्ती दोनों गायब थे और बहुत सुबह उठकर जो बूढ़ियाँ गंगा नहाने जाती हैं उनका कहना था कि एक ताँगा इधर से गया था जिस पर कुछ सामान लदा था, चमन ठाकुर बैठा था और आगे की सीट पर सफेद चादर से ढँका कोई सो रहा था जैसे लाश हो।

लोगों का कहना था कि चमन और महेसर ने मिलकर रात को सत्ती का गला घोंट दिया।

छठी दोपहर

क्रमागत

पिछली दोपहर से आगे

सत्ती की मृत्यु ने माणिक मुल्ला के कच्चे भावुक कवि-हृदय पर बहुत गहरी छाप छोड़ी थी और नतीजा यह हुआ था कि उनकी कृतियों में मृत्यु की प्रतिध्वनि बार-बार सुनाई पड़ती थी।

इसी बीच में उनके भइया का तबादला हो गया और भाभी उनके साथ चली गयी और घर माणिक की देख-भाल में छोड़ दिया गया। माणिक को अकेले घर में बहुत डर लगता था और अकसर लगता था कि जैसे वे कंकाल के सुनसान घर में छोड़ दिये गये हों। उन्हें पढ़ने का शौक था पर अब पढ़ने में उनका चित्त भी नहीं लगता था, उनकी जेब भी भइया के जाने से बिलकुल खाली हो गयी थी और वे कोई ऐसी नौकरी ढूँढ़ रहे थे जिसमें वे नौकरी के साथ-साथ पढ़ाई भी कायम रख सकें, इन सभी परिस्थितियों ने मिलकर उनके हृदय पर गहरी छाप छोड़ी थी और पता नहीं किस रहस्यमय आध्यात्मिक कारण से वे अपने को सत्ती की मृत्यु का जिम्मेदार समझने लगे थे। उनके मन की धीरे-धीरे यह हालत हो गयी कि उन्हें मुहल्ला छोड़कर ऐसी जगह अच्छी लगने लगीं जैसे—दूर कहीं पर सुनसान पीपल तले की छाँह, भयानक उजाड़, कब्रगाह, पुराने मरघट टीले और खड्ड आदि। उन्हें चाँदनी में कफन दिखाई देने लगे और धूप में प्रेयसी की चिता की ज्वालाएँ।

तब तक हम लोगों की माणिक मुल्ला से इतनी घनिष्ठता नहीं हुई थी अतः इस प्रकार की बैठकें नहीं जमती थीं और दिन-भर भटकने के बाद माणिक अकसर चाय-घरों में जाकर बैठा करते थे। चाय-घरों की चहल-पहल में थोड़ा-सा मन बहल जाया करता है।

(लेकिन यह मैं बता दूँ कि माणिक मुल्ला का यह खयाल बिलकुल गलत था

कि सत्ती की मृत्यु हो गयी है, सत्ती सिर्फ बेहोश हो गयी थी और उसी हालत में चमन ठाकुर उसे ताँगे पर ले गये थे। क्योंकि बदनामी के डर से महेसर दलाल नहीं चाहते थे कि वे लोग एक क्षण भी मुहल्ले में रहें। पर सत्ती कहाँ थी इसका पता बाद में माणिक को लगा।)

इधर माणिक ने यह निश्चय कर लिया था कि यदि उसकी वजह से सत्ती का जीवन नष्ट हुआ तो वे भी हर तरह से अपना जीवन नष्ट करके ही मानेंगे जैसा शरत् के देवदास आदि ने किया था और इसलिए जीवन नष्ट करने के जितने भी साधन थे, उन्हें वे काम में ला रहे थे। उनका स्वास्थ्य बुरी तरह गिर गया था, उनका स्वभाव बहुत असामाजिक, उच्छृंखल और आत्मघाती हो गया था, पर उन्हें सन्तोष था क्योंकि वे सत्ती की मृत्यु का प्रायश्चित्त कर रहे थे। उनकी आत्मा को, उनके व्यक्तित्व को और उनकी प्रतिभा को सूतक लगा हुआ था और सूतक की अवस्था में और हो ही क्या सकता है ?

अकसर उनके मित्रों ने उन्हें समझाया कि आदमी में जीवन के प्रति अदम्य आस्था होनी चाहिए। मृत्यु से इस तरह का मोह तो केवल कायरता और विक्षिप्तता के लक्षण हैं, उनकी राह मुड़नी चाहिए पर फिर वे सोचते कि अपने कर्तव्य-पथ से विचलित हो रहे हैं। और उनका कर्तव्य तो मृत्यु-पथ पर अदम्य साहस से अग्रसर होते रहना है। ऐसा विचार आते ही वे फिर कछुए की तरह अपने को समेटकर अन्तर्मुख हो जाते। धीरे-धीरे उनकी स्थिति उस स्थितप्रज्ञ की भाँति हो गयी जिसे दुःख-सुख, मित्र-शत्रु, प्रकाश-तिमिर, झूठ और सच में कोई भेद नहीं मालूम पड़ता, जो समय और दिशा के बन्धन से छुटकारा पाकर पृथ्वी पर बद्ध जीवों के बीच में जीवनमुक्त आत्माओं की भाँति विचरण करते हैं। सामाजिक जीवन उन्हें बार-बार अपने शिकंजे में कसने का प्रयास करता था पर वे प्रेम के अलावा सभी चीजों को निस्सार समझते थे चाहे वह आर्थिक प्रश्न हो या राजनीतिक आन्दोलन, मोतिवरी का अकाल हो या कोरिया क़ी लड़ाई, शान्ति की अपील हो या सांस्कृतिक स्वाधीनता का घोषणा-पत्र। केवल प्रेम सत्य है, प्रेम जो रस है, रस जो ब्रह्म है—(रसो वै सः—देखिए बृहदारण्यक—)।

और इस स्वयं-स्वीकृत मरण स्थिति से यह हुआ कि उनके गीत में बेहद करुणा, दर्द और निराशा आ गयी और चूँकि इस पीढ़ी के हर व्यक्ति के हृदय में कहीं न कहीं माणिक मुल्ला और देवदास दोनों का अंश है, अतः लोग झूम-झूम उठते थे। यद्यपि वे सबके सब ज्यादा चतुर थे, मृत्यु-गीतों की प्रशंसा करने के बाद अपने-अपने काम में लग जाते थे पर माणिक मुल्ला जरूर ऐसा अनुभव करते थे जैसे यह उजड़े हुए चकोर के टूटे हुए पंख हैं जो चाँद के पास पहुँचते-पहुँचते टूट गये और गिर रहे हैं, गिर रहे हैं और हवा के हर हलके झोंके के आघात से पथ-विचलित हो जाते हैं। सच तो यह है कि इनकी न कोई दिशा है, न पथ, न लक्ष्य, न प्रयास और न कोई प्रगति क्योंकि पतन को, नीचे गिरने को प्रगति तो नहीं कहते !

इसी समय माणिक मुल्ला से मैंने पूछा कि आखिर इस परिस्थिति से कभी आपका मन नहीं ऊबता था ? वे बोले (शब्द मेरे हैं, तात्पर्य उनका) कि–"ऊबता क्यों नहीं था ? अकसर मैं ऊब जाता था तो कुछ ऐसे-ऐसे करतब करता था कि मैं भी चौंक उठता था और दूसरे भी चौंक उठते थे। जिनसे मैं अकसर अपने को ही विश्वास दिलाया करता था कि मैं जीवित हूँ, क्रियाशील हूँ। जैसे–कह कुछ और रहा हूँ, कहते-कहते कर कुछ और गया। इसे संकीर्ण मनवाले लोग झूठ बोलना या धोखा देना भी कह सकते हैं। पर यह सब केवल दूसरों को चौंकाना मात्र था, अपनी घबराहट से ऊबकर। तीखी बातें करना, हर मान्यता को उखाड़ फेंकने की कोशिश करना, यह सब मेरे मन की उस प्रवृत्ति से प्रेरित थीं जो मेरे अन्दर की जड़ता और खोखलेपन का परिणाम थीं।"

लेकिन जब हम लोगों ने पूछा कि इसमें आखिर उन्हें सन्तोष क्या मिलता था, तो वे बोले, "मैं महसूस करता था कि मैं अन्य लोगों से कुछ अलग हूँ, मेरा व्यक्तित्व अनोखा है, अद्वितीय है और समाज मुझे समझ नहीं सकता। साधारण लोग अत्यन्त साधारण हैं, मेरी प्रतिभा के स्तर से बहुत नीचे हैं, मैं उन्हें जिस तरह चाहूँ बहका सकता हूँ। मुझमें अपने व्यक्तित्व के प्रति एक अनावश्यक मोह, उसकी विकृतियों को भी प्रतिभा का तेज समझने का भ्रम और अपनी असामाजिकता को भी अपनी ईमानदारी समझने का अनावश्यक दम्भ आ गया था। धीरे-धीरे मैं अपने ही को इतना प्यार करने लगा कि मेरे मन में चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवालें खड़ी हो गयीं और मैं स्वयं अपने अहंकार में बन्दी हो गया, पर इसका नशा मुझ पर इतना तीखा था कि मैं कभी अपनी असली स्थिति पहचान नहीं पाया।"

"तो आप इस मनःस्थिति से कैसे मुक्त हुए ?"

"वास्तव में एक दिन बड़ी विचित्र परिस्थिति में यह रहस्य मुझ पर खुला कि सत्ती जीवित है और अब उसके मन में मेरे लिए प्रेम के स्थान पर गहरी घृणा है। इसका पता लगते ही मैंने सत्ती की मृत्यु को लेकर जो व्यर्थ का ताना-बाना अपने व्यक्तित्व के चारों ओर बुन रखा था वह छिन्न-भिन्न हो गया और मैं फिर एक स्वस्थ साधारण व्यक्ति की तरह हो गया।"

उसके बाद उन्होंने वह घटना बतायी :

जिन चाय-घरों में वे जाते थे उनके चारों ओर अकसर भिखारी घूमा करते थे। वे चाय पीकर बाहर निकलते कि भिखारी उन्हें घेर लिया करते।

एक दिन उन्होंने एक नये भिखारी को देखा। एक छोटी-सी लकड़ी की गाड़ी में वह बैठा था। उसका एक हाथ कटा था और एक औरत गोद में एक भिनकता हुआ बच्चा लिये गाड़ी खींचती चलती आ रही थी। वह आकर माणिक के पास खड़ी हो गयी और पीले-पीले दाँत निकालकर कुछ कहा कि माणिक ने आश्चर्य से देखा कि वह भिखारी तो है चमन ठाकुर और यह सत्ती है। माणिक को नजदीक से देखते ही सत्ती चौंककर दो कदम पीछे हट गयी, फौरन उसका हाथ कमर पर गया शायद चाकू

की तलाश में, पर चाकू न पाकर उसने फिर प्याला उठाया और खून की प्यासी दृष्टि से माणिक की ओर देखती हुई आगे बढ़ गयी।

यह देखकर कि सत्ती जीवित है और बाल-बच्चों सहित प्रसन्न है, माणिक के मन की सारी निराशा जाती रही और उन्हें नया जीवन मिल गया और कुछ दिनों बाद ही आर.एम.एस. में तन्ना की जगह खाली हुई तो कविता-कहानी छोड़कर उन्होंने नौकरी भी कर ली और सुख से रहने लगे। (जैसे माणिक मुल्ला के अच्छे दिन लौटे वैसे राम करे सबके लौटें।) इसी के कुछ दिनों बाद हम लोगों की माणिक मुल्ला से घनिष्ठ मित्रता हो गयी और उनके यहाँ हम लोगों का अड्डा जमने लगा था।

अनध्याय

यद्यपि मेरा हाजमा भी दुरुस्त है और मैंने डांटे की डिवाइना कामेडिया भी नहीं पढ़ी है फिर भी मैं एक सपना देख रहा हूँ।

चिमनी से निकलने वाले धुएँ की तरह एक सतरंगा इन्द्रधनुष धीरे-धीरे उग रहा है। आकाश के बीचों-बीच आकर वह इन्द्रधनुष टँग गया है।

एक जलता हुआ होठ, काँपता हुआ—बायीं ओर से इन्द्रधनुष की ओर खिसक रहा है।

एक जलता हुआ होठ, काँपता हुआ— दायीं ओर से इन्द्रधुनष की ओर खिसक रहा है।

दायीं ओर माणिक का होठ, बायीं ओर लीला का। खिसकते-खिसकते इन्द्रधनुष के नजदीक आकर दोनों रुक जाते हैं।

नीचे धरती पर महेसर दलाल एक गाड़ी खींचते हुए आते हैं। गाड़ी चमन ठाकुर की भीख माँगने वाली गाड़ी है। उसमें छोटे-छोटे बच्चे बैठे हैं। जमुना का बच्चा, तन्ना का बच्चा, सत्ती का बच्चा। चमन ठाकुर का एक कटा हुआ हाथ अन्धे अजगर की तरह आता है। बच्चों की गरदन में लिपट जाता है, मरोड़ने लगता है। उनका गला घुटता है। इन्द्रधनुष के दोनों ओर प्यासे होठ और नजदीक आ जाते हैं।

तन्ना के दोनों कटे हुए पैर राक्षसों की तरह झूमते हुए आते हैं। उनमें नयी लोहे की नालें जड़ी हैं। बच्चे उनसे कुचल जाते हैं। हरी घास—दूर-दूर तक बरसात में साइकिलों से कुचली हुई बीरबहूटियाँ फैली हैं। रक्त सूखकर गाढ़ा काला हो गया है। इन्द्रधनुष की छाया तमाम पहाड़ों और मैदानों पर तिरछी होकर पड़ती है।

माताएँ सिसकती हैं ! जमुना, लिली, सत्ती।

दोनों होठ इन्द्रधनुष के और समीप खिसकने लगते हैं और समीप; और समीप।

एक काला चाकू इन्द्रधनुष को रस्से की तरह काट देता है। दोनों होठ गोश्त के मुरदा लोथड़ों की तरह गिर पड़ते हैं।

चीलें···चीलें···चीलें···टिड्डियों की तरह अनगिनत चीलें !

सातवीं दोपहर

सूरज का सातवाँ घोड़ा

अर्थात् वह जो सपने भेजता है !

अगले दिन मैं गया और माणिक मुल्ला को बताया कि मैंने यह सपना देखा तो वे झल्ला गये। "देखा है तो मैं क्या करूँ ? जब देखो तब 'सपना देखा है, सपना देखा है ! अरे कौन शेर, चीता देखा है कि गाते-फिरते हो !" जब मैं चुप हो गया तो माणिक मुल्ला उठकर मेरे पास आये और सान्त्वना भरे शब्दों में बोले, "ऐसे सपने तुम अकसर देखते हो ?" मैंने कहा, "हाँ" तो बोले, "इसके मतलब है कि प्रकृति ने तुम्हें विशेष कार्य के लिए चुना है ! यथार्थ जिन्दगी के बहुत-से पहलुओं को, बहुत-सी चीजों के आन्तरिक सम्बन्ध को और उनके महत्व को तुम सपनों में एक ऐसे बिन्दु से खड़े होकर देखोगे जहाँ से दूसरे नहीं देख पायेंगे और फिर अपने सपनों को सरल भाषा में तुम सबके सामने रखोगे। समझे ?" मैंने सिर हिलाया कि हाँ मैं समझ गया तो वे फिर बोले, "और जानते हो ये सपने सूरज के सातवें घोड़े के भेजे हुए हैं !"

जब मैंने पूछा कि यह क्या बला है तो और लोग अधीर हो उठे और बोले, यह सब मैं बाद में पूछ लूँ और माणिक मुल्ला से कहानी सुनाने का इसरार करने लगे।

माणिक मुल्ला ने आगे कहानी सुनाने से इनकार किया और बोले एक अविच्छिन्न क्रम में इतनी प्रेम-कहानियाँ बहुत काफी हैं, सच तो यह है कि उन्होंने इतने लोगों के जीवन को लेकर एक पूरा उपन्यास ही सुना डाला है सिर्फ उसका रूप कहानियों का रखा ताकि हर दोपहर को हम लोगों की दिलचस्पी बदस्तूर बनी रहे और हम लोग ऊबें न। वरना सच पूछो तो यह उपन्यास ही था और इस ढंग से सुनाया गया था कि जो लोग सुखान्त उपन्यास के प्रेमी हैं वे जमुना के सुख वैधव्य से प्रसन्न हों, स्वर्ग में तन्ना और जमुना के मिलन पर प्रसन्न हों, लिली के विवाह से प्रसन्न हों और सत्ती के चाकू से माणिक मुल्ला की जान बच जाने पर प्रसन्न हों, और जो लोग दुखान्त के प्रेमी हैं वे सत्ती के भिखारी जीवन पर दुःखी हों, तन्ना की

रेल दुर्घटना पर दुःखी हों, लिली और माणिक मुल्ला के अनन्त विरह पर दुःखी हों। साथ ही माणिक मुल्ला ने हम लोगों को यह भी समझाया कि यद्यपि इन्हें प्रेम-कहानियाँ कहा गया है पर वास्तव में ये 'नेति-प्रेम' कहानियाँ हैं अर्थात् जैसे उपनिषदों में यह ब्रह्म नहीं है, नेति-नेति कहकर ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण किया गया है उसी तरह उन क़हानियों में 'यह प्रेम नहीं था, यह भी प्रेम नहीं था, यह भी प्रेम नहीं था', कहकर प्रेम की व्याख्या और सामाजिक जीवन में उनके स्थान का निरूपण किया गया था। 'सामाजिक जीवन' का उच्चारण करते हुए माणिक मुल्ला ने फिर कन्धे हिलाकर मुझे सचेत किया और बोले, तुम बहुत सपनों के आदी हो और तुम्हें यह बात गिरह में बाँध लेनी चाहिए कि जो प्रेम समाज की प्रगति और व्यक्ति के विकास का सहायक नहीं बन सकता वह निरर्थक है। यही सत्य है। इसके अलावा प्रेम के बारे में कहानियों में जो कुछ कहा गया है, कविताओं में जो कुछ लिखा गया है, पत्रिकाओं में जो छापा गया है, वह सब रंगीन झूठ है और कुछ नहीं। फिर उन्होंने यह भी बताया कि उन्होंने सबसे पहले प्रेम-कहानियाँ इसीलिए सुनायीं कि यह रूमानी विभ्रम हम लोगों के दिमाग पर ऐसी बुरी तरह छाया हुआ है कि इसके सिवा हम लोग कुछ भी सुनने के लिए तैयार न होते। (बाद में उन्होंने अन्य बहुत-से कथारूप में उपन्यास सुनाये जिन्हें यदि अवकाश मिला तो लिखूँगा, पहले इस बीच में माणिक मुल्ला की प्रतिक्रिया इन कहानियों पर जान लूँ।)

कथा-क्रम के बारे में स्पष्टीकरण देते हुए उन्होंने कहा कि सात दोपहर तक चलने वाला यह क्रम बहुत कुछ धार्मिक पाठ-चक्रों के समान है जिनमें एक किसी सन्त के वचन या धर्म-ग्रन्थ का एक सप्ताह तक प्रणयन होता है और रोज प्रसाद बँटता है, उसी प्रकार रोज उन्होंने हम लोगों को एक कहानी सुनायी और अन्त में निष्कर्ष बाँटा (यद्यपि इसमें आंशिक सत्य था क्योंकि कहानियों में उन्होंने निष्कर्ष बतलाया ही नहीं !)। माणिक-कथाचक्र में दिनों की संख्या सात रखने का कारण भी शायद बहुत कुछ सूरज के सात घोड़ों पर आधारित था।

अन्त में, मैंने फिर पूछा कि सूरज के सात घोड़ों से उनका क्या तात्पर्य था और सपने सूरज के सातवें घोड़े से कैसे सम्बद्ध हैं तो वे बड़ी गम्भीरता से बोले कि, देखो ये कहानियाँ वास्तव में प्रेम नहीं वरन् उस जिन्दगी का चित्रण करती हैं जिसे आज का निम्न-मध्यवर्ग जी रहा है। उसमें प्रेम से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया है आज का आर्थिक संघर्ष, नैतिक विशृंखलता, इसीलिए इतना अनाचार, निराशा, कटुता और अँधेरा मध्यवर्ग पर छा गया है। पर कोई न कोई ऐसी चीज है जिसने हमें हमेशा अँधेरा चीरकर आगे बढ़ने, समाज-व्यवस्था को बदलने और मानवता के सहज मूल्यों को पुनः स्थापित करने की ताकत और प्रेरणा दी है। चाहे उसे आत्मा कह लो चाहे कुछ और। और विश्वास, साहस, सत्य के प्रति निष्ठा उस प्रकाशवाही आत्मा को उसी तरह आगे ले चलते हैं जैसे सात घोड़े सूर्य को आगे बढ़ा ले चलते हैं। कहा भी गया है "सूर्य आत्मा जगतस्तथुषश्च।"

तो वास्तव में सूर्य के रथ को आगे बढ़ना ही है। हुआ यह कि हमारे वर्ग-विगलित, अनैतिक, भ्रष्ट और अँधेरे जीवन की गलियों में चलने से सूर्य का रथ काफी टूट-फूट गया है और बेचारे घोड़ों की तो यह हालत है कि किसी की दुम कट गयी है तो किसी का पैर उखड़ गया है, तो कोई सूखकर ठठरी हो गया है, तो किसी के खुर घायल हो गये हैं। अब बचा है सिर्फ एक घोड़ा जिसके पंख अब भी साबित हैं, जो सीना ताने गरदन उठाये आगे चल रहा है। वह घोड़ा है भविष्य का घोड़ा, तन्ना, जमुना और सत्ती के नन्हे निष्पाप बच्चों का घोड़ा; जिनकी जिन्दगी हमारी जिन्दगी से ज्यादा अमन-चैन की होगी, ज्यादा पवित्रता की होगी, उसमें ज्यादा प्रकाश होगा, ज्यादा अमृत होगा। वही सातवाँ घोड़ा हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आकलन भेजता है ताकि हम वह रास्ता बना सकें जिन पर होकर भविष्य का घोड़ा आयेगा; इतिहास के वे नये पन्ने लिख सकें जिन पर अश्वमेघ का दिग्विजयी घोड़ा दौड़ेगा। माणिक मुल्ला ने यह भी बताया कि यद्यपि बाकी छह घोड़े दुर्बल, रक्तहीन और विकलांग हैं पर सातवाँ घोड़ा तेजस्वी और शौर्यवान है और हमें अपना ध्यान और अपनी आस्था उसी पर रखनी चाहिए।

माणिक मुल्ला ने इसी बात को ध्यान में रखते हुए माणिक-कथाचक्र की इस प्रथम शृंखला का नाम 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' रखा था। सम्भव है यह नाम आपको पसन्द न आवे इसीलिए मैंने यह कबूल कर लिया कि यह मेरा दिया हुआ नहीं है।

अन्त में, मैं यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि इस लघु उपन्यास की विषय-वस्तु में जो कुछ भी भलाई-बुराई हो उसका जिम्मा मुझ पर नहीं माणिक मुल्ला पर ही है। मैंने सिर्फ अपने ढंग से वह कथा आपके सामने प्रस्तुत कर दी है। अब आप माणिक मुल्ला और उनकी कथाकृति के बारे में अपनी राय बनाने के लिए स्वतन्त्र हैं। □

बन्द गली का आखिरी मकान

"यह भी बहुत दिलचस्प ढंग है। वर्षों तक साहित्य में कहानी, नयी कहानी, साठोत्तरी कहानी, अकहानी आदि-आदि को लेकर बहस चलती रहे। लिखनेवाला चुप रहे। वर्षों तक चुप रहे और फिर चुपके से एक कहानी लिखकर प्रकाशित करा दे, और वही उसका घोषणा-पत्र हो, गोया उसने सारे वाद-विवाद के बीच एक रचनात्मक कीर्तिमान स्थापित कर दिया हो, कि देखो यह है कहानी।" 'बन्द गली का आखिरी मकान' प्रकाशित होने पर जो तमाम पत्र लेखक को मिले उनमें से एक पत्र का यह अंश भारती की कथा-यात्रा की दिलचस्प झलक पेश करता है। भारती ने वर्षों के अन्तराल पर इस संकलन की कहानियाँ लिखीं लेकिन हर कहानी अपनी जगह पर मुकम्मिल एक 'क्लासिक' बनती गयी।

ये कहानियाँ आप केवल पढ़कर पूरी नहीं करते, ये कहानियाँ कहीं बहुत गहरे पैठकर आपकी जीवन दृष्टि को पूरी और गहरी बना जाती हैं।

इनमें कुछ ऐसा है जो आप पढ़कर ही जान पायेंगे।

गुलकी बन्नो

"ऐ मर कलमुँहे !" अकस्मात् घेघा बुआ ने कूड़ा फेंकने के लिए दरवाजा खोला और चौतरे पर बैठे मिरवा को गाते हुए देखकर कहा, "तोरे पेट में फोनोगिराफ उलियान वा का, जौन भिनसार भवा कि तान तोड़ै लाग ? राम जानै, रात के कैसन एकरा दीदा लागत है !" मारे डर के कि कहीं घेघा बुआ सारा कूड़ा उसी के सर पर न फेंक दें, मिरवा थोड़ा खिसक गया और ज्यों ही घेघा बुआ अन्दर गयीं कि फिर चौतरे की सीढ़ी पर बैठ, पैर झुलाते हुए उसने उलटा-सुलटा गाना शुरू किया, "तुमें बछ याद कलते अम छनम तेली कछम !" मिरवा की आवाज सुनकर जाने कहाँ से झबरी कुतिया भी कान-पूँछ झटकारते आ गयी और नीचे सड़क पर बैठकर मिरवा का गाना बिलकुल उसी अन्दाज में सुनने लगी जैसे हिज मास्टर्स वायस के रिकार्ड पर तसवीर बनी होती है।

अभी सारी गली में सन्नाटा था। सबसे पहले मिरवा (असली नाम मिहिरलाल) जागता था। और आँख मलते-मलते घेघा बुआ के चौतरे पर आ बैठता था। उसके बाद झबरी कुतिया, फिर मिरवा की छोटी बहन मटकी और उसके बाद एक-एक कर गली के तमाम बच्चे–खोंचेवाली का लड़का मेवा, ड्राइवर साहब की लड़की निरमल, मनीजर साहब के मुन्ना बाबू– सभी आ जुटते थे। जब से गुलकी ने घेघा बुआ के चौतरे पर तरकारियों की दूकान रखी थी तब से यह जमावड़ा वहाँ होने लगा था। उसके पहले बच्चे हकीमजी के चौतरे पर खेलते थे। धूप निकलते गुलकी सट्टी से तरकारियाँ खरीदकर अपनी कुबड़ी पीठ पर लादे, डण्डा टेकती आती और अपनी दूकान फैला देती। मूली, नींबू, कद्दू लौकी, घिया-वण्डा, कभी-कभी सस्ते फल ! मिरवा और मटकी जानकी उस्ताद के बच्चे थे जो एक भयंकर रोग में गल-गलकर मरे थे और दोनों बच्चे भी विकलांग, विक्षिप्त और रोगग्रस्त पैदा हुए थे। सिवा झबरी कुतिया के और कोई उनके पास नहीं बैठता था और सिवा गुलकी के कोई उन्हें अपनी देहरी या दूकान पर चढ़ने नहीं देता था।

आज भी गुलकी को आते देखकर सबसे पहले मिरवा गाना छोड़कर बोला, "छलाम गुलकी !" और मटकी अपने बढ़ी हुई तिल्लीवाले पेट पर से खिसकता हुआ जाँघिया सँभालते हुए बोली, "एक ठो मूली दै देव ! ए गुलकी !" गुलकी पता नहीं किस बात से खीजी हुई थी कि उसने मटकी को झिड़क दिया और अपनी दूकान लगाने लगी। झबरी भी पास गयी कि गुलकी ने डण्डा उठाया। दूकान लगाकर वह अपनी कुबड़ी पीठ दुहराकर बैठ गयी और जाने किसे बुड़बुड़ाकर गालियाँ देने लगी। मटकी एक क्षण चुपचाप खड़ी रही, फिर उसने रट लगाना शुरू किया, "एक मूली ! ए गुलकी ! एक··· " गुलकी ने फिर झिड़का तो चुप हो गयी और अलग हटकर लोलुप नेत्रों से सफेद धुली हुई मूलियों को देखने लगी। इस बार वह बोली नहीं। चुपचाप उन मूलियों की ओर हाथ बढ़ाया ही था कि गुलकी चीखी, "हाथ हटाओ। छूना मत। कोढ़िन कहीं की ! कहीं खाने-पीने की चीज देखी तो जोंक की तरह चिपक गयी, चल उधर !" मटकी पहले तो पीछे हटी पर फिर उसकी तृष्णा ऐसी अदम्य हो गयी कि उसने हाथ बढ़ाकर एक मूली खींच ली। गुलकी का मुँह तमतमा उठा और उसने बाँस की खपच्ची उठाकर उसके हाथ पर चट से मारी ! मूली नीचे जा गिरी और "हाय ! हाय ! हाय !" कर दोनों हाथ झटकती हुई मटकी पाँव पटक-पटककर रोने लगी। "जावो अपने घर रोवो। हमारी दूकान पर मरने को गली-भर के बच्चे हैं—" गुलकी चीखी ! "दूकान दैकै हम बिपता मोल लै लिया। छन-भर पूजा-भजन में भी कचरघाँव मची रहती है !" अन्दर से घेघा बुआ ने स्वर मिलाया। खासा हंगामा मच गया कि इतने में झबरी भी खड़ी हो गयी और लगी उदात्त स्वर में भूँकने। 'लेफ्ट राइट ! लेफ्ट राइट' चौराहे पर तीन-चार बच्चों का जलूस चला आ रहा था। आगे-आगे दर्जा ब में पढ़ने वाले मुन्ना बाबू नीम की सण्टी को झण्डे की तरह थामे जलूस का नेतृत्व कर रहे थे, पीछे थे मेवा और निरमल। जलूस आकर दूकान के सामने रुक गया। गुलकी सतर्क हो गयी। दुश्मन की ताकत बढ़ गयी थी।

मटकी सिसकते-सिसकते बोली, "हमके गुलकी मारिस है। हाय ! हाय ! हमके नरिया में ढकेल दिहिस। अरे बाप रे !" निरमल, मेवा, मुन्ना सब पास आकर उसकी चोट देखने लगे। फिर मुन्ना ने ढकेलकर सबको पीछे हटा दिया और सण्टी लेकर तनकर खड़े हो गये, "किसने मारा है इसे !"

"हम मारा है !" कुबड़ी गुलकी ने बड़े कष्ट से खड़े होकर कहा, "का करोगे ? हमें मारोगे !" "मारेंगे क्यों नहीं ?" मुन्ना बाबू ने अकड़कर कहा। गुलकी इसका कुछ जवाब देती कि बच्चे पास घिर आये। मटकी ने जीभ निकालकर मुँह बिराया, मेवा ने पीछे जाकर कहा, "ए कुबड़ी, ए कुबड़ी, अपना कूबड़ दिखाओ !" और एक मुट्ठी धूल उसकी पीठ पर छोड़कर भागा। गुलकी का मुँह तमतमा आया और रुँधे गले से कराहते हुए उसने पता नहीं क्या कहा। किन्तु उसके चेहरे पर भय की छाया बहुत गहरी हो गयी थी। बच्चे सब एक-एक मुट्ठी धूल लेकर शोर मचाते हुए दौड़े कि

अकस्मात् घेघा बुआ का स्वर सुनाई पड़ा, "ए मुन्ना बाबू, जात हो कि अबहिन बहिनजी का बुलवाय के दुइ-चार कनेठी दिलवायी !" "जाते तो हैं !" मुन्ना ने अकड़ते हुए कहा, "ए मिरवा, बिगुल बजाओ।" मिरवा ने दोनों हाथ मुँह पर रखकर कहा, "धुतु-धुतु-धू।" जलूस चल पड़ा और कप्तान ने नारा लगाया—

अपने देस में अपना राज।

गुलकी की दूकान बाईकाट !

नारा लगाते हुए जलूस गली में मुड़ गया। कुबड़ी ने आँसू पोंछे, तरकारी पर से धूल झाड़ी और साग पर पानी के छींटे देने लगी।

गुलकी की उम्र ज़्यादा नहीं थी। यही हद-से-हद पचीस-छब्बीस। पर चेहरे पर झुर्रियाँ आने लगी थीं और कमर के पास से वह इस तरह दोहरी हो गयी थी जैसे अस्सी वर्ष की बुढ़िया हो। बच्चों ने जब पहली बार उसे मुहल्ले में देखा तो उन्हें ताज्जुब भी हुआ और थोड़ा भय भी। कहाँ से आयी ? कैसे आ गयी ? पहले कहाँ थी ? इसका उन्हें कुछ अनुमान नहीं था। निरमल ने जरूर अपनी माँ को उसके पिता ड्राइवर से रात को कहते हुए सुना, "यह मुसीबत और खड़ी हो गयी। मरद ने निकाल दिया तो हम थोड़े ही यह ढोल गले बाँधेंगे। बाप अलग हम लोगों का रुपया खा गया। सुना चल बसा तो डरी कि कहीं मकान हम लोग न दखल कर लें और मरद को छोड़कर चली आयी। खबरदार जो चाभी दी तुमने।"

"क्या छोटेपन की बात करती हो। रुपया उसके बाप ने ले लिया तो क्या हम उसका मकान मार लेंगे ? चाभी हमने दे दी है। दस-पाँच दिन का नाज-पानी भेज दो उसके यहाँ।"

"हाँ-हाँ, सारा घर उठा के भेज देव। सुन रही हो घेघा बुआ।"

"तो का भवा बहू, अरे निरमल के बाबू से तो एकरे बाप की दाँत काटी रही।" घेघा बुआ की आवाज आयी—"बेचारी बाप की अकेली सन्तान रही। एही के बियाह में मटियामेट हुई गवा। पर ऐसे कसाई के हाथ में दिहिस कि पाँचै बरस में कूबड़ निकर आवा।"

"साला यहाँ आवे तो हण्टर से खबर लूँ मैं।" ड्राइवर साहब बोले, "पाँच बरस बाद बाल-बच्चा हुआ। अब मरा हुआ बच्चा पैदा हुआ तो उसमें इसका क्या कसूर। साले ने सीढ़ी से ढकेल दिया। जिन्दगी-भर के लिए हड्डी खराब हो गयी न। अब कैसे गुजारा हो उसका ?"

"बेटवा एको दूकान खुलवाय देव। हमरा चौतरा खाली पड़ा है। यही रुपया दुइ रुपया किराया दै देवा करै, दिन-भर अपना सौदा लगाय ले। हम का मना करित हैं ? एत्ता बड़ा चौतरा मुहल्लेवालन के काम न आयी तो का हम छाती पर धै लै जाब ! पर हाँ, मुला रुपया दै देवा करै।"

दूसरे दिन यह सनसनीखेज खबर बच्चों में फैल गयी। वैसे तो हकीमजी का चबूतरा बड़ा था, पर वह कच्चा था, उस पर छाजन नहीं थी। बुआ का चौतरा लम्बा

था, उस पर पत्थर जड़े थे। लकड़ी के खम्भे थे। उस पर टीन छायी थी। कई खेलों की सुविधा थी खम्भों के पीछे। किल-किल काँटे की लकीरें खींची जा सकती थीं। एक टाँग से उचक-उचककर बच्चे चिबिड्डी खेल सकते थे। पत्थर पर लकड़ी का पीढ़ा रखकर नीचे से मुड़ा हुआ तार घुमाकर रेलगाड़ी चला सकते थे। जब गुलकी ने अपनी दूकान के लिए चबूतरों के खम्भों में बाँस बाँधे तो बच्चों को लगा कि उनके साम्राज्य में किसी अज्ञात शत्रु ने आकर किलेबन्दी कर ली है। वे सहमे हुए दूर से कुबड़ी गुलकी को देखा करते थे। निरमल ही उसकी एकमात्र संवाददाता थी और निरमल का एकमात्र विश्वस्त सूत्र था उसकी माँ। उससे जो सुना था उसके आधार पर निरमल ने सबको बताया था कि यह चोर है। इसका बाप 100 रुपया चुराकर भाग गया। यह भी उसके घर का सारा रुपया चुराने आयी है। "रुपया चुरायेगी तो यह भी मर जायेगी।" मुन्ना ने कहा, "भगवान् सबको दण्ड देता है।" निरमल बोली, "ससुराल में भी रुपया चुराये होगी।" मेवा बोला, "अरे कूबड़ थोड़े है। ओही रुपया बाँधे है पीठ पर। मनसेधू का रुपया है।" "सचमुच ?" निरमल ने अविश्वास से कहा। "और नहीं क्या। कूबड़ थोड़े है। है तो दिखावै।" मुन्ना द्वारा उत्साहित होकर मेवा पूछने ही जा रहा था कि देखा साबुनवाली सत्ती खड़ी बात कर रही है गुलकी से—कह रही थी, "अच्छा किया तुमने ! मेहनत से दूकान करो। अब कभी थूकने भी न जाना उसके यहाँ। हरामजादा, दूसरी औरत कर ले, चाहे दस और कर ले। सबका खून उसी के मत्थे चढ़ेगा। यहाँ कभी आवे तो कहलाना मुझसे। इसी चाकू से दोनों आँखें निकाल लूँगी।"

बच्चे डरकर पीछे हट गये। चलते-चलते सत्ती बोली, "कभी रुपये-पैसे की जरूरत हो तो बताना बहिना।"

कुछ दिन बच्चे डरे रहे। पर अकस्मात् उन्हें यह सूझा कि सत्ती को यह कुबड़ी डराने के लिए बुलाती है। इसने उसके गुस्से में आग में घी का काम किया। पर कर क्या सकते थे। अन्त में उन्होंने एक तरीका ईजाद किया। वे एक बुढ़िया का खेल खेलते थे। उसको उन्होंने संशोधित किया। मटकी को लैमनजूस देने का लालच देकर कुबड़ी बनाया गया। वह उसी तरह पीठ दोहरी करके चलने लगी। बच्चों ने सवाल-जवाब शुरू किये—

"कुबड़ी-कुबड़ी का हेराना ?"
"सुई हिरानी।"
"सुई लैके का करबे ?"
"कन्था सीबै !"
"कन्था सी के का करबे ?"
"लकड़ी लाबै !"
"लकड़ी लाय के का करबे ?"
"भात पकइबे !"

"भात पकाय के का करवे ?"

"भात खावै !"

"भात के बदले लात खावे ?"

और इसके पहले कि कुबड़ी बनी हुई मटकी कुछ कह सके, वे उसे जोर से लात मारते और मटकी मुँह के बल गिर पड़ती, उसकी कोहनियाँ और घुटने छिल जाते, आँख में आँसू आ जाते और होठ दबाकर वह रुलाई रोकती। बच्चे ख़ुशी से चिल्लाते, "मार डाला कुबड़ी को। मार डाला कुबड़ी को।" गुलकी यह सब देखती और मुँह फेर लेती।

एक दिन जब इसी प्रकार मटकी को कुबड़ी बनाकर गुलकी की दूकान के सामने ले गये तो इसके पहले कि मटकी जवाब दे, उन्होंने अनचित्ते में इतनी जोर से ढकेला दिया कि वह कुहनी भी न टेक सकी और सीधे मुँह के बल गिरी। नाक, होठ और भौंह खून से लथपथ हो गये। वह "हाय ! हाय !" कर इस बुरी तरह चीखी कि लड़के "कुबड़ी मर गयी !" चिल्लाते हुए भी सहम गये और हतप्रभ हो गये। अकस्मात् उन्होंने देखा कि गुलकी उठी। वे जान छोड़कर भागे। पर गुलकी उठकर आयी, मटकी को गोद में लेकर पानी से उसका मुँह धोने लगी और धोती से खून पोंछने लगी। बच्चों ने पता नहीं क्या समझा कि वह मटकी को मार रही है, या क्या कर रही है कि वे अकस्मात् उस पर टूट पड़े। गुलकी की चीखें सुनकर मुहल्ले के लोग आये तो उन्होंने देखा कि गुलकी के बाल बिखरे हैं, दाँत से खून बह रहा है, अधउघारी चबूतरे के नीचे पड़ी है, और सारी तरकारी सड़क पर बिखरी है। घेघा बुआ ने उसे उठाया, धोती ठीक की और बिगड़कर बोली, "औकात रत्ती-भर नै और तेहा पौवा-भर। आपन बखत देख के चुप नै रहा जात। काहे लड़कन के मुँह लगत हो ?" लोगों ने पूछा तो कुछ नहीं बोली। जैसे उसे पाला मार गया हो। उसने चुपचाप अपनी दूकान ठीक की और दाँत से खून पोंछा, कुल्ला किया और बैठ गयी।

उसके बाद अपने उस कृत्य से बच्चे जैसे ख़ुद सहम गये थे। बहुत दिन तक वे शान्त रहे। आज जब मेवा ने उसकी पीठ पर धूल फेंकी तो जैसे उसे खून चढ़ गया पर फिर न जाने वह क्या सोचकर चुप रह गयी और जब नारा लगाते हुए जलूस गली में मुड़ गया तो उसने आँसू पोंछे, पीठ पर से धूल झाड़ी और साग पर पानी छिड़कने लगी। "लड़का का हैं गल्ली के राच्छस हैं !" घेघा बुआ बोलीं। "अरे उन्हें काहै कहो बुआ ! हमारा भाग ही खोटा है !" गुलकी ने गहरी साँस लेकर कहा।...

इस बार जो झड़ी लगी तो पाँच दिन तक लगातार सूरज के दर्शन नहीं हुए। बच्चे सब घर में कैद थे और गुलकी कभी दूकान लगाती थी, कभी नहीं। राम-राम करके छठे दिन तीसरे पहर झड़ी बन्द हुई। बच्चे हकीमजी के चौतरे पर जमा हो गये। मेवा

बिलबोटी बीन लाया था और निरमल ने टपकी हुई निमकौड़ियाँ बीनकर दूकान लगा ली थी और गुलकी की तरह आवाज लगा रही थी, "ले खीरा, आलू, मूरी, घिया, वण्डा !" थोड़ी देर में काफी शिशु-ग्राहक दूकान पर जुट गये। अकस्मात् शोरगुल को चीरता हुआ बुआ के चौतरे से गीत का स्वर उठा। बच्चों ने घूमकर देखा मिरवा और मटकी गुलकी की दूकान पर बैठे हैं। मटकी खीरा खा रही है और मिरवा झबरी का सर अपनी गोद में रखे बिलकुल उसकी आँखों में आँखें डालकर गा रहा है।

तुरन्त मेवा गया और पता लगाकर लाया कि गुलकी ने दोनों को एक-एक अधन्ना दिया है और दोनों मिलकर झबरी कुतिया के कीड़े निकाल रहे हैं। चौतरे पर हलचल मच गयी और मुन्ना ने कहा, "निरमल ! मिरवा-मटकी को एक भी नीमकौड़ी मत देना। रहें उसी कुबड़ी के पास।" "हाँ जी !" निरमल ने आँख चमकाकर गोल मुँह करके कहा, "हमार अम्मा कहत रही उन्हें छुयो न। न साथ खायो, न खेलो। उन्हें बड़ी बुरी बीमारी है। आक थू !" मुन्ना ने उनकी ओर देखकर उबकाई-जैसा मुँह बनाकर थूक दिया।

गुलकी बैठी-बैठी सब समझ रही थी और जैसे इस निरर्थक घृणा में उसे कुछ रस-सा आने लगा था। उसने मिरवा से कहा, "तुम दोनों मिल के गाओ तो एक अधन्ना दें। खूब जोर से !" भाई-बहन दोनों ने गाना शुरू किया–"माल कताली मल जाना, पल अकियाँ किछी से···" अकस्मात् पटाक से दरवाजा खुला और एक लोटा पानी दोनों के ऊपर फेंकती हुई घेघा बुआ गरजीं, "दुर कलमुँहे। अबहिन बित्तौ-भर के नाहीं ना और पतुरियन के गाना गावै लगे। न बहन का ख्याल, न बिटिया का। और ए कुबड़ी, हम तुहूँ से कहे देईत हैं कि हम चकलाखाना खोलै के बरे अपना चौतरा नहीं दिया रहा। हुँह ! चली हुआँ से मुजरा करावै।"

गुलकी ने पानी उधर छिटकाते हुए कहा, "बुआ, बच्चे हैं। गा रहे हैं। कौन कसूर हो गया।"

"ऐ हाँ ! बच्चे हैं। तुहूँ तो दूध पियत बच्ची हौ। कह दिया कि जबान न लड़ायो हमसे, हाँ ! हम बहुतै बुरी हैं। एक तो पाँच महीने से किराया नाही दियो और हियाँ दुनिया-भर के अन्धे-कोढ़ी बटुरे रहत हैं। चलौ उठाओ अपनी दूकान हियाँ से। कल से न देखी हियाँ तुम्हें। राम ! राम ! सब अधरम की सन्तान राच्छस पैदा भये हैं मुहल्ले में ! धरतियौ नाही फाटत कि मर बिलाय जाँय।"

गुलकी सन्न रह गयी। उसने किराया सचमुच पाँच महीने से नहीं दिया था। बिक्री नहीं थी। मुहल्ले में कोई उससे कुछ लेता ही नहीं था, पर इसके लिए बुआ निकाल देंगी यह उसे कभी आशा नहीं थी। वैसे ही महीने में बीस दिन वह भूखी सोती थी। धोती में दस-दस पैबन्द थे। मकान गिर चुका था। एक दालान में थोड़ी-सी जगह में वह सो जाती थी। पर दूकान तो वहाँ रखी नहीं जा सकती। उसने चाहा कि वह बुआ के पैर पकड़ ले, मिन्नत कर ले। पर बुआ ने जितनी जोर से दरवाजा खोला था उतनी ही जोर से बन्द कर दिया। जब से चौमासा आया था,

पुरवाई बही थी, उसकी पीठ में भयानक पीड़ा उठती थी। उसके पाँव काँपते थे। सट्टी में उसपर उधार बुरी तरह चढ़ गया था। पर अब होगा क्या ? वह मारे खीज के रोने लगी।

इतने में कुछ खटपट हुई और उसने घुटनों से मुँह उठाकर देखा कि मौका पाकर मटकी ने एक ताजा फूट निकाल लिया है और मरभुखी की तरह उसे हबर-हबर खाती जा रही है। एक क्षण वह उसके फूलते-पचकते पेट को देखती रही, फिर खयाल आते ही कि फूट पूरे दस पैसे का है, वह उबल पड़ी और सड़ासड़ तीन-चार खपच्ची मारते हुए बोली, "चोट्टी ! कुतिया ! तोरे बदन में कीड़ा पड़ें !" मटकी के हाथ से फूट गिर पड़ा पर वह नाली में से फूट के टुकड़े उठाते हुए भागी। न रोयी, न चीखी, क्योंकि मुँह में भी फूट भरा था। मिरवा हक्का-बक्का इस घटना को देख रहा था कि गुलकी उसी पर बरस पड़ी। सड़-सड़ उसने मिरवा को मारना शुरू किया, "भाग यहाँ से हरामजादे।" मिरवा दर्द से तिलमिला उठा, "हमला पइछा देव तो जाई।" "देते हैं पैसा, ठहर तो।" सड़ ! सड़ ! ··· रोता हुआ मिरवा चौतरे की ओर भागा।

निरमल की दूकान पर सन्नाटा छाया था। सब चुप उसी ओर देख रहे थे। मिरवा ने आकर कुबड़ी की शिकायत मुन्ना से की। मुन्ना चुप रहा। फिर मेवा की ओर घूमकर बोला, "मेवा बता दो इसे !" मेवा पहले हिचकिचाया, फिर बड़ी मुलायमियत से बोला, "मिरवा, तुम्हें बीमारी हुई है न ! तो हम लोग अब तुम्हें नहीं छुएँगे। साथ नहीं खिलायेंगे। तुम उधर बैठ जाओ।"

"हम बिमाल हैं मुन्ना ?"

मुन्ना कुछ पिघला, "हाँ, हमें छुओ मत। निमकौड़ी खरीदना हो तो उधर बैठ जाओ, हम दूर से फेंक देंगे। समझे !" मिरवा समझ गया, सर हिलाया और अलग जाकर बैठ गया। मेवा ने निमकौड़ी उसके पास रख दी और वह चोट भूलकर पकी निमकौड़ी का बीजा निकालकर छीलने लगा।

इतने में ऊपर से घेघा बुआ की आवाज आयी, "ऐ मुन्ना ! तई तू लोग परे हो जाओ ! अबहिन पानी गिरी ऊपर से !" बच्चों ने ऊपर देखा। तिछत्ते पर घेघा बुआ कछोटा मारे पानी में छप-छप करती घूम रही थीं। कूड़े से तिछत्ते की नाली बन्द थी और पानी भरा था। जिधर बुआ खड़ी थी उसके ठीक नीचे गुलकी का सौदा था। बच्चे वहाँ से दूर थे पर गुलकी को सुनाने के लिए बात बच्चों से कही गयी थी। गुलकी कराहती हुई उठी। कूबड़ की वजह से वह तनकर तिछत्ते की ओर देख भी नहीं सकती थी। उसने धरती की ओर देखकर ऊपर बुआ से कहा, "इधर की नाली काहे खोल रही हो ? उधर की खोलो न !"

"काहे उधर की खोली ! उधर हमारा चौका है कि नै !"

"इधर हमारा सौदा लगा है।"

"ऐ है !" बुआ हाथ चमकाकर बोलीं, "सौदा लगा है रानी साहब का ! किराया

देय के दायीं हियाव फाटत है और टर्राय के दायीं नटई में गामा पहिलवान का जोर तो देखो ! सौदा लगा है तो हम का करी। नारी तो इहै खुली !"

"खोलो तो देखैं।" अकस्मात् गुलकी ने तड़पकर कहा। आज तक किसी ने उसका वह स्वर नहीं सुना था—"पाँच महीने का दस रुपया नहीं दिया बेशक, पर हमारे घर की धन्नी निकाल के बसन्तू के हाथ किसने बेचा ? तुमने। पच्छिम ओर का दरवाजा चिरवा के किसने जलवाया ? तुमने। हम गरीब हैं। हमारा बाप नहीं है। सारा मुहल्ला हमें मिल के मार डालो।"

"हमें चोरी लगाती है। अरे कल की पैदा हुई।" बुआ मारे गुस्से के खड़ी बोली बोलने लगी थीं।

बच्चे चुप खड़े थे। वे कुछ-कुछ सहमे हुए थे। कुबड़ी का यह रूप उन्होंने कभी न देखा, न सोचा था।

"हाँ ! हाँ ! हाँ ! तुमने, ड्राइवर चाचा ने, चाची ने सबने मिलके हमारा मकान उजाड़ा है। अब हमारी दूकान बहाय देव। देखेंगे हम भी। निरबल के भी भगवान् हैं !"

"ले ! ले ! ले ! भगवान् हैं तो ले !" और बुआ ने पागलों की तरह दौड़कर नाली में जमा कूड़ा लकड़ी से ठेल दिया। छह इंच मोटी गन्दे पानी की धार धड़-धड़ करती हुई उसकी दूकान पर गिरने लगी। तरोइयाँ पहले नाली में गिरीं, फिर मूली, खीरे, साग, अदरक उछल-उछलकर दूर जा गिरे। गुलकी आँख फाड़े पागल-सी देखती रही और फिर दीवार पर सर पटककर हृदय-विदारक स्वर में डकराकर रो पड़ी, "अरे मोर बाबू। हमें कहाँ छोड़ गये ! अरे मोरी माई ! पैदा होते ही हमें क्यों नहीं मार डाला ! अरे धरती मैया हमें काहे नहीं लील लेती !"

सर खोले बाल बिखेरे छाती कूट-कूटकर वह रो रही थी और तिछत्ते का पिछले नौ दिन का जमा पानी धड़-धड़ गिर रहा था।

बच्चे चुप खड़े थे। अब तक जो हो रहा था उनकी समझ में आ रहा था। पर आज यह क्या हो गया यह उनकी समझ में नहीं आ सका। पर वे कुछ बोले नहीं। सिर्फ मटकी उधर गयी और नाली में बहता हुआ एक मोटा हरा खीरा निकालने लगी कि मुन्ना ने डाँटा, "खबरदार ! जो कुछ चुराया।" मटकी पीछे हट गयी। वे सब किसी अप्रत्याशित भय, संवेदना या आशंका से जुड़-बटुरकर खड़े हो गये। सिर्फ मिरवा अलग सर झुकाये खड़ा था। झींसी फिर पड़ने लगी थी और वे एक-एक कर अपने घर चले गये।

दूसरे दिन चौतरा खाली था। दुकान का बाँस उखड़वाकर बुआ ने नाँद में गाड़कर उसपर तुरई की लतर चढ़ा दी थी। उस दिन बच्चे आये पर उनकी हिम्मत चौतरे पर जाने की नहीं हुई। जैसे वहाँ कोई मर गया हो। बिलकुल सुनसान चौतरा था और फिर तो ऐसी झड़ी लगी कि बच्चों का निकलना बन्द। चौथे या पाँचवें दिन रात को भयानक वर्षा तो हो ही रही थी पर बादल भी ऐसे गरज रहे थे कि मुन्ना

अपनी खाट से उठकर अपनी माँ के पास घुस गया। बिजली चमकते ही जैसे कमरा रोशनी से नाच-नाच उठता था। छत पर बूँदों की पटर-पटर कुछ धीमी हुई, थोड़ी हवा भी चली और पेड़ों का हरहर सुनायी पड़ा कि इतने में घड़-घड़-घड़ धड़ाम ! भयानक आवाज हुई। माँ भी चौंक पड़ी। पर उठी नहीं। मुन्ना आँखें खोले अँधेरे में ताकने लगा। सहसा लगा मुहल्ले में कुछ लोग बातचीत कर रहे हैं। घेघा बुआ की आवाज सुनाई पड़ी—"किसका मकान गिरा है रे ?" "गुलकी का !"—किसी का दूरागत उत्तर आया। "अरे बाप रे ! दब गयी क्या ?" "नहीं, आज तो मेवा की माँ के यहाँ सोयी है !" मुन्ना लेटा था और उसके ऊपर अँधेरे में यह सवाल-जवाब इधर-से-उधर और उधर-से-इधर जा आ रहे थे। वह फिर काँप उठा, माँ के पास घुस गया और सोते-सोते उसने साफ सुना—कुबड़ी फिर उसी तरह रो रही है, गला फाड़कर रो रही है। कौन जाने मुन्ना के ही आँगन में बैठकर रो रही हो। नींद में वह स्वर दूर कभी पास आता हुआ ऐसा लग रहा है जैसे कुबड़ी मुहल्ले के हर आँगन में जाकर रो रही है पर कोई सुन नहीं रहा, सिवा मुन्ना के।

बच्चों के मन में कोई बात इतनी गहरी लकीर नहीं बनाती कि उधर से उनका ध्यान हटे ही नहीं। सामने गुलकी थी तो वह एक समस्या थी, पर उसकी दूकान हट गयी, फिर वह जाकर साबुनवाली सत्ती के गलियारे में सोने लगी और दो-चार घर से माँग-जाँचकर खाने लगी, उस गली में दिखती ही नहीं थी। बच्चे भी दूसरे कामों में व्यस्त हो गये। अब जाड़े आ रहे थे, उनका जमावड़ा सुबह न होकर तीसरे पहर होता था। जमा होने के बाद जलूस निकलता था और जिस जोशीले नारे से गली गूँज उठती थी वह था—"घेघा बुआ को वोट दो।" पिछले दिनों म्युनिसिपैलिटी का चुनाव हुआ था और उसी में बच्चों ने यह नारा सीखा था। वैसे कभी-कभी बच्चों में दो पार्टियाँ भी होती थीं, पर दोनों को घेघा बुआ से अच्छा उम्मीदवार कोई नहीं मिलता था अतः दोनों गला फाड़-फाड़कर उनके ही लिए वोट माँगती थीं।

उस दिन जब घेघा बुआ के धैर्य का बाँध टूट गया और नयी-नयी गालियों से विभूषित अपनी पहली एलेक्शन स्पीच देने ज्यों ही चौतरे पर अवतरित हुईं कि उन्हें डाकिया आता हुआ दिखायी पड़ा। वह अचकचाकर रुक गयीं। डाकिये के हाथ में एक पोस्टकार्ड था और वह गुलकी को ढूँढ़ रहा था। बुआ ने लपककर पोस्टकार्ड लिया, एक साँस में पढ़ गयीं। उनकी आँखें मारे अचरज के फैल गयीं, और डाकिये को यह बताकर कि गुलकी सत्ती साबुनवाली के ओसारे में रहती है, वे झट से दौड़ी-दौड़ी निरमल की माँ ड्राइवर की पत्नी के यहाँ गयीं। बड़ी देर तक दोनों में सलाह-मशविरा होता रहा और अन्त में बुआ आयीं और उन्होंने मेवा को भेजा, "जा गुलकी को बुलाय ला !"

पर जब मेवा लौटा तो उसके साथ गुलकी नहीं वरन् सत्ती साबुनवाली थी और

सदा की भाँति इस समय भी उसकी कमर से वह काले बेंट का चाकू लटक रहा था, जिससे वह साबुन की टिक्की काटकर दुकानदारों को देती थी। उसने आते ही भौंह सिकोड़कर बुआ को देखा और कड़े स्वर में बोली, "क्यों बुलाया है गुलकी को ? तुम्हारा दस रुपये किराया बाकी था, तुमने पन्द्रह रुपये का सौदा उजाड़ दिया ! अब क्या काम है !" "अरे ! राम ! राम ! कैसा किराया बेटी ! अन्दर आओ, अन्दर आओ !" बुआ के स्वर में असाधारण मुलायमियत थी। सत्ती के अन्दर जाते ही बुआ ने फटाक से किवाड़ बन्द कर लिये। बच्चों का कौतूहल बहुत बढ़ गया था। बुआ के चौके में एक झँझरी थी। सब बच्चे वहाँ पहुँचे और आँख लगाकर कनपटियों पर दोनों हथेलियाँ रखकर घण्टीवाला बाइसकोप देखने की मुद्रा में खड़े हो गये।

अन्दर सत्ती गरज रही थी, "बुलाया है तो बुलाने दो। क्यों जाये गुलकी ? अब बड़ा खयाल आया है। इसलिए कि उसकी रखैल को बच्चा हुआ है तो जाके गुलकी झाड़ू-बुहारू करे, खाना बनाये, बच्चा खिलावे, और वह मरद का बच्चा गुलकी की आँख के आगे रखैल के साथ गुलछर्रे उड़ावे !"

निरमल की माँ बोलीं, "अरे बिटिया, पर गुजर तो अपने आदमी के साथ करैगी न ! जब उसकी पत्री आयी है तो गुलकी को जाना चाहिए। और मरद तो मरद। एक रखैल छोड़ दुइ-दुइ रखैल रख ले तो औरत उसे छोड़ देगी ? राम ! राम !"

"नहीं, छोड़ नहीं देगी तो जाय कै लात खायगी ?" सत्ती बोली।

"अरे बेटा !" बुआ बोलीं, "भगवान् रहें न ? तौन मथुरापुरी में कुब्जा दासी के लात मारिन तो ओकर कूबर सीधा हुइ गवा। पती तो भगवान् हैं बिटिया ! ओको जाय देव !"

"हाँ-हाँ बड़ी हितू न बनिए ! उसके आदमी से आप लोग मुफ्त में गुलकी का मकान झटकना चाहती हैं। मैं सब समझती हूँ।"

निरमल की माँ का चेहरा जर्द पड़ गया। पर बुआ ने ऐसी कच्ची गोली नहीं खेली थी। वे डपटकर बोलीं, "खबरदार जो कच्ची जबान निकाल्यो ! तुम्हारा चलित्तर कौन नै जानता ! ओही छोकरा मानिक···।"

"जबान खींच लूँगी," सत्ती गला फाड़कर चीखी, "जो आगे एक हरुफ कहा।" और उसका हाथ अपने चाकू पर गया—

"अरे ! अरे ! अरे !" बुआ सहमकर दस कदम पीछे हट गयीं—"तो का खून करबो का, कतल करबो का ?" —सत्ती जैसे आयी थी वैसे ही चली गयी।

तीसरे दिन बच्चों ने तय किया कि होरी बाबू के कुएँ पर चलकर बर्रे पकड़ी जायें। उन दिनों उनका जहर शान्त रहता है, बच्चे उन्हें पकड़कर उनका छोटा-सा काला डंक निकाल लेते और फिर डोरी में बाँधकर उन्हें उड़ाते हुए घूमते। मेवा, निरमल और

मुन्ना एक-एक बर्रे उड़ाते हुए जब गली में पहुँचे तो देखा बुआ के चौतरे पर टीन की कुरसी डाले कोई आदमी बैठा है। उसकी अजब शक्ल थी। कान पर बड़े-बड़े बाल, मिचमिची आँखें, मोछा और तेल से चुचुआते हुए बाल। कमीज और धोती पर पुराना बदरंग बूट। मटकी हाथ फैलाये कह रही है, "एक डबल दै देव ! एक दै देव ना !" मुन्ना को देखकर मटकी ताली बजा-बजाकर कहने लगी, "गुलकी का मनसेधू आवा है। ए मुन्ना बाबू ! ई कुबड़ी का मनसेधू है।" फिर उधर मुड़कर–"एक डबल दै देव।" तीनों बच्चे कौतूहल में रुक गये। इतने में निरमल की माँ एक गिलास में चाय भरकर लायी और उसे देते-देते निरमल के हाथ में बर्रे देखकर उसे डाँटने लगी। फिर बर्रे छुड़ाकर निरमल को पास बुलाया और बोली, "बेटा, ई हमारी निरमला है। ए निरमल, जीजाजी हैं, हाथ जोड़ो ! बेटा, गुलकी हमारी जात-बिरादरी की नहीं है तो का हुआ, हमारे लिए जैसे निरमल वैसे गुलकी। अरे, निरमल के बाबू और गुलकी के बाप की दाँत काटी रही। एक मकान बचा है उनकी चिह्नारी, और का !" एक गहरी साँस लेकर निरमल की माँ ने कहा।

"अरे तो का उन्हें कोई इनकार है !" बुआ आ गयी थीं, "अरे सौ रुपये तुम दैवे किये रहय्यू, चलो तीन सौ और दै देव। अपने नाम कराय लेव !"

"पाँच सौ से कम नहीं होगा !" उस आदमी का मुँह खुला, एक वाक्य निकला और मुँह फिर बन्द हो गया।

"भवा ! भवा ! ऐ बेटा दामाद हौ, पाँच सौ कहबो तो का निरमल की माँ को इनकार है !"

अकस्मात् वह आदमी उठकर खड़ा हो गया। आगे-आगे सत्ती चली आ रही थी पीछे-पीछे गुलकी। सत्ती चौतरे के नीचे खड़ी हो गयी। बच्चे दूर हट गये। गुलकी ने सिर उठाकर देखा और अचकचाकर सर पर पल्ला डालकर माथे तक खींच लिया। सत्ती दो-एक क्षण उसकी ओर एकटक देखती रही और फिर गरजकर बोली, "यही कसाई है ! गुलकी, आगे बढ़कर मार दो चपोटा इसके मुँह पर ! खबरदार जो कोई बोला !" बुआ चट से देहरी के अन्दर हो गयीं, निरमल की माँ की जैसे घिग्घी बँध गयी और वह आदमी हड़बड़ाकर पीछे हटने लगा।

"बढ़ती क्यों नहीं गुलकी ! बड़ा आया वहाँ से बिदा कराने !"

गुलकी आगे बढ़ी–सब सन्न थे–सीढ़ी चढ़ी, उस आदमी के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। गुलकी चढ़ते-चढ़ते रुकी, सत्ती की ओर देखा, ठिठकी, अकस्मात् लपकी और फिर उस आदमी के पाँव पर गिर के फफक-फफककर रोने लगी, "हाय ! हमें काहे को छोड़ दियौ ! तुम्हारे सिवा हमारा लोक-परलोक और कौन है ! अरे, हमरे मरै पर कौन चुल्लू भर पानी चढ़ायी···"

सत्ती का चेहरा स्याह पड़ गया। उसने बड़ी हिकारत से गुलकी की ओर देखा और गुस्से में थूक निगलते हुए कहा, "कुतिया !" और तेजी से चली गयी। निरमल की माँ और बुआ गुलकी के सर पर हाथ फेर-फेरकर कह रही थीं, "मत रो

बिटिया ! मत रो ! सीता मैया भी तो बनवास भोगिन रहा। उठो गुलकी बेटा ! धोती बदल लेव कंघी चोटी करो। पति के सामने ऐसे आना असगुन होता है। चलो !"

गुलकी आँसू पोंछती-पोंछती निरमल की माँ के घर चली। बच्चे पीछे-पीछे चले तो बुआ ने डाँटा, "ऐ चलो एहर, हुँआ लड्डू बँट रहा है का !"

दूसरे दिन निरमल के बाबू (ड्राइवर साहब), गुलकी और जीजाजी दिन-भर कचहरी में रहे। शाम को लौटे तो निरमल की माँ ने पूछा, "पक्का कागज लिख गया ?" "हाँ-हाँ रे, हाकिम के सामने लिख गया।" फिर जरा निकट आकर फुसफुसाकर बोले, "मट्टी के मोल मकान मिला है। अब कल दोनों को बिदा करो।" "अरे, पहले सौ रुपये लाओ ! बुआ का हिस्सा भी तो देना है ?" निरमल की माँ उदास स्वर में बोली, "बड़ी चंट है बुढ़िया। गाड़-गाड़ के रख रही है, मर के साँप होयगी।"

सुबह निरमल की माँ के यहाँ मकान खरीदने की कथा थी। शंख, घण्टा-घड़ियाली, केले का पत्ता, पंजीरी पंचामृत का आयोजन देखकर मुन्ना के अलावा सब बच्चे इकट्ठा थे। निरमल की माँ और निरमल के बाबू पीढ़े पर बैठे थे; गुलकी एक पीली धोती पहने माथे तक घूँघट काढ़े सुपारी काट रही थी और बच्चे झाँक-झाँककर देख रहे थे। मेवा ने पहुँचकर कहा, "ए गुलकी, ए गुलकी, जीजाजी के साथ जाओगी क्या ?" कुबड़ी ने झेंपकर कहा, "धत्त रे ! ठिठोली करता है !" और लज्जा-भरी जो मुसकान किसी भी तरुणी के चेहरे पर मनमोहक लाली बनकर फैल जाती, उसके झुर्रियोंदार, बेडौल, नीरस चेहरे पर विचित्र रूप से वीभत्स लगने लगी। उसके काले पपड़ीदार होठ सिकुड़ गये, आँखों के कोने मिचमिचा उठे और अत्यन्त कुरुचिपूर्ण ढंग से उसने अपने पल्ले से सर ढाँक लिया और पीठ सीधी कर जैसे कूबड़ छिपाने का प्रयास करने लगी। मेवा पास ही बैठ गया। कुबड़ी ने पहले इधर-उधर देखा, फिर फुसफुसाकर मेवा से कहा, "क्यों रे ! जीजाजी कैसे लगे तुझे ?" मेवा ने असमंजस में या संकोच में पड़कर कोई जवाब नहीं दिया तो जैसे अपने को समझाते हुए गुलकी बोली, "कुछ भी होय। है तो अपना आदमी ! हारे-गाढ़े कोई और काम आयेगा ? औरत को दबाय के रखना ही चाहिए।" फिर थोड़ी देर चुप रहकर बोली, "मेवा भैया, सत्ती हमसे नाराज है। अपनी सगी बहन क्या करेगी जो सत्ती ने किया हमारे लिए। ये चाची और बुआ तो सब मतलब के साथी हैं हम क्या जानते नहीं ? पर भैया अब जो कहो कि हम सत्ती के कहने से अपने मरद को छोड़ दें, सो नहीं हो सकता।" इतने में किसी का छोटा-सा बच्चा घुटनों के बल चलते-चलते मेवा के पास आकर बैठ गया। गुलकी क्षण-भर उसे देखती रही फिर बोली, "पति से हमने अपराध किया तो भगवान् ने बच्चा छीन लिया, अब भगवान् हमें छमा कर देंगे।" फिर कुछ क्षण के लिए चुप हो गयी। "क्षमा करेंगे तो दूसरी

सन्तान देंगे ?" "क्यों नहीं देंगे ? तुम्हारे जीजाजी को भगवान् बनाये रखे। खोट तो हमी में है। फिर सन्तान होगी तब तो सौत का राज नहीं चलेगा।"

इतने में गुलकी ने देखा कि दरवाजे पर उसका आदमी खड़ा बुआ से कुछ बातें कर रहा है। गुलकी ने तुरत पल्ले से सर ढँका और लजाकर उधर पीठ कर ली। बोली, "राम ! राम ! कितने दुबरा गये हैं। हमारे बिना खाने-पीने का कौन ध्यान रखता ! अरे, सौत तो अपने मतलब की होगी। ले भैया मेवा, जा दो बीड़ा पान दे आ जीजा को !" फिर उसके मुँह पर वही लाज की वीभत्स मुद्रा आयी—"तुझे कसम है, बताना मत किसने दिया है।"

मेवा पान लेकर गया पर वहाँ किसी ने उसपर ध्यान ही नहीं दिया। वह आदमी बुआ से कह रहा था, "इसे ले तो जा रहे हैं, पर इतना कहे देते हैं, आप भी समझा दें उसे— कि रहना हो तो दासी बनकर रहे। न दूध की न पूत की, हमारे कौन काम की; पर हाँ औरतिया की सेवा करे, उसका बच्चा खिलावे, झाड़ू-बुहारू करे तो दो रोटी खाय पड़ी रहे। पर कभी उससे जबान लड़ाई तो खैर नहीं । हमारा हाथ बड़ा जालिम है। एक बार कूबड़ निकला, अगली बार परान निकलेगा।"

"क्यों नहीं बेटा ! क्यों नहीं !" बुआ बोलीं और उन्होंने मेवा के हाथ से पान लेकर अपने मुँह में दबा लिये।

करीब तीन बजे इक्का लाने के लिए निरमल की माँ ने मेवा को भेजा। कथा की भीड़-भाड़ से उनका 'मूड़ पिराने' लगा था, अतः अकेली गुलकी सारी तैयारी कर रही थी। मटकी कोने में खड़ी थी। मिरवा और झबरी बाहर गुमसुम बैठे थे। निरमल की माँ ने बुआ को बुलवाकर पूछा कि बिदा-बिदाई में क्या करना होगा, तो बुआ मुँह बिगाड़कर बोलीं, "अरे कोई जात-बिरादरी की है का ? एक लोटा में पानी भर के इकन्नी-दुअन्नी उतार के परजा-पजारू को दै दियो बस !" और फिर बुआ शाम को बियारी में लग गयीं।

इक्का आते ही जैसे झबरी पागल-सी इधर-उधर दौड़ने लगी। उसे जाने कैसे आभास हो गया कि गुलकी जा रही है, सदा के लिए। मेवा ने अपने छोटे-छोटे हाथों से बड़ी-बड़ी गठरिगाँ रखीं, मटकी और मिरवा चुपचाप आकर इक्के के पास खड़े हो गये। सर झुकाये पत्थर-सी चुप गुलकी निकली। आगे-आगे हाथ में पानी का भरा लोटा लिये निरमल थी। वह आदमी जाकर इक्के पर बैठ गया। "अब जल्दी करो !" उसने भारी गले से कहा। गुलकी आगे बढ़ी, फिर रुकी और टेंट से दो अधन्नी निकाले—"ले मिरवा, ले मटकी !" मटकी जो हमेशा हाथ फैलाये रहती थी, इस समय जाने कैसा संकोच उसे आ गया कि वह हाथ नीचे कर दीवार से सट कर खड़ी हो गयी और सर हिलाकर बोली, "नहीं !"—"नहीं बेटा ! ले लो !" गुलकी ने पुचकारकर कहा। मिरवा-मटकी ने पैसे ले लिये और मिरवा बोला, "छलाम गुलकी ! ए आदमी छलाम !"

"अब क्या गाड़ी छोड़नी है !" वह फिर भारी गले से बोला।

"ठहरो बेटा, कहीं ऐसे दामाद की बिदाई होती है !" सहसा एक बिलकुल अजनबी किन्तु अत्यन्त मोटा स्वर सुनायी पड़ा। बच्चों ने अचरज से देखा, मुन्ना की माँ चली आ रही हैं। "हम तो मुन्ना का आसरा देख रहे थे कि स्कूल से आ जाये, उसे नाश्ता करा लें तो आयें, पर इक्का आ गया तो हमने समझा अब तू चली। अरे ! निरमल की माँ, कहीं ऐसे बेटी की बिदाई होती है ! लाओ जरा रोली घोलो जल्दी से, चावल लाओ, और सेन्दुर भी ले आना निरमल बेटा ! तुम बेटा उतर आओ इक्के से !"

निरमल की माँ का चेहरा स्याह पड़ गया था। बोलीं, "जितना हमसे बन पड़ा किया। किसी को दौलत का घमण्ड थोड़े ही दिखाना था !" "नहीं बहन ! तुमने तो किया पर मुहल्ले की बिटिया तो सारे मुहल्ले की बिटिया होती है। हमारा भी तो फर्ज था। अरे माँ-बाप नहीं हैं तो मुहल्ला तो है। आओ बेटा !" और उन्होंने टीका करके आँचल के नीचे छिपाये हुए कुछ कपड़े और एक नारियल उसकी गोद में डालकर उसे चिपका लिया। गुलकी जो अभी तक पत्थर-सी चुप थी सहसा फूट पड़ी। उसे पहली बार लगा जैसे वह मायके से जा रही है। मायके से···अपनी माँ को छोड़कर···छोटे-छोटे भाई-बहनों को छोड़कर···और वह अपने कर्कश फटे हुए गले से विचित्र स्वर से रो पड़ी।

"ले अब चुप हो जा ! तेरा भाई भी आ गया !" वे बोलीं। मुन्ना बस्ता लटकाये स्कूल से चला आ रहा था। कुबड़ी को अपनी माँ के कन्धे पर सर रखकर रोते देखकर वह बिल्कुल हतप्रभ-सा खड़ा हो गया—"आ बेटा, गुलकी जा रही है न आज ! दीदी है न ! बड़ी बहन है। चल पाँव छू ले ! आ इधर !" माँ ने फिर कहा। मुन्ना ···और कुबड़ी के पाँव छुए ? क्यों ? क्यों ? पर माँ की बात ! एक क्षण में उसके मन में जैसे एक पूरा पहिया घूम गया और वह गुलकी की ओर बढ़ा। गुलकी ने दौड़कर उसे चिपका लिया और फूट पड़ी—"हाय मेरे भैया ! अब हम जा रहे हैं ! अब किससे लड़ोगे मुन्ना भैया ? अरे मेरे बीरन, अब किससे लड़ोगे ?" मुन्ना को लगा जैसे उसकी छोटी-छोटी पसलियों में एक बहुत बड़ा-सा आँसू जमा हो गया जो अब छलकने ही वाला है। इतने में उस आदमी ने फिर आवाज दी और गुलकी कराहकर मुन्ना की माँ का सहारा लेकर इक्के पर बैठ गयी। इक्का खड़-खड़ कर चल पड़ा। मुन्ना की माँ मुड़ी कि बुआ ने व्यंग्य किया, "एक आध गाना भी बिदाई का गाये जाओ बहन ! गुलकी बन्नो ससुराल जा रही है !" मुन्ना की माँ ने कुछ जवाब नहीं दिया, मुन्ना से बोली, "जल्दी घर आना बेटा, नाश्ता रखा है !"

पर पागल मिरवा ने, जो बम्बे पर पाँव लटकाये बैठा था, जाने क्या सोचा कि वह सचमुच गला फाड़कर गाने लगा, "बन्नो डाले दुपट्टे का पल्ला, मुहल्ले से चली गयी राम !" यह उस मुहल्ले में हर लड़की की बिदा पर गाया जाता था। बुआ ने घुड़का तब भी वह चुप नहीं हुआ, उलटे मटकी बोली, "काहे न गावें, गुलकी ने पैसा दिया है !" और उसने भी सुर मिलाया, "बन्नो तली गयी लाम ! बन्नो तली गयी

लाम ! बन्नो तली गयी लाम !"

मुन्ना चुपचाप खड़ा रहा। मटकी डरते-डरते आयी– "मुन्ना बाबू ! कुबड़ी ने अधन्ना दिया है, ले लें ?"

"ले ले" बड़ी मुश्किल से मुन्ना ने कहा और उसकी आँख में दो बड़े-बड़े आँसू डबडबा आये। उन्हीं आँसुओं की झिलमिल में कोशिश करके मुन्ना ने जाते हुए इक्के की ओर देखा। गुलकी आँसू पोंछते हुए परदा उठाकर मुड़-मुड़कर देख रही थी। मोड़ पर एक धचके से इक्का मुड़ा और फिर अदृश्य हो गया।

सिर्फ झबरी सड़क तक इक्के के साथ गयी और फिर लौट गयी। □

सावित्री नम्बर दो

हर बार पूछना चाहा है, मगर बार-बार चुप रह गयी हूँ।

आज जब माँ को सज-धजकर वट-सावित्री की पूजा के लिए थाल में सूत और रोली, चावल रखकर जाते देखा तभी से बेहद बेचैनी है कि आज तो यह सवाल तुमसे पूछकर रहूँगी सत्यवान। जाते-जाते माँ की निगाह मेरी इस गन्दी छह साल से यहीं पड़ी रोग-शय्या पर पड़ी और वे ठिठक गयीं। फिर पूजा की थाली नीचे रख दी। मेरे पास आयीं। मेरे रूखे मैल भरे बालों पर हाथ फेरकर बोलीं, "सबित्तरा बेटी !" और आँसू पोंछते हुए चली गयीं। सबित्तरा मेरा घर का नाम है, प्यार का (जब मैं प्यार के काबिल थी)—असली नाम है सावित्री। और नहीं तो सिर्फ नाम के नाते ही तुमसे पूछती हूँ सत्यवान कि तुम बताओ मैं आखिर करूँ तो क्या करूँ ? हर ओर भटक-भटककर रोगी, जर्जर, बरसों से क्षण-क्षण धीरे-धीरे मरती हुई यह सावित्री नाम की लड़की अब बहुत थक गयी है। रास्ता क्या है सत्यवान ?

लेकिन मुझे बिना जाने तुम सवाल का जवाब दोगे कैसे ? मैं तो खैर तुम्हें जानती हूँ। बचपन से तुम्हारी कथा सुनी है, आशीर्वाद पाये हैं— 'मेरी सावित्री को सत्यवान-सा वर मिले।' मगर तुम मुझे कहाँ जानते होगे। तुम्हें किसने बताया होगा कि इस गली की पलस्तर उखड़ी खिड़की के पास पिछले छह-सात साल से असाध्य रोग में हड्डी-हड्डी गलाती हुई यह जो पीली मुर्दार लड़की पड़ी-पड़ी अकसर तुम्हारी कथा को गुनती रहती है इसका भी नाम सावित्री है।

तुम भाग्यवान् थे, भाग्यवान् थी तुम्हारी सावित्री। मौत को सृष्टि में पहली बार तुम्हारे लिए सावित्री ने जीता लेकिन आज इस गली में पिछले छह साल से जिस मौत को मैं जी रही हूँ उसे क्या तुमने जाना था ? तुम्हारे लिए तो सब-कुछ कितना आसान रहा, वन में अकस्मात् तुमने पाया कि लो ! जीवन बीत गया, मृत्यु का क्षण आ गया। बिना किसी ढील और मर्मान्तक इन्तजार के मौत का दरवाजा खुल गया, लेकिन इसके पहले कि तुम उस मरणोत्तर रहस्यों की दुनिया में कदम रखो, तुम रोक

दिये गये, क्योंकि तुम्हें मालूम हुआ कि एक क्षुद्र हाड़-मांस का जीव, तुम्हें प्यार करनेवाली सावित्री कोटि-कोटि देवताओं से विद्रोह कर बैठी है तुम्हें वापस बुलाने के लिए। और फिर तुम जिन्दगी में वापस लौट आये विजय से दीप्त, गौरव से भरे-पूरे ! कहीं कोई जटिलता नहीं। आसान मौत, गौरव-भरी वापसी।

लेकिन मेरे मुहल्ले की इस गली में आकर हर कथा उलट-पुलट जाती है। तुम बताओ कि तुम क्या करते अगर शादी के दूसरे साल से सावित्री, अन्दर से हाड़-मांस को कण-कण गलानेवाले रोग से ग्रस्त खाट से लग जाती। इस खिड़की के पास पड़ी-पड़ी बस यह जानती रहती कि जिनके गले की वह खिलती-महकती वरमाला थी अब बरसों से वह उनके गले पड़ा एक अनावश्यक बोझ है जिसे न अब वह ढो पाती है, न उतार पाती है। और वह चुपचाप देखती कि रोज एक-एक कण कर पति के मन में प्यार मरता जा रहा है। रह गया है केवल एक सौजन्य, एक भलमनसाहत कि आखिर जिस औरत को अब जीना नहीं है उसका दिल क्यों दुखाया जाये। तुम्हें क्या मालूम कि घृणा मन को उतना नहीं तोड़ती जितना यह ठण्डा, कृतज्ञता और सौजन्य-भरा दिखावा जो हर क्षण मुझे यह अनुभूति दे जाता है कि असलियत में तो मैं मर ही चुकी हूँ। मेरे प्रति मेरे पति का यह आदर-भाव भी वैसा ही है जैसा मृत शरीर के प्रति होता है।

और फिर भी मैं नहीं हूँ। कितना तकलीफदेह है यह बरसों की अवधि में फैली हुई मौत को जानते हुए, देखते हुए, समझते हुए जीना। मैंने कई बार रो-रोकर यम से प्रार्थना की है कि एक सावित्री के नाम से तुमने यमपाश खोल दिया था। दूसरी की विनती पर कसकर बाँध लो। ताकि कम-से-कम मैं उन्हें मुक्ति दे सकूँ। मुझे बाँध ले चलो। मैं अब निरर्थक हो चली हूँ।

नहीं, उनकी शिकायत नहीं कर रही ! वे बहुत भले हैं। बहुत सज्जन। हर डॉक्टर बरसों पहले जवाब दे चुका मगर वे अब भी दूसरे-तीसरे दिन शाम को आते हैं। पास की कुरसी पर बैठकर कहते हैं, "हिम्मत मत हारो सावी ! मैं कोई कोशिश बचा नहीं रखूँगा !" लेकिन मैं जानती हूँ। मौत के मुँह से गिर पड़ने वाले उच्छिष्ट जूठे कौर-सा जो कोने में पड़ा हो, जिन्दगी से वंचित और मौत से अस्वीकृत उसका कुछ नहीं हो सकता।

सब थक गये हैं। सब ऊब गये हैं। साल भर वहाँ रही, फिर माँ-बाप ले आये। चारों तरफ मैं ही नहीं मेरे कारण सब पिछले पाँच साल में धीरे-धीरे गल गये हैं, और मैं अब भी खिड़की के पास तकिये से टिककर इसी मैली खाट पर पड़ी हूँ।

मेरी खाट के दायीं ओर वाली यह खिड़की एक चौहद्दी है। इसके उस पार जिन्दगी है, इस पार हूँ मैं। बाहर एक बड़ा-सा पार्क है। उसके चारों ओर मकानों के पिछवाड़े हैं, खिड़कियाँ हैं, छज्जे हैं, ऊपर बड़ा-सा आसमान है। वहाँ जिन्दगी समुन्दर की तरह लहराती है और मेरी खिड़की से टकराकर लौट जाती है। मैं सब देखती हूँ पर मुझे कुछ भी व्यापता नहीं। पार्क में खेलते हुए बच्चे हैं, बेंचों पर ऊँघती हुई आयाएं हैं, लाल गुलमोहर, पीले अमलतास और छोछे-छोटे फूलोंवाली नीलकांटे की

झाड़ियाँ हैं। लाल मकान के पिछवाड़े की खिड़कियाँ एक सुन्दर लड़की के कारण सजीव हैं। वह कभी केश सुखाते हुए पढ़ती है। कभी रेडियो में बजते गानों की लय पर नाचती है, कभी कमरा बन्द कर माँ की साड़ियाँ और गहनों में सजकर आईनों में अपने को देखती है। शाम ढलने लगती है और ऊपर उड़ते हुए कबूतर छज्जों पर उतर आते हैं। नाचती लटाइयों पर डोर लपेटकर लड़के पतंग उतार लेते हैं। आयाएँ ऊँघते बच्चों को घर ले जाने लगती हैं और खट से सड़क की बत्तियाँ जल जाती हैं।

यह सब भरी-पूरी जिन्दगी है। कितने बरसों से खिड़की में जड़ी इन छड़ों को पारदर्शी लोहे की दीवार से टकरा-टकराकर यह जीवन का समुद्र असफल अकारथ वापस लौट गया है। खिड़की के इधर पड़ी रही हूँ मैं। न मरी न जिन्दा। तुम्हारे लिए तो कोई तब लड़ा था जब कम-से-कम मौत ने तुम्हें पूरी तरह स्वीकार लिया था सत्यवान, पर मेरे लिए कोई लड़े तो किससे। मेरे लिए तो न जिन्दगी है न मौत। है एक तीसरे प्रकार की स्थिति, एक निरर्थक क्रम में बीतते जाते क्षण जो कहीं भी तो नहीं ले जाते।

नहीं। यह भी नहीं कि जड़ हो चुकी हूँ। अगर ऐसा होता तो काहे को कुछ मुझे व्यापता। पर अभी तो रह-रहकर बहुत-कुछ कचोट जाता है। बचपन की खुशनुमा मीठी यादों से भरी पर अब दिनों-दिन टूट-टूटकर बिखरती माँ-बाप की गिरस्ती। पति का दूसरे-तीसरे कभी फूलमाला, कभी कोई किताब लेकर थके पाँव सूखे मुँह आना, मुझे देखकर औपचारिक ढंग से निरर्थक हँसने की उदास कोशिश करना। लाड़ला बचपन बितानेवाली मुझ-जैसी दीदी के छोटे भैया का चबूतरे पर खड़े होकर आइस्क्रीम वालों, चाटवालों को भूखी लाचार आँखों से एकटक देखना। बढ़ती हुई उम्र के साथ मेरी बीमारी में उजड़े हुए सीधे-सादे, प्रताड़ित, कुण्ठित पिता का दिनों-दिन दयनीय, हास्यास्पद और लालची होते चले जाना। यह माँ की ढलती उम्र के साथ आँखों में अतृप्त लिप्सा के कुत्सित संकेत और मेरी छोटी बहन के उभरते शरीर के प्रति उनकी प्रतिशोधभरी अमानुषिक निर्ममता। फलस्वरूप अपने बाप के सामने भी जाते हुए अपने शरीर के प्रति सचेत हो जानेवाली छोटी बहन की वीभत्स मुद्रा...यह सब मुझे अब भी कचोट जाता है। काश कि मैं जड़ ही हो जाती या यह सब दर्पण पर पड़ी परछाइयों की तरह अंकित होकर फिर मन से धुल जाता। लेकिन यह सब अन्दर व्यापकर बस जाता है। अनगिनत नासूरों-सा मुझे अन्दर से क्षण-क्षण खाये जाता है। जो न जिन्दगी में लौट सके, न पूरी तरह मौत जिसे बाँध सके, जिन्दगी से वंचित होकर भी जिसे निष्क्रिय पड़े-पड़े हर चीज देखने, उसकी तह तक उतरकर उसकी असलियत जान लेने की अभिशाप-भरी मजबूरी हो उसका अन्त में क्या होता है सत्यवान ? यह इस सावित्री के ही साथ क्यों हुआ ?

क्या इसीलिए सावित्री ! कि तुम्हारी नावाँरासी होते हुए भी न मैं उतनी पवित्र हूँ न

निष्ठामयी। पर मैंने उसका झूठा दावा कब किया। इसलिए न अभी-अभी जब वटसावित्री की पूजा के लिए जाते हुए माँ ने मुझसे पूजा की थाली छूने को कहा तो मैं सुनकर भी अनसुनी कर गयी। आँखें इस तरह मूँद लीं मानों मुझमें जान नहीं रही हो। लेकिन अगर तुम इस सील अँधेरे घर में, बिस्तर पर पड़ी होती सावित्री ! तब तुमसे पूछती कि पवित्रता क्या है ? निष्ठा क्या है ?

तुम्हें बताऊँगी कि मेरे मन पर क्या-क्या गुजरा, तब तुम मुझे बताना कि निष्ठा और पवित्रता का मैं करती क्या। तुम तो स्त्री हो। बिना कुछ भी छिपाये तुमसे साफ-साफ सब बता सकती हूँ। तुम तो जानती हो कि हम स्त्रियाँ चाहे सुन्दर हों या न हों लेकिन पति की आँखों का छलकता नशा, उसकी बाँहों का गर्म कसाव, कान में धीरे से कही गयीं उसकी झूठी-सच्ची बातें हमें कितना भर देती हैं ! हमारे शरीर अकस्मात् कितने बहुमूल्य, कितने गौरवमय हो उठते हैं। लगता है हमारे पास चाहे कुछ न हो पर एक चीज है उन्हें देने को, एक तृप्ति, एक उल्लास, एक भराव जो हम, केवल हम अपने अर्पित शरीर से दे सकते हैं।

और सोचो कि अकस्मात् एक दिन सबसे बड़ा डॉक्टर कह दे कि वह शरीर अन्दर से गल चुका है। उनके काम का नहीं रहा। किसी काम का नहीं रहा। वह मुझसे छीन लिया गया। और फिर भी मौत अभी दूर है ? तुम सोचो तब तुम क्या ऐसी ही अडिग बनी रहतीं ? सौम्य ? निष्ठामयी।

मैं सुन्दर नहीं थी पर उनका प्यार पाकर मुझे अपनी देहयष्टि पर गुमान था। मोर की तरह पंख फैलाकर ठुमकती थी सारे घर में। मुहल्ले की दूसरी बहुएँ मुझे कोसती रहती थीं, मैं सजी रहती थी और वे रीझे रहते थे। सोचती थी इसी तरह सजी-सँवरी इनकी गोद में ही एक दिन आँखें मूँद लूँ। तुम तो मौत से लड़ी थीं सावित्री बहन ! प्यार के लिए; मुझ अभागिन सवित्तिरा को ब्याह के शुरू-शुरू के ही दिनों में लगता था मैं क्यों न मर जाऊँ, मैं कितनी भर-भर गयी हूँ।

लेकिन क्या मालूम था कि मौत वैसे नहीं ऐसे आती है। डॉक्टर इन्हें ले जाकर कुछ कहता है, ये मेरी सासूजी से कहते हैं और वे मेरी मोर-सी ठुमकती चाल से अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ी, खीझी, विजय के स्वर में मुझसे न कहकर, मुझे सुनाकर अपने बेटे से कहती हैं, "मैं क्या जानती थी ? तेरे करम फोड़ दिये मैंने ऐसी बहू लाकर। मरी कहीं तुझे रोग न दे जाये, हाय राम ! जा, छोड़ आ इसके घर, वहाँ का पाप वहीं फले ! तेरे लिये क्या लड़कियों की कमी है।"

वे कभी माँ से कुछ नहीं कहते। मेरे पास आकर चुपचाप खड़े हो गये। देह से सटकर बोले, "यह डॉक्टर किसी काम का नहीं। हम हकीम से सलाह लेंगे। कोई खास बात नहीं !" मैं उस समय जड़वत् थी। मैंने सिर्फ यही कहा, "मैंने सब सुन लिया है। मुझे मालूम होता कि शरीर में ऐसा है तो मैं तुम्हारा जीवन नष्ट नहीं करती ! मुझे माफ कर दो !" उनकी आँख में आँसू भर आये। सबकी निगाह बचाकर उन्होंने धीरे-से मेरा हाथ दबा दिया।

कुछ दिनों मन विलकुल जड़ रहा। कोई कुछ कहे सब सुनती थी। न आँख में आँसू थे, न मुँह में जुबान ! मेरी हालत समझकर यह मेरे माँ-बाप के यहाँ ले आये। सिर्फ दूसरे मुहल्ले की बात थी। मुश्किल से दो मील की दूरी।

मुझे अच्छी तरह याद है मायके की वह पहली रात ! पार्कवाली खिड़की के पास मेरी खाट डाली गयी थी। माँ बेचारी मारे उत्साह के मुहल्ले के माली से एक वैसा गुलदस्ता बनवाकर ले आयी थीं जैसा जन्माष्टमी पर भगवान् की झाँकी में सजता है। पीतल के गिलास में गुलदस्ता सजाकर कोने में रख दिया था। मेरे दहेज की एक घड़ी मरम्मत होने के लिए आयी थी। वह भी दीवार पर लगा दी थी। उसका शीशा खोलकर मेरी छोटी बहन सित्तो (स्कूल का नाम सीता) ने एक गुलाब के फूल की ड्राइंग बनाकर लिखा था 'गुडनाइट'।

मैं बहुत व्याकुल थी। सारी लाज छोड़कर मैंने इनसे कहा था कि रात यहीं रह जायें। ये भी बावले से थे। मुझे चारों ओर से घर-घेर लेना चाहते थे। माँ मुसकराकर चली गयी। सित्तो ने फबती कसी। सब जैसे क्षण-भर को भूल गये थे कि मैं चबेने की तरह आधी मौत के मुँह में हूँ आधी गोद में !

पर भूल नहीं पायी थी तो मैं ! क्षण-भर को मुझमें वही पहला-सा गुमान जागा। मैं कितनी भाग्यवान् हूँ ! और फिर जैसे अपनी सारी कुरूपता, डरावनेपन, बीभत्सता के साथ मेरी असलियत मेरे सामने खड़ी हो गयी। वह शरीर जिसे देकर मैं अतुल गौरवशालिनी थी वह तो गल चुका है ! और मृत्यु की उस चेतना के समक्ष पहली बार मुझमें मेरा असली मैं जागा। नितान्त साधारण, नितान्त औरत। तुमसे छिपाऊँगी नहीं बहन सावित्री। पहली बार, सबसे पहली बार, उनका भरा बदन, उनकी सौम्य मुद्रा? उनका न्योछावर हो-हो जाना, उनकी आँखों की प्यास मुझे जहरीले काँटे-सी गड़ गयी। झकझोरती हुई आशंका जागी कि मैं तो अन्दर से सड़-गल चुकी हूँ पर इनकी प्यास अभी ज्यों-की-त्यों हैं। पता नहीं कौन-सा सुन्दर शरीर मेरे इस गले हुए तन का स्थानापन्न वने। मुझे लगा कि अभी-अभी तो सित्तो ही इनके कन्धे से टिककर खड़ी थी और ये जिन्हें मैं देवता की तरह पूजती थी, एक क्षण में मुझे जघन्य शत्रु-जैसे लगने लगे। हाय, मुझे चार महीने जीना हो तो ये तो मुझे चार दिन नहीं जीने देंगे। और अनजाने में ही मैंने जैसे दाँत पीस लिये हों। मुट्ठियाँ कस ली हों। सच कहती हूँ, चाहे मुझे धिक्कार लो पर मैंने मुट्ठी कसकर मन में कहा, "मैं अकेले नहीं मरूँगी। तुम्हें ले के मरूँगी। तुम्हें चैन से जीने के लिए नहीं छोड़ जाऊँगी···"

मुझे बुदबुदाते देखकर यह पास आये। बाँहों में घेरकर बोले, "क्या है सावी !" पर मेरे मुँह से वह नहीं निकला जो मैं मन में सोच रही थी। मैंने इनके कन्धे पर सर रखकर कहा, "मैं मर जाऊँ तो तुम सित्तो की देखभाल करना। बेचारी तुम्हारी बहुत इज़्जत करती है।" उन्होंने सित्तो की बात सुनी भी नहीं। केवल मेरे ध्यान में थे। मेरा मुँह बन्द करते हुए बोले—मुझपर झुककर, मेरे सूखे होठों पर उँगली फेरते हुए, "मैं तुम्हें जान देकर बचाऊँगा पगली। नहीं बचा सका तो खुद भी जीवित नहीं बचूँगा।"

यह गली की बीमार जर्जर सवित्तरा तुमसे ज्यादा भाग्यवान् है सावित्री बहन ! इसके पति ने इसके प्राण बचाने के लिए अपने प्राणों तक की शपथ ले ली। लेकिन अभागी हूँ मैं कि उनकी आत्महत्या-जैसी अमंगल बात सुनकर भी मुझे आघात नहीं लगा। मुझे असह्य खुशी हुई। वे मेरे अभाव में मर जायेंगे ! इसने उस मरणान्तक रोग में भी मुझमें एक नया आत्मविश्वास जगा दिया। कितना सन्तोष उस समय मेरे मन में था ! पाँव के अँगूठे से लेकर पलकों की बरौनी तक में तन के कितने-कितने उबाल आ रहे थे कि इस क्षण में इन्हें अपने को बार-बार अर्पित कर चुक जाऊँ। पर ये उसी तरह सौम्य और शान्त थे। मेरी पीठ पर थपकियाँ देते हुए चुप बैठे रहे। मैं शान्त होकर इनकी गोद में बच्चों की तरह सो गयी। सोते वक्त इनकी थपकियों का मृदुल स्पर्श, और दीवार पर टँगी शादी की घड़ी की टिक-टिक घुल-मिल गयी थी। घड़ी में बना सित्तो की ड्रांइग का फूल जैसे लहर पर तैर रहा था। पर जानती हो सोते समय सोच क्या रही थी ? ये दीवार के सहारे बैठे-बैठे मेरा सर गोद में रखे ऊँघ गये थे। मुझे गुमान था कि मेरी परिचर्या में ये कष्ट सह रहे हैं। इनको जिस काया से अमित सुख दिया है उसी से बार-बार कष्ट देकर उससे एक बहुत बड़ी आत्मीयता महसूस कर रही थी। निजत्व ! अधिकार ! वह मेरा है ! मैं उसे जितना चाहूँ उतना कष्ट दे सकती हूँ।

नींद खुली तो चार बज रहे थे। पड़ोस में माया मौसी जाग गयी थीं। और जमुना नहाने के लिए डोलची सँवार रही थीं। पार्क के पीपल पर एक घोंसले में कुछ पंख फड़फड़ा रहे थे। घास ओस से भीगी थी, यह अँधेरे में उड़ती सौंधी गन्ध से मालूम हो रहा था। भोर नहीं फूटी थी। पर चारों तरफ बड़ा पवित्र, उजला, शान्त और प्रकाशमय-सा लग रहा था। धुँधलके के दस्ताने पहन एक बहुत मीठी ममतामयी नर्स की तरह भोर ने मुझे गोद में लेकर जैसे लतर और फूलों वाली खिड़की के पास खड़ा कर दिया था। मुझे वह सारी सुबह बिलकुल याद है क्योंकि फिर मुझे वह शान्त, वह पवित्र उजलापन, वह ताजगी, वह मन का फैला-फैला उदार हरियालापन वापस कभी नहीं मिला।

क्योंकि मेरी निगाह उधर से हटकर इन पर पड़ी। ये दीवार से टिके-टिके मसनद पर उठँगकर सो गये थे। और इन्हें देखकर दिलासा नहीं वरन् अजब भय और अकेलापन मेरे मन में जागा। ध्यान आया, आज मैंने जिस तरह इन्हें झुकाना चाहा ये बेंत की टहनी-से झुक गये। लेकिन क्यों ? तो क्या इनका प्यार केवल मेरे शरीर का नहीं है ? पर और तो मुझमें कुछ है नहीं। तब तो जिस दिन ये जान जायेंगे कि मैं उस शरीर के अलावा कुछ नहीं जो गल चुका है तो मैं कितनी छोटी लगूँगी इनके प्यार के आगे ! और मैं इन्हें देखती गयी और उस धुँधलके में ये बड़े—और बड़े—और बड़े होते गये। मैं डर गयी, बहुत डर गयी। एक बार तो माँ को पुकारना चाहा जैसे बचपन में डरकर पुकारती थी। फिर ठिठक गयी और जैसे प्रत्याक्रमण की तैयारी कर ली। माना कि मैं छोटी हूँ, इतनी क्षुद्र कि आज मैंने इनकी मौत तक की

कामना की ! पर मैं हारूँगी नहीं। बता दूँगी कि आज तक इन्होंने जिसे प्यार किया वह मैं सबित्तरा नहीं, इनकी कल्पना की कोई साबी है। मैं उस साबी को धज्जी-धज्जी चीरकर फेंक दूँगी और देखूँगी ये मेरे, सबित्तरा के प्यार के बाहर कहाँ जाते हैं। छल तो इन्होंने किया। झूठ के सहारे तो ये जिये। सबित्तरा को जाना क्यों नहीं ?

ये सो रहे थे। कुछ देर पहले जागने पर मैं जितनी शान्त थी और भरी-भरी, इस समय उतनी ही उद्विग्न और कड़वी होती जा रही थी। बेहद कड़वी। इनका अपमान कर, इन्हें छोटा बनाकर अपने ब्यौंत-भर का बना लेने को कमर कसकर तैयार।

मुझे कभी नहीं मालूम था कि जरा-से सवाल पर गूँगी हो जानेवाली मुझको इतने तर्क आते हैं। हर तीसरे दिन दाल में नमक भूल जानेवाली मेरी याद्दाश्त इतनी तेज है, दो असम्बद्ध बातों को मिलाकर मैं इतनी पुष्ट कथाएँ बना सकती हूँ। मेरी कल्पना इतनी तीव्र है। सुबह ये जागे तो मैं चुप रही, अपने में खिंची हुई, जैसे तीर छोड़ने से पहले धनुष की डोरी खिंचती है। ये कपड़े पहनकर दफ्तर जाने के पहले खाना खाने के लिए चले तो बोले, "अब माँ-बाप के बीच चैन से रहो, जल्दी-जल्दी अच्छी हो जाओ, फिर···"

और मैं उबल पड़ी, "तुम्हें मेरे माँ-बाप से क्या लेना-देना। तुम तो मुझे वहाँ से ले आये। ताकि तुम्हारे माँ-बाप, भाई-बहन को रोग न लग जाये। मेरे माँ-बाप, भाई-बहन चाहे गलकर मर जायें।" उनपर जैसे पहाड़ टूटकर गिरा हो। पर मैं बेबस थी, आँखें जल रही थीं मेरी, नथुने फूल आये थे और मैं जोर-जोर से चीख रही थी···माँ दौड़ आयीं, "सबित्तरा ! सबित्तरा !" लेकिन सबित्तरा उस समय ज्वालामुखी की तरह फट गयी थी। ये चुप कुरसी थामे खड़े थे और मैं बकती जा रही थी– "मेरे माँ-बाप कसाई थे जो तुम्हारे यहाँ भेजा। क्या है तुम्हारे घर में ? सब रोगहे हैं। सब कुत्सित हैं। तुम लोगों को बड़ा पढ़े-लिखे होने का घमण्ड है ! जबान मत खुलवाओ। बहन छैल-छबीली बनकर मास्टरों के यहाँ घूमती-फिरती है तो फर्स्ट पोजीशन लाती है।" "चुप रह सबित्तरा !" पिता ने डाँटा, पर सबित्तरा पर भूत सवार था, "क्या तुम अपने को बड़ा बनते हो। मेरे लिए एक सोने का छल्ला तक नहीं बना और दोस्तों की बीवियों की खातिरें होती रहीं। मैं तुम्हारे कारण घुली हूँ। तुमने मुझे गलाया है। भगवान ! तुम्हें गलायेगा। यह मत सोचो कि मेरे पीछे चैन की बंसी बजेगी। तुमने जान-बूझकर मुझे मारा है। सीधे-सीधे जहर देने की हिम्मत नहीं थी कि पुलिस की गिरफ्त में आ जाते ! कायर कहीं के ···"

पिताजी इन्हें कमरे से बाहर ले गये थे। सित्तो पत्थर-सी खड़ी थी। माँ रो रही थी। सिसकते बोली, "हाय, पाप मेरा था। मुझे क्या मालूम था मेरी बिटिया ऐसे नरक में पड़ी है ! तूने पहले क्यों नहीं बताया ?"

हाय माँ, तुमने उस समय मेरी तमाम बातों को सच क्यों माना। उस समय सबने सच क्यों माना। किसी ने यह क्यों नहीं समझा कि मैं इन्हें जलील नहीं कर

रही हूँ, सिर्फ इस अहसास से भागने की कोशिश कर रही हूँ कि मैं इनके प्यार को जितना समझती थी कि वह उससे पृथक् कुछ और है। मेरे ब्योंत से बड़ा है, मेरी परिधि से बड़ा है। पर मेरे पास उसे भर देने को कुछ नहीं। केवल शरीर था वह भी अब नहीं रहा। मुझे कुछ ही दिनों में मर जाना है और उतने दिनों मैं छोटी बनकर नहीं जीना चाहती। बड़ी बन सकूँ, न इसकी सामर्थ्य थी, न परिस्थिति, न दृष्टि, न संस्कार। एक ही तरीका था कि इन्हें छोटा करूँ, इन्हें हर तरफ से तोड़कर अपनी परिधिभर का बनाऊँ। कैसे कहूँ कि यह मेरा प्यार नहीं था, पर अब सोचती हूँ कि सच क्या यह प्यार ही था ? कुछ नहीं जानती ! सिर्फ इतना याद है कि दफ्तर जाते समय ये मेरे पास आये और मेरे रूखे बालों, आँसुओं और क्रोध से विकृत चेहरे पर हाथ फेरकर जाने लगे। मैंने हाथ झटक दिया और ये आँखों में आँसू भरे चले गये। लेकिन यह भी याद है कि इनके जाने के बाद फूट-फूटकर रोयी थी। बेहद रोयी थी और जब रो-रोकर थक गयी तब उठकर मुँह धोया था और सामने दीवार पर टँगी घड़ी की मिनिट की सूई अपलक देखती रही, ये कब दफ्तर से लौटें, कब लौटें।

या तो मेरा मन रोग से कमजोर पड़ गया था, या मैं बार-बार सही अहसासों से भागने की कोशिश कर रही थी, या मैं यह भूल जाना चाहती थी कि सुबह मैंने इतना भयानक नाटक किया है। बहरहाल जो हो, इनके आने का समय हुआ तो मैंने सित्तो को बुलाया कि मेरी चोटी कर दे और फूल लगा दे। सित्तो चोटी करती रही तो मैं सित्तो को बताती रही कि ये मुझे कितना प्यार करते हैं, इनका घर हमारे मायके से कितना अच्छा है। ननदजी कितने प्यारे स्वभाव की हैं और मेरा पक्ष लेकर सासूजी से लड़ जाती हैं। सित्तो पगली बच्ची मेरी बातों से इतनी उत्साहित हुई कि उसने मुझे बताया कि उसकी पेटी में जमुनाजी के मेले से आयी नयी जापानी नाखून की पॉलिश रखी है जो उसने माँ से छिपाकर माया मौसी से मँगायी है। वह पॉलिश निकाल लायी और मेरे हाथ-पाँव के नाखून रँग डाले। एक क्षण को मैं भूल गयी कि सुबह क्या भयानक काण्ड हुआ है। मैं उसे भूलना चाहती थी। तेल चुपड़कर, फूल लगाकर, नाखून रँगकर। सब भूल गयी थी। सिर्फ इतना याद था कि ये आयेंगे दफ्तर से। फिर किसी बहाने सित्तो और छोटे भइया को बाहर भेज देंगे और मुझे मुग्ध अपलक देखते हुए विभोर मुझमें डूब जायेंगे। पुकारेंगे···नहीं, लाज आती है बताते। मेरा वह नाम ये सिर्फ कभी-कभी लेते हैं।

लेकिन फिर वह नाम इनके मुँह से नहीं निकला। ये शाम को आये तो मुझे देखकर धक-से रह गये। इधर-उधर देखा मानो ढूँढ़ रहे हों कि आँख में आँसू भरकर जिसके रूखे बाल, क्रोध से कुरूप चेहरे पर हाथ फेरकर गये थे वह लड़की कहाँ है। मेरे शृंगार की ओर बड़े अपरिचय की निगाह से देखा और आँख नीची कर ली। मुझे जैसे बिजली

छू गयी। आग लपकाती जीभ ! अच्छा, इन्होंने मुझे देखा तक नहीं ! क्या सोचती होगी सित्तो जिसे मैंने इनके प्यार की इतनी बातें सुनायीं। मैंने तो अपने परिवार के आगे इनकी इज्जत उठानी चाही, और ये··ठीक है, मैं वही करूँगी जो ये चाहते हैं ?

और मैंने वही किया। फिर सुबहवाला काण्ड शुरू हुआ और रात के दो बजे तक चलता रहा। न मैं सोयी न किसी को सोने दिया। दो बज गये तो ये उठे, बोले, "मैं घर जाऊँगा। बहन को फोन किया था, वह खाना लिये जागती होगी।"

और मैंने अपने अनजाने बेबस अपना सबसे विषैला तीर छोड़ा, "हाँ, खाना लिए सेज बिछाये वही तो रोज बैठती थी तुम्हारे लिए। मैं तो दुश्मन रही हूँ।"

ये पहली बार कड़ककर बोले, "सावित्री !"

मैं चुप हो गयी। डाँट खाकर नहीं। यह जानकर कि इन्हें चोट पहुँचाने में सफल हुई। सित्तो के सामने इन्होंने मेरे शृंगार का अपमान किया था। यही जानकर न कि यह शृंगार-रचा तन अन्दर से तो गल गया है। पर क्या हुआ। अब भी मैं इन्हें चोट पहुँचा सकती हूँ। इन्हें क्षत-विक्षत कर सकती हूँ। ये मेरे हैं।

और ये रात के दो बजे अपने घर गये। सिर झुकाये, मानो चौबीस घण्टे में ये बूढ़े हो चले हों। मैं खिड़की में से दूर तक इन्हें जाते हुए देखती रही। फिर सो गयी। बेहद थक गयी थी··पर सन्तुष्ट थी। क्यों ? लेकिन सन्तुष्ट क्यों थी ? अपनी चोटी में लगे फूलों की महक अच्छी लग रही थी। मोगरा था न, रात होते और महक रहा था। सित्तो कब दूध लेकर आयी और रखकर चली गयी मुझे पता नहीं लगा। धुत्त सो रही थी।

सोकर उठी तो धूप चढ़ गयी थी। पार्क में बच्चे झूला झूल रहे थे और स्वच्छ नीले आसमान में एक लाल पतंग थिरक रही थी। मैंने बचपन में पतंगें उड़ायीं तो नहीं पर पतंग लूटने के हुड़दंगे में जरूर शामिल रही हूँ। कभी-कभी कटी पतंगें मेरे आँगन में गिरकर अनार के पेड़ में अटक जाती थीं।

मेरे घर का आँगन बड़ा है। इसके बीचो-बीच एक थाला है जिसमें अनार और हरसिंगार के पेड़ हैं, कठचमेली के दो-चार पौधे हैं, एक पोई की लतर है। सोकर उठी तो सब कुछ दिमाग से उतर गया। जाने क्यों अपना बचपन बार-बार याद आता रहा। बचपन में इस पोई की लतर से उलझी रहती थी। कभी इसके पत्तों की पकौड़ियाँ माँ से बनवाती थी, कभी इसके पके फलों को दबाकर उनमें से लाल रस निकालकर अपने छोटे-छोटे धूल सने पाँवों में महावर लगाती थी। लेकिन इस थाले के सबसे विचित्र प्राणी थे काले गुबरैले। वे कभी-कभी निकलते थे। जमीन के अन्दर से पहले उनके पिछले पैर कुलबुलाते हुए निकलते थे। मैं देखते ही डर के मारे दूर खड़ी हो जाती थी। पहले एक गुबरैला उलटा, पीठ की ओर से निकलता था। फिर मिट्टी

का एक गोल छोटा-सा पिण्डा ढकेलते हुए दूसरा गुबरैला निकलता था। फिर दोनों काले गुबरैले मिलकर उस मिट्टी के गोले को लुढ़काते हुए न जाने किधर ले जाते थे। जिस दिन यह देखती थी उस दिन बहुत डर लगता था। सपने में दोनों गुबरैले आदमकद हो जाते थे, उनकी सूँड़ें और पाँव और भी बड़े हो जाते थे और वे मुझे गली में लुढ़काने लगते थे।

माया मौसी बचपन से हम लोगों की एनसाइक्लोपीडिया थीं। उनसे पूछने पर मालूम हुआ कि यमलोक का एक दरवाजा पाताल में है। जो लोग गलती से मर कर पहुँच जाते हैं उन्हें फिर लौटा दिया जाता है। अगर वे नहीं लौटते और जिद मचाते हैं तो दो यमदूत गुबरैले बनकर उन्हें लुढ़काते हुए ले आते हैं और ठीक जगह पहुँचाकर असली रूप धारण कर उड़ जाते हैं।

मेरा दिमाग जरूर बहुत कमजोर हो गया होगा क्योंकि जो भी दिमाग में आ जाये बस वही उस समय पूरे मन पर छा जाता था। जो मनःस्थिति थोड़ी देर पहले थी न उससे उसकी कड़ी जुड़ती थी और न आगे इसका नतीजा क्या होगा यह दिमाग में आ पाता था। बस उस समय बचपन सवार था और कुछ नहीं। तब तक थोड़ी-बहुत चलने-फिरने की ताकत थी। धीरे-धीरे उठकर गयी और आँगन में अनार के थाले के पास जाकर बैठ गयी। लग रहा था जैसे बाकी सब केवल एक स्वप्न है, बस मैं तो इसी आँगन में बचपन में खेलते-खेलते सो गयी थी। आज बहुत दिन बाद नींद टूटी है। आँखें खोलीं तो फिर उसी आँगन में !

लेकिन आसपास का आलम बदला हुआ था। न माँ वे थीं, न पिता वैसे थे। बासी रसोई सूनी पड़ी थी। पिता दफ्तर चले गये थे। माँ अपनी कोठरी में घुसी बैठी थीं। मालूम हुआ रात किसी ने खाना नहीं खाया। वही बासी रोटियाँ खाकर पिता चले गये। बासी रोटी में ही घी-नमक लगाकर छोटे भैया ने खा लिया था। घर बिल्कुल मसान की तरह सूना और भयावना लग रहा था। यह मेरा बचपन का घर तो नहीं !

मेरे कमजोर दिमाग पर फिर चोट पड़ी और मैं तिलमिला उठी। मैं जो करना चाहती हूँ वही नहीं हो पाता। अब सब भूलकर बचपन में लौटना चाहती हूँ तो घर का कोना-कोना मुझे धक्का देकर वर्तमान में लाकर खड़ा कर देता है। मैंने खीजकर पुकारा, "माँ ! सित्तो कहाँ मर गये सब !" सित्तो आँखें पोंछती माँ की कोठरी से निकली। उसने बताया, रात-भर सब जागे हैं, माँ अभी तक रो रही हैं। सुबह सरला आयी थी तेरी ननद। कुछ फल और तेरी दवाइयाँ लेकर। माँ ने कुछ सख्त-सुस्त बातें कह दीं तो यहीं सब फेंक-फाँककर चली गयी। मैंने देखा सचमुच थाले में बम्बे के नीचे, देहरी पर फल और डब्बे बिखरे पड़े थे।

लेकिन यह माँ को क्या हो गया ! उन्हें सरला का अपमान करने की क्या पड़ी थी ! आखिर क्या चाहती हैं माँ ! मुझे ससुराल में चैन से क्यों नहीं रहने देतीं ! मैंने चाहे जो कहा हो इनसे पर माँ उसे सच क्यों मानती हैं। माँ शुरू से मुझसे जलती हैं

। पिता मुझे अधिक चाहते थे न ! कभी माँ की नहीं चलने देते थे। मुझे अच्छी तरह मालूम है। इसका बदला माँ ने पिताजी से लिया। पिता लोअर ग्रेड क्लर्क थे, अपर ग्रेड आते-आते तीन बच्चे हो गये थे। माँ हमेशा ताना देती थीं कि इस घर में आकर उनकी जिन्दगी बरबाद हो गयी। न कभी पेट-भर खाया, न मन भरकर पहना। पहले पिता बड़े खुशमिजाज और मिलनसार थे। रोज शाम को दोस्त इकट्ठे रहते थे। और वे सब पिता को डीयर बाबू कहते थे। सिर्फ इसलिए नहीं कि वे डीयर थे। बल्कि हमारे मुहल्ले में हमारी माँ पहली बहू थीं। जिन्होंने किंगरीडर पढ़ी थी। हमारा घर कुछ-कुछ नये फैशन का था और कुछ बहुत जिगरी दोस्तों के सामने पिता माँ को डीयर कहकर पुकार देते थे। लेकिन जब आठ-दस बरस में कड़वाहट बढ़ती गयी और माँ अकसर दोस्तों के सामने उनका अपमान कर देतीं तो पिता काफी अकेले, बूढ़े, गुमसुम और कुचले-कुचले से हो गये। मैं पिता की प्यारी थी अतः माँ का एक खास हथियार था कि वे जब किसी तरह पिता को पराजित नहीं कर पाती थीं तो मुझे बेरहमी से पीटती थीं। पहले पिता बीच-बचाव करते थे लेकिन बाद में वे केवल इतना करते थे कि कोट उठाकर बाहर चल देते थे।

मैं जानती हूँ माँ सदा से मेरी दुश्मन थीं। उनको लगता था कि जब तक बच्चे न थे तब तक सास ने उन्हें ओढ़ने-पहनने नहीं दिया। जब सास टलीं तो बच्चों के पालने में उम्र बीत गयी। अब माँ सोचती होंगी कि लो सित्तो के हाथ पीले कर कुछ चैन मिलता तो सबित्तरा आकर छाती पर जमकर बैठ गयी। पर माँ, मेरी दुश्मन, तुमने मेरी ननद से झगड़ा क्यों किया ? तुम मुझे इस लायक भी नहीं रहने दोगी कि मैं लौटकर वहाँ चैन से रह सकूँ ? चार दिन के लिए आयी हूँ वह भी तुमसे नहीं सहा जाता ? मुझे यों ही मार डालो। कलझा-कलझाकर क्यों मारती हो।

सित्तो सहमी खड़ी थी और मैं आँगन में खड़ी माँ के प्रति बाही-तबाही बक रही थी। माँ कोठरी से निकल आयीं और बिना मेरे बकने की ओर ध्यान दिये चौके के बरतन समेटने लगीं। मुझे और भी आग लग गयी। दोगुने जोर से चीखी, "अपना घर नरक बनाकर रखा, चाहती हो मेरा भी घर नरक बन जाये ! तुम्हें क्या करना है ! लौटकर मुझे तो उसी घर में जाना है।"

माँ तनकर खड़ी हो गयीं। उनके मुँह पर अपमान की विद्रूप मुद्रा थी। हाथ जोड़कर बोलीं, "अब सत्यनारायण की कथा बन्द करो भवानी ! ऐसी सती सावित्री होती तो बिना बात के उसकी भद्रा न उतारतीं। अब किस घर में वापस जाना है तुम्हें। डॉक्टर कह चुका है अब सिरिफ मर के जम के घर जाओगी। मुझे भी मार के अपने साथ ले चलना और कोई पूछने नहीं आयेगा। मालूम हुआ है कि तेरी सास ने तो दूसरी लड़कियों के फोटू मँगाये हैं। वही बेचारा अड़ गया है कि···"

मेरे माथे पर जैसे घन की चोट पड़ी हो। लड़खड़ायी और धम-से नीचे बैठ गयी। सित्तो ने दौड़कर थामा। लेकिन माँ आगे बढ़कर फिर ठिठक गयीं। सित्तो से बोलीं, "सती साबित्तरी से कह दो कि जाकर अपनी खाट पर लेटें। वही आयेंगे तो

उन्हें सब नौटंकी दिखायें। मेरी लोथ में अब ताकत नहीं रही। सोचती थी कम-से-कम अब दिन चैन से कटेंगे लेकिन···"

मुझे सहारा देकर सित्तो ले आयी। अनार और पोईवाले बचपन से वापस फिर जहाँ-की-तहाँ। इस मायके को लेकर मैंने कल उन्हें क्या-क्या नहीं कहा ! मेरा सिर फटा जा रहा था। तबीयत होती थी कि मैं दीवार पर सिर पटक दूँ। आँख मूँदकर तकिये में टिक गयी। मुझे लगा कि अनार की जड़ में से दो बड़े गुबरैले निकले। काले डरावने। एक मेरे ससुराल का, एक मायके का। बीच में मेरा गुड़ी-मुड़ी टूटा गला शरीर है। वे उसे लुढ़का रहे हैं, कभी आगे, कभी पीछे। राम ! इसका अन्त कहाँ है ? मैं कहाँ जा रही हूँ ? माया मौसी सच कहती थीं, जरूर नरक का कोई दरवाजा पाताल में है जिसकी सुरंग मेरे आँगन में खुल गयी है।

मेरा दिमाग भी अजीब है। कुछ छोटी-छोटी चीजें बहुत बारीकी से याद रह जाती हैं और कुछ बड़ी चीजें बिलकुल ध्यान से उतर जाती हैं। बीमार होकर मायके आने के ये पहले दो दिन तो खूब याद हैं पर अगले डेढ़-दो साल सिर्फ एक धुँधली छाप बनकर रह गये हैं। सिर्फ इतना याद है कि घर-भर में इस भयानक भूकम्प के बाद फिर सब चीजें धीरे-धीरे अपनी जगह बैठने लगीं। माँ की खीज और बड़बड़ाहट, पिता का कोट उठाकर बाहर चल देना, और मेरा धीरे-धीरे अपनी बीमारी में मशगूल होते जाना। आज उन दिनों को सोचती हूँ तो लगता है कि लम्बी बीमारी खुद अपने में एक स्वतन्त्र अर्थ रखने लगती है। उठते ही सुबह की परिचर्या का सहारा लेकर मुँह-हाथ धोना, बिस्तर बदलना, फल, बिस्कुट और दवाइयाँ खाना, फिर हलकी-सी नींद, फिर बदन अँगोछना, फिर खाना, बातें करना, बाल सुखाना, चोटी गूँथना, और शाम होने की इन्तजारी करना। दवाइयों की गोलियों के रंग, फलों की मिठास के विविध स्वाद, थकान के गहरे हलके शेड और परिचर्या से सँवरता हुआ अपना तन···उन दिनों की याद में सिर्फ एक चेहरा याद आता है। एक किशोर सुन्दर चेहरा राजाराम का। थकान के हलके गहरे शेड, परिचर्या का सुख और राजाराम का चेहरा सब घुल-मिलकर आते हैं।

राजाराम पिताजी के दफ्तर के चपरासी का लड़का था। लेकिन उसने इण्टरमीडियेट पास किया था और पिताजी ने अपने विभाग में उसे टेम्परेरी जगह पर रख लिया था। रहता बड़े ठाठ से था। हलके रंग की पॉपलीन के कुरते और चौड़े साफ पाजामे। साफ-सुथरे चेहरे पर तरकीब से कटे बाल। मैं उसे बचपन से जानती थी। मुझसे कई साल छोटा था लेकिन खूब भरापूरा चौड़ा बदन और हर वक्त हँसता हुआ चेहरा। वह सुबह-सुबह सब्जीमण्डी से ताजे मौसमी फल लाकर मेरी खाट के पास रखता था। फिर वहीं बैठ जाता था और बिस्तर ठीक करने में, दवा पिलाने में, उठने-बैठने में मुझे मदद देता था। पिताजी उसके सहारे निश्चिन्त थे। पहले तो सित्तो

कमरे में रहती थी। बाद में सित्तो को माँ रसोई के काम में लगाने लगी।

उसकी बातें मुझे ताजी और अच्छी लगती थीं। पहले वह खरीदकर लाये हुए फलों के बारे में मजेदार बातें बताता था। ककड़ी गंगा-किनारे की अच्छी होती है कि जमुना-किनारे की। ऊँट तरबूज कैसे खाते हैं ? फालसे का झाड़ होता है कि लतर ? सुनते हैं कि माया मौसी ने माँ से शिकायत की थी, "राजारमवा से तो ऐसे घुल-मिलकर बातें होती हैं और अपना आदमी शाम को आता है तो मुँह लटकाकर बैठ जाती है।" माया मौसी ने ठीक कहा था। लेकिन मैं क्या करूँ। सब तरफ से मन की डोर कट गयी थी। अब न शरीर गलने का दुःख था, न मौत का तात्कालिक गम। न पति के प्रति आक्रोश, न मायके का शोक। अपनी बीमारी का ही एक वातावरण था, शिथिल, अलसाया हुआ, दवा और फल, सहानुभूति और आश्वासन से बसा हुआ। राजाराम उस वातावरण का अंग था। लेकिन ये उस वातावरण की परिधि के बाहर थे। बाहरी आदमियों की तरह दूसरे-तीसरे कभी फूल-माला, कभी किताबें लेकर आते थे। अच्छे होने का आसरा देते थे। चले जाते थे। अच्छे होने की बात अब मेरे लिए कोई अर्थ नहीं रखती थी। इस बीमारी में ही क्या बुरी हूँ ! राजाराम तो साँझ-सवेरे आ ही जाता है। मुझे माया मौसी से कोई दुश्मनी नहीं। राजाराम को लेकर जितनी बातें उन्होंने मुहल्ले-भर में बखानीं वे सब सही हैं, यह भी मैं मानती हूँ पर मुझे बुरा यह लगता है कि उन्होंने इस ढंग से क्यों कहीं ? उन्हें क्या मालूम कि बेचारा राजाराम मेरा दुखता हुआ सिर गोद में रखकर घण्टों दबाता रहता है। मैं सो जाती हूँ तो पत्थर की तरह ज्यों-का-त्यों बैठा रहता है। लेकिन माया मौसी यह भी सच कहती हैं कि मैं अक्सर सोती नहीं, आँखें मूँदे पड़ी रहती हूँ। पर मुझे बुरा लगता है कि वो यह क्यों कहती हैं कि मैं मक्कर साधे पड़ी रहती हूँ। बस कहने का यह ढंग मुझे खल जाता है। मक्कर नहीं साधती। सच बात यह है कि मुझे बड़ा आराम मिलता है, बड़ा सन्तोष मिलता है। मैं आँख मूँदे पड़ी रहती हूँ और राजाराम सिर छोड़कर कभी हथेलियाँ, कभी कन्धे, कभी बाँहें दबाता रहता है।

माया मौसी को भी मुझसे शिकायत नहीं थी। उनका कहना था कि मैं तो शुरू से ऐसी ही रही हूँ। लेकिन उन्हें अचरज था कि मैं आँखें मूँद लूँ तो मूँद लूँ मगर घरवालों ने आँखें क्यों मूँद ली हैं। इस पर मुझे भी ताज्जुब था। पहले घरवाला कोई आता था तो मैं खुद सिर हटा लेती थी या राजाराम कुरसी अलग हटा लेता था लेकिन घरवालों ने देखकर अनदेखा किया तो मैं भी लापरवाह हो गयी। सब कुछ जैसे तयशुदा था। राजाराम आयेगा ही, मेरा काम करेगा ही, यहाँ तक कि किसी बात पर मेरा मिजाज बिगड़ भी जाये तो सारा घर जानता था कि चुप रहो राजाराम के आते ही इसका मिजाज ठीक हो जायेगा। लम्बी बीमारी में वक्त गुजरने का हिसाब भी अजब होता है। कुछ चीजों को लेकर वक्त जहाँ-का-तहाँ थम जाता है। जो घटना हुई बस वही होती रहती है, होती रहती है। मसलन उस दिन रात को दो बजे झगड़ों के बाद ये जो सिर झुकाये बूढ़े होते हुए अँधेरे में चले गये तो उस दिन से आज तक

मुतवातिर उसी तरह सिर झुकाये ये बाहर दूर चलते जा रहे हैं और मैं खिड़की में से देख रही हूँ। उस घटना का घटित होना अपनी जगह मुकम्मिल हो गया है। कुछ चीजें ऐसी हैं जो मशीन की तरह अपने वक्त से होती चली जा रही हैं, रोज अपने को दोहराते हुए। शाम होना, पार्क में बच्चों का इकट्ठा होना, पतंगें उड़ाना, सामने की खिड़की में उस लड़की का जवान और चंचल होते चले जाना। सब अपनी जगह चक्के की तरह घूम रहा है। कुछ आगे नहीं बढ़ता।

आगे बढ़ता गया तो सिर्फ राजाराम ! वक्त का सारा ठहराव, बीमारी का दिनोंदिन गाढ़ा होते जानेवाला अवसाद, माया मौसी का सारा चवाव एक ओर और राजाराम एक ओर। कब, कैसे, क्यों मेरा तन-मन सब कुछ इस तरह उसके वश में होता गया यह मुझे खुद नहीं मालूम ! मैंने बताया न कि अगले डेढ़-दो साल की छोटी-छोटी रोजाना की घटनाएँ सब भूल गयी हैं, याद है केवल राजाराम का वह उत्तम चेहरा और कभी नीचे झुकी हुई और कभी मुझे चीर-फाड़कर रख देनेवाली दृष्टि ! आज भी उसे याद करती हूँ तो ग्लानि नहीं होती, दुख भी नहीं होता, सिर्फ एक ताजगी महसूस होती है। उसकी लायी हुई खेत की मुलायम ककड़ियाँ तोड़ती थी तो एक ताजी हरियाली महक-महक उठती थी। कुछ-कुछ वैसा ही लगता है।

इस महक से याद आया, उस दिन उसे जाते-जाते काफी रात हो गयी थी। पार्क में हरी घास ओस से भीगकर वैसे ही महक फेंकने लगी थी। माँ थककर सो गयी थीं अपने कमरे में। सित्तो पढ़ते-पढ़ते मेज से टिककर ऊँघ गयी थी। ताकि राजाराम के जाने पर दरवाजा बन्द कर सके। उस दिन राजाराम तो बार-बार जाने के लिए उठा, सिर्फ मैं किसी-न-किसी बहाने से उसे रोकती रही। बहुत अँधेरी रात थी। बादल घिरने से उमस हो आयी थी। पार्क की बिजली का बल्ब दिन में किसी ने ढेला मारकर तोड़ दिया था। चारों तरफ सन्नाटा था। और मुझे डर लग रहा था।

उस दिन के डर की बात अकसर सोचती हूँ। यह मौत का डर नहीं था। वह किसी संकट का डर भी नहीं था। तो क्या कोई ऐसा डर भी स्त्रियों में होता है जो दूसरे को, अपने संरक्षक को अपनी तरफ खींचने, पूरी तरह खींचने का साधन-भर होता है ? उस दिन के बाद से फिर मुझे वैसा डर कभी क्यों नहीं लगा ?

लेकिन उस दिन के बाद से फिर जाने क्यों वह आवेश भी नहीं रहा। एक अजीब घटना दूसरे दिन घटी। रात को पिक्चर छूटी तो मुहल्ले के कई छोकरे घर लौटते हुए मेरी खिड़की के पास से गुजरे। उन्होंने मेरी खिड़की की ओर देखकर आवाज कसी, "हरे राम हरे राम; राजाराम राजाराम !" मेरा खून उबल गया। मैं जोर से चीखी, "कौन है रामजी का भगत जरा सामने आ तो बताऊँ।" पर मेरे मुँह से आवाज नहीं निकली, मेरी मुट्ठियाँ भिंच गयीं, दाँत-पर-दाँत जम गये और मैं एक ओर गिर पड़ी। मेरे धक्के से स्टूल उलट गया, सुराही गिर गयी और सित्तो भागी-भागी आयी। फिर माँ, फिर पिताजी, फिर माया मौसी, फिर अड़ोस-पड़ोस।

उसके बाद कुछ दिन में वैसी हो गयी जिसे ये लोग दिमाग खराब होना कहते

हैं। पर मैं जानती हूँ कि मेरा दिमाग जरा भी खराब नहीं था। मैं बकती जरूर थी लेकिन जो बात मुझे जबान पर नहीं लानी चाहिए वह कभी नहीं लाती थी। राजाराम का नाम भूलकर नहीं लाती थी। हाँ, जरा-जरा-सी बात पर मुझे इतना क्रोध आ जाता था कि मैं माँ के बाल नोंचने लगती थी, सित्तो के कपड़े फाड़ डालती थी। मुझे सब लाख समझाते थे पर मैं खुद नहीं जानती थी कि क्रोध किस बात पर आता है और आता है तो फिर रुकता क्यों नहीं।

इतना याद है कि वैसे इनका आना-जाना कम हो गया था, लेकिन मेरी यह हालत देखकर इन्होंने छुट्टी ले ली थी और बराबर घर में रहते थे। लेकिन मेरे कमरे में नहीं, क्योंकि इन्हें देखते ही मेरा क्रोध काबू के बाहर हो जाता था। सित्तो का कमरा इनके लिए खाली कर दिया गया था। राजाराम का आना सहसा क्यों बन्द हो गया मैं नहीं जानती। कुछ लोग कहते हैं कि माँ ने उससे मना कर दिया, कुछ लोग कहते हैं कि मुहल्ले के कुछ लड़कों ने उसे धमकाया और उसे सड़क पर एक तमाचा भी मार दिया, "साला चपरासी का लड़का अपनी औकात भूल गया !"

मुझे इतना याद है कि कभी चबूतरे पर, कभी सित्तो के कमरे में, कभी आँगन में मेरे तीमारदारों की बैठक होती थी तो ये सबसे आगे बढ़कर राजाराम का पक्ष लेते थे। कहते, "मैं जानता हूँ वह बेचारा बहुत अच्छा लड़का है।" मुझे बचाते थे, "मैं सावी को जानता हूँ। तुम लोग उसे क्या जानोगे ! शादी के बाद ही मेरा दोस्त आया था, कैप्टन मुरारी। फौज की आदतें। शाम को घूमने जाते हुए इसके कन्धे पर हाथ रख दिया। साबी ने तड़पकर जो तमाचा दिया···"

मुझे वह घटना याद है। उन दिनों शादी हुई थी। चलते समय सबने समझाया था। तन, मन, वचन से पति की रहना, केवल पति की। नयी बनारसी साड़ियाँ, जड़ाऊ गहने थे, माँग में सिन्दूर भरती थी, ननदजी चुटकियाँ लेती थीं। मन में कितना उत्साह था कि तन-मन-वचन से इनकी हूँ, केवल इनकी। कोई मुझे फुसलाकर देखे तो ! जितना उत्साह तब नयी बहू की तरह सजकर रहने का था उतना ही उत्साह सती बनने का था। सावित्री बहन ! मेरी सास ने रीझकर तुम्हारा नाम लेकर कहा था "जैसा नाम वैसी बनो बहू !"

कैप्टन मुरारी ने हाथ रखा। मुझे बुरा लगा या अच्छा यह तो याद नहीं पर इतना याद है कि मन में एकदम उत्साह जगा कि अभी इन्हें बताती हूँ। मेरे देवता भी ज़ान लेंगे कि मैं कितनी-कितनी-कितनी हद तक केवल उनकी हूँ।

लेकिन मुझे मन में कितना धक्का लगा जब मैंने देखा कि इनका चेहरा उतर गया। इन्होंने मुरारी को तो डाँटा, मुझसे भी कहा कि "इतना असभ्य हो जाने की क्या जरूरत थी।" मैं घर लौट आयी और खूब रोयी। उस दिन इनपर गुस्सा आया। बेहद गुस्सा आया। इस समय इनके मुँह से यह बात सुनकर फिर गुस्सा आ गया। दसगुना, सौगुना, हजारगुना ज्यादा। जब उस बात पर मेरी पीठ ठोंकनी चाहिए थी तब सभ्यता सिखा रहे थे अब उसकी स्तुति गाने बैठे हैं। कायर ! पाखण्डी ! और मैं फूट

पड़ी, "तुम्हें मेरी और राजाराम की वकालत करने की जरूरत नहीं। पाखण्डी कहीं के। खबरदार जो जबान हिलायी। मेरे माँ-बाप के आँगन में तुमने पैर क्यों रखा ? इतने दिनों तक नहीं आये थे। मैं सब जानती हूँ। सित्तो के कॉलेज फोन कर-करके मेरा हाल पूछा जाता था। शरम नहीं आयी ? मेरी बीमारी का बहाना लेकर उस बच्ची पर डोरे डालने शुरू किये हैं। मैं सब कह दूँगी। मरते-मरते सब कह जाऊँगी।"

आँगन में सब सिर झुकाये बैठे थे। माँ, सित्तो, ये। पिता बाँह से आँसू पोंछ रहे थे। सिर्फ दूर बरामदे में बैठी माया मौसी सुपारी कतर रही थी और बड़बड़ा रही थी, "बीमारी का शरीर है कालिका भवानी का, नाहीं तो जलती लकड़ी से मुँह झोंस दिया जातै तो सब पागलपन छूमन्तर हुई जाता। हम ऐसी-ऐसी फरफन्दिन बहुत देखा है। मारत-मारत···" इन्होंने आँख उठाकर प्रार्थना की दृष्टि से मौसी की ओर देखा तो वे चुप तो हो गयीं मगर सुपारी-सरौता उठाकर पाँव पटकते चली गयीं।

इनपर यह चोट देकर मेरा जी हलका हो गया। थोड़ी देर में सब शान्त हो गया। मैं भी। आँगन भी। अनार का एक फूल फूला था और धूप में उसकी चटख लाल पँखड़ी और भी झिलमिली लग रही थी। मेरे मन पर एक भार था वह उतर गया था।

भार कई हफ्ते से था। माया मौसी एक दिन माँ से कह रही थी कि यह छोकड़ा राजाराम सवित्तरा की बीमारी का बहाना बनाकर अँगुली पकड़ते-पकड़ते पहुँचा पकड़ रहा है। उसी दिन से मुझे बेचैनी थी। कब मेरे दिमाग ने यह सोच लिया कि ये भी मेरी बीमारी का बहाना बनाकर सित्तो पर डोरे डाल रहे हैं यह मुझे याद नहीं। पर उस दिन सारी दुनिया के सामने यह कहकर मैं बिलकुल हलकी हो गयी। निश्चिन्त। बड़े आये थे दुनिया-वाले राजाराम पर आरोप लगाने ! बड़े आये थे ये उसकी वकालत करने !

मेरी यह हालत ज्यादा दिनों नहीं रही, लेकिन जब तक रही तब तक के लिए मेरी खिड़की बन्द कर दी गयी थी। सामने पार्क की रेलिंग पर मुहल्ले के छोकड़े इकट्ठे हो जाते थे, मेरी ओर संकेत कर अभद्र बातें करते थे और मेरा गुस्सा बेकाबू हो जाता था। एक दिन इन्होंने यह देखा तो खिड़की बाहर से बन्द करवा दी। मुझे बकना होता था तो दीवार का सहारा लेकर आँगन में आ जाती थी। मेरा आँगन में आना हुआ कि सित्तो कहीं भी हो भागकर माँ की कोठरी में घुसकर दरवाजा बन्द कर लेती थी। बाहर निकलती थी तो रो-रोकर उसकी आँखें लाल सूजी हुई होती थीं। बाकी सब चुप रहते थे। बिलकुल बुत की तरह चुप।

यह शायद मेरे प्रति सबसे बड़ी क्रूरता थी। चुप रहने के मतलब थे मेरा तिरस्कार। लेकिन एक दिन मैंने देखा कि ये चौके में बैठे खाना खा रहे हैं। मैंने

बकना शुरू किया कि ये थाली खिसकाकर उठ गये और अनार के थाले में हाथ धोने लगे। मेरा खोता हुआ विश्वास लौट आया। मैं अभी चोट दे सकती हूँ। और तब अकसर जब इनके लिए पीढ़ा बिछाने और थाली रखने की आवाज आती तो मेरा आँगन में आना अनिवार्य हो जाता।

इलाज क़ई हुए पर मैंने कहा न कि दिमाग में कुछ बिगड़ा होता तो सुधरता भी, यह तो एक आदत-सी उभर आयी थी जिसके आगे मैं बेबस थी। बिलकुल ठीक तो याद नहीं कि कब और कैसे इस पर रोक लग गयी, लेकिन जहाँ तक मुझे खयाल आता है शायद सित्तो का बदला हुआ रुख मुझे कारगर साबित हुआ।

एक दिन जब मैं उसी तरह बक-झक करती हुई आँगन में आयी तो मैंने देखा कि सित्तो उठकर अम्मा की कोठरी में जाने लगी। इन्होंने थाली खिसकायी तो वहीं हाथ रोक दिया और दो घूँट पानी पीकर बैठ गये। और तभी चमत्कार हुआ। कोठरी में जाती सित्तो रुक गयी और बरामदे का खम्भा पकड़कर खड़ी हो गई। एक क्षण निर्निमेष उसने मुझे जिस दृष्टि से ऊपर से नीचे तक देखा उससे पहले तो मैं सिहर गयी पर मैंने चीखते हुए इन्हें और सित्तो को लगाकर एक बहुत कड़वी बात कही। और सित्तो जैसे चमक उठी, वह तनकर खड़ी हो गयी। राम रे ! कितनी बड़ी हो गयी सित्तो इन तीनों बरसों में ! वह छोटी बच्ची कहाँ गयी– "दिदिया ! खबरदार जो तुमने अब वाही-तबाही बकी। बकना है तो अपना कमरा बन्द कर लो और जो चाहो सो बको। लेकिन अपना पाप मेरे मत्थे मढ़ती रही तो अब यह नहीं होने का। बहुत सह लिया मैंने। जितना दिदिया-दिदिया कर पाँव से लिपटती रही उतना तुम मुझे बलि चढ़ाती गयीं।" मैं एक क्षण को स्तब्ध रह गयी, इसे इतना बोलना भी आता है ! फिर सित्तो आँगन में आयी और इनसे बोली, "आपने हाथ क्यों रोक लिया ? खाना खाइए !" बिलकुल आज्ञा देने के स्वर में, मानो सित्तो बड़ी-बूढ़ी है और ये छोटे-से बच्चे हैं, "चलिए खाइए, मैंने भी खाना-पीना छोड़कर हाड़ गलाकर रोकर सिर पटककर देख लिया। पर अब क्यों करूँ। मैं जानती हूँ मैं क्या हूँ। मेरी अम्मा जानती हैं, बाबू जानते हैं। आप जानते हैं। दिदिया भी जानती हैं कि आप क्या हैं, मैं क्या हूँ लेकिन रोज जान-बूझकर जो ठेठर रचाती हैं उसके पीछे सब मरेंगे तो यह ठेठर-लीला बढ़ेगी ही घटेगी नहीं।" पास जाकर बोली, "खाइए नहीं तो मैं समझूँगी कि आप भी दिदिया की बक-झक को सच मानकर मुझे जलील कर रहे हैं। सारा मुहल्ला तो करने ही लगा है, आप तो मेरे साथ यह अन्याय न कीजिए।" मैंने देखा कि इनकी आँखों में आँसू हैं और ये सित्तो के हाथ से कौर लेकर खाने की कोशिश कर रहे हैं।

क्षण-भर में जैसे घर का इतिहास बदल गया। सित्तो घर की बड़ी-बूढ़ी के मानिन्द आँगन में खड़ी थी और सारा घर बच्चों की तरह उसका अनुशासन मान रहा था। सूत्र उसके हाथ में थे। उसने मेरी ओर देखा और बोली, "जाओ, खाट पर लेटो। तुम्हारा दलिया और रस अभी ला रही हूँ।"

वह दिन था कि आज, मैं चुपचाप कमरे में गयी तो अब तक चुपचाप इसी कमरे में हूँ। वक्त तो लगा पर धीरे-धीरे मेरे सामने स्पष्ट हो गया कि चारों ओर मैं सब कुछ उजाड़ चुकी हूँ, पार्क के नासमझ बच्चों की तरह रोशनी देनेवाले हर बिजली के बल्ब को ढेले मारकर तोड़ चुकी हूँ। अब चारों ओर सिर्फ बियाबान और सुनसान है। और तब पहली बार मालूम हुआ कि मैं जिस मौत से डरती थी वह तो कब की आ चुकी है और धीरे-धीरे घटित हो रही है। राजाराम जब तक था तो स्वयं यह बीमारी एक जड़ाऊ सुन्दर कवच की तरह थी जिसमें घिरकर अपने को सुरक्षित मानती थी। लेकिन अब ?

मुझसे कोई नहीं बोलता था। माँ, पिताजी, ये छोटा भैया, माया मौसी, अड़ोसी-पड़ोसी। सिर्फ सित्तो शान्त चुपचाप कमरे में आती—कभी दवा, कभी फल, कभी कपड़े लेकर और अपना काम कर चुपचाप चली जाती। कहती, "दवा ले लो", मैं दवा ले लेती। कहती, "फल ले लो", मैं फल ले लेती। बस। पहले डर के मारे चुपचाप उसके सामने उसकी आज्ञा मान लेती, उसके कमरे से बाहर जाते ही मारे नफरत के दवा फेंक देती। या दस बातें मन-ही-मन बुदबुदाती। मगर उसके आते ही आज्ञाकारी बच्चे की तरह चुपचाप उसका हुक्म मानती। बाद में लगा यह भी बेकार है। मेरी नफरत सिर्फ मुझे उद्विग्न कर जाती है। मैं बहुत चाहती थी कि सित्तो मुझे अच्छा-बुरा कुछ तो कहे। मैं अकसर उसके हाथ से दवा लेकर एकटक उसकी ओर देखती कि वह अब और कुछ कहेगी लेकिन वह चुप दूसरी ओर देखने लगती।

मैं जानने लगी थी कि मैंने अपने हाथों से हरेक के हृदय का दरवाजा अपने लिए बन्द कर दिया था। अब सब समाप्त है।

जब चारों ओर मन के दरवाजे बन्द हो गये तब यह मेरे सिरहाने की पार्क की खिड़की खोल दी गयी। वही ताजी हवा, खुली रोशनी, बच्चों की हँसी, नीले आसमान में रंग-बिरंगी पतंगें, लेकिन खिड़की खुलने पर पहले जैसे रोशनी कमरे में हरहराकर चली आती थी वैसा अब नहीं हुआ। मुझे लगा कि खुली खिड़की देखकर ताजी हवा, सुनहली रोशनी, बच्चों की किलकारियाँ इधर बढ़ीं तो मगर खिड़की की चौखट पर ठिठककर रुक गयीं। कमरे के अन्दर वही मैं, वही सुनसान अँधेरा और टूटापन ! मैंने जाना कि जीती हुई भी मैं इस दुनिया के लिए अब बाहरी हूँ, गैर हूँ, प्रेत हूँ, मर चुकी हूँ।

एक दिन सित्तो इन्हें लायी और मेरे पास बिठा गयी। फिर बाहर गयी और फूलों की एक वेणी ले आयी। इनके पास लाकर रखी और चली गयी। मैं सिर्फ उठकर बैठ गयी और माथे पर पल्ला डाल लिया। बहुत देर के बाद इनके मुँह से शब्द निकले, "तुम चिन्ता न करो, अच्छी हो जाओगी।" मुझे लगा कि वे शब्द बहुत दूर किसी दूसरे लोक में वास करने वाले प्राणी के शब्द हैं। हजारों मील दूर से आते हुए अस्फुट और अपरिचित। तब से कभी-कभी ये आते हैं। चारों ओर एक ठण्डा सौजन्य है जो चार दिनों का ही मेहमान है उसका दिल क्यों दुखाया जाये !

यह सौजन्य मुझे बेहद तोड़ जाता है।

आज इतने बरसों के बाद माँ मेरे कमरे में आयी। मटसावित्री की पूजा के लिए थाली सजाकर। माँ को कुछ क्यों कहूँ ? मुझे क्या मालूल नहीं है ? माँ ने माया मौसी से सलाह की है कि दहेज़ का और जमीन खरीदने का सारा रुपया तो बड़ी की बीमारी में खर्च हो गया, अब तो अगर वे सित्तो को स्वीकार लें तभी घर का निस्तार है। सित्तो से कहने की उनकी हिम्मत नहीं लेकिन कल रात को माँ ने बैठाकर लिस्ट बनायी थी कि मेरे पास कौन से जेवर हैं जो सित्तो के काम आ सकेंगे और आज सुबह माँ वट की पूजा के लिए जाते हुए मुझसे पूजा की थाली छुआने लायी थीं।

मैंने थाली नहीं छुई (क्षमा करना सावित्री बहन)। बहाने से आँख मूँदकर तकिये से टिककर लेट गयी तो ऐसा लगा मानो मेरे चारों ओर लोग चुपचाप इन्तजार में खड़े हैं कि मेरी मृत्यु की घड़ी टलती क्यों जा रही है। सबके चेहरे पर शोक भी है, इन्तजार भी, अधीरता भी; सब चुप हैं, सिर्फ दीवार पर लगी मेरी शादी की घड़ी टिक-टिक कर रही है। उसपर बना गुलाब बोलता है गुडनाइट-गुडनाइट-गुडनाइट ! कमरे-भर में मोगरे की तेज महक है। मगर इस सबसे भी मौत की महक दबती नहीं ! मृत्यु की यह दूसरी गाथा है सावित्री बहन ! तुम्हारी गाथा से बिलकुल पृथक् !

सब बिना कहे, बिना बोले इन्तजार कर रहे हैं। मैं भी इन्तजार कर रही हूँ। मेरे लिए किसी का कुछ अर्थ नहीं रहा। न मैं माँ की बेटी रही, न सित्तो की बहन, न इनकी पत्नी, न राजाराम की··सिर्फ यह खिड़की मेरी लिए एक चौकोर दुनिया है। पार्क में खिलते गुलमोहर-अमलतास के रंग हैं, सामने की खिड़की में अठखेलियाँ करती लड़की के आकार हैं, खेलते बच्चों की हँसी की आवाजें हैं।

एक दिन एक अदृश्य हाथ आकर इन चौकोर स्लेट पर अंकित आकारों को मिटा देगा, आवाजें बन्द हो जायेंगी और मैं थककर लेट रहूँगी। लेकिन कब ? □

यह मेरे लिए नहीं

ऐसी सुबहें सिर्फ उस गली में होती थीं। सीले घर, टूटे मन, अन्दर-बाहर अँधेरा, हर चीज पर कुढ़न और खीझ। और तभी जाने कहाँ से कोई एक छोटी-सी चीज उभर आती थी—दूसरों के लिए बिलकुल बेमतलब, मगर जो देखे और समझे उसके लिए कितना दिलासा देनेवाली ! मसलन इस लम्बे, सीले, बेडौल दीवारों वाले कमरे में अलस्सुबह यह धूप का एक चकत्ता, सुनहला, चौकोर, सुबह के झकोरे में झील के पानी की तरह काँपता हुआ। क्वार-कातिक की ढलती रात की सर्दी खाया हुआ टूटता बदन हो, हवा में पड़ोस के अहाते में रात-भर झरे हरसिंगार की गमक हो, छुट्टी के दिन की सुबह हो और तख्त पर लेटे-लेटे सीले बेडौल कमरे में बिना बुलाये आ जाने वाली इस चौकोर नन्ही-सी धूप को सिर्फ देखने, चुपचाप देखते रहने का बेहिसाब वक्त तो··· धीरे-धीरे महसूस होता है कि यह धूप की तितली स्थिर नहीं है, प्रतिपल काँप ही नहीं रही है, धीरे-धीरे खिसक रही है, आगे बढ़ रही है, और तब सहसा यह ध्यान आता है कि बाहर सूरज धीरे-धीरे उठ रहा है, उसी के अनुसार यह धूप जौ-जौ तिल-तिल खिसक रही है।

और तब जैसे बिजली छू जाए, कुछ ऐसा अव्यक्त उल्लास मन को झकझोर जाता था और दीनू सब भूल जाता था कि धूप का चकत्ता उस दीवार के छेद से आ रहा था जो तीन साल पहले नये कमरे के लिए चिनी जानी शुरू हुई थी, और राज-मजूरों का पैसा भी जब माँ नहीं दे पायी तो उसकी साइकिल बेचनी पड़ी थी। साइकिल बेचने से उसे कॉलेज के लिए पैदल तीन मील जाना और तीन मील आना पड़ता था, पर उसे कोई शिकायत नहीं थी सिवा इसके कि हर दूसरे हफ्ते पुरानी पेशावरी में नया तल्ला लगवाना पड़ता था और जब उसे ऊपरी खर्च के लिए सिर्फ 5 रुपये महीना मिलते थे (जिसमें से उसे फाइल के कागज, स्याही, साबुन, तेल और ड्राइंग पिनें भी खरीदनी पड़ती थीं) तब उसमें से पूरा एक रुपया हर महीने मोची को चला जाये यह

बरदाश्त नहीं होता था और वह बार-बार खीजता था कि माँ को हर छठे महीने मकान की मरम्मत करवाने की क्या धुन है ? कॉलेज में फीस माफ थी, कुछ पुअर फण्ड से भी मिलता था, एक बारह रुपये और एक आठ रुपये की ट्यूशन थी और पैसे बचें, इसलिए माँ बाहर रहती थीं। मगर हर छठे महीने आती थीं और साठ-सत्तर, कभी-कभी सौ रुपये भी अगर बचे हों तो तुरत नजीर मिस्तरी की बुलाहट होती थी और मकान में काम लग जाता था। कहती थीं, "तेरे बाबूजी की निशानी है। मरते-मरते उन्होंने कर्जा लेकर चिट्ठा बँटवाया था।" हफ्ते-भर जिस कापी में मजदूरों की हाजिरी लिखी जाती थी उसे चिट्ठा कहते थे और शनिवार की शाम को मजदूरी बँटने को चिट्ठा बँटना। माँ को चिट्ठा बाँटने में एक अद्‌भुत सुख होता था। पाई-पाई का हिसाब करती थी। बैजू भैया बैंक में काम करते थे। उनसे पाँच रुपये की चमचम नयी पाइयाँ मँगवाती थीं। चिट्ठा बाँटने के बाद गहरी साँस लेकर कहतीं, "पाई-पाई चुका दी। तेरे बाबूजी ने कहा था किसी की एक पाई चढ़ी मत रखना।"

लेकिन माँ के सुख का अलम् कहीं नहीं। दीनू जानता है कि अब एक पैसा नहीं बचा है। परसों ये गठरी-सन्दूक लेकर चल देंगी और छह महीने बाद फिर लौटेंगी। और फिर डिक्शनरी के नीचे वाली दराज में (जहाँ वह बचे हुए रुपये रखता है) हाथ डालेंगी, रुपये निकालेंगी, सावधानी से गिनेंगी, अपनी सिलाईवाली पिटरिया में सूई-डोरे और कतरनों के नीचे रख देंगी और दूसरे दिन उन्हें फर्श में दरार दिखायी देगी, उखड़े पलस्तर वाली दीवाल से नींव में पानी भरता नजर आयेगा, छत का दायाँ बाजू फूला नजर आयेगा और कहेंगी, "दीनू बेटा, जरा कॉलेज जाते समय चकलानीम होते हुए जाना, नजीर मिस्तरी से बोलना बहूजी ने बुलवाया है।" और बस दीनू को सामने की थाली जहर लगने लगेगी। इन्हें क्या मालूम कि बुखार में एक दिन वह ट्यूशन नहीं गया तो दूसरे दिन उसे कौड़ी के बिसाती ने क्या कहा था। इन्हें क्या मालूम की वैद्यजी ने कहा है कि दवा की शीशी बराबर नहीं लोगे तो फेफड़ों पर असर होगा। इन्हें क्या मालूम कि तुरत खाना खाकर दौड़ते हुए कॉलेज जाने में नीचे तिल्ली में दरद होने लगता है। इन्हें क्या मालूम···वह नजीर मिस्तरी से सन्देशा कहकर और तेज चलता, बीच में सूनी सड़क पर दौड़ता—फट जाये, एकबारगी तिल्ली फट जाये, उसे इस नरक से छुटकारा मिले। बाबूजी की निशानी यह मकान बनता रहे, साल-दर-साल। लेकिन दीनू की गाल की हड्डियाँ उभर आयीं, पसलियाँ कसकने लगीं, जिगर खराब हो गया, आँखें कमजोर हो चलीं पर तिल्ली नहीं फटी, दीवार और छतों का फटना बदस्तूर जारी रहा। मरम्मत लगती रही और हर बार चिट्ठा बँटने के बाद माँ का गहरा सन्तोष भरा वाक्य, "पाई-पाई चुका दी। तेरे बाबूजी ने आखिरी समय कहा था, किसी की एक पाई···"

दीनू की उम्र ही क्या थी तब ! मुश्किल से सत्रह-अट्ठारह बरस। फिर भी उसे यह लगने लगा था कि बाप की निशानी सिर्फ यह मकान है। वह नहीं। इस उम्र में वह क्लास का सबसे तेज, सबसे गरीब, सबसे दुबला, सबसे कम उम्र लड़का है। और किताबें उसे उधार माँगनी पड़ती हैं। और कपड़े उसे घर में साबुन से पछाड़कर पहनने पड़ते हैं। और शामें ट्यूशनों में बितानी पड़ती हैं और माँ हैं कि निचुड़कर बूँद-बूँद इकट्ठा होनेवाले पैसे को (जिससे वह एग्जामिनेशन फीस और अगले साल की एडमिशन फीस देना चाहता है) फटी दीवारों में झोंक आती हैं। सिर्फ इस सुख को महसूस करने को कि उन्होंने पाई-पाई चुका दी—मजदूर लगने जरूरी हैं, चिट्ठा बँटना जरूरी है।

और इसीलिए जब वे फिर गठरी-सन्दूक लेकर बाहर जाने लगतीं और दीनू का कमजोर पीला चेहरा हथेलियों में लेकर कहतीं, "कैसा सूख गया है मेरा लाल ! बस दो साल और। तेरी नौकरी लगे, मैं आकर पास रहूँ तब पनपे ! कहीं परायों के चौके का अन्न तन-बदन में लगता है ?" तो दीनू के सारे बदन में एक अरुचि, एक विद्रोहपूर्ण घृणा, एक विक्षोभ उबाल खाने लगता। जो कुछ माँ करती हैं ठीक। लेकिन फिर डॉक्टर चाची को पराया मानना ! डॉक्टर चाची अगर प्यार से दो वक्त न खिलाती तो ! उन्होंने क्या नहीं किया दीनू के लिए ! लेकिन माँ ने उन्हें कभी क्या अपना माना ? किस बिरते पर ? कि उन्हें मकान के किराये में से बारह रुपये माहवार दीनू के खाने का देती थीं। किसी की पाई अपने पे चढ़ती न रखने का कौल। और फिर जब दीनू की नौकरी लगी और माँ लौटीं तो उन्होंने खड़े-खड़े डॉक्टर चाचा और चाची से अलगाव कर लिया। "मेरे बेटे को परायो ने बस में कर रखा है।" उन्होंने अड़ोस-पड़ोस में कहा था। और दीनू को फिर उस दिन से माँ के चौके का दो वक्त का खाना भी कड़वा लगने लगा था। तीसरे महीने की तनख्वाह से एक पुरानी साइकिल तो आ गयी थी और खड़खड़िया साइकिल सुबह सात बज़े घर से निकल जाती। नौकरी परे होते हुए कॉलेज (पढ़ाई जारी थी), और वहाँ से इधर-उधर मीलों का निरर्थक चक्कर; रात को दस बजे लौटना। तब तक माँ कटोरदान में पराठा-तरकारी उसके कमरे में रखकर सो जाती थीं। लेकिन जिस दिन नींद उचट जाये उस दिन दीनू की रात रोते या खीजते गुजरती थी। वे खुद बैठकर खिलाती थीं और खाते समय बतातीं कि बुआ का खत आया है कि दीनू की नौकरी लग गयी, अब वह बरसीवाले पाँच सौ रुपये लौटा दो ! या बड़े ताऊजी का खत आया है कि दीनू के लिए एक सुशील कन्या देखी है। इन बुआजी के लड़कों पर दीनू के पिताजी ने हजारों खर्च किये थे और इन ताऊजी ने दो हजार रुपये देकर दीनू का वह बड़ा मकान हड़प लिया था और ट्यूशन के रुपये में से दीनू से सूद वसूल करते थे। गरीबों के तमाम हाड़तोड़ कष्ट में से उसने निश्चय किया था कि इन नृशंस रिश्तेदारों से कभी नाता नहीं जोड़ेगा। मगर माँ थीं कि डॉक्टर चाचा और चाची को पराया घोषित कर इन रिश्तेदारों को उसके सिर थोपती थीं क्योंकि ये अपने खून के थे। और कल रात तो गजब हो गया जब माँ ने कहा कि मकानवाली तइया, जिन्होंने दीनू पर आरोप लगाया था कि वह उस मकान का दस रुपये किराया वसूल खा गया, आनेवाली हैं, जो

बड़ा मकान् कर्ज के एवज में ले लिया है उसका बैनामा करने—कोई उसे पाँच हजार रुपये में खरीद रहा है, टिकेंगी इसी घर में—तो दीनू के धीरज का बाँध टूट गया। जाने क्या हुआ उसे कि उसने हाथ का पराठा खिड़की की राह बाहर फेंक दिया और पहली बार माँ से चीखकर बोला, "मैंने सब सह लिया, मगर अब तुम्हारे ये कमीने रिश्तेदार यहाँ जमा हुए तो मैं इस घर में कदम नहीं रखूँगा। क्या मेरा कोई स्वाभिमान नहीं ! मैंने मर-मर कर पढ़ा पर इनका अहसान नहीं लिया !"

माँ ने अस्फुट स्वरों में कुछ कहा, फिर रुलाई रोकते हुई नीचे जाकर विस्तर में पड़ रहीं। दीनू की तबीयत हुई भाग जाये और डॉक्टर चाचा से कहे कि अब उससे नहीं रहा जाता। माँ के साथ वह एक क्षण नहीं रहेगा। एक क्षण नहीं। उसे किसी में विश्वास नहीं। पहले कभी एक ईश्वर में विश्वास था जो उसके साथ सूनी सड़कों पर दौड़ता चलता था, जो उसके साथ बीमार थकी गरीब रातों के अँधेरे में कभी-कभी दिलासाभरी बातें कर लेता था, लेकिन जिस दिन ईश्वर-भक्त माँ ने दस साल की आभार-भरी आत्मीयता को भूलकर मुहल्ले-भर के सामने डॉक्टर चाचा-चाची को अपमानित कर अलग कर दिया तब से उसे ईश्वर पर भी विश्वास नहीं। क्या करे वह ? दीवार पर सिर पटक दे ? मगर उससे दीवार में दरार पड़ गयी और मकान की नींव में पानी भरने लगा तो बाप की निशानी इस मकान का क्या होगा ?

वह एक बार नीचे आया। तबीयत हुई ताला बन्द करे, साइकिल उठाये और दूर चला जाये, गऊघाट के पुल के अँधेरे में साइकिल टिकाकर एक छलाँग नीचे और फिर··वह नीचे आँगन में आया। बरामदे में माँ की सिसकियाँ सुनायी दे रही थीं। वे सोयी नहीं थीं। रो रही थीं। वह लौट आया। कमरे में पड़ रहा। लालटेन बुझायी। बुझती लालटेन की एक खास महक होती है। वह आयी मगर उसके साथ एक और महक आयी पड़ोस में खिले हरसिंगार की। आधी रात हो चली थी। हरसिंगार फूल आया था। दीनू को कब नींद आयी मालूम नहीं। सिर्फ इतना मालूम है कि सोते समय हरसिंगार की महक के साथ परना दी की उजली हँसी की एक लहर भी जाने कैसे गुँथकर आ गयी थी। दो-तीन दिन से परना दी (असली नाम अपर्णा बनर्जी) सुबह हरसिंगार चुनने आती है तो एक मुट्ठी फूल बोड़दा (बड़े भैया, यानी दीनू बाबू, यानी श्री एम.एस. दीन, रिसर्च स्कॉलर) के लिए माँ के पास रख जाती है। माँ उस वक्त सन्ध्या पर बैठ चुकी होती हैं पर कुश के आसन पर उससे फूल रखवा लेती हैं और कभी-कभी आचमन मन्त्र भूलकर उससे गप मारने में लग जाती हैं।

परना उसके और माँ के बीच की गहरी खामोश नफरत और अलगाव पर एक अजीब-सा अदृश्य सेतु है। अपर्णा नीचे माँ के पास बैठकर हँसती है, दीनू के कमरे में ऊपर हरसिंगार महकने लगते हैं।

ईश्वर तो नहीं है, निश्चित नहीं है यह दीनू को दृढ़ विश्वास हो चुका था वरना निरपराध उसे बचपन से इतनी तकलीफ, इतनी अवमानना और इतनी बेबाक ईमानदारी के बावजूद ऐसे तुच्छ आरोप न सहने पड़ते। लेकिन इस घुटन, अँधेरे और क्षोभ-भरे दुखते मन की एक खिड़की किसी ऐसी दिशा में जरूर खुलती है जिधर सब कुछ बहुत खुला हुआ, बहुत उजला, विराट् और सीमाहीन है।

चार-पाँच बरस तक उसके किशोर कच्चे मन को यह लगा था कि उधर ही कहीं एक ईश्वर भी है जरूर, क्योंकि उन दिनों पढ़ाई और ट्यूशन से बचनेवाला सारा वक्त साँजी के साथ बीतता था। साँजी के उस स्नेह से भरे-पूरे घर में बीता हर क्षण उसके खाली-खाली मन को भर जाता था। साँजी उसकी छोटी-सी मित्र थी, संरक्षिका थी, उसकी लड़ाकू सिपाही थी और जब अकसर माँ के कड़वे व्यवहार पर दीनू का छोटा-सा मन चोट खा जाता था तब अपने कन्धे पर उसका सिर टिकाकर, इकलाई के पल्ले से आँसू पोंछकर, माथा सहलानेवाली साँजी उसकी छोटी-सी, नन्ही-सी माँ भी थी। लेकिन क्या मजाल कोई कुछ कह तो दे ! सारी दुनिया में सिर्फ डॉक्टर चाची थी जो बहुत बारीक मुस्कान से पूछती थीं, "दीनू भैया ! ये कमीज के बटन क्या साँजी की चुटैया में फँसकर टूटे हैं ?" "क्या मतलब चाची ?" वह नकली गुस्से से पूछता तो चाची कहतीं, "मेरा मतलब कि अगर तुम लोग लड़ते हो तो बटनों पर गुस्सा क्यों उतरता है। मैं कहाँ तक टाँकूँ। उसी को बुला लो टाँक दिया करे।" और दीनू सिर से पाँव तक लाज से छुई-मुई हो जाता। असल बात यह थी कि एक दिन झपट्टा लड़ाई में सचमुच साँजी के बटनों पर भी बुरी गुजरी थी, लेकिन राम ! राम ! वह बात क्या दीनू किसी को बतायेगा ! दीनू तो खुद ही सन्न रह गया। कहीं साँजी ने गलत समझा तो बस वह गया। सभी उसे गलत समझते हैं, एक साँजी···। वह तीन दिन तक रोज जाकर सबसे बात करता रहा, सिर्फ साँजी से हिम्मत नहीं हुई। जब साँजी ने तीसरे दिन उससे पूछा, "माँ जी को चिट्ठी का जवाब दे दिया ? कोई कड़ी बात न लिखना। उन बेचारी के और है ही कौन ?" तब जाकर दीनू की जान में जान आयी थी।

उन दिनों एक ईश्वर था जरूर। जेठ के दसतपा के दिनों में गली नरक की भट्ठी हो जाती थी। दीवारों से गिरी छत कुम्हार के आँवें की तरह तपती थी और उसमें सोने वाले कम-से-कम आठ जने। बस चार-छह दिन की बात और साँजी सदा के लिए चली जायेगी। दीनू का खाना-पीना सब छूट गया था। चाची भी सब समझती थी लेकिन कोई कर क्या सकता था। सब जब सो जाते थे तब वह खरहरी खाट पर चित लेटा ऊपर तारों-भरे आकाश की ओर आँसू-भरी आँखों से देखता रहता कि उसने क्या किया है कि उससे सब छिनते गये—पहले पिता का साया, फिर माँ का विश्वास, फिर साँजी···और तब उन तारों के ऊपर और ऊपर से बहुत दूर से कोई आवाज कुछ कहती

थी···उन दिनों ईश्वर था।

लेकिन जब बरस-भर के बाद साँजी लौटी और उसने कहा कि "इनसे किसी ने तुम्हारे बारे में बहुत उलटी-सीधी जड़ी है और अब तुम्हें चिट्ठी कैसे लिख सकती हूँ। तुम्हारे आने-जाने के खिलाफ भी मुझे ताकीद कर दी गयी है," तो दीनू को लगा जैसे उसकी सारी पवित्र निष्ठा को फिर धक्के से किसी ने चूर-चूर कर दिया और मन की वह खिड़की हमेशा के लिए बन्द हो गयी। रह गयी केवल यंह उभरी हड्डियों, दुखती पसलियों, चूर-चूर बदन और तपते माथोंवाली तन्दुरुस्ती, गरीबी और अवमानना में पिसता मन, और माँ की नासमझ जबरदस्तियाँ। बरस-पर-बरस अँधेरे और घुटन में बीतते गये।

परना दी को सब मालूम था। कोई दीनू ने बताया थोड़े ही था। वह तो एक दिन जब ऐनुअल डे (वार्षिकोत्सव) में गया था तो अपर्णा आयी थी। माँ से कहा कि बोड़दा के कमरे में अपनी सलाई भूल गयी है और सलाई ढूँढ़ने के लिए सबसे पहले उसने वही दराज खोली जिसमें दीनू की डायरियाँ और साँजी की चिट्ठियाँ रखी थीं और जिस रफ्तार से इमली खाकर चियाँ फेंकती जाती है उसी रफ्तार से चिट्ठियाँ-डायरियाँ पढ़कर वापस दराज में फेंकती गयी। दीनू को मालूम हो गया था और जब वह बहुत नाखुश हुआ, तीन दिन तक नहीं बोला तब भी अपर्णा के चेहरे पर कहीं पश्चात्ताप नहीं था। माँ काम में लगी थी तो धीरे से पास आकर बोली, "बस मुँह फुलाकर अपने मन में अपशब्द कहते रहना ! मैं साँजी नहीं हूँ कि मुझसे मारपीट करो ! बोड़दा होने की मर्यादा रखना कितना मशक्कत का काम है न !

लेकिन अपर्णा ने मन की वह खिड़की फिर खोल दी जिसमें से आकाश और खुलाव और रोशनी झाँकती है। यह बात जरूर है कि अब वहाँ ईश्वर नहीं था लेकिन जब कभी हरसिंगार-बसी सुबह की ऐसी धूप का चतुष्कोण फर्श पर काँपता, पंख फड़फड़ाता दीखता तो दीनू इस घर-आँगन की घुटन, यतीम गरीबी और माँ की कटुता सब भूलकर कुछ और सोचने लगता। इस पृथ्वी के परे, अनन्त आकाश में कहीं एक विराट् सूर्य उग रहा है, आकाश में धीरे-धीरे चढ़ रहा है ताकि रोशनी का यह पंख उसके कमरे में उसके सीलन-भरे फर्श पर थाली में भरे गंगाजल-सा काँपे। ऐसी सुबह सिर्फ उस गली में होती है, सिर्फ उसके लिए। पिता तुम यह टूटी निशानी गले से बाँधकर चले गये तो क्या ? रिश्तेदारी, तुमने दस रुपये के लिए लांछित किया तो क्या ? माँ, तुम मुझे घोंट-घोंटकर कुढ़ा रही हो तो क्या ? साँजी, तुमने निराधार छोड़ दिया तो क्या ? एक सूरज मेरे लिए उगता है, गली में उतरता है···

और वह उठा तो रात का सब-कुछ भूल चुका था। ताजा था खिला-खिला और नीचे उतरा तो धूप का वह चतुष्कोण और पुंजीभूत होकर एक लम्बी सुनहली पट्टी बन चुका

था और तख़्त के किनारे पर टँक गया था। सीढ़ियाँ उतरते हुए वह मना रहा था कि अपर्णा हो और माँ की कुढ़न खत्म हो चुकी हो···काश !

नीचे आँगन छोटा था, दीवारें ऊँची थीं, धूप देर में आती थी। वातावरण में गृह-युद्ध की चुनौती व्याप्त थी। माँ के चेहरे का वह खास भाव उभर आया था ! गुस्सा, उबला हुआ गुस्सा गोया जमकर चट्टान हो गया हो और उस चट्टान में से तराशा हुआ एक नुकीला झुर्रीदार दबंग चेहरा ! लेकिन रात-भर के रोने से आँख के पास के पपोटे सूजे हुए, पुतलियाँ स्थिर, नथुने लाल और जरा फैले हुए, होंठ पर जमे हुए होंठ। पश्चिमवाले बरोठे में पूजा के लिए पीढ़ा बिछा रही थीं। उम्र के साथ-साथ उन्हें कुछ-कुछ गठिया का असर होने लगा था। कामकाज में पीठ झुकाते ही कराहकर कहती थी, "हे प्रभो !" लेकिन आज दीनू को नीचे उतरते देखकर अकस्मात उनके होंठ और भिंच गये। उसकी ओर से मुँह फेरकर पंचपात्र में पानी भरते हुए बोलीं, "प्रब्भो !"('हे' क्रोध में गायब !) दीनू के माथे पर तुरत शिकन आ गयी, त्यौरियाँ चढ़ गयीं। माँ तुरत जान गयीं कि चुनौती स्वीकार ली गयी है। वे दीनू की तरह ईश्वर-विहीन नहीं थीं। मानो किलेबन्दी कर, युद्ध के लिए पीढ़े पर तनकर बैठ गयीं और अपने चारों ओर ईश्वर को मुनीम की तरह बिछा लिया। इधर पंचपात्र, उधर आम की लकड़ियाँ, सामने सामग्री की थाली, आगे हवनकुण्ड।

दीनू का सारा गुस्सा अन्दर-अन्दर घुमड़कर एक असहाय बेबसी में बदल गया। कोई कुछ कहे तो वह जवाब दे। लेकिन माँ तो एक व्यूह बाँधकर अन्दर बैठ गयीं। गोया उन्होंने सबकी पाई-पाई चुका दी और अब किसी से कुछ लेना-देना नहीं। "प्रब्भो !" उन्होंने कहा और उन सबको क्षमा कर दिया जो उनके प्रति अन्यायी हैं जैसे दीनू ! और माँ का चट्टानी चेहरा गोया ख़ुद एक···आरोप !

दीनू चीख-चीखकर कहना चाहता है कि यह आरोप गलत है। अन्यायी वह नहीं है, अन्याय तो उस पर किया जा रहा है। लेकिन वह कहे तो किससे ? चारों ओर जो थे—मुहल्ले-टोलेवाले, कुटुम्ब-कबीले, नातेदार, अड़ोसी-पड़ोसी उनसे कुछ भी कहने से फायदा क्या ? क्या उन्होंने आठ-दस साल से दीनू के फटे पैबन्द लगे बचपन को कैशोर्य की देहली तक घिसटते देखा नहीं है ? वे सब जो अपनी-अपनी सन्तानों से इसलिए नाराज हैं कि उन्होंने कुसंग में पड़कर बीड़ी-सिगरेट पीना, 'सनीमा' देखना, चोरी से अपनी किताबें बेच आना सब सीख लिया—वही मुहल्ले के बुजुर्ग दीनू से और भी नाराज हैं कि उसने यह सब क्यों नहीं सीखा। जरूर इसमें कोई गहरा राज है और फिर ऐसा लड़का माँ को भी दुख देता हो तो अचरज क्या ?

दीनू आँगन में बेमतलब टहल रहा था।

द्वार पर खटका हुआ तो दीनू को लगा कि शायद परना आयी। लेकिन नहीं,

यह तो हरदेई खटकिन थी जो रोज बिना नागा साग-भाजी दे जाती थी। माँ पूजा पर थीं अतः धनिया-मिर्चा, चौरा की फली एक कोने में रखकर चलने लगी। माँ का चट्टानी खामोश चेहरा पूजा करते-करते जरा-सा इधर मुड़ा और आँखों से एक आँसू गालों पर बह आया। हरदेइया घर की पुरानी परजा थी। तुरत समझ गयी और बिना दीनू की ओर देखे बोली, "हे भगवान् ! बेटवा-बिटिया न देव ऊ भला, मुला निखिद्धी सन्तान न देव ! बुढ़ापे में केकरा मुँह देखैं बहूजी बेचरऊ।"

दीनू ने दाँत पीसे और एक गहरी साँस ली। भगवान् की अमलदारी कितनी पक्की है ! माँ ने एक शब्द नहीं कहा। बस 'प्रभो' के दरबार में गुहार की और तुरत भगवान् की भेजी हरदेइया खटकिन दीनू को सजा दे गयी। दीनू क्या करे ! जिसका कोई भगवान् नहीं रहा ! कितना अकेला ! कितना निरस्त्र !

अस्त्र दीनू के पास सिर्फ एक था, उसकी पुरानी साइकिल। लेकिन हमले का नहीं, बचाव का। अपनी पुरानी साइकिल उसने निकाली, उलटकर हैण्डिल-सीट नीचे कर पहिये ऊपर कर उसे आँगन में रख लिया और हौज में से पानी ले-लेकर उसकी सफाई करने लगा। छुट्टियों की सुबह का यह एक अनिवार्य कार्यक्रम था। साइकिल में मशगूल होकर उसे लगता था गोया वह सुरक्षित है, अपने स्वाभिमान के कवच में आवेष्टित। वह पूजा के बरोठे के सामने जमकर बैठ गया। टायर धोये, तीलियाँ और रिम चमकाये, फ्री-ह्वील साफ किया, मडगार्ड के अन्दर जमी मिट्टी साफ की और जब चेन में चिकनाई लगाने चला तो उसे याद आया कि ग्रीज तो घर में है ही नहीं। हाँ, डॉक्टर चाची के यहाँ लकड़ी वाली कुठरिया में बुरादे के बोरे के पासवाले डिब्बे में ग्रीज रखा है। वह तो किसी बहाने इस समय वहाँ जाना ही चाहता था।

उस घर-आँगन में दीनू का रुतबा ही कुछ और था। क्या शाहंशाहों की अवाही का एलान होता होगा ? दीनू को देखते ही छोटे भैया दीवार पर कोयले से कबूतर बनाना छोड़कर बोले, "गुण्टी, दीनू भैया आये हैं।" गुण्टी जल्दी से गुड़िया को नथ से खूँटी पर टाँगकर चौके में भागी—"अम्मा, दीनू भैया आये हैं !" चाची तुरत चाय की पतीली में एक प्याला पानी और डालकर बैठक में गयी और झाँककर बोली, "सुनते हो, दीनू आया है !" डॉक्टर चाचा जल्दी से दवाओं की शीशियाँ होमियो पैथिक बक्से में रखते हुए पाँव में खड़ाऊँ डालते हुए उठे, "अच्छा, आ गया ! सुनो, तड़के सुबह भाभी आयी थीं। फिर उसकी बहुत शिकायत कर गयी हैं। लेकिन कुछ कहना मत।" और खड़ाऊँ घसीटते आँगन में आकर बोले, "कौन दीनू ! आज तो छुट्टी है न बेटा ?" दीनू का तन-मन माथे से पद-नख तक शान्त-शीतल हो गया। परना दी के हरसिंगार क्या महकेंगे जितना डॉक्टर चाचा की बोली महकती है !

और पल-भर में दीनू एक दूसरी दुनिया में था। कहाँ की ग्रीज और कहाँ की साइकिल।

डॉक्टर चाचा टीन की कुरसी पर बैठे थे, और दीनू आँगनवाले तखत पर और बातें चल रही थीं रिसर्च की, राजनीति की, देश-विदेश की और दीनू के जिगरी यार-दोस्तों की, साँजी के घर की और डॉक्टर चाचा के दफ्तर की। असल में चाचा डॉक्टर थोड़े ही थे। वे तो सरकारी दफ्तर में हेडक्लर्क थे। बेहद सीधे और ईमानदार। उनके सहकारी उनसे बेहद नाराज थे क्योंकि वे न रिश्वत लेते थे, न लेने देते थे। और उनके अफसर उनसे बेहद नाराज थे क्योंकि इससे सारे दफ्तर में आये दिन कोई-न-कोई उलझन पैदा होती रहती थी। डॉक्टर चाचा से कहीं जूनियर लोग सुपरिण्टेण्डेण्ट बनते जा रहे थे जब कि उनको एक के बाद एक तनज्जुली मिलती गयी। तन्दुरुस्ती बिगड़ती गयी सो अलग। सस्ते इलाज की खोज में होमियोपैथी का बक्सा घर में आया तो पास-पड़ोस में भी दवाएँ बँटने लगीं और चाचा डॉक्टर कहलाने लगे। वैसे वे अकसर थके हुए और उदास रहते, लेकिन दीनू के आते ही उनकी आँखों में घमण्ड और आत्म-तृप्ति की जो चमक आती है वह दीनू को, छोटे-से दीनू को पता नहीं कितना गहिर गम्भीर बना देती है। और फिर सुनिए, चाचा की दुलार-भरी प्रश्नावली और दीनू के अफलातूनी जवाब ! चाचा को सबसे ज्यादा दिलचस्पी थी—दीनू आजकल क्या पढ़ रहा है, क्या नयी-नयी बातें सोच रहा है, दोस्तों में किन बातों पर बहस-मुबाहसा चलता है। और फिर जब दीनू के मन का घाव जरा-सी हमदर्दी पाकर रिसने लगता तब डॉक्टर चाचा कहते, "तुम्हें भाभी की बात का बुरा नहीं मानना चाहिए। वे बेचारी अपने जमाने की नजर से हर चीज देखती हैं। तुम्हें अपने पढ़ने-लिखने में लगे रहना चाहिए। कहती हैं तो कह लेने दो।"

आज यह बात फिर उठी तो दीनू की आँख में आँसू आ गये, "मैं तो उनसे कुछ नहीं चाहता, मैंने उनसे कुछ नहीं माँगा। अपनी फीस तक के रुपये खुद जुटाये। अब मुझे वे चैन से तो रहने दें। मेरे सिर पर कभी मकान, कभी रिश्तेदार, कभी शादी—कुछ-न-कुछ लादे बिना उन्हें चैन नहीं मिलता।"

"दीनू बेटा, इसीलिए तो विद्यार्थी जीवन को तपस्याकाल कहा गया है। इसी में चरित्र बनता है।" चाचा ने बहुत भरे-भरे गले से कहा, "आज भी सुबह भाभी आयी थीं। मैंने तो उनसे कहा कि तुमने दीनू को पैदा किया लेकिन उसे समझा नहीं। लेकिन तुम भी सोचो बेटा, उन्होंने दादाजी के मरने के बाद कितना कष्ट सहा है।"

"तो अब तो चैन से बैठें, जितना घर में आये उसे मकान-मरम्मत में झोंककर फिर रोज क्लेश मचाने से क्या फायदा ? मैं तो मकान छोड़कर होस्टल में रहूँगा। उनका मकान उन्हीं को मुबारक हो ! मैंने कल डॉक्टर मेहरोत्रा से बात कर ली है, के. एल. पी. होस्टल में एक सिंगिल सीट रूम मिल रहा है।"

"तेरा तो दिमाग खराब है। ले चाय पी। मैं भाभी से किसी वक्त बात करूँगा।" और चाचा खड़ाऊँ खटकाते फिर बैठक में चले गये। पड़ोस के बिशन महाराज की पतोहू दवा लेने आ गयी थी। चाची ने कटोरदान में से मठरियाँ निकालीं और दीनू की प्लेट में रख दीं। दीनू ने मना किया तो चाची बोलीं, "क्यों भैया ! तुम्हें

तो ये सूजी की मठरियाँ बहुत अच्छी लगती थीं। तुम तो जेब में रखकर कॉलेज ले जाया करते थे।"

"उन दिनों की बात जाने दो चाची !" दीनू ने रुँधे गले से कहा। आँसू अब ढलका, अब ढलका—"मेरी कितनी तमन्ना थी कि मैं नौकरी करूँगा तो हम सब साथ रहेंगे। चाचा ने कितना किया मेरे लिए, कुछ उनका भार बँटाऊँगा। लेकिन···"

"लेकिन क्या भैया ? तुम क्या अब भी हमसे अलग हो ? ईश्वर जानता है कि इनके ऑफिस में इतना-इतना उलट-फेर हुआ लेकिन इनके चेहरे पर कभी शिकन नहीं देखी, पर जिस दिन इन्हें मालूम होता है कि आज फिर भाभी से कहा-सुनी हुई, आज फिर तुमने खाना नहीं खाया तो तुम्हारे चाचा को रात-भर नींद नहीं आती।"

और जो आँसू दीनू की आँखों में इतनी देर से झूल रहे थे वे टप-से चू पड़े। वह क्या करे चाचा-चाची के लिए ? कितना सोचता है, कुछ भी तो नहीं कर पाता। चाची बोलीं, "छिः तुम तो अब भी बच्चा बने हुए हो भैया ! ईश्वर सब पार लगाता है !"

"ईश्वर नहीं है चाची, कहीं नहीं है। सब झूठ है। पहले मैं मानता था लेकिन सब ढोंग है। जाओ घर में देखो, माँ जी कर तो रही हैं पूजा ! चित्त लगा होगा मरम्मत में या रिश्तेदारों में।"

"तों क्या करें घर में बैठी-बैठी ? ठीक तो कहती हैं बहू ले आओ। उसकी देख-रेख में लगें, न दीवार की दरार सूझेगी, न नींव की सीलन !"

"हाँ, ले आओ बहू !" खीझकर दीनू बोला, "अपनी तो किताबें तक खरीदने का ठिकाना नहीं, अभी बहू-बहू की रट है, फिर दोहरा क्लेश घर में शुरू हो ! मेरे पास तो जरा-सा रुपया आये मैं कहीं विदेश भाग जाऊँ !"

"हाँ, हाँ, भैया, तुम शादी की हाँ तो भरो। कुँवर-कलेवे में जिद ठान लेना कि मुझे इण्डोनेशिया आने-जाने का टिकट चाहिए। हारकर ससुराल वाले देंगे।"

अच्छा तो चाची अभी इण्डोनेशियावाली बात भूली नहीं है। बात यह थी कि साँजी के ससुराल चले जाने के बाद दीनू अकेले कमरे में दिन-भर पड़ा रहता। एक काली-सी डायरी में पता नहीं क्या-क्या लिखता और जाने कहाँ से उसपर झक सवार हुई थी कि वह देश छोड़कर कहीं चला जायेगा और जाने के लिए भी उसने क्या देश चुना था इण्डोनेशिया ! उसकी हमदम और राजदाँ तो ले-देकर एक चाची थीं सो जब उसने चाची से बताया कि वह इण्डोनेशिया जानेवाला है तो चाची कुछ नहीं बोलीं। आज बहुत दिन बाद चाची ने छेड़ा है। पर कहीं अन्दर-अन्दर दीनू को अच्छा लगा। चाची चतुर हैं। साँजी का नाम नहीं लेतीं, इण्डोनेशिया की याद दिलाती हैं ! पुरानी चोट कभी-कभी पुरवैया में पिराने लगती है तो वह पीर भी अच्छी लगती है। असल में चाचा-चाची के घर की ये तो बात है। यहाँ आकर जैसे दीनू, चारों ओर से बिखरता हुआ दीनू, हर ओर से सँवरने लगता है। अन्दर से जहाँ-जहाँ टूट भी गया है वह भी सार्थक लगने लगता है। दिन जैसे उजला हो आया। आज वह खूब पढ़ेगा—खूब, खूब। चाचा रात-रात-भर जागकर चिन्ता करते हैं। उसने पुराने अन्दाज

में जेब में मठरियाँ डालीं और उठ खड़ा हुआ। घर जाते ही पढ़ने बैठ जायेगा। माँ कुछ कहेंगी भी तो जवाब नहीं देगा। साँजी कहा करती थी···ओह ! किस कायर लड़की की बात सोच रहा है ? लेकिन क्यों सोच रहा है ? और चाची को देखो। इण्डोनेशियावाली बात कहाँ अण्टी में गठियाये अभी तक रखे थीं। तभी न चाचा-चाची थे तो अपना घर कैसा लगता था ! और अब ?

अब क्या खाक लगेगा ? अन्दर जो है सो है, बाहर द्वारे पर तो केश बिखरे साक्षात् परना दी खड़ी हैं। यह ठीक है कि सुबह-सुबह नहा-धोकर फूल चुनने निकलती हैं लेकिन विद्यापति ने सद्यःस्नाता के केशों का जो वर्णन किया है उसमें परना दी ने युगानुकूल सुधार किया है। संगम पर धूनी रमानेवाले साधुओं की जटाओं की छटा अपनायी है। दीनू का चित्त अन्दर से प्रसन्न हो गया। अंजलि में हरसिंगर के फूल लेकर, हाथ जोड़कर, माथे से लगाकर श्रद्धापूर्वक बोला, "अहा ! क्या प्रेतनी छवि है !" अपर्णा ने बुरा नहीं माना। खिलखिलाते हुए एक मुट्ठी फूल और देते हुए बोली, "प्रेतनी नहीं पेतनी बोलो बोड़दा पेतनी ! नहीं समझे। बाँग्ला में उसे पेतनी कहते हैं। हिन्दी में पतनी। वह 'पत्नी' अब बोड़दा के घर आने वाला है। अभी पेतनी का पिता, पेतनी का माता अन्दर माँ जी के पास बैठा है। छी ! छी ! बोड़दा का वेश-भूषा में सब साइकिल का कालिख लगा है। क्या बोलेगा ओ लोग ?" यह आकाशवाणी भाषित करते-करते वे गली के मोड़ पर अदृश्य हो गयीं।

उसने आँगन में झाँका। चौकी पर कानपुरवाले वागीशजी बैठे थे। उसका जी धक्-से हो गया। आज खैर नहीं। वागीशजी का पूरा नाम (या उपनाम) वेद वागीश था। प्रख्यात भजनीक थे। "सरौता कहाँ भूल आये प्यारे ननदोइया" और "बालम आय बसो मेरे मन में !" की धुन पर बनाये गये अपने भजनों के बीच में रोचक धार्मिक दृष्टान्त देकर वे पण्डाल में रंग जमा देते थे। उनकी शक्ल देखते ही दीनू का गुस्से से खून भी खौल जाता था और डर के मारे गला भी सूख जाता था। पश्चिमी फैशन और उच्छृंखलता के पीछे दीवाने आधुनिक नवयुवक-नवयुवतियाँ किस प्रकार कपिल-कणाद-गौतम के देश को रसातल की ओर ले जा रहे हैं, इसका सांगोपांग विवेचन वागीशजी करते थे तो माँ के चेहरे पर विजय का उल्लास छा जाता था। घर आकर दीनू से पूछतीं, "सुना वागीशजी का भाषण ?" तो दीनू उबल पड़ता और नवयुवकों के पक्ष-विपक्ष में खास शास्त्रार्थ होता था। जब बात इसपर आती कि उसने खुद वागीशजी को चेहरे पर पोमेड लगाते और मैटिनी शो का टिकट खरीदते देखा है, तब शास्त्रार्थ का अन्त होता। माँ के रो-रोकर यह घोषित करने से कि वे दीनू को जन्म देने के पहले ही क्यों न मर गयीं और दीनू के यह एलान करने से कि "जो कड़वी बात कहेगा वह कड़वी बात सुनेगा। वागीशजी ने पढ़ा लिखा क्या है सिवा

दृष्टान्तसागर और भक्तिदर्पण के, जबकि आज के नवयुवक कितना पढ़ते-लिखते हैं ! तुम्हारे रोने से वागीशजी विद्वान् तो हो नहीं जायेंगे !"

लेकिन उसकी आशंका निर्मूल थी। माँ के चेहरे पर तो रात के रुदन और सुबह के गुस्से का चिह्न तक न था। हलवे के लिए सूजी भून रही थीं और दोनों से बात करती जा रही थीं। "आओ बेटा, कहाँ चले गये थे सुबह से नाश्ता भी नहीं किया।" माँ के स्वर में मिठास थी, समझौते का अनुनय था। वागीशजी ने स्वागत किया और कोने में बैठी उनकी पत्नी ने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और जरा गौर से दीनू को सिर से पैर तक देखने लगीं। दीनू ने संकुचित होकर मुँह फेर लिया। "अपने भैया में वे कोई बातें नहीं जो आजकल के पश्चिमी सभ्यता के नवयुवकों में होती हैं।" क्यों न हो, माता के संस्कार हैं ! वागीशजी गद्‌गद स्वर में बोले। दीनू एकदम बोलने को हुआ कि पश्चिमी सभ्यता के नवयवुकों में बुरा क्या है ? लेकिन उसे एकदम याद आया कि वह चाचा के घर में ही तय कर चुका है कि किसी कठहुज्जती में नहीं फँसेगा। दीनू उठ खड़ा हुआ। माँ से कहा, "नाश्ता मैं नहीं करूँगा। चाचा के यहाँ कर आया हूँ, मैं पढ़ने जा रहा हूँ।" और अपने कमरे में चला आया। अब कमरा धूप में किताबों के साथ खिल उठा था। हरसिंगार के फूल मेज पर रख दिये और तख्त पर बैठ गया। मुड़कर देखा माँ दरवाजे पर खड़ी थीं। बोलीं, "इन लोगों को क्या जवाब दे दूँ ? कितनी बार बेचारे कानपुर से चल-चलकर आये हैं।"

"तो मैं क्या करूँ ? क्या मैंने बुलाया है ? क्यों आते हैं ?" दीनू बोला। "आते हैं तो क्या मना कर दूँ ? कितने बड़े-बड़े लोग तरसते हैं कि वागीशजी उनके यहाँ जायें। हमारे यहाँ बेचारे स्वयं दौड़-दौड़कर आते हैं। मैं आज हाँ किये देती हूँ।" और माँ ने एक फोटो दीनू की गोद में रख दी। जैसे करेण्ट छू गया हो। दीनू ने फोटो बिना देखे नीचे फेंक दी और बोला, "माँ, मुझे परेशान मत करो। मैं किसी से कुछ नहीं चाहता। मुझे कोई फोटो-वोटो नहीं देखनी है।"

माँ का चेहरा तुरत कठोर हो आया। डाँटकर बोलीं, "तो क्या करेगा ? मुझसे कब तक चूल्हा फुँकवायेगा ? मैं बूढ़े हाड़ से कहाँ तक गिरस्ती करूँ अब ? सोचा था आखिरी समय भगवान् का भजन करूँगी।"

"देखो माँ, नीचे मेहमान बैठे हैं, चिल्लाओ मत। तुमसे मैंने कब कहा है गिरस्ती करने के लिए ! तुम्हारा ही चित्त भगवद्‌भजन में नहीं लगा तो दौड़ी चली आयीं और घर से परायों को निकाल बाहर किया। मेरे लिए चूल्हा मत फूँको। मुझे तुम्हारे हाथ का खाये बिना भी चल जायेगा।"

"क्यों नहीं बेटा ! इसी का तो बदला तू मुझसे निकालता है।" माँजी अब तक नियन्त्रण खो चुकी थीं, "वे लोग तेरे सब कुछ हो गये क्योंकि चार बरस उन्होंने तुझे चारा चुगा दिया। घरवाले, सगे-सम्बन्धी तेरे कोई नहीं। जाने क्या जादू कर दिया मेरे बेटे पर। अरे हत्यारो, जरा तो रहम खाया होता। मेरा एक बेटा सो भी मुझसे छीन लिया। जाने क्या सुबह-सुबह सिखाकर भेजा है। वे क्यों चाहेंगे कि तू शादी करे। तू

तो दुनिया-भर में मेरे नाम पर थुकवायेगा। मुहल्ला-भर थू-थू करता है। कभी बनैनी से नाम जुड़ता है, कभी बंगालिन से। तू शादी करके क्यों बँधेगा भला ?"

साँजी और परना का उल्लेख ऐसे ! यह दीनू को सपने में भी आभास नहीं था। तिलमिलाकर बोला, "तो ठीक है यही सही। मुझ जैसे दुश्चरित्र बदनाम लड़के के साथ कोई अपनी लड़की की जिन्दगी क्यों बरबाद करना चाहता है। ले जाओ यह फोटो !" और उसने नीचे आँगन में फोटो फेंक दी। आज माँ ने एक बाहरवाले के सामने इतना जलील किया उसे ? माँ ! माँ ! तुम क्या करती हो ! साँजी तुम गवाह हो ! चाची तुम सचसच कहो ! परना दी तुम माथा छूकर कहो, चाचीजी तुमसे दीनू का कुछ नहीं छिपा है—माँ ने इतनी बड़ी बात कह दी। वह अब नहीं सहेगा ! एक क्षण नहीं ! बस खत्म ! उसने ऊपर से आँगन में झाँककर कहा, "और मुझे कोई शौक नहीं है कि तुम हाड़ तोड़कर गिरस्ती करो। आज से मैं तुम्हारे हाथ का टुकड़ा नहीं तोड़ूँगा। डरो मत, चाची के यहाँ भी नहीं। मैं होस्टल में जा रहा हूँ। मुझे तुम्हारा मकान-जायदाद भी नहीं चाहिए। इसे अपने सामने बेचकर ठिकाने लगाओ चाहे इसे सामने रखकर पूजा करो। मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

आँगन खाली था। वागीशजी जा चुके थे। माँ जमीन पर बैठी रो रही थीं, "हाँ, सबने मिलकर बहकाया है मेरे पूत को। अब चार पैसे कमाने लायक हुआ तो किसी से देखा नहीं जाता। अरे मैं मकान छाती पर रखकर ले जाऊँगी ? जिससे छाती से लगा-लगाकर पाला जब वही ठोकर मार रहा है⋯"

"का भवा दीनू भइया ? बहूजी काहे रोय रही हैं ? बगलवाले मकान की छत से आँगन में झाँककर मुदियाइन ने पूछा। पीछेवाले मकान से मोखे में से झाँककर बचई महराज बोले, "कोई बुरी खबर आयी है क्या बहूजी ?"

माँ जी सहसा सचेत हो गयीं। आँसू पोंछते हुए बोलीं, "नहीं, कोई बात नहीं। न यह मकान हमारे जिम्मे छोड़ जाते न हमको ये दिन देखने पड़ते।"

और आधे घण्टे में सारे मुहल्ले में खबर फैल गयी कि दीनू ने मकान अपने नाम कराके अब माँजी से कह दिया कि तुम चाहे रहो चाहे भाड़ में जाओ। छुट्टी का दिन था और हर घर में चर्चा चल पड़ी। बैजू भैया बोले, "छी-छी ! देखने में कैसा सीधा लगता था ! बिलकुल गऊ ! सिर झुकाये आना, सिर झुकाये जाना। न किसी के तीन में न पाँच में। क्या मालूम था कि पेट में ये गुन भरे पड़े हैं ? मुंशी हरलाल कान के खूँट निकालते बोले, "भैया, दोष तो बहूजी का है। जात-कुजात में लड़के को मिलने की छूट ही नहीं देनी चाहिए। हम लोगों ने कभी कुछ कहा तो उसके चचा लड़ने को तैयार कि उस लड़के को कोई कुछ न कहना। अरे सब चचा के तो बोये बीज हैं। कोई सगे चाचा तो हैं नहीं, माने-जाने के ठहरे !" बचई महराजिन बोलीं, "मुला अगर मकान वाजिब दाम में निकाल रहे होंय तो मुंशी हरलाल तुम कोशिश करके हमें दिलवाय देव ! डॉक्टर बाबू से तो बनती है तुम्हारी।" और शाम होते-होते जब लोगों ने देखा कि दीनू साइकिल हाथ में थामे, पीछे कैरियर में एक छोटा सूटकेस

बाँधकर कहीं जा रहा है तो लोगों को समझते देर नहीं लगी कि सूटकेस में मकान के कागजात हैं और जरूर वह वकील के यहाँ जा रहा है। हाँ, आज वह रोज की तरह सिर झुकाकर नहीं जा रहा था, गली के एक-एक घर-द्वार को रुक-रुककर देखता, ठिठकता, कुछ सोचता और फिर आगे बढ़ता। सड़क के पास एक बार उसने मुड़कर देर तक इधर देखा, पैडिल पर पाँव रखे और चला गया।

रात की कौन कहे, जब तीसरे दिन भी दीनू गली में लौटता नहीं दीखा तो मुहल्ले की बोली बदल गयी। "कमाऊ पूत सिरमाथे सहेजकर रखना चाहिए। कैसे-कैसे कष्ट सहकर यह दिन आया था। आज बाबूजी जिन्दा होते तो क्या ऐसे तिनका तोड़कर चला जाता ! कैसा बज्जर करेज है माँ का ! खड़े-खड़े निकाल दिया। अरे मुहल्ले का लड़का है भैया, पता लगाओ जाने कहाँ भूखा-प्यासा पड़ा होयगा। कहीं रेल की पटरी पर न जाय पड़ा हो !" बचई महराजिन बोलीं, "अरे मकान के पीछे कलेश है तो बहूजी मकान हमें दे दें। वाजिब दाम ले लें। बेचारा लड़का दर-दर तो न भटके।"

माँजी स्तब्ध थीं। न रोना न धोना। तीसरे दिन सुबह चाचा-चाची ने बहुत-बहुत कसमें देकर दो-चार कौर खिलाये। फटी-फटी आँख से ऊपर देखती थीं गोया दीनू अपने पढ़ने के कमरे में है और अब नीचे आता होगा।

इतवार-से-इतवार आठ दिन, फिर अगला इतवार पन्द्रह दिन और शुक्रवार पाँच दिन—पूरे बीस दिन कैसे कटे हैं बस यह या तो अपर्णा जानती है या डॉक्टर चाचा। माँजी बरोठे में पूजा के पीढ़े के पास चौकी पर चुपचाप पड़ी रहती थीं। डॉक्टर चाची दोनों वक्त खाना बनाकर बाकी वक्त माँजी के पास बैठी रहती थीं और डॉक्टर चाचा और अपर्णा बैठक में बैठकर सलाह करते रहते कि दीनू को कैसे वापस लायें ? माँजी चार-पाँच दिन चुप रहतीं, फिर डॉक्टर चाचा को या अपर्णा को पास बुलाकर हाथ जोड़कर कहतीं, "उससे कहना माँ ने हाथ जोड़कर कहा है कि हम मकान नहीं रखेंगे। उस पर झंझट नहीं डालेंगे। मकान बेच देंगे।" फिर चार दिन की चुप्पी, फिर हाथ जोड़कर सन्देशा, "उससे कहना माँ ने हाथ जोड़कर कहा है कि वे ऋषिकेशवाले आश्रम में जाकर रहेंगी। इस घर में न लौटे तो वहीं आकर मिल ले।" चाची और अपर्णा मुँह फेरकर आँसू पोंछ लेतीं। फिर चार दिन की चुप्पी, फिर सन्देशा, "कहना माँ ने हाथ जोड़कर कहा है माफ कर दे बेटा। शादी ब्याह की बात मुँह पर नहीं लाऊँगी।"

अपर्णा—चंचल बातूनी अपर्णा कितनी खामोश, कितनी गम्भीर हो गयी थी। सुबह तो आकर जल्दी चली जाती थी पर शाम को आकर डॉक्टर चाचा से बात करती थी, "क्या किया जाये ?" और जिस दिन माँ ने शादीवाला सन्देशा कहा उस दिन अकस्मात् डॉक्टर चाचा बात करते-करते रुक गये। बोले, "अपर्णा बेटी ! एक बात कहूँ ?" अपर्णा बड़ी-बड़ी आँखें उठाकर देखने लगी तो बोले, "बेटी, अब इसके

बाद तो मैं दीनू को अपने पास रख भी नहीं सकूँगा। बेटी मेरी ! तू अगर उसे सँभाल ले, तेरे बिना वह और किसी से सँभलेगा नहीं।" परना दी की बड़ी-बड़ी आँखें पहले और बड़ी हो आयीं, फिर डबडबा आयीं, फिर नीचे झुक गयीं। फिर गहरी साँस लेकर बोली, "चाचाजी ! दीनू लौट आये फिर मैं नहीं आऊँगी। मुझे पहले ही इतना राग नहीं बढ़ाना चाहिए था। हमारे घर में ऐसी बात कोई सुन भी नहीं सकता चाचाजी ! मेरे पिताजी तो जहर खा लेंगे।" डॉक्टर चाचा चुप हो गये। अपर्णा के सिर पर हाथ रखकर जाने क्या सोचते रहे।

लेकिन बीसवें दिन जब चाचा की बहुत मिन्नत के बाद दीनू लौटा तो सब बदले-बदले-से थे, सिर्फ परना थी ज्यों-की-त्यों। "बोड़दा ! अपने कमरे की याद भी नहीं आती थी ? घर की भी नहीं ?"

दीनू कुछ गम्भीर हो गया, चुप अपने में जाने क्या-क्या सोचता रहा। बोला, "नहीं, किसी की याद नहीं अती थी ? बड़ी शान्ति थी। न आरोप, न हर क्षण की तोहमत।"

"कुछ याद नहीं आता था बोड़दा ? कुछ नहीं ?"

"आता था ?" दीनू परना की हथेली पर लकीरें खींचता हुआ बोला, "हरसिंगार की महक याद आती थी। सुबह सोकर उठने पर, कभी-कभी रात को सोने जाते हुए।"

परना की वही बड़ी-बड़ी आँखें उठीं, फिर नीचे झुक गयीं, "झूठ बोलते हो बोड़दा।"

"शायद !" दीनू ने गहरी साँस लेकर कहा और अनमना-सा बारजे से टिककर नीचे आँगन की ओर सूनी दृष्टि से देखने लगा।

शायद नहीं, बात सच थी। घर से सारा नाता तोड़ देने के बाद, माँ की प्रतिमा को चूर-चूर कर देने के बाद, घर से दूर– इन बीस दिनों में दीनू दिन-भर सोचता कि उसका स्वाभिमान जहाँ चूर हो, जहाँ उसके चरित्र पर आरोप हो, जहाँ अविश्वास कर उसे हर तरफ से ओछा और छोटा बनाने का सरंजाम हो–उस घर, उस आँगन के कैदखाने से छूटकर वह कितना सशक्त, कितना मुक्त, कितना शान्त अनुभव करता है। वह साँजी के बारे में सोचता, चाचा-चाची के बारे में सोचता, परना दी से तो कभी-कभी कल्पना में बातें ही करने लगता, लेकिन शाम होते ही जाने क्यों ऊँची दीवारोंवाला छोटा, अँधेरा-सा आँगन आँख के सामने घूमने लगता और घूमने लगतीं माँ की आँखों के पास की झुर्रियाँ, दीवारों की दरार, फर्श की नमी। दो बार चौंककर आधी रात को जाग गया था। उसे लगा जैसे वह अपने घर में, अपने कमरे में सोया है और बाहर नजीर मिस्तरी मरम्मत के लिए छत का सीमेण्ट खोद रहे

हैं—ठक-ठक-ठक-ठक ! नहीं कुछ नहीं, सिरहाने टँगी दीवार-घड़ी बोल रही थी—टिक-टिक-टिक-टिक !

"शायद !" परना के कन्धे पर हाथ रखकर अपना कसूर मानता हुआ-सा दीनू बोला, "शायद तुम्हें भी याद नहीं किया था मैंने।" और नीचे देखने लगा।

नीचे आँगन कितना बदल गया था ! इस आँगन में पहले माँजी की एक कल्पना-प्रतिमा स्थापित थी। विराट् चट्टानी, हर क्षण शासन करती हुई, दीनू के सारे व्यक्तित्व को छोटा, नाचीज, निरर्थक बनाती हुई और दीनू, छोटा-सा लेकिन ईमानदार दीनू अपने स्वाभिमान की रक्षा करता हुआ रह-रहकर उस छोटेपन के आरोपित चौखटे को तोड़ने की ललकार देता रहता था, और मन के इस कटु विक्षोभ में कहीं मिठास हमेशा के लिए मर न जाये इसलिए वह रह-रहकर चाचा-चाची की छाया ढूँढ़ता था, परना के हरसिंगार खोजता था।

आज आँगन कैसा उजड़ा-उजड़ा-सा है ! जीत दीनू की हुई है। वह विराट् आतंकप्रद, चट्टानी प्रतिमा चूर-चूर हो गयी है। उसके टुकड़े आँगन में बिखरे हुए हैं। शेष रह गयी हैं माँ, बीस दिनों में ही कितनी बूढ़ी, खामोश, टूटी, पराजित। विजय के बाद की यह निचाट उदासी—दीनू कितना खाली है। माँ की उस प्रतिमा के सन्दर्भ में जो भी दुनिया चारों ओर बनी थी वह प्रतिमा के टूटते ही कैसी-कैसी तो लगने लगी है ! चाचा-चाची के लिए कुछ न कर पाने की बेचैनी, परना दी के लिए एक अव्यक्त आकुल प्रतीक्षा, मन की वह खिड़की जिससे धूप झाँकती थी, सब इतने निस्पन्द, इतने धुँधले क्यों हो गये हैं ? बीस दिनों में माँ न केवल बहुत बूढ़ी हो गयी हैं वरन् उनकी कमर झुक-सी आयी है। पतीली में पानी लेने या चावल धोने रसोई से नल तक आने के लिए धीरे-धीरे आँगन पार करती हैं; 'हे प्रभो' भी नहीं कहतीं। और दीनू चुपचाप ऊपर खड़ा देखता है : कहाँ गयी वह तेजस्विनी, युद्धरत, जिद्दी, आक्रमणकारी माँजी ! यह दुर्बल, कराहकर चलनेवाली वृद्धा कौन है ? अकमात् इसका बुढ़ापा दीनू के सारे मन पर क्यों छा गया है ? वह अपर्णा से हँसता क्यों नहीं ? चाची से दुलार-भरी मनुहार क्यों नहीं करता ?

माँ की पलकें झूल आयी थीं और काम करने में कभी-कभी हाथ काँप जाते थे। बोलते-बोलते अकस्मात् चुप हो जातीं, फिर लम्बी चुप्पी के बाद वाक्य पूरा करतीं। उस दिन मुंशी हरलाल को साथ लेकर बचई महराजिन आयीं तो माँ बोलीं, "हाँ, हमें मकान नहीं रखना। अरे इसी के कारण दीनू को कभी कोई सुख नहीं दे पायी। उसके बचपन के दिन थे खेलने-खाने के। बाबूजी होते तो···" और सहसा जैसे शब्द चुक गये हों, सूनी दृष्टि से देखती रहीं, मिनट-दो-मिनट की चुप्पी के बाद बोलीं, "मकान तो बेचना है। डॉक्टर लाला से बात कर लो !" डॉक्टर चाचा बोले, "अभी

कुछ तय नहीं है। दीनू को फुरसत होगी तो बात करेंगे।" दीनू बोला, "बेचना है लेकिन अभी ठीक नहीं। फिर सोचेंगे।"

माँ उस दिन-दिन-भर वही वाक्य जैसे पूरा करती रहीं। कड़ाही में आलू छोंके और उतारते-उतारते बोलीं, "बाबूजी होते तो···" और फिर चुप, देर तक चुप, फिर सहसा चौंककर आलू कड़ाही से निकालकर बड़े प्याले में रखते हुए वाक्य पूरा किया, "मकान तो बेचना है।" गूँधे आटे से लोई काटी, गोल टिक्की बनाकर पाटे पर रखी—"बाबूजी होते तो···" फिर लम्बी निष्क्रिय चुप्पी और फिर चौंककर—"मकान तो बेचना है !" और बेलन से रोटी बेलने लगीं।

दीनू सामने बैठा था। चुप। माँ को देख रहा था और इतने आराम से बैठा था लेकिन जाने क्यों तिल्ली के पास ठीक वैसा ही दर्द-सा होने लगा था जैसे पहले खाना खाकर भागते हुए कॉलेज जाने में हुआ करता था। "बाबूजी होते तो···" "मकान तो बेचना है।"

आज खाना खाते समय दीनू ने पहली बार गौर किया। यह माँ की दृष्टि को क्या हुआ ! आँखें तो खैर धुन्ध और पानी-भरी थीं ही, वे कैसे एकटक, कितनी विनत, कितनी स्वामिभक्त-सी दृष्टि से दीनू को देख रही थीं ! जैसे वे पालतू मूक गाय हों ! बेजबान, बेआसरा ! दीनू को याद आया—छह-सात साल पहले बचई महाराज के यहाँ एक गाय थी, कुसला। दीनू शाम को उसे रोटी का एक टुकड़ा देने जाया करता था। कैसी हुमककर हुंकारती थी कुसला ! एक दिन शाम को लौटा तो पता लगा कि चरकर लौटते हुए लॉरी से टक्कर खा गयी है। आकर गिरी तो उठ ही नहीं पा रही। दीनू दौड़कर गया रोटी का टुकड़ा लेकर कुसला न हुमक पायी न हुंकारी। दो बार उठने की कोशिश की, फिर गिर गयी। बस एकटक धुन्ध-भरी, पानी-भरी आँखों से दीनू को देखती रही, देखती रही !

दीनू से फिर रोटी नहीं खायी गयी। उठा तो माँ बोली, "बस !"

"बस !" उसने कहा और ऊपर जाने लगा।

पीछे-पीछे माँ की वही दृष्टि—एकटक, मूक स्वामिभक्त !

(ओ माँ, ओ माँ ! यह दृष्टि नहीं सही जाती। दीनू ने विजय चाही थी अपनी निष्ठा, अपनी ईमानदारी, अपने स्वाभिमान को प्रतिष्ठित करने के लिए। तुम्हारी आँखों में इस दृष्टि के लिए नहीं ! तुम्हारी दृष्टि में विजयी-सा, स्वामी-सा, शासक-सा दीनू अपनी दृष्टि में और छोटा लगने लगता है)

अपने कमरे में जाने के पहले, दीनू बारजे के पास खड़ा होकर उदास मुँह नीचे आँगन की ओर देखता रहा। चुप ! गुमसुम !

जब माँ यहाँ रहती थीं तो हर महीने की दूसरी तारीख को सत्संग का पुराना चपरासी

भवानीदीन चन्दे का रजिस्टर लेकर आता था। बाहर जूता उतारकर बरोठे में बैठकर जो भी उस समय मन्त्राणी हो उसकी निन्दा करता था, माँजी के जमाने की प्रशंसा करता था। और चन्दे के अलावा अपने लिए कभी पुरानी बनियाइन, कभी पुरानी धोती ले जाता था। इस बार आया तो माँ ने उसे भी दीनू के पास भेज दिया। "का भइया! माँजी कहत हैं कि –दीनू भइया कहैं तब चन्दा मिली !" दीनू को फिर जैसे चोट लगी। "नहीं भवानी काका, माँजी की मरजी कौन टालेगा !"

"हाँ, ओही तो हमहू कहा ! भइया अबकी सालाना अधिबेसन है।"

"अच्छा !" और दीनू ने आठ आने की जगह पूरा एक रुपया लिख दिया। माँ कुछ नहीं बोली। उसी तरह एकटक दीनू को देखती रहीं।

दूसरे दिन शाम को दीनू लौटा तो गुण्टी ने आकर चाभी दी। मालूम हुआ डॉक्टर चाची को साथ लेकर माँजी वार्षिक अधिवेशन में गयी हैं। देर से लौटेंगी। पराठा-तरकारी कटोरदान में रख गयी हैं।

घर बिलकुल अकेला था और बेहद शान्त। धीरे-धीरे शाम हो रही थी और कमरा, बरोठा, आँगन सब अँधेरे में डूबते जा रहे थे। जाने क्यों दीनू ने लालटेन तक नहीं जलायी। अँधेरे में ही पराठे निकाले, छत पर बैठकर खाये, अँधेरे में ही नीचे नल तक गया। अँधेरे में ही आकर बड़ी देर तक तख्त पर पड़ा-पड़ा खिड़की से आसमान की ओर देखता रहा। चौराहेवाले पीपल की फुनगी के पास सप्तर्षि-मंडल चमक रहा था। उसे याद आया कि बहुत छोटा था तब इसी तरह एक दिन उसके पिता ने उसे सप्तर्षि मण्डल दिखाया था और दो तारों की सीध में वह दूर पर ध्रुव। और ध्रुव की कहानी बताकर कहा था–झूठी बात कभी बोलना मत, सच्ची बात से कभी डिगना मत ! उसे पिता की कितनी, कितनी कम बातें याद हैं ! यह जरूर याद है कि वे हवन कराते थे। मन्त्र तो दीनू क्या बोल पाता लेकिन 'स्वाहा' बड़े उत्साह से बोलता और सामग्री हवनकुण्ड में डालता था। हाथ में आँच लगती और जल्दी से हाथ खींच लेता। जब घर का यह ऊपरवाला हिस्सा बना तब बड़े हवन में उसे घी डालने का अधिकार मिला था। तब उसने स्वाहा के अलावा एक और शब्द सीखा था 'इदन्न मम ! कुछ मन्त्र थे जिनमें बाद में इदन्न मम आता था और घी अग्नि छोड़ने के बाद पास रखे पंचमात्र के जल में एक बूँद घी टपका देना होता था। पिघले गर्म घी की बूँद पानी में पड़कर जमकर तैरने लगती थी। बरसों बाद उसने पढ़ा था कि इदन्न मम के अर्थ होते हैं–यह (आहुति) मेरे लिए नहीं है। 'इद-मिन्द्राय इदन्न मम'–यह इन्द्र के लिए है, मेरे लिए नहीं। 'इदं सोमाय, इद ब्रह्मणे···'

पिता उस घी को हथेली में मलकर अग्नि से हाथ तापकर दीनू के माथे पर लगा देते थे–'वर्चस्वी भव ! 'बाबूजी होते तो···' उसे सहसा माँ का ख्याल आया जैसा कभी नहीं आया था। आती होंगी। वार्षिक अधिवेशन तो बहुत रात तक चलते हैं। वह करवट बदलकर कब सो गया उसे याद नहीं।

रात को नींद कैसे उचटी यह तो मालूम नहीं लेकिन उसे यह लगा कि किसी

फूल की तेज महक आ रही है। कौन फूल है यह ? कहाँ फूला है ? उसने बाहर देखा। सप्तर्षि अब घूमकर दूसरी जगह आ चुके थे। वह पानी पीने के लिए उठा। कहीं से हलकी रोशनी आ रही थी। उसने देखा उसके सिरहाने नेवारी के फूलों की एक बड़ी-सी माला रखी है। कौन रख गया ? माँ ?

वह बाहर आया। अरे बाहरवाले बरोठे से रोशनी कैसे आ रही है ? कौन है वहाँ ? उसका जी धड़-धड़ करने लगा। दबे पाँव वहाँ गया। "कौन ? अरे माँ ? क्या कर रही हो ?"

माँ चौंककर खड़ी हो गयीं। हक्का-बक्का। डरी हुई जैसे चोरी करते पकड़ी गयी हों। दीनू आगे आया। देखा ढिबरी जलाकर कोने में रखी है। "क्या था ?" उसने पूछा। माँ के हाथ काँप रहे थे। सिर्फ इशारा करके रह गयीं। दीनू ने देखा। दीवार और फर्श के बीच एक चौड़ी-सी दरार फट आयी थी। माँ उसमें मिट्टी भर रही थीं।

दीनू का जैसे जी उमड़ आया, "कल नजीर मिस्तरी को बुलवा लेतीं। चलो हाथ धोओ।" माँ उसी तरह पीठ झुकाये नल तक गयीं, हाथ धोये और बिस्तर पर लेट गयीं। दीनू ढिबरी लेकर गया। खुरपी लाया और उसमें मिट्टी भरने लगा। माँ ने लेटे-ही-लेटे तकिये से सिर उठाकर देखा, फिर चुप लेट गयीं। दीनू खुरपी रखकर, हाथ धोकर तौलिए से पोंछते हुए आया। माँ जैसे सफाई देते हुए बोलीं, "बेटा, दरार-छेद देखेंगे तो मुंशी हरलाल और भी कम दाम लगायेंगे न ! मकान तो बेचना है !"

दीनू ने गहरी साँस ली। कुछ कहा नहीं। ढिबरी बुझायी और चलते-चलते बोला, "माला कहाँ से आयी ?"

"इस बार के अधिवेशन में जबरदस्ती मुझे सभानेत्री बना दिया। मैं तो मना कर रही थी। माँ की आवाज अँधेरे में से आ रही थी, काँपती हुई, ख़ुशी से या डर से, मालूम नहीं।"

"फूल बहुत अच्छे हैं ! नेवारी के हैं न ?" दीनू अँधेरे में ही सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते बोला।

"तुम्हें फूल अच्छे लगते हैं ? पता नहीं परना अब क्यों नहीं दे जाती ?"

दीनू अँधेरे में ठोकर खाते-खाते बचा।

अगहन लग गया था। तीन पहर से ज्यादा रात बीत गयी थी। सर्द ! दरार में मिट्टी भरते माँ के गीले हाथों की तरह। परना दी के नहाये केशों के गीले छोरों की तरह। उसे कँपकँपी छूट आयी। क्यों ? शायद सर्दी की वजह से। उसने अलवान ओढ़ लिया, पलकें बन्द कर लीं। दो भूली-बिसरी, अग्नि में तपी, पिता की गरम आशीष हथेलियों में माथा छिपाकर सो गया।

"स्वाहा !···इदन्न मम ! स्वाहा ! इदन्न मम !" क्या सपना देख रहा है ? वह चौंककर

उठा। सूरज बहुत ऊपर चढ़ आया था और खिड़कियों से किताबों पर धूप आ रही थी। पीपल की डालों में धूप से डरकर कोहरे की एक परत दुबकी हुई थी।

स्वाहा...स्वाहा...

उसने झाँककर देखा। सचमुच बाहर के बरोठे में पूजा हो रही थी। डॉक्टर चाचा, चाची, माँ, गुण्टी। आटे-हल्दी से अल्पना बनायी गयी है, चार कोने पर तुरई के चार पीले फूल रखे हैं। ओह ! वह भूल गया था। आज तो गुण्टी का जन्म दिन होगा। चाचा हमेशा गुण्टी के जन्म-दिन की पूजा यहीं आकर माँ के हाथ से कराते हैं। गुण्टी इसी मकान में हुई थी न ! छोटे भैया शायद अपर्णा को बुलाने गये थे, क्योंकि आगे-आगे अपर्णा आ रही थी और पीछे-पीछे छोटे भैया एक बिल्ली के बच्चे को डराते-धमकाते चले आ रहे थे। वह तुरत तैयार होकर नीचे आया और अलग चौकी पर बैठ गया। कभी वह पूजा करता था लेकिन जब उसका ईश्वर नहीं रहा तब उसने पूजा छोड़ दी। आज माँ खीझी भी नहीं। कुछ कहा भी नहीं। बस वही एकटक अपलक मूक दृष्टि उनका ध्यान न सामग्री पर था, न हवन कुण्ड पर। मशीन की तरह मन्त्र बोल रही थीं, मशीन की तरह आहुति डाल रही थीं।

स्वाहा...स्वाहा...

कितनी बूढ़ी, कितनी दयनीय, कितनी...

दीनू कब आकर पूजा में बैठ गया था—परना दी और डॉक्टर चाचा के बीच, यह भी उसे याद नहीं। वह क्या करे ? उसका तो कोई ईश्वर भी नहीं। उसने यह कब चाहा था। उसने अनजाने में, बिलकुल अनजाने में परना दी के आगे से घी की कटोरी खिसका ली थी। आहुति डाल रहा था। यह विजय, यह स्वामित्व, यह आतंक—इदन्न मम ! यह मेरे लिए नहीं ! ईश्वर तो दीनू के लिए था नहीं, उसने खुद अपने चारों ओर अपनी सृष्टि बनायी थी और हर प्राणी को वह अपने अनुरूप बनाकर रखना चाहता था। अब वह सृष्टि भी नहीं। उसे कुछ नहीं चाहिए...इदन्न मम ! वह किसी से कुछ नहीं चाहता। उदासी नहीं, एक शान्त निर्वेद। उसने माँ का झुका बूढ़ा शरीर, काँपती उँगलियाँ, धुन्ध-भरी जलमय आँखें देखीं। प्रभो ! माँ को शान्ति दो। उनके शेष दिनों को उजाला दो। उसने परना दी की बड़ी-बड़ी झुकी आँखें और सूखे केशों की अनसँवरी उदासी देखी। अपर्णा ने अपने आपको इस घर से तोड़ लिया है। दीनू किसी के लिए कुछ नहीं कर पाया। माँ दुर्गा ! परना की रक्षा करना। बड़ी पगली है।

वह ईश्वर से प्रार्थना कर रहा है ? वह ? दीनू ? तो क्या उसका ईश्वर है ? उसने फिर आहुति डाली। इदन्न मम ! ईश्वर भी मेरे लिए नहीं ! इदन्न मम—यह जो दीनू है, यह जो 'मैं' है यह भी मेरे लिए नहीं !

मुंशी हरलाल और बचई महराजिन कब आकर बैठ गये थे किसी ने ध्यान नहीं दिया। हाथ जोड़े, आँख मूँदे बैठे रहे। पूजा खत्म हुई तो बोले, "आज शुभ समय है। मकान की बात हो जाये तो अच्छा है ! दीनू बाबू भी घर में हैं।"

माँ की वही दृष्टि दीनू की ओर।

"मकान ?" दीनू खड़ा हो गया, "मुंशीजी ! मकान हम लोगों को नहीं बेचना है।"

परना की बड़ी-बड़ी आँखें डॉक्टर चाचा की ओर उठीं। इस उल्लास को वह और किससे बाँटेगी ? और इस उदासी को ? "फूलो-फलो बेटी मेरी !" चाचा ने आशीर्वाद दिया, माँ ने प्रसाद, चाची ने रोचना के दो रुपये। "चन्दननगर से खत लिखना बेटी !" चाचा बोले। अपर्णा के पिता आये थे और सबको लेकर चन्दननगर जा रहे थे। वहीं आढ़त खुली है।

"चलो छोटे भैया ! पहुँचाओगे नहीं !"

दोनों चल दिये। अपर्णा आगे-आगे, पीछे-पीछे छोटे भैया अपर्णा की खुली झूलती केशराशि में तुरई का फूल फँसाने की कोशिश करते और डाँट खाते हुए। □

बन्द गली का आखिरी मकान

लम्बी बीमारी में बिस्तर पर पड़े-पड़े दुनिया किस कदर सिमट आती है।

दायीं ओर कच्ची दीवार, जिसमें बीच-बीच से गोबर का लेप उघड़ गया था। बीच में पिरोड़ से पुता हुआ आला, जिसके ऊपर दूर तक ढिबरी के धुएँ की काली लकीर और नीचे बहे हुए तेल की धारा का दाग। बायीं ओर दीवार नीची थी, खपरैल झुक आयी थी और ओलती के मोटे-मोटे बाँस। पाँयताने टीन के पुराने सन्दूकों पर पोटरियाँ, गठरी-मुटरी और अदालत के कागज। ऊपर खूँटी से लटकता हुआ एक तार का खोंसना, जिसमें पुरानी चिट्ठियाँ, पुरजे, गैर-तामील हुए सम्मन, रसीदें, बैनामे और पुरनोट खुँसे हुए थे। सिरहाने था मोखा, जिसके पार खेत और हनुमान-चौरा दीखता था, क्योंकि वह कच्चा मकान गली का आखिरी मकान था, यहाँ आकर गली बन्द हो जाती थी। मकान के उस ओर थे खेत, हुनमान-चौरा, कुआँ और बहुत दूर पर खेतों पार पठानों का मुहल्ला, समदाबाद। घर के ठीक नीचे गाजर और भाँटे का खेत था, लेकिन सिरहाने मुड़कर वह नहीं देख सकते थे, क्योंकि अंग-अंग जकड़ गया था और बिना सहारे करवट बदलना भी मुमकिन नहीं था। रोम-रोम में भयानक पीर।

बीमारी भी कोई बीमारी-सी हो। अंग-अंग जकड़ा हुआ, जबान ऐंठी हुई, जिगर सूजा हुआ। कोई पूछे हनुमान-चौरा के बजरंग स्वामी से कि उन्हें यह कष्ट मुंशीजी को ही देना था ! भाँटे के खेत में पाकड़तले पड़े थे, बस वही अटिक-खटिक मंगल को कभी भोग लगा दें, तो लगा दें, नहीं तो राम भरोसे। मुंशीजी उठाकर कुइयाँ के पास लाये, बड़ी कोठी से चन्दा माँगा, म्यूनिसिपैलिटी से मंजूरी ली, 'बजरंग स्वामी न्यू टेम्पल कमेटी' कायम की। पक्का चौतरा और छतरी बनवायी। स्थापना के दिन आशा कम्पनी का लाउडस्पीकर लगवाया और आज बजरंग स्वामी ने क्यों सुध बिसार दी ? आखिर कौन खोट देखी अपने भगत में ? कायस्थ होकर भी कभी शराब-कबाब छिगुनिया से नहीं छुई। इतने बड़े वकील के बैनामा मुंशी होकर

भी एक इंच धरती-धन इधर-से-उधर नहीं किया, पान-तमाखू के लिए गरीब से घूस नहीं ली। जब से होश सँभाला मुहल्ले में आँख नीची किये हुए आये, आँख नीची किये हुए गये। और आज यह दशा कि पूरा क्वार, कातिक, अगहन बीत गया, गली-मुहल्ले की बात तो दूर, नीचे बैठक में बोरसी तापने नहीं आ सके। ले-देकर यही तीन ओर की दीवारें और ऊपर की खपरैल। खपरैल कुछ गनीमत थी। इस साल कई बरस बाद बड़े बेटे राघोराम के ब्याह के कारण नयी छवाई हुई थी। छप्पर नये सिरे से बाँधा गया था और बीच-बीच में नये खपरैल थे, आँवें में सिंके लाल ताम्बई रंग के। अच्छे लगते थे। एक बूँद बारिश की पड़े तो सारी कोठरी सोंधी-सोंधी गमक उठे।

मुंशीजी खास तौर से ये खपरे छाँटकर लाये थे। हालाँकि बारह आना सौ उसने दाम ज्यादा लिया, लेकिन मस्सुर कुम्हार की मिट्टी और आँवें की तासीर ही अलग है। कितना उत्साह था उसके मन में राघोराम के ब्याह का ! वकीलसाहब से सिफारिश करके कहीं से वजीफा बँधवाया था। और मिडिल किया, मैट्रिक किया और बजरंगबली गवाह हैं कि एफ़. ए. भी पास कर लिया। उस दिन मुंशीजी की खुशी और घमण्ड का ठिकाना नहीं था। रिजल्ट का अखबार पूरे दस आने में खरीदकर लाये थे और जीतलाल हलवाई का कलाकन्द ! रात के दस बजे तक बीसियों लोग बधाई देने आये। अखबार में हरेक को रोल नम्बर दिखाकर कलाकन्द हाथ पर धरकर मुंशीजी कहते रहे, "गरीब की भगवान् नहीं सुनेगा तो कौन सुनेगा ! अरे वजीफा ले-लेकर और ट्यूशन कर-करके पढ़ा, हमारी क्या औकात थी ! माँ की तपशिशा का फल है ! अब बेटा रोटी-रोजगार लायक हुआ, हम लोगों का बुढ़ापा पार लगेगा। बजरंग स्वामी किरपा करो ! इस हरिया को भी किसी किनारे लगाओ।"

बात यह थी कि छोटा बेटा हरीराम प्राइमरी से आगे ही नहीं बढ़ पाया था। दो लड़कों का सिर फोड़कर, एक मास्टर के घर पर कोयले से गाली लिखकर उसने शिक्षा सम्पूर्ण कर ली थी। कुछ दिन घर पर गाली खाता रहा, फिर मजमेबाज दवाफरोश से शेर को पछाड़ने की बूटी खाकर दो बरस बीमार पड़ा रहा, और फिर एक दिन मालूम हुआ कि उसने मिरवा के बाबू की शागिर्दी कर ली है और सबुह-सुबह उठकर सारंगी का रियाज करने जाता है। सा रे ग ''रे ग म ''ग म प ''काफी गालीगलौज, थुक्का-फ़जीहत के बाद मुंशीजी ने उससे बोलना छोड़ दिया था, माँ तो साफ कहती थी कि उसकी कोख में से सिल-लोढ़ा जनमता तो किसी काम तो आता, इस करमजले मूँड़ीकटे हरिया ने तो नाम डुबो दिया। एक बेटा है राघोराम, साच्छात गऊ ! एक है ये जनम का चोर। हरिया अकसर जवाब नहीं देता था, लेकिन जिस दिन कहीं से एक पुरानी सारंगी घर ले आया और सुबह रियाज शुरू हुई, उस दिन माँ ने डाँटा,

"बस, अब रण्डी पतुरिया भी लाके नचा आँगन में। वहाँ चला जा उनके मुहल्ले में। उनकी जूती चाट और सारंगी बजा।" तब हरीराम ने बड़े कड़े स्वर में कहा, "माई रे, तू हमारी जबान न खुलवा, समझी ! बड़ी मुंशियाइन बनी है तो बन। हमारे तो बाप-दादा सारंगी बजाते रहे हैं, हम तो वही करेंगे। इलम-हुनर सीखेंगे जूती किसी की नहीं चाटेंगे ! और कान खोल के सुन ले, तेरी जूती भी नहीं चाटेंगे और मुंशीजी की भी नहीं !"

बात पूरी भी नहीं हुई थी कि बड़े भाई राघोराम का एक भरपूर तमाचा पड़ा था हरिया के। और उसके बाद और तमाचे और घूँसे। मुंशीजी ने सिर पटक दिया। माँ ने रो-रोकर तीन दिन खाना नहीं खाया। सिर्फ नानी थी जो हरिया को गाली भी देती जा रही थी और उसकी सूजी हुई पीठ और मुँह पर हल्दी-चूना भी लगाती जा रही थी। तब मुंशीजी पहली बार बीमार पड़े थे। हरिया ने जो कहा था, वह सीधे उनके मर्म पर लगा था, लेकिन राघो ने दिन-रात एक कर जो उनकी सेवा की, उससे एक बार फिर प्राण लौट आये। विश्वास भी। जब पहले दिन कचहरी जाने को तैयार हुए, तो जिन्दगी में पहली बार उन्होंने नाम लेकर राघो की माँ को बुलाया, "बिरजा सुनती हो, हनुमान-चौरा पर तेल सेन्दुर भिजवा देना।" बिरजा का प्रौढ़, कहीं-कहीं झुर्री खाता चेहरा लज्जा से लाल हो आया। हमेशा जमीन में लिथड़नेवाला धूल-भरा पल्ला खींचकर सिर पर डालती हुई बोली, "अम्मा सीधा की थाली लगा रही हैं। हाथ से छू देव तो जाना।" राघो और हरिया की नानी, बिरजा की माँ हरदेई एक कन्या पाठशाला में दाई थी और घर-घर लड़कियों को बुलाने जाती थी। लेकिन अब स्कूल सुबह का हो गया था और बीच में छुट्टी लेकर आ जाती थी। सीधे की थाली छुआकर राघो से बोली, "बेटा, पैर छुओ मुंशीजी के।" और मिचमिची पलकों में आये आँसू पोंछती हुई बोली, "टोला-महुल्ला जो चाहे कहे। जात-बिरादरी हमारी ठेंगे पर। हरदेई के लिए बेटा कहो तो मुंशीजी, दामाद कहो तो मुंशीजी ! भगवान् बिरजा को सुखी बनाये रखे। हाँ।"

हरिया कोने में चुपचाप खड़ा था। सुनता रहा, कुछ बोला नहीं। लेकिन ज्यों ही मुंशीजी ने दरवाजे के बाहर पैर रखा, तुरत बीच आँगन में आकर लाल-लाल आँखों से बिरजा की ओर देखता हुआ बोला, "बिरोजा के लिए एक दुअन्नी माँगी थी। किसी की गाँठ से नहीं निकली। आज सीधे के लिए हुन्न बरस पड़ा।" किसी ने कोई जवाब नहीं दिया, तो और चीखकर बोला, "इलम-हुनर की बात मूरख लोगों को क्या मालूम। सारंगी के मत्थे पर बिरोजा जमा दो तो आवाज में गमक भी आती है और बीच-बीच में कमानी का बाल दो बार बिरोजा पर घिसकर खींच लो, तो देखो, तार कैसा झंकारता है ! लेकिन कौन चाहता है कि हम हुनर सीखें ? दुअन्नी माँगी तो पहाड़ फट पड़ा। हाँ मुंशीजी के लिए..."

"बस हरिया ! खबरदार, जो एक अक्षर बोला !" हरदेइया ने डाँटा, "मुंशीजी हम लोगों के सिर-माथे पर हैं। बाप बराबर हैं। दोनों बच्चों को लिये-दिये तेरी

महतारी दर-दर टुकड़ा माँगती, अगर मुंशीजी सहारा न देते। जो रक्षा करे, वही बाप। ठोकर देकर जो आधी रात निकाल दे और, पतुरिया की सिड़्ढी पर अफीम खाये पड़ा रहे वो काहे का बाप ! समझा ! घर में रहना हो तो ठीक से रह।"

"मुंशीजी जो होय सो होय। हमारे तो स्वामी हैं। लड़का की तरह रहना होयगा तुझे। सिर-माथे धारण करके। एक राघो भी तो है !" बिरजा बरसों बाद पहली बार सख्त होकर बोली।

हरिया तब तक सारंगी लेकर बैठ चुका था। आलाप खींचते हुए बोला, "माई रे ! इलम-हुनर तो आता नहीं। न राघो भइया को, न तुझे। नानी सठिया गयी है। कहती है, मुंशीजी को सिर-माथे धारण करेंगे, लेकिन देख··बिरोजा को सारंगी के सिर-माथे थापते हैं, लेकिन कमानी उस पर घिस-घिसकर बाल पैनाते हैं। बिरोजा बीच से कटता जाता है कि नहीं। इलम की बात है इलम की !" और हरिया शान्त हो गया।

लेकिन ज्वालामुखी जहाँ फूटता था, फूटा। सिर्फ दो घण्टे बाद, साढ़े बारह बजे पाठशाला में छुट्टी की घण्टी बजी और हरदेई लड़कियों को पहुँचाने उनके घर गयी, तो मालूम हुआ कि इतनी ही देर में आग लगानेवाले अपना काम कर गये हैं। हर घर में कुछ-न-कुछ मीन-मेख हुई, लेकिन मथुरा बाबू की छुटकी पतोहू ने पूरा डंक चला दिया। आँगन में बैठी अचार के लिए बड़े सरौते से आम काट रही थी। हरदेइया पहुँची कि वह बोली, "बस-बस, उधर ही रहना। अचार के आम पर ऐसे-वैसे की छाँह पड़ी कि गया !"

हरदेइया सन्न, धीरे से बोली, "क्या कहती हो छोटी बहू ?"

"ठीक तो कहती हूँ !" छोटी बहू चमककर बोली, "अभी तक चोरी छिपे धन्धा चलता था। आज तो सब भण्डा फूट गया। दो-दो जवान बेटे हैं, उनके सामने लीला करते सरम नहीं आती तेरी बिरजा को ! बुढ़ाई दावँ पल्ला ओढ़ के बहुरिया बनी है। छी ! छी !"

और पाण्डेजी के घर में उसे साफ जवाब मिल गया, "देख, कल से हमारे यहाँ मत आना। हम अपनी लड़की को खुद पहुँचा देंगे। आज अपनी लड़की बेची, कल हमारी का नम्बर लगे, स्कूलवाले ऐसों को रखे क्यों हैं ?"

हरदेइया घर पहुँची और बिरजा पर बरस पड़ी, "मनसेधू ने निकाल दिया तो दसासमेध डूब जाती। मनिकर्निका पर जल मरती। हमारी बुढ़ौती पर कलंक लगाने क्यों आयी ?" और जब बिरजा ने रो-रोकर गठरी बाँधी और जमुनाजी की ओर चली, तो हरदेइया ने उसे चिपका लिया, "तू काहे को डूबे रे ! डूबे ये पापी मुहल्ला। एक दिन जमुनाजी इसे लीलैंगी। अरे किस घर में कौन करम नहीं होते ? ये छोटी बहू का मरद कानपुर की एजेन्सी में बैठा है, यहाँ ससुर के साथ जो टेटर नौटंकी होती है,

उसे कौन नहीं जानता ? बड़े घर के बड़े चलित्तर ! मुरदा मार के पलंग के पाँव तले गाड़ देव ! हम गरीब हैं, मगर बेईमान नहीं। समझे हाँ ? यही पाण्डेजी कुआँ पर दातौन करते थे और बिरजा को अवाजा-तवाजा कसते थे। हमने लड़की बेची होती तो सारा मुहल्ला निहाल हो गया होता। सब घर की सती-सतवन्ती हमारी लड़की के जूठे मरदों के पाँव धो-धो के पीतीं। हमने इज्जत नहीं बेची, इसी का तेहा है न ! देखेंगे कोई क्या करेगा। बेचरऊ मुंशीजी सीधे आदमी हैं न ! उन्हें बोटी-बोटी करके खा जाव ! हमने तो अपनी लड़की सोच-समझ के दी है। कन्यादान किया है। जिससे जो करते बने, कर लेव।"

तीसरा पहर था, महुल्ले में सन्नाटा था। हरदेई की ललकार को किसी ने चुनौती नहीं दी और राघो स्कूल से चार बजे लौटे, उस समय तक हरदेई भी चुप हो गयी थी।

शाम को मुंशीजी कहचरी से देर से लौटे, तो उनके हाथ में लौकी के लच्छे का दोना था और दूसरे में मोटे अक्षरों में पं. रामबुझावन का हिन्दी छन्द में गीता का गुटका अनुवाद। दोना बिरजा के हाथ में देकर बोले, "दोना बच्चों के लिए ले आये। जीतलाल के यहाँ ताजा बना था।" और गीता राघो के हाथ में देकर उसके सिर पर हाथ रखकर बोले, "बेटा, हिन्दी में गीता है। अपनी माई को पढ़कर सुनाया कर। हम भी सुनेंगे।"

बिरजा चुप थी और घर में एक भारी सन्नाटा था। दिन में क्या हुआ, किसी ने मुंशीजी को बताया नहीं। ढिबरी जला दी गयी और राघो पढ़ने लगा, "न इसको अस्त्र काटैंगे, न इसको शस्त्र बाटैंगे ! सभी पीड़ा सहैगी यह, न आगी से दहैगी यह···" कि हरदेई बीच में फूट पड़ी, "और क्या, हमें कौन जलावैगा ? कौन सतावैगा ? जलानेवाले खुद जल जायेंगे। भगवान् एक-एक से निपटैगा। अरे ये बिसन, हमरा सगा भाई, एक कोख का जाया। हमसे बोला कि केसोबाई के साथ बिरजा को बेंच देव। ये पँड़ाइन हमारी रोजी पर लात चलाय रही हैं···" और हरदेइया फूट-फूटकर रो पड़ी। मुंशीजी गीता के इस अध्याय का सन्दर्भ नहीं जानते थे, अतः हक्का-बक्का कभी बिरजा को देखें, कभी हरदेई को। सन्दर्भ मालूम हुआ घण्टे-भर बाद, जब लाला भवनाथ अपनी मोटी काली काया को खींचते-घसीटते हाँफते हुए आये और धम्म से तख्त पर बैठ गये। ऊपर-नीचे की साँस थिराते हुए बोले, "बताते हैं··सब बताते हैं··जरा साँस लेने दो !"

मुंशीजी ने अपनी गुड़गुड़ी उधर बढ़ा दी।

भवनाथ इसाक मियाँ की टाल के मशहूर खुशदिल हिस्सेदार मुंशीजी के ममेरे भाई थे। काया का बेहद मोटापा उन्हें जड़ और शिथिल बनाने के बजाय और गतिवान् बना गया था। हर जगह उनकी पहुँच, हर खबर उनके पास। और उन्होंने

बताया कि सुबह से अब तक क्या-क्या हुआ है। कैसे हरदेई के भाई, बिरजा के मामा बिशन उस्ताद, जो पास में ही मछलीवाली कोठी के पड़ोस में रहते हैं, उन्होंने कसम खायी है कि ऐसे जात डुबोकर बिरजा को मुहल्ले में नहीं रहने देंगे। उस्ताद हैं, तबला-सारंगी बजाते हैं तो क्या, कथक लोग असली मिश्र ब्राह्मण हैं। मुंशीजी से उन्हें क्या लेना-देना, लेकिन आधी रात बिरजा को गँड़ासे से काटे बिना नहीं छोड़ेंगे। कैसे लच्छू लाला उन्हें लेकर मकान मालिक के पास गये हैं कि तुम लोगों को नोटिस दे दे। पाण्डेजी मनीजर साहब से मिले हैं कि भले-भले घर की कन्या लोग पाठशाला में पढ़ने आती हैं, हरदेई को छुड़ा दिया जाये। कैसे चित्रगुप्त मन्दिर में मीटिंग हुई है कि सब लोग तुम्हें समझावें और अगर तुम इन लोगों को न छोड़ो, शादी-ब्याह, हुक्का-पानी बन्द !

बाकी सब कोठरी से चले गये थे। ढिबरी टिमटिमा रही थी। भाँटे के खेत में सियार बालेने लगे थे, भवनाथ की बड़ी लहीम-शहीम छाया मिट्टी की दीवार पर काँप रही थी और कोने में बिरजा सहमी-सी चुप बैठी थी। मुंशीजी गहरे सोच में पड़े थे। भवनाथ के हाथ से गुड़गुड़ी ले ली थी, लेकिन··· बिरजा उठी और चिलम का अंगार कुरेदती हुई बोली, "भवनाथ भइया ! हमें संखिया ला दो। खा के सो रहें, सारी बला से फुरसत ! दोनों बच्चे अपने जाँगर के हो गये ··बस ये कुशल से रहें। हमें और कुछ नहीं चाहिए।"

मुंशीजी कुछ बोले नहीं, बड़ी बेबस निगाह से बिरजा की ओर देखा। फिर भवनाथ की ओर। पूछा, "चित्रगुप्त मन्दिर की मीटिंग में बिटौनी भी थी ?"

"हाँ, बिटौनी भी, सतसहाय भी। बिटौनी तो सबसे आगे थी। सतसहाय बेचारे चुप थे। बिटौनी बोली कि हमारा सगा भाई क्या है, हमारा दुश्मन है। हम लोगों की शहर में मान-मर्यादा है। स्वराज भवन लो तो, युनिवर्सिटी लो तो, मीटिंग जलूस लो तो, सब जगह हमारी इज्जत ली है। हमारे भाई ने तो हमारे मुँह पर कालिख लगा दी। लोगों ने कहा, तुम समझाओ, तो बोली, हम तो उन नीचों के दरवाजे भी न जायें। हमारी इज्जत नहीं है क्या··मुंशी भइया, नयी मोटर पर आयी थी बिटौनी पिछले महीने खरीदी है।"

"हूँ !" मुंशीजी गुड़गुड़ी एक ओर रखकर बोले, "भवनाथ, बिटौनी चार बरस की थी जब अम्मा मरी थीं। हमने बहन करके नहीं, लड़की करके पाला। शादी नहीं की कि गैर-खून की लड़की आकर उसे सताये नहीं। चलो अब अपने घर खुश है, समाज में नाम है।··लेकिन भवनाथ, उससे कह देना कि यह देहरी तो अब बिरजा की है। राघो की है। अब तो इस देहरी के बाहर जीते-जी न मुंशीजी जायेंगे न बिरजा। जमराज बुलावेगा तभी जायेंगे। चाहे सारी दुनिया की ताकत लग जाये। समझे !"

"सो तो है ही भैया ! लेकिन खतरा है। जरा सँभल के रहना। बिरजा का मामा है न बिसन, अभी दारूखाने के पास मुस्तफा पहलवान से कुछ खुसर-फुसर कर रहा

था। अच्छा चलें, ये दोना काहे का है ? लौकी का लच्छा !" और काँखते-कराहते भवनाथ मिठाई का दोना हाथ में दबाये चले गये··

रह गयी अँधेरी कोठरी, टिमटिमाती ढिबरी, पैंताने सहमी और कुछ-कुछ डरी हुई-सी बिरजा, खिड़की के पार बैंगन के खेत पर छाया घुप्प अँधेरा··और एक अजीब-सी आवाज : क्रीं क्रीं क्रीं ! अकस्मात् उन्हें लगा जैसे उनका गला सूख रहा है। ऐसी आवाज तो साँप की होती है, उन्होंने सुना था।

"बिरजा देख, ढिबरी से, कहीं कोने-अँतरे में कीड़ा है क्या ?" नहीं कीड़ा नहीं था। लेकिन उनका गला सूखता जा रहा था। भय कहीं अन्दर का था। शायद बहुत विश्वास, बहुत साहस, बहुत चुनौती के स्वर में कही गयी हर निर्भीक बात अपने पीछे एक प्रतिध्वनि छोड़ जाती है, कमजोर पीले भय की। अभी उन्होंने भवनाथ से बहुत तनकर सारे जीवन को बाजी पर लगा देनेवाली असाधारण जीवट की बात कही थी और अब उस टिमटिमाती ढिबरी वाली कोठरी में उसकी प्रविध्वनि गूँज रही थी, कमजोर, पीली, भयभीत !

सचमुच उसका गला सूख रहा था और हाथ भी थोड़े-थोड़े काँप रहे थे। उन्हें तब पता चला जब वे गुड़गुड़ी टिकाने कोने में गये और चिलम उलट गयी। लौटते हुए मुस्तफा पहलवान का खूँखार चेहरा आँखों के आगे नाच गया। खिड़की के पास खड़े हुए तो अकस्मात् खयाल आया कि खिड़की के ठीक नीचे तुरई की लतर चढ़ाने को बाँस का टट्टर बाँधा था। कोई भी चाहे तो रात-बिरात उस पर पाँव रखकर एक छलाँग में खिड़की तक पहुँच सकता है। नीचे लतर के पास कुछ खड़-खड़ हुई, वे एकदम से चौंक गये, "कौन है रे !" कोई नहीं बोला। वे दबे पाँव गये और चौखट पर रखा एक ईंटा नीचे गिरा दिया। फदर-फदर करता हुआ बसन्तू इक्केवाले का लँगड़ा घोड़ा लतर के नीचे से दुलकी मारता भागा। मुंशीजी ने सन्तोष की साँस ली।

"बकता है भवनाथ ! कोई मेरा क्या कर लेगा ?" उन्होंने जैसे एक मुहिम जीतकर कहा। अभी क्षण-भर पहले उन्हें लग रहा था कि अँधेरे में न जाने कौन-कौन गँडासा लेकर उनके घर पर चढ़ आया है, लेकिन अब वे आश्वस्त थे। कोई नहीं था। बसन्तू का लँगड़ा घोड़ा था।

कुछ देर सन्नाटा··फिर कोई बोला, "अब पहुँड़ रहो। तकिया बदल दें ?" वे जैसे चौंक गये। कौन बोला ! और तब उन्होंने देखा कि उनके पाँयताने कोई बैठा है, ढीली खाट की अदवाइन पर कथरी मोड़कर बिछा रहा है कि पाँव में गड़े नहीं ! कौन है यह ? शतरंजी पाड़ की मैली धोती पहने, माँग के पास कई पके बाल, आँखों के नीचे झुर्रियाँ, काफी ढला हुआ-सा बदन, बड़े बेडौल-से हाथ के पंजे, बरतन माँजने से अँगूठा फटा हुआ और कत्थे-चूने से फटी हुई तर्जनी और चेहरे पर एक बुढ़ाता

हुआ रूखापन। जैसे फिर से पहचानने के लिए मुंशीजी ने बेमतलब कहा, "बिरजा !" बिरजा ने झटके से सिर उठाकर देखा। मुंशीजी कुछ नहीं बोले, सिर्फ उसे फटी-फटी आँखों से देखते रहे—हाँ, इस औरत का नाम बिरजा है। आज पन्द्रह साल से मुंशीजी रोज इसे देखते हैं, लेकिन इसे जानते हैं क्या ? उन्हें क्या मालूम कि इस बिरजा के तन के अन्दर एक जो मन है, उसमें क्या है ? उन्होंने क्या जाना है ? ज्यादा-से-ज्यादा रोज चिलम भरनेवाले हाथ और तम्बाखू दबाता हुआ अँगूठा। पानी का गिलास देते वक्त हाथ में लाख के कड़े खड़खड़ाते हैं। शाम को अकसर जब वे बाहर तख्त पर बैठकर हुक्का गुड़गुड़ाते हैं, तो बिरजा सामने बैठकर बीजा छीलती है और मुंशीजी कुल इतना जानते हैं कि नीम की झण्डी को बीच से फाड़कर चिमटी बनाकर उनसे बीज दबाती जाती है बिरजा, और छिलके उतारकर बीज अलग छोटी थाली में रखती है और मुँह में सुपाड़ी रहती है, कोई बात पूछो, तो नीचे का होंठ सिकोड़कर बड़े अनाकर्षक ढंग से बोलती है। और रात को कभी नींद खुली है, तो भी उनकी आँखें नीचे रही हैं और उन्होंने देखे हैं, पास सोती हुई बिरजा के दोनों पाँव। खुरदरे तलवे ! अँगूठे के पास उँगलियों के बीच पानी के कारण फटी हुई खाल और मैल जमे गिलट के बड़े-बड़े बिछुए !

लेकिन ये बिछुए, ये खुरदरे मैल-भरे तलवे, बेडौल हाथ, आँख के पास की झुर्रियाँ ये बिरजा हैं क्या ? तो बिरजा कौन है ? पैताने बैठी वह औरत ? उसको वे भला सचमुच कितना जानते हैं ? उसपर तो उनका उतना भी हक नहीं जितना बिटौनी पर था। फिर उन्होंने इतनी बड़ी बात कैसे कह दी ? जब बिटौनी को नहीं जान सके वे, तो बिरजा को क्या जानेंगे ? और फिर उन्हें महसूस हुआ कि बिटौनी, जिसे गोद में उन्होंने पाला, उसने आज ऐसी बात कहकर उन्हें सबसे बड़ी चोट दी है, उनसे सब छीन लिया है, और मुंशीजी बिलकुल तनहा हैं, बिलकुल अकेले ! इस अँधेरी, कच्ची, असुरक्षित कोठरी में सारी दुनिया की दुश्मनाई और धिक्कार से घिरे हुए बिरजा, अनजान अपरिचित बिरजा, उनके अकेलेपन का एक दरपन है, उनकी कोठरी में लगा हुआ। बिटौनी को जिस दिन डोली में बिठाया, उस दिन से अकेले हैं और चाहे मुस्तफा पहलवान से लेकर बिसन उस्ताद तक को जीवट-भरी चुनौती देने की बात हो, चाहे सारी गली-मुहल्ले की धिक्कार और धमकी की बात हो, हर मामले में बिरजा तो घटनाचक्र के कारण खिंच आती है, वरना बिरजा के होने-न-होने से कोई फरक नहीं। जरूर दुनिया में कहीं कोई खोट है, जिससे मुंशीजी का मीजान नहीं बैठता और जरूर मुंशीजी में खुद कहीं खोट होगा, जो दुनिया से उन्हें धिक्कार मिलनी ही थी। उन्हें अपने कचहरी के केस याद आये। कभी खामखाह खेत-मेड़ के बहाने, कभी ढोर-डंगर के बहाने, जबरदस्त फौजदारियाँ हो जाती है। मगर मामले की तह में उतरकर देखो तो सिर्फ फसाद। बेमानी फसाद। अर्थहीन तनाव और अन्तहीन···

जब तक लड़ाई का उद्देश्य स्पष्ट हो, तबतक अपने-अपने ढंग से जीवट भी

आदमी को बचाता है और डर भी ! मगर जब लड़ाई का अर्थ ही मालूम न हो तो जीवट और डर दोनों यकसाँ बेकार ! सिर्फ एक खोखली थकान !

"हम जायें, नीचे ओसारे में बिस्तर लगा लें कि···" बिरजा कुछ-कुछ आहत-सी, कुछ परेशान-सी उठकर खड़ी हो गयी थी।

"जाओगी ?" उन्होंने पूछा और अकस्मात् उन्हें लगा कि नहीं, यह गलत है कि बिरजा नितान्त अपरिचित है, सच तो यह है कि यह बिरजा तो है ही नहीं, उनका अपना हाड़-माँस है, नहीं तो इस वक्त उसके जाने की बात ऐसी क्यों लगती जैसे कोई उनके प्राण खींचकर ले जाने की बात कह रहा हो और फिर अभी-अभी जो बेमानी लग रहे थे, वह डर और वह जीवट, दोनों एक साथ ऐसे रोम-रोम से उमग पड़े और उन्होंने लाख के खड़खड़ाते कड़ेवाले हाथ पकड़कर बिरजा को पास खींच लिया, "अब कहाँ जाना है ?" उस दिन तक क्या था, यह मुंशीजी ने कभी नहीं सोचा था, लेकिन उस दिन से कुछ ऐसा पनपना शुरू हुआ, जो अभी तक नहीं था। मुंशीजी अकसर सोचते कि उसे क्या कहें, बाइस्कोप में या किस्सा-कहानी में जो अल्फाज इस्तेमाल होते हैं, एक तो उनका भले आदमियों से क्या काम दूसरे अब बुढ़ापे में दो-दो बड़े-बड़े बेटों के होते हुए···छीः। सच तो यह था कि राघो और हरिया की फिकर सबसे पहले थी, उनके लिए घर-गिरस्ती जमानी थी, और बिरजा इस तमाम 'गिरस्ताश्रम' में उनकी हर क्षण की साथिन घरवाली ! अब इस भावना को कोई बाइस्कोप या ठेठर-नौटंकीवाला नाम थोड़े ही दे सकता है ! हाँ, एक लफ्ज मुंशीजी को हिन्दी गीता में मिला था : 'मोह में अर्जुन पड़ा था, बीच सेना रथ अड़ा था।' सो जब गीता में भगवान् ने मोह लिखा है तो मुंशीजी कभी-कभी उसी का इस्तेमाल करते थे, "बिरजा, अब तो राघो-हरिया का इतना मोह बढ़ गया है···तुम्हारे बिना भला कैसे चलता !" चिमटी से चिलम की तमाखू पलटते हुए कहते, "अच्छा है, जो बशर मोह में नहीं पड़े तो उसे भगवान् भी तो शरण में नहीं लेते। बिटौनी का ध्यान कभी-कभी आता है, पर खैर··· !"

वैसे हरिया ने उस दिन आकर बताया, तो किसी को यकीन नहीं हुआ। उसके बताने का ढंग भी तो कितना टेढ़ा था ! बाहर से झूमता आया और बोला, "नानी ओ नानी रे ! लाला भवनाथ आकर सब गप्प मार जाते हैं। इनका कहा कुछ भी तो सच नहीं। न घर पर किसी ने हल्ला बोला, न मुस्तफा पहलवान ने मुंशीजी को छुरा भोंका !"

"अरे जबान सँभाल हरिया ! यही चूल्हे की लकड़ी से झौंस दूँगी मुँह।" हरदेई ने डाँटा।

"सच रे नानी ! भवनाथ लाला कहते थे कि बिटौनी की गाड़ी का रंग हरा है झूठ। धानी रंग है रे। रंग पहचानना इलम की बात है। न कचहरी से आती है, न

इसाक मियाँ की टाल से। लाला-लूली का इलम हुनर से क्या काम ?"

"कहाँ देखी गाड़ी तूने ? बिटौनी बुआ आयी है क्या हरिया ?" बिरजा ने पूछा।

"बुआ न पुआ। काहे की बुआ ! हमारी कोई बुआ-उआ नहीं। हम ठहरे पण्डित हरिराम मिश्र···वो कायस्थ···"

और इतने में दरवाजा खुला और बिटौनी छोटी बच्ची का हाथ थामे अन्दर : "ए, भैया हैं हमारे कि कचहरी गये ?" घर तो घर, सारे मुहल्ले में शोर मच गया। बिटौनी आयी है। मथुरा बाबू की छोटी बहू ने ताक झाँककर गाड़ी देखी और मुँह विचकाकर बोली, "उँह, मिट्टी के तेल से चलती है। हमें तो बास आती है।" पँड़ाइन ने छोटी लड़की को भेजकर कहलाया, "जरा गाड़ी में बैठने के पहले मिनट-भर को हो लें।"

मुंशीजी कचहरी जा चुके थे। बिटौनी उठ खड़ी हुई। हरदेई बोली, "बिटिया, भैया के घर आयी हो, बिना मुँह जुठारे कैसे जाओगी ?"

"हमारा बरत है आज !" बिटौनी बोली, "भैया से कहना कि कुछ जायदाद ले रहे हैं हम लोग। बैनामा भरोसे का लिखवाना है और जरा झगड़े की जमीन है तो जरा कागज-पत्तर देख लें। इनसे दफ्तर में मिल लें कभी !" और पँड़ाइन की बेटी से मुड़कर बोली, "चल टुन्नी, बड़ी प्यास लगी है, तेरे घर एक गिलास पानी तो पियें।"

थोड़ी देर बाद जब बिटौनी की गाड़ी स्टार्ट हुई तो फिर मथुरा बाबू की छोटी बहू ने झाँका और धोतीं से नाक दबाये आकर बैठ गयी : "मरी ! मट्टी के तेल से चलती है। इससे तो हमारा ताँगा भला ! मोटर दिखाने आयी थी !"

बिटौनी की मोटर बिरजा को फली। दोपहर को ही छोटी बहू ने कान्फ्रेंस बुलायी, तय पाया गया कि बिटौनी की वही हालत है कि "अधजल गगरी छलकत जाय।" घूस का पैसा आदमी ने जोड़ा, तो गाड़ी पर उड़ने लगी। पँड़ाइन को चेतावनी दी गयी कि खबरदार जो आगे कभी पानी को पूछा। ऐसी अमीर बनती है तो प्यास बुझाने के लिए सड़क पर छिड़काव करनेवाली म्युनिसिपैलिटी की गाड़ी अपनी मोटर के पीछे बँधवा लें, हाँ !"

जाहिर है कि अगला महत्त्वपूर्ण कदम था, बिरजा और मुंशीजी के लिए हमदर्दी। अरे बेचारे गरीब हैं तो क्या, सिर झुकाकर चलते हैं। अब आदमी ने लात मारकर निकाल दिया, तो बेचारी औरत जात क्या करे ? ठाँव-कुठाँव पैर रखने से तो भला है कि एक मरजाद बाँधकर बैठे। अपने बच्चों का भी तो मुँह देखना है। क्या सगा बाप करेगा जो मुंशीजी राघो के लिए करते हैं ! अपने तन-बदन का होश नहीं लेकिन मजाल कि राघो कभी मैले कपड़े पहनकर स्कूल जाये। आठ रुपये महीने का तो अँगरेजी का मास्टर रखा है। बेचारे गरीब हैं, मगर आनवाले हैं।

दूसरे दिन सवेरे पँड़ाइन की बिटिया टुन्नी स्कूल जाते समय स्लेट-तख्ती लटकाये हुए आयी और बोली, "बिरजा मौसी, अम्मा ने कहा है कि दोपहर को मथुरा बाबू की छत पर आ जाना। जरा बड़ी-मुँगौड़ी तुड़वानी हैं।" बिरजा को पहले तो

कानों पर विश्वास ही न हुआ, फिर उसे मारे खुशी के ऐसी रुलाई उमड़ी कि चूल्हे के ही पास बैठकर फफक-फफककर रोने लगी। मुंशीजी कचहरी न चले गये होते, तो उनके पाँव धो-धोकर जल माथे चढ़ाती।

शाम को मुंशीजी लौटे और कपड़े बदलकर गुड़गुड़ी लेकर तख्त पर बैठे, तो बिरजा आकर सामने नीचे बैठ गयी और छिले हुए बीज पछोरती हुई बोली, "अब सब लोग जान गये हैं कि हमारे मुंशीजी कैसे देवता सरूप हैं। आज छोटी बहू कहती थीं···" और उसने दोपहर की सारी गाथा पुलक-पुलक बतायी। मुंशीजी के चेहरे पर एक धीर सन्तोष झलक आया। चारों ओर देखा, फिर धीरे-से एक हाथ बिरजा के सिर पर रखकर बोले, "सब तेरी तपस्या है। गीता रोज सुनती हो न ?"

आज की हमदर्दी और सबकी स्वीकृति ने बिरजा के मन को बहुत भर दिया था। वह कहीं भी कंजूसी क्यों दिखाये ? मुंशीजी से बोली, "बिटौनी बीबी कह गयी थीं···सतसहाय बाबू के दफ्तर गये थे क्या ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

मुंशीजी कुछ भी नहीं बोले। एक मुख्तसर-सी ठण्डी साँस। बिटौनी के इस तरह से आने से उनके मन को कोई चोट लगी थी, जो बिटौनी के विरोध से भी नहीं लगी थी।

मुंशीजी का मन विद्रोह चाहे न कर पाये, लेकिन स्वाभिमानी था। उन्हें अन्दर-ही-अन्दर कहीं यह बात कचौट गयी थी कि आखिरकार बिटौनी ने भी यही माना कि भैया गरीब हैं, अतः उन्हें जैसे चाहो इस्तेमाल कर लो। मुहल्ले की स्वीकृति जो बिरजा को इस तरह उल्लसित कर गयी, उन्हें ज्यादा नहीं छू पायी। उन्हें लगा कि मुहल्ला बिटौनी की अमीरी से आतंकित होकर उनकी गरीबी को भलमनसाहत का पर्याय मानकर उन्हें स्वीकार कर रहा है, ताकि बिटौनी द्वारा आहत मुहल्ले का अहम् उन्हें गरीबी के कारण क्षमा देकर सन्तुष्ट हो सके। इसीलिए जब रात को बिरजा राघो से गीता सुन रही थी और राघो पढ़ रहा था : 'मोह में अर्जुन पड़ा है, बीच सेना रथ अड़ा है।' तो उन्हें लगा कि अर्जुन बेचारा कितना गरीब है। उसे न युद्ध से कुछ लेना-देना, न मेल-मिलाप से। बिलकुल मुंशीजी की तरह। एक और नये उभरते अमीरों की सेना खड़ी है। उसमें बिटौनी है, सतसहाय है, चित्रगुप्त मन्दिर के और कई वकील, अफसर हैं। दूसरी ओर उखड़ते-पुखड़ते अमीरों की सेना खड़ी है, जिसमें मथुरा बाबू हैं, छोटी बहू हैं, पाण्डेजी हैं। दोनों ओर से तीर चल रहे हैं। बीच में खड़े हैं मुंशीजी जिनको हमदर्दी और स्वीकृति का तमगा मिल रहा है, लेकिन उनका मन खिन्न है। बिरजा खुश है, खुश रहे ! मुंशीजी अँधेरे में खिड़की से बाहर देखते हुए पूछ रहे हैं, "हे जसोदानन्दन, रिपुसूदन ! हम इस सबका क्या करें ?"

और बड़ी देर की खिन्नता के बाद उनका ध्यान जसोदानन्दन के बाल-रूप पर

गया और उन्होंने देखा कि बिरजा गीता सुनकर जा चुकी है और ढिबरी के पास बैठा राघो धीरे-धीरे जुगराफिया रट रहा है। भोला मुखड़ा। एक लट माथे पर। धीरे-धीरे हिलते होंठ। उनका मन उमग आया। इम्तहान पास है। इसके लिए एक टिकिया मक्खन सवेरे-सवेरे बँधवा दें। कैसा दुबला गया है। और लम्बा कितना हो गया है। खपरैल छूता है। अब तो बहू घर में आये। वकील साहब ने कहा है कि पास हो गया, तो तुरत कहीं लगवा देंगे।

और सारा संशय शान्त हो गया। कुछ भी हो, राघोराम को सब प्यार करते हैं। सारा मुहल्ला ! क्या हुआ जो उन्हीं की कायम की हुई 'बजरंग स्वामी न्यू टेम्पुल कमेटी' ने रामनवमी मनायी, तो उन्हें नहीं बुलाया, लेकिन राघोराम पर सारा जिम्मा था कि लाउडस्पीकर भी लगवाये और भजन के रिकार्ड भी छाँटे। शाम को आरती के समय गये। पाण्डेजी ने कहा भी कि यह तो सब तुम्हारी माया है मुंशीजी, ऊपर तखत पर आकर बैठो। पर मुंशीजी नीचे दरी पर ही बैठे, और निहाल होकर देखते रहे कि कैसे राघो तखत पर चढ़कर मसनद पर झुककर मथुरा बाबू से पूछ रहा है कि राधेश्याम की रामायणवाले रिकार्ड लगाये कि रघुपतिराघव कीर्तनवाला। हे बजरंग स्वामी, राघो को खूब-खूब सुख-सन्तोष देना। मुंशीजी ने आरती के समय मलका विक्टोरियावाला रुपया थाली में डाला और प्रसाद लेकर चले आये।

यह बात नहीं कि मुंशीजी के मन में हरिया के लिए ममता न हो, लेकिन हरिया जरा कठिन जीव था। पहले वे उसे कचहरी जाते हुए एक दुअन्नी रोज देकर जाते थे, लेकिन बाद में उसने नानी से कहा कि महीना-महीना पाँच रुपये बाँध दें मुंशीजी, रोज दुअन्नी क्यों देते हैं ? हरीराम मिश्र कोई मँगते फकीर हैं ? मुंशीजी को यह भी मालूम हुआ कि इस पाँच रुपये में से अब हरिया बीड़ी भी फूँकने लगा है, पर उन्होंने कभी कुछ कहा नहीं, लेकिन उस दिन उन्हें ग़ुस्सा आ ही गया। कल्यानी देवी के मन्दिर में किसी ने सिंगार कराया था और उसी के बाद चौधरी साहब की बगिया में चैती की महफिल जमी थी। चैती गाने बनारस से विद्याधरी आयी थीं। हरिया रात-भर गायब रहा। खैर यह भी कोई बात नहीं, लेकिन दूसरे दिन कचहरी गये और राघो की नौकरी के लिए वकील साहब से बात की, तो वे बोले, "बड़े चौधरी से बात की थी, कल महफिल में वे भी थे। उनको गऊघाटवाली ड्योढ़ी भेज देना। अभी अस्सी रुपये देंगे।"

मुंशीजी को जैसे कहीं का धन मिल गया। आखिर राघो अपने पाँव पर खड़ा हो गया। मेरा बेटा ! मेरा लाल ! हे गंगा माई ! अबकी माघ मेले में बिरजा के साथ जाकर महीने-भर कल्पवास जरूर करेंगे। हरदेई भी कब से कह रही हैं।

उन्होंने बहुत झुककर वकील साहब को प्रणाम किया, "आप ही का बच्चा है हुजूर !" और चलने लगे तो वकील साहब बोले, "मुंशीजी, आपका छोटा बच्चा बड़ा

गुनी है। कल महफिल में क्या सारंगी छेड़ी है चौधरी साहब ने दो रुपये बख्शीश दी। पूछ रहे थे कि राघो इसी का बड़ा भाई है ?"

मुंशीजी को जैसे धक्का लगा। राघो की क्या इज्जत रहेगी अगर हरिया के ये करम रहे तो ! घर जाते ही या सारंगी टूटेगी या हरिया की हड्डी-पसली। बिलकुल तय !

लेकिन घर पहुँचते-पहुँचते हरिया की बात खयाल से उतर गयी। जाते ही बड़े प्यार से कोट उतारकर बिरजा को थमाया और बोले, "अब तो कमाऊ पूतवाली हो गयी ! कल से राघो नौकरी पर जायेगा।"

बिरजा कोट खूँटी पर टाँगते हुए पुलककर बोली, "सच ! तब तो अम्मा से कहें···गोपीगंजवालों से बात चलावें।"

मालूम हुआ कि कई हफ्ते से बिसन मामा के यहाँ से सन्देश आ रहा है कि गोपीगंजवाले गोविन्द महाराज अपनी बिटिया के लिए राघोराम को देखना चाहते हैं। हरदेई से खुद बरसों बाद अनबोला तोड़कर बिशन उस्ताद ने बात की है।

"तो क्या हरजा है ? बहू आवे, घर-बार सँभाले, तो हम-तुम बदरीधाम हो आवें !" मुंशीजी बड़े सन्तुष्ट स्वर में बोले, "भगवान् ने निभा दिया बिरजा, वरना हमारी-तुम्हारी क्या बिसात ! वकील साहब ने बड़े चौधरी से बात की···" और अकस्मात् उन्हें हरिया की बात का खयाल आ गया, तो भौंह सिकोड़कर बोले, "अब ये हरिया मुजरे में संगत करने लगा है। कल रात सारंगी बजाकर नाम डुबोने गया था। कह देना उससे कि हड्डी तोड़ेंगे एक दिन, हाँ ! एक राघो भी तो है !" खैरियत हुई कि हरिया उस समय था नहीं। मण्डली को गाड़ी पर चढ़ाने रामबाग स्टेशन गया था।

दूसरे दिन मुंशीजी ने अपने सामने राघोराम को तैयार कराया। धोबी का धुला पाजामा, कमीज, ऊपर से सूती कोट। धारीदार सूती मोजा, बूट जूता, और हाथ में काला सूरज-छाप थैला, जिसमें पेन्सिल, कलम, निब और कॉपी। हरदेई ने दही-पेड़ा खिलाया और माथे पर भी दही का टीका, "बाप के पैर छू ले बेटवा ! सबकी नैया पार लगायी मुंशीजी ने। हम लोगों के लिए तो भगवान् हैं।"

और तीसरे पहर तो बिरजा हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी। तीन बजे के आस-पास हाँफते-हाँफते लाला भवनाथ आये। पीछे मजूर के सिर पर नया खपड़ा। बोले, "लो सँभालो बिरजा भौजी ! मस्सुर कुम्हार के यहाँ से खुद चुनकर मुंशीजी ने खपड़ा भिजवाया है।"

"खपड़ा ?" बिरजा को ताज्जुब हुआ।

"हाँ, भौजी ! राघो को लड़कीवाले देखने आवेंगे न, तो नयी छवाई तो कर लो। मर गये। मजूर के साथ-साथ पैदल आये हैं। कुछ शर्बत-वर्बत तो बनाओ भौजी !"

"भवनाथ लाला ! तुम्हारे भैया अब सठियाने लगे।" बिरजा मुक्त कण्ठ से खिलखिलाकर बोली, "अरे लड़की वाले देखने आनेवाले हैं तो क्या कोई बन्दर-लंगूर

हैं कि आके खपड़ैल पर बैठेंगे ! अक्कल मारी गयी है इनकी तो !" और बिरजा देवर भवनाथ के आगे हँसी से लहालोट हुई जा रही थी, इस कल्पना से कि समधियाने के लोगों के लिए मुंशीजी ने नया कपड़ा खरीदा है। भवनाथ से कभी उसने सीधे मुँह बात भी नहीं की थी। लेकिन शर्बत तो दूर, उसने पीढ़ा डालकर देवर को सामने बिठा लिया और दाल-भरी परौंठियाँ सेंक-सेंककर खिलायीं। ठीक छह बजे गये भवनाथ।

इधर भवनाथ का जाना था कि उधर सारंगी लटकाये, रूखे बाल, सूखे मुँह, चप्पल चटकाते हरीराम मिश्र का प्रवेश हुआ। बिरजा ने आज बरसों बाद पहली बार हरीराम से कहा, "आओ यहीं पीढ़े पर बैठ जाओ। परौंठी सिंक रही है। सुबह से कुछ खाया ?"

"क्यों नहीं ? बिशन नाना के यहाँ विद्याधरी और पूरी मण्डली की ज्योनार थी।" हरिया बड़े उत्साह में था। पहली बार महफिल में संगत की थी और वह भी विद्याधरी के गायन में। एक-एक परौंठी के दो-दो कौर बनाकर पानी से गटकता हुआ बोला, "माई रे ! सोनपुर के मेले में मोम की नकली औरत मिलती है क्या ? तू राघो का वियाह कर दे। मैं मूरख नहीं बनने का !"

"क्या मतलब ?" बिरजा ने खिलखिलाते हुए पूछा।

"मतलब क्या ! स्टेशन पर मण्डली को विदा करने बहुत-से लोग आये थे। बिशन नाना थे, अनवर अफीमची था, जग्गू बेंजोवाला था, तो सब बोले कि राघो भैया ने बिरादरी का नाम जहान में रोशन किया है। एफ़. ए. पास करके अफसर बने हैं। अब गोपीगंजवालों के यहाँ ब्याह भी होगा।"

"तो इसमें मोम की औरत की क्या बात ?"

"कुछ नहीं, जग्गू बेंजोवाले की नाना से लगती है न। तो उसने उन्हें छेड़ा कि ब्याह-बरिच्छा में राघो के कौन-से बाप जायेंगे, तो सब लोगों ने डाँटा और कहा कि गोपीगंजवाले बोलते हैं कि उनके घर का पचड़ा वे जानें, पर शुभ काम में मुंशीजी को नहीं आने देंगे। खून बह जायेगा, लाठी चल जायेगी, लहास-पर-लहास पड़ जायेगी ! बिरादरी है, कोई मजाक नहीं। ला एक परौंठी और दे···"

और तब हरी ने देखा कि बिरजा जाने कब तवे पर परौंठी जलती छोड़कर दीवार से टिककर रो रही है। हरिया व्याकुल हो उठा, भरे-भरे गले से बोला, "माई रे ! रोती काहे को है ? हमने तो सबसे कह दिया कि हमारी नानी बड़ी लड़ाका है। मुंशीजी जायेंगे तभी बारात जायेगी, नहीं तो गोपीगंजवाले हों, चाहे बिलायतगंजवाले हों, नानी राघो भैया का ब्याह करेगी ही नहीं। तो इस पर अनवर अफीमची बोला कि ठीक है···नकली बाप जावेगा तो गोपीगंजवाले नकली बहू विदा कर देंगे। मोम की औरत मिलती है सोनपुर के मेले में। सच रे माई !"

"चुप रह निपूते, राच्छस···" बिरजा आँसू पोंछकर फटे गले से चीखकर इधर मुड़ी कि देखा दरवाजे पर मुंशीजी खड़े थे स्तब्ध ! पत्थर की तरह ! जरूर उन्होंने

सारी बातें सुनी थीं। चेरा जैसे स्याह···भीगा कोयला। बिरजा उठी और उनके पाँव के पास बैठकर फफक-फफककर रो पड़ी।

राघो अभी पहले दिन की नौकरी से नहीं लौटा था।

हरिया की बात के बाद उस दिन देहरी पर खड़े मुंशीजी के पाँवों के पास बिरजा का रोना जो शुरू हुआ था, तो उस दिन की साइत थी और आज की साइत, कि लगता था अब कभी हँसने-बोलने के दिन आयेंगे ही नहीं। आखिर मुंशीजी को हो क्या गया ? न खाना न पीना। एक लकड़ी होती है जो जलकर कोयला होती है। एक मुंशीजी का चेहरा था कि हरिया की बात सुनकर पहले एकदम स्याह जैसे भीगा कोयला और फिर उस दिन से जैसे काठ। बिरजा लाख जतन करके हार गयी, लेकिन न दुख, न गुस्सा, न कुछ पूछना, न बताना, बस कचहरी से गड्ड-के-गड्ड कागज लाना और खुशखत उर्दू में नकल करते जाना। राघोराम चिलम भर दे तो ठीक, बिरजा से तो चिलम भी भरने को नहीं कहना ! दो टुकड़ा तोड़कर भरी थाली छोड़कर उठ जाना, वह भी अगर हरदेई फुलका सेंके तो। अगर बिरजा रसोई में हो तो गुड़गुड़ी लिये-दिये मुंशीजी बजरंग स्वामी के चौतरे पर। बिरजा को कुछ मालूम तो हो कि आखिर उसका कसूर क्या है, बिशन मामा तो शुरू से खार खाये बैठे हैं, हरीराम हाथ से बाहर है, मन में आता है सो बकता रहता है। बिरजा बेबस होकर मुंशीजी ही के पाँव पकड़कर रो सकती है सो मुंशीजी ने अपने को ऐसे खींच लिया है कि बस···

कैसा उछाह था उसके मन में राघोराम की नौकरी का ! कटपीस की दुकान से लट्ठे का कपड़ा खरीदकर लायी थी। मथुरा बाबू की छोटी बहू के यहाँ हाथ की मशीन लेकर दर्जी बैठता था उससे दो पाजामा सिलवा लायी थी। लेकिन मुंशीजी की हालत देखकर हिम्मत नहीं पड़ती थी कि राघोराम को पहनाकर भेजे। मगर तीसरे दिन नहीं रहा गया। जब मुंशी जी ही बिलकुल काठ हैं तो बिरजा में कोई उमंग थोड़े ही थी बेटे की दुलार-मनुहार करने की, लेकिन असल बात यह थी कि दर्जी ने कहा था कि कहीं कुछ झोल-झाल रह गया हो तो दो-तीन दिन में आकर ठीक करा लेना, बाद में फिर वह कुछ नहीं करेगा। उस दिन सुबह वह पाजामा निकालकर लायी। राघोराम को पहनाया। हाय ! लड़का बिलकुल बड़े मुख्तार की तरह लग रहा था पाजामा पहनकर। दर्जी ने अलीगढ़ काट का सिला था। मुंशीजी कचहरी के लिए तैयार हो रहे थे। बिरजा ने पास जाकर अनबोला तोड़ने की फिर कोशिश की, "सुनते हो ! राघोराम कैसा लग रहा है ! नयी चाल का पाजामा है !" मुंशीजी ने आँख उठाकर देखा, कुछ बोले नहीं। बिरजा और पास जाकर थोड़ी रसिकता से बोली, "बिलकुल मुंशी लगता है। मुंशी का बेटा मुंशी। निगोड़े पर पाजामा कैसा सजता है, धोती में गवादू लगता है न ?" मुंशीजी के होंठ कुछ हिले, ममता से, वात्सल्य से, आँख में एक

चमक आयी, पुलक की, अभिमान की, और फिर अकस्मात् बुझ गयी। वही स्याह भीगा कोयला···उस दिन कचहरी जाते समय बिरजा से खैनी-तमाखू का बटुआ भी नहीं माँगा।

बिरजा ने जैसे-तैसे तरकारी-भात के दो-चार कौर निगले ही थे कि उसकी निगाह ताख पर रखे हुए बटुए की ओर पड़ गयी। उसने भरी थाली सामने से खिसका दी और हरदेई के आगे जाकर भभक पड़ी, "अब तो हमारे हाथ की खैनी-तमाखू भी जहर हो गयी मुंशीजी के लिए। हमने क्या किया है कोई बताये तो कि बस कुत्ता-बिल्ली हो गये कि बस दुरदुराते रहो ! तुम भी घर में हो, चौबीस घण्टा देखती हो कि मुंशीजी के आगे-पीछे निहोरा करते घूमते रहते हैं। अब हरीराम बदनामी बके तो हमारा कसूर ? ऐसा तोताचसम आदमी किस काम का ? या तो सिर पर चढ़ाकर रखे या···"

"यही तो गलती है न उसकी !" हरदेई जो चुपचाप सुन रही थी, अब बोली, "सर चढ़ाई डोमनी गावे ताल बेताल ! सिर पर चढ़ाये हैं मुंशीजी, तभी भभक रही हो। चार दिन नहीं बोला तो क्या हो गया ! मरद मनसेधू है। दुनिया जहान की फिकर सिर पर रहती है। फिर सारी विपता मोल लेकर तुम्हें तुम्हारे बच्चों को सहारा दिये है, तो चुप न रहे तो क्या सातों पहर तुम्हारी आरती उतारा करे ! हमारा मगज मत खाओ। जाओ यहाँ से।"

बिरजा चुप हो गयी। फिर कोने में जाकर बोली, "कोई कसूर हो तो मार लें, पीट लें, काट के खेतवाले कुएँ में फेंक दें। अगर हम उफ करें तो कहो। अब राघोराम ने क्या बिगाड़ा है ? बेटा समान है। चौबीस घण्टे सेवा में लगा रहता है। उससे भी चित्त फेर लिया है।"

हरदेई कुछ नहीं बोली। बिरजा थोड़ी देर आँगन में उठा-धरी करती रही, फिर पास आकर बोली, "गोपीगंजवाले कितनी दफे कहला चुके ! मुंशीजी का रुख मिले तो बात करें। अब क्या राघोराम बुड्ढा हो जायेगा तो बहू आयेगी ?"

"उँह ! अब मिल का भोंपू बोलना शुरू हुआ तो बन्द थोड़े होगा ! चार मिनट चैन से घर में बैठना मुश्किल है !" हरदेई उठकर बाहर चल दी, "बहू आवे चाहे भाड़ में जाये। तुम जानो, तुम्हारा लड़का जाने, मुंशीजी जानें। हमसे मतलब ?"

हरदेई बाहर जाकर फिर लौटी, दरवाजे से झाँककर बोली, "हम पाठशाला जा रहे हैं। लेकिन कहे जाते हैं कि दामाद कहो तो, बेटा कहो तो, हमारे लिए जो हैं सो मुंशीजी हैं। अगर उनका परान माठा करने पर तुली तो हमसे बुरा न होगा। हाँ !"

"कैसे नहीं होगा ! हम तो आज निपटारा करके मानेंगे। ऐसे दुत्कार सह के हमें घर में नहीं रहना···" लेकिन बिरजा की घोषणा सुनने के पहले हरदेई भड़ से किवाड़ बन्दर कर चली जा चुकी थी···

जिस घर में जिन्दगी गुजार दो, अकस्मात् कभी-कभी एक क्षण के अन्दर वह घर कितना अजनबी लगने लगता है ! किवाड़ बन्द होते ही बिरजा नल के पासवाले पत्थर पर बैठ गयी और एक बार उसने चारों ओर की दीवारों, दरवाजों, आँगन को निगाह घुमाकर देखा। गरमी की दोपहर ढलते-ढलते घर कैसा भाँय-भाँय करने लगता है ! उसे लगा जैसे आँगन धूप से जल रहा है, दीवारें जल रही हैं, हर कोठरी में से आग की भभक निकल रही है और उसके बच्चे उसे इस भट्ठी में झोंककर चले गये हैं। उसकी माँ, इस भट्ठी का दरवाजा भड़ से बन्द करके चली गयी है। बिरजा क्यों है यहाँ ? किसलिए ? और बीच में गुजारे हुए तमाम वर्ष, उतरती धूप की तरह पता नहीं कहाँ चले गये और उसे याद आया कि ठीक इसी तरह एक गरमी की दोपहर को हरीराम को गोद में लेकर, राघो का हाथ पकड़कर, एक गठरी बगल में दबाकर वह किसी एक घर का दरवाजा ठीक इसी तरह भड़ से बन्द करके चली आयी थी।

उस दिन माँ के घर का यह आँगन माथे पर शीतल लेप की तरह लगा था। मुंशीज़ी वहाँ बैठे थे मचिया पर। उसी आले के नीचे जिसमें खैनी-तमाखू का बटुआ रखा था। कैसा भरा-भरा चेहरा था तब ! कोई अब जैसा थोड़े ही था, बिलकुल काठ ! हरीराम को मचिया पर लिटाकर ख़ुद अन्दर चले गये थे। और बिरजा को लगा जैसे सारा घर भभक रहा है, लेकिन उस जगह कोई पेड़ झुककर छाँह कर गया है। शीतल, सुहावन। बिरजा अनजाने में ही उठी और जाकर उसी जगह बैठ गयी। अब उसकी आँख के आगे मुंशीजी का काठ-जैसा सूखा निष्प्राण चेहरा था और जिधर उसकी निगाह उठती थी—आँगन में गोबर लिपी दीवारों पर देहरी पर—बस वही चेहरा···और बिरजा को लगा कि यह धधकती भट्ठी नहीं ! यह तो उसका अपना घर है, वह है इसीलिए यह आँगन है, दीवारें हैं, छत है। अभी तो हरदेई दरवाजा बन्द करके चली गयी, राघोराम भी बन्द करके चला जाये, कल को मुंशीजी भी बन्द करके चले जायें तो भी बिरजा क्या कर सकती है ! वह बस यों ही बैठी रहेगी इन्तजार में कि जब जो भी वापस आये, वह दरवाजा खोलकर उन्हें वापस सहेज ले। वह अब भला कहाँ जा सकती है ! यह काठ जैसा निगोड़ा चेहरा जिसके मारे वह चार दिन से मरी जा रही है; घर के चप्पे-चप्पे से उसे जकड़े हुए है। वह क्या निपटारा करेगी मुंशीजी से ? शाम को थके-हारे आयेंगे, दिन-भर खैनी-तमाखू भी नहीं मिलेगी। क्या करे वह, हरिया होता तो उसे बटुआ देकर कचहरी भेज देती। बिना तमाखू-सुरती के उनका घण्टा-भर काम नहीं चलता।

और फिर अपने विद्रोह के सामने खुद हारकर बेहाल-सी बिरजा उठी और नल के पास जाकर अँजुली भर-भर पानी लेकर छपाछप मुँह पर मारने लगी, "बड़े आये मुंशीजी ! बाँध के डाल दिया है इस घर में ! कौन होते हैं हमें बाँधनेवाले ! कचहरी में जमानत-मुचलका ले के चोर-गिरहकट को बाँधने की आदत पड़ गयी है। मगर हमें सीधा न समझें !"

"अरे भौजी ! नहा रही हो तो अन्दर न आवें !" लाला भवनाथ दरवाजे से ही

खँखारे, और कल्पना में तथाकथित नहाती हुई भौजी अनुमति दें इसके पहले ही पसीने से तरबतर लाला भवनाथ धौंकनी की तरह हाँफते हुए आये और तख्त पर बैठ गये, "बस भौजी ! अब तो हम तभी उठेंगे जब तुम कसम खा के कहोगी कि जो हमने सुना है सब झूठ है।"

"सुना क्या है, पहले बताओ तो।"

भवनाथ ने बताया तो बिरजा के पाँव तले से जमीन खिसक गयी। मालूम हुआ कि बिटौनी के पति सतसहाय कई दिन पहले कचहरी गये थे और उन्होंने सब वकील-मुख्तारों को बताया कि चूँकि अब राघोराम की नौकरी लग गयी है इसलिए बिरजा अलग रहने जा रही है, नहीं तो राघोराम की शादी में बाधा पड़ेगी। सतसहाय को बिटौनी ने बताया था, बिटौनी को टुन्नी की माँ पँड़ाइन सवेरे जमुनाजी पर मिली थीं। पँड़ाइन को बिशन उस्ताद के यहाँ से मालूम हुआ था। बिशन उस्ताद को मथुरा बाबू के दर्जी ने बताया था। अब तो राघोराम के कपड़े तक मुंशीजी नहीं सिलवाते।

और अब बिरजा का चेहरा स्याह था, बिलकुल उसी तरह भीगे कोयले के मानिन्द।

मुंशीजी लौटकर आये तो घर करीब-करीब अँधेरा पड़ा था। सिर्फ चौके में ढिबरी जल रही थी और हरीराम कहीं जाने के लिए तैयार हो रहा था। उसी ने मुंशीजी को बताया कि नानी (हरदेइया) को बिशन नाना ने बुलाया है। आज उनके यहाँ जमकर महाभारत होयगा। नानी भी गाली देते हुए कमर कसकर गयी हैं, राघोराम बाइस्कोप देखने गया है, सरकारी मोटर चौराहे के पास आयी है, मुफ्त बाइस्कोप दिखाती है जिसमें मच्छड़ मारने और सफाई करने का सीन है, माई (यानी बिरजा) ऊपर मुंशीजी के कमरे में चादर ओढ़े पड़ी है। उसे बुखार आया है। हरीराम मिश्रा मुंशीजी से इतने आदर से बोल रहे थे कि इतने दिनों की भावशून्य जड़ता में भी मुंशीजी के चेहरे पर कुतूहल जाग गया। वे ऊपर अपनी कोठरी में जायें कि इसके पहले हरीराम पास आये और बोले, "क्या नौकरी ही सब कुछ होती है, इलम-हुनर कुछ भी नहीं ? सारंगी बजाना कोई खेल नहीं। भैया पढ़-लिख गये तो माई दर्जी के पास जाकर दो पाजामा सिलवा लायी, हमने कै बार कहा कि सारंगी पर धूल जमती है, एक खोल बनवा देते तो बहरी बन गयी।"

मुंशीजी ढिबरी की हलकी रोशनी में एक क्षण हरिया को देखते रहे, फिर जेब से एक रुपया निकालकर हरी के हाथ में रख दिया। हरी के चहेरे पर चमक आ गयी। लेकिन किसी उंशी-मुंशी का अहसान वे अपने ऊपर एक क्षण को भी नहीं रखते। तुरत एवज में असली खबर बताते हुए चल दिये, "कल सुबह गोपीगंज से भैया के देखनेवाले आ रहे हैं। बिशन नाना ने कहलाया है कि आज रात से ही

दो-तीन दिन के लिए मुंशीजी चाहे बिटौनी के यहाँ चले जायें चाहे भवनाथ के यहाँ। एक बार बात तय हो जाये फिर आ जायें। बारात में उनके जाने की जरूरत नहीं। बिशन उस्ताद खुद जायेंगे नाती के ब्याह में।"

मुंशीजी ऊपर अपनी कोठरी में जाने के लिए सीढ़ी चढ़ने लगे तो लगा एक-एक पैर में सौ-सौ मन का पत्थर बँधा है।

कोठरी में अन्धेरा था और गरमी की शाम की उमस। उन्होंने दीया नहीं जलाया। कोट-कमीज उतारकर अन्दाज से खूँटी पर टाँग दिया और खिड़की के पास बैठ गये। बिरजा न हिली न डुली। यह भी पता नहीं कि सो रही है कि जग रही है।

अँधेरा, खामोशी, सिर्फ खपरैल के बाँसों में लगे घुनों की अनवरत आवाज कर्र-कर्र।

क्या आदमी के तन-मन में कोई घुन लगा रहता है ? बाहर से चाहे कुछ न बदले लेकिन अन्दर से कुछ कहीं घुन की तरह उसे खाता रहता है और एक दिन बाहर के जिस बोझ को वह उछालकर फेंक देता है एक दिन वही आदमी उसी बोझ के नीचे घुन खाये बाँस की तरह पिचक जाता है।

अँधेरे में बाहर की आँख न देखे लेकिन मन की आँख ज्यादा साफ देख लेती है क्या ? मुंशीजी को लग रहा है कि न इस समय उन्हें मोह है न दुख, डर है न क्रोध, ममता है न खीज; वे बस देख रहे हैं इस अँधेरे में कैद दो प्राणियों को। राघोराम उस दिन हिन्दी गीता में से पढ़ रहा था, "रात आयी सो गये सब, नींद में जड़ हो गये सब, एक जो सब कुछ सरेखे, वही जागे और देखे।" उसके नीचे फूल का निशान बनाकर उसी अर्थ की एक कबीरजी की बानी भी लिखी थी, "सुखिया सब संसार है खावे और सोवे, दुखिया दास कबीर है जागे और रोवे।" लेकिन वे रो नहीं रहे हैं। जाग रहे हैं और देख रहे हैं। देख रहे हैं कि अन्दर से घुन खाते रहे, खाते रहे और अब दो बाँस बोझ से पिचककर टूट गये हैं। एक बाँस खाट पर पसीने से तर पड़ा है बिरजा। एक बाँस खिड़की से टिका हुआ खड़ा है, वे खुद !

एक दिन साहस था, जीवट था और भय भी, आशंका भी; जिस दिन उन्होंने चुनौती दी थी, देखें कोई क्या कर लेता है, कौन छीनता है उनसे राघो को, बिरजा को। आज न भय, न आशंका, सिर्फ एक टूटी हुई अन्दर की निगाह जो अँधेरे में सब कुछ देख रही है।

पिछले पाँच-छह दिन से जब से हरिया की बात सुनी थी, सतसहाय की बातें सुनी थीं, वे कुछ फैसला नहीं कर पा रहे थे। आज कुछ इतना सूना था बाहर, अन्दर, इतना अँधेरा था कि कब उन्होंने फैसला कर लिया उन्हें खुद नहीं मालूम। लेकिन उन्हें क्या करना है इसका फैसला कर लिया, और फैसला कर लेने के बाद उनका मन जो पिछले पाँच-छह दिन से इतना पथरीला, इतना बोझीला था, जैसे बहुत हलका हो गया। वे उठे और बिरजा के सिरहाने जाकर बैठ गये। माथे पर हाथ रखकर बोले, "सिर पिराता है, दबा दें क्या ?"

बिरजा कुछ नहीं बोली, न हाँ, न ना। मुंशीजी चुपचाप माथा दबाते रहे। ऐसी जड़ निर्जीव-सी पड़ी थी बिरजा कि उन्हें एक बार जैसे अँधेरे में डर-सा लगने लगा। कहीं उन्होंने किसी दोहे में सुना था लकड़ी जैसे हाड़, घास-जैसे केश। बिरजा का माथा, बिरजा के रूखे केश बिलकुल वैसे लग रहे थे। जैसे बिरजा से कहने के लिए नहीं सिर्फ अपनी घबराहट कम करने के लिए मुंशीजी बोले, "तुम कोई फिकर न करो। हम सब समझते हैं। आखिर राघो को बचपन से पढ़ाया-लिखाया तो अब क्या उसके ब्याह-शादी में हम बाधा बनेंगे। तुम्हारे लिए भी ले-देकर वही है। हरीराम तो किसी काम का नहीं। बस यही था कि अब तक इतनी आन रखी है तो अब झुकने में जरा हेठी होती थी। बिटौनी के यहाँ किस मुँह से जायें ? कैसे रहें ? भवनाथ बिचारा खुद टाल पर पड़ा रहता है, न घर न बार। कभी उसके लिए कुछ किया-धरा नहीं; यही सोचते थे कि अब इस घर में अन्नपानी उठ गया तो कहीं और कैसे हो सकता है। लेकिन आज फैसला कर लिया। ईश्वर जानता है बिरजा, कि चाहे परदेश में जा के मरें लेकिन हमारा यही घर हमारा वही बेटा राघोराम। अब करम में नहीं लिखा तो घर होते हुए भी आदमी देश-परदेश भटकता है।"

"क्या फैसला किया है ?" बहुत मरी-मरी अपरिचित-सी आवाज बिरजा के गले से निकली।

"तुम फिकर न करो ! वकील साहब से समझा के सब बात बतायी तो बोले हमसे रुपया लो और हमारी बूढ़ा माई बद्री-केदार जा रही है। उनके साथ बद्री-केदार हो आओ। चले जायेंगे।"

और फिर सब चुप। सन्नाटा।

मुंशीजी को किसी से डर नहीं लगता पर इस सन्नाटे से जाने क्यों डरते हैं इसलिए महज सन्नाटे को तोड़ने के लिए बोल रहे हैं, "चार-पाँच दिन से सब सामान बँधवा रहे थे वकील साहब के यहाँ। अब तो चल-चलाव ही समझो बिरजा ! बड़ा खौफनाक रास्ता है। न आदमी न आदमजात। कहते हैं बस बरफ-ही-बरफ है। बस एक पहाड़ी चिड़िया होती है; बस वही बोलती रहती है—'पंछी पग ध्यान यहाँ आपनो न कोई।' पैर फिसला तो बस हड्डी-पसली चकनाचूर। सोचो जिसका कोई रखवारा नहीं उसका भगवान् रखवारा। इनसान का बस नहीं कि सहारा दे, चिड़िया बोलती है—पंछी पग ध्यान यहाँ आपनो न कोई हे बजरंग स्वामी..."

बिरजा ने उनके हाथ अपने माथे से हटा दिये और करवट लेकर कराहती हुई उठ बैठी। धीरे-धीरे सीढ़ी से नीचे उतरने लगी। मुंशीजी ने सन्नाटे और अकेलेपन से घबराकर जैसे चुप्पी तोड़ने की आखिरी कोशिश की, "तुम चिन्ता मत करो। राघोराम बाइस्कोप देखकर आ जाये। उसे सब कागज-पत्तर सौंपकर कल तड़के सुबह हम वकील साहब के यहाँ चले जायेंगे। भवनाथ से कहला देना कि गोपीगंजवाले पक्का कर गये कि नहीं।"

बिरजा चद्दर डालकर तब तक गली में निकल चुकी थी। अँधेरे घर में सिर्फ

चौके की ढिबरी जल रही थी वह भी भभक-भभककर बुझनेवाली थी। मुंशीजी को कुछ नहीं सूझा। कोठरी का, ओसारे का, बैठके का दीया जला आये और राघोराम के पढ़ने की लालटेन जलाकर तेज करके आँगन में रख दी। छाता, रूमाल, एक बड़ा-सा हरा कंघा, एक रेशमी मोजा, ये सब आज राघोराम के लिए लाये थे। उसके बिस्तरे पर रखकर चौखट से टिककर खड़े हो गये। बिना राघोराम को देखे कैसे रहेंगे ? "बेटा···" उन्होंने बड़े विगलित स्वर में पुकारा और फिर गहरी साँस लेकर चुप हो गये। बद्री हो आओ चाहे केदार लेकिन अगर गया में अपना बेटा पिण्डदान न दे, पितरपक्ष में तर्पण न करे तो नरक से छुटकारा नहीं मिलता। लेकिन कौन बाप होगा कि जीतेजी अपने लड़के की जिन्दगी नरक बना दे। चले जायेंगे, कल तड़के ही चले जायेंगे। राघोराम जल्दी में अपना कोट सन्दूक पर गुड़ी-मुड़ी फेंक गया था। उन्होंने बड़े प्यार से कोट उठाया, झाड़ा, कालर ठीक किया और खूँटी पर टाँग दिया। आले में हिन्दी गीता रखी थी। उसे अपनी गठरी में रख लिया ! "हे बजरंग स्वामी···सबकी रक्षा करना···" गठरी में गाँठ लगाकर सुबह के लिए सामान ठीक करने लगे; वैसे कोई गम नहीं सिर्फ हाथ काँप रहे थे !

कब झपकी लग गयी, कब राघोराम बाइस्कोप देखकर लौटा और सो भी गया मुंशीजी को कुछ भी नहीं मालूम सिवा इसके कि उखड़े-पुखड़े सपने आते रहे। कभी बिशन उस्ताद की जोर-जोर से गरज-तरज, कभी अँधेरे में गली में बहुत-से पैरों की आवाज; कभी बिरजा का रोना। मुंशीजी ने कहा भी, बद्रीनाथ महाराज सब ठीक करेंगे, बिरजा रोती काहे हो। अब तो राघोराम को देखो, बहू को सँभालो, मगर बिरजा थी कि रोती जाये। और नींद उचटी तो नीम से उड़कर बिजली के खम्भे पर एक घुग्घू बोल रहा था, आले पर ढिबरी बुझने-बुझने को हो रही थी और दीवार पर एक छाया, जिसका एक बड़ा हाथ दीवार से होता हुआ टेढ़ा होकर आँगन में डोल रहा था। मुंशीजी होशियारी से उठे, "कौन है ?" आँगन-भर में फैला हाथ सहसा सिमट गया और आवाज आयी :

"माई की पोटरी में अफीम ढूँढ़ते हैं, किसी का कुछ लेते हैं क्या ?"

"हरिया !"

"अरे आप सोओ न ! अफीम मालूम हो तो बता देव ! माई तो रोय रोय के बिशन नाना के यहाँ कह रही थी कि अफीम का पूरा गोला लायी है। खाये के सो रहेगी। तो अब दो तो बिशन नाना हार मान गये। माई को तो अब अफीम की जरूरत भी नहीं ! दो तोला हम ले लेंगे तो किसी का खजाना लुट जायेगा !"

हरीराम से सारी गाथा मालूम हुई। सारा महुल्ला बिशन उस्ताद के आँगन में इकट्ठा था और बिरजा जिसके मुँह से आवाज नहीं निकलती थी, चीख-चीखकर अपने

मामा के घर का एक-एक राज खोल रही थी। महुल्ला-भर जमा था। पार्टियाँ दो थीं, एक बिशन उस्ताद की धज्जियाँ उड़ने से खुश और दूसरी कल की छोकरी बिरजा की गुस्ताखी से लाल-पीली, मगर दोनों पार्टियों का नारा एक ही था, "अरे बाप रे ! बड़ा दूध का धोया बनता था बिशनवा ! हरे राम ! हरे राम ! नरक में भी ठौर नहीं मिलेगा इसे।" और इसी परिपक्व क्षण पर अणु बम का प्रयोग हुआ ! बिरजा ने स्पष्ट घोषित किया कि राघोराम की सगाई-बरिच्छा मुंशीजी के ही हाथ से होयगी। और बिशन मामा ने कुछ इगड़-तिगड़ किया तो अफीम का गोला लायी है बिरजा। पानी के साथ घूँट के सो रहेगी। गऊ और नारी हत्या का पाप सारे मुहल्ले पर।

जनमत पलटा, बिशन ने सबके सामने कसम खायी कि मुहल्ले पर हत्या नहीं पड़ने देंगे, लेकिन इसके पहले कि विजयिनी बिरजा घर लौटे हरीराम पीछे से खिसक दिये थे। पहले ही।

मुंशीजी की आँखों के आगे ढिबरी, आँगन, नीम सब जैसे पेंग ले रहे थे। कभी इधर उठ जायें कभी उधर उठ जायें। वाह रे बिरजा ! मुंशीजी को बहुत याद आती थी तो बिटौनी की। माँ की याद नहीं आती थी। आज जाने क्यों माँ की याद आ गयी। जैसे वह बच्चे हैं और कमजोर हैं और खेल में बेईमानी करके बड़े बच्चों ने उन्हें पीट दिया है और फूटे घुटने, छिली कोहनी लिये वे सिसक रहे हैं। और फिर कहीं से बिरजा माँ की तरह आती है और उन्हें उठा लेती है। "देखती हूँ कौन बाल बाँका करता है मेरे छोने का !" और मुंशीजी का मारे खुशी और सन्तोष से गला भर आया, आँख में आँसू छलछला आये और गुड़गुड़ी पीने को जी हो आया।

दरवाजा खुला और चादर उतारते हुए बिरजा दाखिल हुई। मुंशीजी को लगा कि आँगन में उजास फूट गया। जाने क्यों एकदम उन्होंने कल्पना की कि आँगन में केले के पत्ते और आम की बन्दनवार है और बिरजा के साथ बैठकर मुंशीजी सत्यनारायन की कथा सुन रहे हैं। एक अध्याय खत्म हुआ और फूल की थाली बज रही है और शंख !

बिरजा ने घनौची पर से झंझर में पानी लिया और एक साँस में पीकर बोली, "जाओ बद्रीनाथ ! जरूर जाओ, अब लौटना मत ! भभूत रमा के वहीं चिमटा गाड़ो। वहीं शान्ति मिलेगी। यहाँ तो बिरजा का काला मुँह देखके मन-भर का थोबड़ा लटका रहता है।"

अरे ! ये बिरजा है ! इसके मुँह से तो बोल नहीं फूटता था। सचमुच ! ये तो हरदेई का तेवर है ! धिक्कार पर मुंशीजी की अजीब घुली-मिली प्रतिक्रिया थी, कुछ-कुछ लज्जा, कुछ-कुछ अचरज और बहुत सारी गुपचुप खुशी। बिरजा का मुँह खुल गया था सो खुल गया था, "बद्रीनाथ में बरफ पर चिड़िया बोलती है—पंछी पग ध्यान यहाँ आपनो न कोई ! अपना कौन है ! सब तो दुश्मन बैठे हैं तुम्हारी छाती पर, बाल-बच्चा, कुटुम-कबीला ले के ! दे दो अफीम। फिर जाओ बद्रीनाथ !" मुंशीजी खुशी दबाते हुए गुस्सा उभारते हुए बोले, "बस कर बिरजा, राघोराम सुनेगा, कुछ

तो···" सुनै, सुनै, सब लोग सुनैं ! तुम्हें क्या ! तुम्हें तो चिड़िया सुनाती है—आपनो न कोई ! कौन मुँह झौंसी चिड़िया है ? हरीराम जो जल्दी से पोटरी छोड़-छाड़कर अपनी खाट पर दुबक रहे थे, लघुशंका के बहाने उठे, दो मिनट को आँगन में हक्का बक्का खड़े रहे, कभी मुंशीजी को देखते कभी बिरजा को अन्त में बुड़बुड़ाकर बोले, "राग बिलावल ! राग बिलावल !" और खाट पर जाकर लेट गये।

सुबह जैसे रोज होती थी वैसे ही हुई। पहले पिछवाड़े खेत के कुएँ का डोल और चरखी बोले, फिर नीम पर कौए और फिर खपड़ैल से आँगन और आँगन से खपड़ैल पर गौरैया, लेकिन आज इन तीनों से पहले ही बिरजा का बोल गूँजने लगा था। बाल्टी और झाड़ू लेकर आँगन धोने में जुटी थी और हरदेई से सगाई-बरिच्छा की रसम का ब्यौरा ले रही थी। घर में ऐसा लग रहा था जैसे अभी-अभी बौछार करके बादल छँट गये हों। राघोराम को सुबह की औंधानींदी में ऐसा लगा मानो हरदेई का चरखा चालू है। इतनी जोर से लगातार वही बोलती थी, "का है नानी, सुबह-सुबह···"

"चल-चल उठ ! कचहरी की तैयारी कर।" बिरजा बात काटकर बोली। "अब ठीक से काम-धाम में लग। कल से बहू आ जायेगी तो कहेगी···"

राघोराम एकदम चौंककर उठ बैठा और अचरज से माँ की ओर देखता रहा। फिर एक बार मुंशीजी की ओर देखकर कान पर जनेऊ चढ़ाकर बाहर चला गया।

मुंशीजी गीता खोलकर मन-ही-मन कुछ पढ़ रहे थे और बीच-बीच में बिरजा की ओर देख लेते थे। इतने दिनों का अनबोला ऐसे कैसे टूट सकता था ! इधर तो मुंशीजी कोई काम भी बिरजा से नहीं कराते थे और आज जब इन्तजार कर रहे थे तो बिरजा अपने काम में लगी थी। गीता में मन नहीं लगा तो महज चुप्पी तोड़ने के लिए बोले, "हरी कल अफीम ढूँढ़ रहा था। पोटरी में थी क्या ?"

और सहसा बिरजा को याद आ गया। "क्यों रे ! बीड़ी झौंसता था, अब अफीम भी भकोसने लगा ? कीड़े पड़ जायेंगे दिमाग में, नाक से निकलेंगे !"

"हम क्यों खायें अफीम ? अफीम खायें मुसलमान अनवर अफीमची या लाला-लूली जो आधे मुसलमान होते हैं !" हरीराम तुनककर बोले। बाद में उन्होंने बताया कि अनवर अफीमची के पास उर्दू हरुफ में बड़ा इन्द्रजाल असली तीनों हिस्सा है। उसमें सब विद्या है । टोपी लगाके लोप हो जाओ। बिना विद्या पढ़े बन्द किताब का सब इलम मुँह जबानी बता दो। जिन्न बुला लो और दूसरे की काया में परवेस कर लो। मगर सिखाता नहीं कहता है अफीम खिलाओ तो बतायेंगे।

मुंशीजी कभी हरी से हँसकर नहीं बोले थे, मगर आज सवेरा अच्छा लग रहा था। हँसकर बोले, "अरे सब गप्प है बौड़म ! दूसरे की काया में···"

"ये वकील-वुकला का इलम नहीं है जो पढ़ने से आ जाये मुंशीजी ? सिद्धी से आता है। सब सच है।" फिर हरीराम भाई की ओर कनखी से देखकर बोले, "अफीम लाय के रख ली पोटरी में तो देखो न माई की काया में तो जीते ही जी नानी की आत्मा परवेस हो गयी। कैसा टर्र-टर्र लगाये है भिनसारे से !"

बिरजा ने पहले एकदम आँख तरेरी, फिर हल्के से हँसी, फिर एकदम चुप हो गयी। पहलेवाली बिरजा। झाड़ू अलग रखी। हाथ-पाँव पोंछे, फिर मटकी में से गुड़पगी लइया निकालकर मुंशीजी के सामने रखी और दो मगद के लड्डू, "बँधवा के हनुमानजी का परसाद है। शनीचर को लाए थे, पर हिम्मत नहीं पड़ती थी कि तुम्हें दें। हनुमानजी ने बिशन मामा का दिमाग ठीक कर दिया। बद्रीनाथ बड़े परतापी हैं। पर बँधवावाले भी रच्छा करते हैं बखत पर तुम सचमुच जाय रहे थे। बिरजा की रच्छा तो उन्हीं ने की !" बिरजा ने हाथ जोड़े। मुंशीजी ने भी आँख मूँदकर हाथ जोड़े और लड्डू तोड़ने लगे। टूटते-टूटते कुछ जुड़ गया था।

मुंशीजी फिर गीता पलटने लगे—"न इसको अस्त्र काटेंगे; न इसको शस्त्र काटेंगे" और नीचे खुलासा किया था। लिखा था—मरता है वो मरता नहीं, जीता है वह जीता नहीं। अर्जुन तू समझ कि हारनेवाला हारता नहीं, जीतनेवाला जीतता नहीं। टूटता है वह कभी नहीं टूटता, जुड़ा है सो जुड़ा नहीं है, यह सब तो मैं लीला करता हूँ।

और फिर मुंशीजी के मन में जाने कैसी सुस्ती और डर व्यापने लगा। या शायद सिर्फ ... अलकस। उस दिन कचहरी नहीं गए। हरदेई पाठशाला चली गयी, राघोराम कचहरी चला गया, हरिया सारंगी ले के निकल गया तो खाट ओसारे में खींच ली और बिरजा से बोले, "आओ इधर बैठ के जरा गोड़ दबा दो, बड़ा अलकस लग रहा है !" बिरजा ने सज्जी मिट्टी से धोकर बाल सुखाए थे और माथे पर बड़ा-सा बिन्दा। मुंशीजी मन्त्र-मुग्ध से देखते रहे, बोले, "बिरजा थोड़ी उमर और है। सदा साथ देना। तुम्हारे बगैर..."

बिरजा खिल आयी। बुढ़ाता चेहरा कैसा मधुरा आया।

"हम सगाई-बरिच्छा में नहीं रुकते, बद्रीनाथ चले जाते तो तुम सचमुच अफीम खा लेतीं ?" बिरजा कुछ बोली नहीं, लजा के दीवार की ओर देखने लगी। मुंशीजी ने हौले से उसका मुँह अपनी ओर घुमा लिया, "बोलो न !"

"आँगन की कुण्डी लगा आवैं, दरवाजा खुला है !" बिरजा बोली।

वही दिन था जब दिन ढलते-ढलते मुंशीजी को तेज बुखार चढ़ आया। वह तो मालूम भी नहीं होता। मुंशीजी बहुत खुश थे। पहले कभी शाम को कचहरी से लौटकर इसाक मियाँ की टाल पर एक-आध हाथ ताश-पत्ता खेल लेते थे। फिर सब छूट गया था आना-जाना। शाम को भवनाथ आए तो बोले, "इसाक मियाँ होंय तो चलो आज एक हाथ ताश-पत्ता हो जाये।" लेकिन खाट से उठे जूता पहनने के लिए तो पैर डगमगा गया। भवनाथ ने थामा तो बोले, "भैया तुम्हें तो ताप चढ़ा है। वह दिन है कि आज, उबरे नहीं मुंशीजी बीमारी से। पहले कुछ दिन ओसारे में खाट लगी, बीच में कुछ ताकत आयी तो कुछ दिन कचहरी भी गये लेकिन फिर खाट से लग गये। अब यही ऊपरवाली कोठरी, सिरहाने के मोखे से दीखते पिछवाड़े के खेत, कुआँ और बीच में हनुमान चौरा। राघोराम सुबह-शाम नित्य घण्टों पास बैठता था, बैनामे

की नकल, मिसिल की नकल सब मुंशीजी उसे सिखा रहे थे ! बीच-बीच में सब रोक, एकटक उसे देखते, फिर कहते, "मरते दाँई बेटा के हाथ से गंगाजल और तुलसी मिल जाये बस !" और बिरजा तुरत आँखों में आँसू भरके कहती, "कुभाखा न बोलो मुंशीजी, लड़के का मुँह छोटा सा निकल आया है। बियाह का घर, सारा काम पड़ गया है, हम सेवा नहीं कर पाते तो शाप न देव !" "नहीं-नहीं बिरजा।" मुंशीजी गहरी साँस लेकर कहते और फिर मोखे से बाहर खेत की ओर देखने लगते।

'मोह' ! गीता में कहा है न ! सच है। मोह और बढ़ता जा रहा था। मन होता था हर वक्त बिरजा सामने रहे। हर वक्त। और आँख लग जाये तो कैसा-कैसा सपना देखते थे। छीः मरते दाँई काम जागा है। "मगर अभी मरने की बात काहे को करते हो भैया, " भवनाथ कहते, "अब तो बहू आवैगी, सेवा करैगी, फिर पोता गोद खिलाओगे। और बड़ी कोठी में बबुआ साहब के तो अगहन में पोता हुआ और चैत में बबुआइन के पाँव भारी हो गये। क्यों भौजी !" भवनाथ की बात पर बिरजा का चेहरा लाल हो जाता लेकिन कहीं बिरजा को अच्छा लगता। सच बात है कि काम जागे नहीं तो क्या ! बिरजा ज्यों-ज्यों राघोराम के ब्याह का सरंजाम करती, बहू के कपड़े-लत्ते-सिंगार का सामान बटोरती त्यों-त्यों उस पर रस चढ़ता। उस दिन सेन्दुरदान, दर्पण आरसी लायी तो पहले लाकर मुंशीजी के पास रखकर बोली, "हमारी तो तमन्ना रह गयी कि एक चुटकी कभी तुम अपने हाथ से डालते !" मुंशीजी अन्दर से पुलक उठे, फिर गुस्सा दिखाते हुए बोले, "तमन्ना ! ये सब भाखा कौन सिखाता है आजकल ?"

"कलंक न लगाओ। छोटी बहू बोलती हैं ये लब्ज।" आजकल बिरजा की बैठक दोपहर में छोटी बहू से होती, "और एक बात बतावैं, " बिरजा पास झुककर धीमे से बोली, "वो ससुर-बहूवाली बात बिलकुल सच्ची है। हमारे सामने ही कहती है बुढ़वे से दादाजी हमारी बड़ी तमन्ना है कि बाइस्कोप जायें तो विलायती क्रीम लगायें। बुढ़वा तुरत लाता है ! उसकी नजर बड़ी खराब है।"

"तो काहे को रोज घुसती है वहाँ जा के !" मुंशीजी अब सचमुच नाराज हुए।

"जायें न तो क्या करें ! सारा काम करा रही हैं बियाह का। सिलाई की मशीन भी है उनके यहाँ। तुम तो खाट पकड़कर पहुँच रहे, अब बिटवा का ब्याह क्या रोज-रोज होता है ! ये न करो वो न करो, बस घर में पड़े मरते रहो। सारी जिन्दगी तो मुहल्ले के आगे आँख नीची करके गुजर गयी।" और बिरजा तुनककर उठी, "और कोई मरद मानुख होता तो सराहता। यहाँ हर वक्त त्यौरी चढ़ी रहती है।"

"बस भी कर," बीमारी में मुंशीजी भी चिड़चिड़े हो गये थे, "मुँह लगायी डोमनी गावे ताल बेताल !"

"अब तुम डोमनी न कहोगे तो कौन कहेगा, बुलाओ न अपनी कैथानी टोली को। हैं तो बिटौनी, एक बार झाँकने भी नहीं आयीं कि भाई को देख जायें।" यह चोट मरम पर थी।

"अच्छा, पुराण बखानने की जरूरत नहीं, ले जा यह सब। जो मन में आये कर !"

"करूँगी, जरूर करूँगी, तुम्हें अच्छा लगै चाहे न लगै। वाह रे आदमी ! बेटा का ब्याह नहीं सहा जाता, राम ! राम !" विरजा पाँव पटकते चली गयी।

मुंशीजी सुन्न होकर पड़ रहे। आज राघोराम को लेकर इतनी बड़ी बात कह दी बिरजा ने। राघोराम। भगवान्, सिरिफ भगवान् जानता है कि उनके प्रान चौबीस घण्टे कहाँ अटके रहते हैं। जब तक कचहरी से आता नहीं मुंशीजी, अकुलाते रहते हैं ! रोज मोखे से हनुमान चौरा को देख-देख मन-ही-मन मनाते रहते हैं कि बजरंग स्वामी लड़का पाँव पर खड़ा हो गया, ठीक रास्ते लगाये रहियो। कितनी बार बुलाते पर बिरजा नहीं आती, काम-धाम में लगी रहती है तो जी बड़ा घबड़ाता है। ऐसे ही किसी दिन अकेले प्रान छूट जायें तो ? और कोई होय न होय लेकिन राघोराम धरती पर उतार के एक बूँद गंगाजल जरूर डाल दे। किसी को बताया नहीं लेकिन सिरहाने जहाँ टीन का बकसा रखा है वहाँ ताँबे की गंगाजली पीछे ला के रख दी है। अमावस के नहान की गंगा का पानी है उसमें। "राघो, बेटा !" मुंशीजी ने भरे गले से कहा और आँख में आँसू भर आये, "बिरजा !" बिरजा को बुलाने का जी चाहा, बहुत जी घबरा रहा था, लेकिन मुँह तक आ के नाम नहीं निकला। चुपचाप पड़ रहे। पिछवाड़े खेत में औरतें मेड़ पूजने आयी थीं। गीत के स्वर हवा पर उड़कर आते और मुंशीजी का जी रोने को हो आता।

तीसरे पहर बिरजा आयी दवाई देने। कुछ बोली नहीं। दवाई देकर पैताने बैठ गयी और धीरे-धीरे पाँव सहलाने लगी। समझौता। मुंशीजी का मन और उमड़ आया। कैसा होता है मन ! जिससे चोट खाता है, उसी से सहारा ढूँढ़ता है और फिर दुगुनी चोट खाता है। टूटता भी है और जुड़ता भी है और पूरी तरह न टूटता ही है, न जुड़ता ही है। गीता में खुलासा किया है न, फिर किसका बस। मुंशीजी ने भी एक शब्द नहीं कहा। बिरजा की गोद में हाथ रख दिये, अनबोला टूटा। बिरजा ने आगे झुककर पल्ला हटाते हुए कहा, "अब तो कुछ तुम देखते ही नहीं। छोटी बहू ने राघोराम की बहू के कपड़ों में दो विलायती चाल की भीतरी अँगिया सिल के रखी थीं। एक हमने भी अपने लिए सिलवा ली, अच्छी है न ! कहोगे बूढ़े मुँह मुँहासे। तो क्या हुआ ! सुहागिन हैं तो मरद के लिए शृंगार काहे न करें ! सारी उमिर तो टाट पहन के गुजार दिया कि मुहल्ले वालों की छाती पर साँप न लोटे। जलैंगे हमसे, परान तुम्हारा माठा करैंगे।" फिर बड़े मीठे से मुंशीजी का बढ़ता हुआ हाथ बरजते हुए बोली, "राम ! राम ! कैसी बेसरमी उतर आयी है दुनिया पर ! भवनाथ देवरजी बताते थे कि अबकी कातिक के मेले में जमुनाजी पर बिसाती लोग बाँस में ऐसी-ऐसी अँगिया टाँगकर खुलेआम बेचते थे।"

नहीं, मरेंगे नहीं मुंशीजी। शरीर है। बीमारी-हारी लगी रहती है। फिर पिछले कितने बरस से कैसा दाह-जलन का जीना रहा, लेकिन अब पार कर लिया। अब कुछ

अटपटा लगता है बिरजा का यह नया शौक-रंग, लेकिन कितना सुख, कितना नशा है ! नहीं, मुंशीजी गंगाजल की बात करें चाहे तुलसीदल की, लेकिन जानते हैं कि जीवन तो अब शुरू हुआ है। अब कौन मारेगा ?

और उन्हें याद आया एक बार बहुत छोटी थी बिटौनी तो बीमार पड़ गयी थी। सूख के काँटा । किसी की दवा ही न लगे। आधी-व्याधी भी उतरवा ली, डॉक्टर, वैद्य, हकीम की तो बात ही नहीं। तो किसी ने बताया गंगा पार झूँसी में एक महात्मा रहते हैं। मुंशीजी गये। बिटौनी को चरणों में डाल के बोले, "महाराज, हमारा कोई नहीं है, इसे अच्छा कर दो। बड़ी हो, इसके हाथ पीले कर दें, पति के घर जाये। नहीं तो महाराज हमारे प्रान ले लें, इसे दे दें।"

महाराज हँसे, बोले, "बेटा ! और पति के घर भी तो मरेगी ! फिर ?" फिर महाराज ने कहा, "आया है तो जायेगा। पलंग पर मरेगा, धरती पर मरेगा, दिन में मरेगा, रात में मरेगा, जहाँ रखोगे वहाँ मरेगा। मरकर भगवान के चरणों में जायेगा न ! तो अभी डाल दो भगवान के चरणों में। जहाँ पहुँचना है, पहुँच जायेगा। फिर कैसे मरेगा ?"

और पूजा-पाठ में, तीरथ में, कीर्तन में कभी ऐसा नहीं लगता था जैसे कई-कई बार अब बिरजा के शरीर की सुखद आँच में लिपटे हुए मुंशीजी को लगता था कि कपाट बन्द हैं और बदरीनाथ महाराज के चरणों में दोनों डूब गये हैं। भगवान में जियेंगे तो कैसे मरेंगे भला ? बिरजा से बहुत मोह में बँधे थे, बहुत साल से, पर अब वे जहाँ बँधते जा रहे हैं वह तो···

लेकिन बिरजा यह क्या करती है कभी-कभी। वैसे तो कुछ नहीं, यही बिटौनी की बात पर याद आया, छोटी बहू के यहाँ की बातें करती रहती है न ! कहने लगी कि उस दिन कपड़ा-उपड़ा काटने-सिलने के बाद चलने लगी तो छोटी-छोटी कतरन गूदड़ इकट्ठा करके छोटी बहू बोली, "ले जा यह तो बड़े काम की है !"

"ठिठोली करती हो, यह कौन काम आयेगी !"

"अरे, बेटवा के ब्याह में बुआ का नेग भी तो होता है। बिटौनी आवैगी मोटर पर चढ़कर तो इसी की कथरी-गुदरी सिलके उढ़ाके उतारना !" मुंशीजी हँसे लेकिन अन्दर कहीं चोट खा गये। सारा रस जो उमड़ा था, खटाय गया। अब बिटौनी का तो जो रुख है सो है। मुंशीजी ने भी छाती पर पत्थर रख के सब तोड़ लिया। फिर यह सब क्या सुनना ? खैर, सुनना भी बदा है तो सुनेंगे।

पर एक बात जरूर है। हरीराम ने उस दिन बात बौड़मपने की कही थी पर थी पते की। मुंशीजी को भी लगता था कि आत्मा चाहे न परबेस की हो, पर इस बिरजा में से कोई दूसरी बिरजा जरूर निकलती चली आ रही है। अकसर बिरजा हँसती तो मुंशीजी गौर से देखते रहते और चले जाने के बाद हँसने से ऊपर के होंठ के नीचे के मसूड़े उनकी आँखों के सामने घूमते रहते। दाँत बनानेवालों के यहाँ जैसे रखे रहते हैं। क्या पहले भी थे ? या पहले वह बस कभी-कभी मुस्काती थी ? यह हँसी छोटी बहू

के यहाँ से सीखी है क्या ? कभी-कभी वह कोई कठोर ताना मारने के बाद अब अजीब तरह से निचला होंठ विचकाती थी और उस समय मुँह की कुछ रेखाएँ और गाल की हड्डियों का उभार एक अजीब मर्दानी कठोरता का भाव छोड़ जाते। कहाँ देखा है यह ? हरदेई में ? नहीं ! हरदेई अपने गुस्से में भी ममतामयी लगती है पोपले झुर्रीदार मुँह में । याद आया। मुंशीजी ने बिशन उस्ताद के मुँह पर यह रेखाएँ देखी हैं और फिर एकदम से उन्हें ख्याल आया, बिरजा का माथा, भौंह और नाक भी बिलकुल अपने मामा पर गयी हैं। अजीब बात है इतने बरस तक कभी इस पर ध्यान ही नहीं गया। लेकिन अब भी ध्यान जाकर टिकता नहीं, बच जाती है वही बदन की मुलायम सुहावन आँच, जाड़े की सुबह में उपले की गोरसी की तरह अच्छी लगनेवाली। हरदेई के न होने से मुंशीजी को थोड़ी तकलीफ हो गयी थी। और तकलीफ से भी ज्यादा अकेलापन। यह परिवर्तन भी विचित्र ढंग से हुआ। जिस दिन से बिरजा की आवाज तेज हुई उसी दिन से हरदेई की आवाज घर में दब गयी, यहाँ तक कि एक दिन आकर हरदेई ने कहा कि पाठशाला की ओर से एक गूँगे-बहरों का स्कूल जमुना पार नैनी में खुला है, वहाँ रहने की कोठरी भी मिलेगी और दो रुपया तरक्की भी। इतवार-इतवार आकर मुंशीजी को देख जायेगी। जाते वखत बड़ी देर तक रोती रही, कहती रही, "बेटा, हमारा मन तुम्हीं में अटका रहेगा। न हमें भाई चाहिए, न बेटी, न नाती। बस तुम बने रहो।" बिरजा ने बहुत कहा कि दो रुपये के लोभ में काहे जाय रही हो, मगर हरदेई रुकी नहीं—"अब राघोराम कमाने लगा। अपना लड़का देखो, अपना घर देखो। बस !" इतवार को सुबह से ही मुंशीजी पूछना शुरू करते थे, "अभी हरदेई नहीं आयी ?" आते समय हरदेई जमुना किनारे की ताजी लौकी, मूली और मौसमी साग जरूर लाती थी, मुंशीजी के लिए।

लौकी का झोरा मुंशीजी शाम को रोज लेते थे, राघोराम के आने के बाद। लेकिन इधर राघोराम अकसर देर से आता था। दो-चार यार-दोस्त बन गये थे और घर आने के पहले अड्डा जमता था। कचहरी से जो कागज मिसिल आते थे उनमें कभी-कभी एकाध किताब भी बीच में दबी होती थी जो रात को नीचे अपनी कोठरी में बैठकर पढ़ता था। मुंशीजी ने देखा, एक दिन 'सफेद शैतान', एक दिन 'सेक्सटन ब्लेक के कारनामे'। एक दिन तो एक विचित्र-सी किताब थी, मुंशीजी का जी धक् से कर गया। फिर वहीं ज्यों-की-त्यों रख दी कि राघोराम को मालूम भी न हो। रात को बिरजा को बताया तो कहने लगी, "जाग के पढ़ रहा होगा, अभी छीन के चूल्हे में झोंकती हूँ। भले घर में ऐसी किताब का क्या काम।" तो मुंशीजी ने रोका। बोले, "गुस्सा तो हमें भी आया था। पर बड़ा बेटा भाई बराबर होता है। अरे अब गिरस्तास्रम में आ रहा है सब ठीक हो जायेगा। कुछ कहना मत।" सवेरे राघोराम कचहरी जाने लगा तो ऊपर बुलाया। माथे पर हाथ फिराकर बोले, "बेटा, तन्दुरुस्ती हजार नियामत। इधर-उधर की किताब पढ़ने से खून पानी बन जाता है।" और बण्डी के जेब से पांच रुपये का तुड़ा-मुड़ा नोट निकालकर बोले, "मलाई बँधवा लो एक

छटाँक। शाम को आते समय ले आया करो बेटा!" राघोराम ने चुपचाप सिर झुका कर रुपया लिया और चला गया।

बाद में विरजा आयी तो मुँह फूला हुआ था, "पैसा ज्यादा हो गया है तो भण्डारा खुलाय दो न ! एक तो गन्दी-गन्दी बात सीखता है लड़का। ऊपर से उसे पैसा दे दिया कि ज़ाओ बेटा मलाई खाओ। जैसे अभी मलाई खाना बाकी है। सुबह पाँच बदाम पिस्ता घिस के मिस्री में देते हैं उसे।"

"बादाम पिस्ता ? कहाँ से आया ?"

बिरजा जैसे इस सवाल के लिए तैयार नहीं थी। एक क्षण अचकचाकर बोली, "अरे, आया कहाँ से ! बिशन मामा के यहाँ से पाँचों मेवा आया था।"

मुंशीजी एकदम उबल पड़े, "बिशन मामा ? कौन जरूरत थी उनके यहाँ से मेवा लेने की। किसने कहा था ? हम कोई भिखमंगे हैं कि लड़के के लिए मेवे की भीख माँगें ? घर में होगा तो सोने से लाद के, दूध-मलाई खिला के रखेंगे नहीं तो सूखा चवैना खिलायेंगे। उनका मेवा खिला के नहीं पाला है। वो होते कौन हैं ?"

"बस भी करो !" बिरजा ने उपेक्षा-भरे लेकिन बहुत दृढ़ स्वर में कहा, "वो भी कोई होते हैं। सारी दुनिया में ढिंढोरा पीटते हैं कि चाँद का टुकड़ा निकला है बिरादरी में। राघोराम का दिन-रात निहोरा लेते रहते हैं। हमने तो घर छोड़ा, बिरादरी छोड़ी, लड़के को तो सारी जिन्दगी इन्हीं लोगों में काटनी है। सोचा बीमार पड़े हैं, कमजोर हो गये हैं, जब-तब गुस्सा होते हैं हो लें, मगर अब रोज बिना बात के लड़के की जान का खटारा..."

"बिरजा, कमबख्त ! बदजात..." मुंशीजी अजीब स्वर में चीखे, उठे और कमजोरी के मारे लड़खड़ा गये। बिरजा बिलकुल सहम गयी। "ले जा ! ले जा ! यह सब मुझे नहीं चाहिए।" और उन्होंने दवा की शीशियाँ उठा-उठाकर फेंकनी शुरू कर दीं।

"मुंशीजी !" बिरजा ने एकदम उनके पाँव पकड़ लिये, "मार डालो हमें, ये परान तुम्हीं ने दिये, तुम्हीं निकाल लो, लेकिन ये न करो !" मुंशीजी बेदम होकर पड़ रहे, उनका चेहरा स्याह पड़ गया था, आँखें फटी-फटी-सी हो रही थीं, हाँफ रहे थे।

थोड़ी देर बाद बिरजा के हाथ में से उन्होंने अपना पाँव खींच लिया। बिरजा डरते-डरते उठी। फूटी शीशी के टुकड़े दवाई सब बटोरी, पोंछी, मुंशीजी का बिस्तरा खींचकर ठीक किया और नीचे उतर गयी।

मुंशीजी एकटक मोखे से बाहर खेत, हनुमान चौरा की ओर देखते रहे, फिर बहुत कातर, बहुत टूटी आवाज में बोले, "बजरंग स्वामी ! तुम्हें घूरे पर से उठाकर चौतरे पर आसन दिया सो गलत किया ? तुम अपने मुँह से कह दो ! बस एक बार कह दो !...फिर हमें सब सवाल का जवाब मिल जायेगा। लेकिन जवाब देगा कौन, भगवान है ही नहीं, नहीं हैं, " मुंशीजी ने बहुत कड़ुवाहट से कहा।

लगता है बिरजा ने किसी से कहला दिया था। थोड़ी देर में भागते-भागते

भवनाथ आये। पहले नीचे कुछ धीमे-धीमे फुसफुसाते रहे फिर ऊपर आये। मुंशीजी का चेहरा बिलकुल जड़ था, पत्थर। भवनाथ ने बात करने की बहुत कोशिश की लेकिन मुंशीजी 'हाँ' 'हूँ' से ज्यादा कुछ बोले ही नहीं। कभी-कभी बीच में अजीब ढंग से होंठ फड़काते थे मानो आँसू रोकने की कोशिश कर रहे हों।

भवनाथ चले गये और थोड़ी देर में मुंशीजी ने सुना नीचे आँगन में खुद इसाक मियाँ की आवाज। आज बरस-डेढ़ बरस बाद इसाक मियाँ आये हैं और मुंशीजी नीचे बैठके में भी नहीं जा सकते। लगता है भवनाथ लिवा आये।

इसाक मियाँ की आवाज में कुछ खराश थी लेकिन बोलते थे बुलन्दी से। "बहू, परदा कर लो और जरा इधर आओ"— मुंशीजी ने सुना, इसाक कह रहे थे, "औरत जात से सीधे बात करना हमें जेब नहीं देता, लेकिन मुंशीजी ऊपर पड़ा है और बीच में तुम्हारा चौका है, हम ऊपर जा नहीं सकते। इस बिशन की ? करतूत तुम्हें नहीं मालूम हो हमारे सामने बिलकुल नुमायाँ है। तुमने समझा कि तुमने अफीम खाने की धमकी दी और वह मान गया। नहीं, तुमने उस दिन उसके राज खोलने शुरू किये तो वह डर गया। लेकिन बिरादरी में वह राघोराम का सरगना बनना चाहता है और मुंशी से अदावत रखता है। उसने मुस्तफा पहलवान को पटाया था कि गवाही दे और राघोराम के बाप से अपनी औरत भगाने की अर्जी दिलाकर मुंशी को थाना-कोतवाली में फँसा दे। बीच में मुंशी कचहरी जाने लगा था तभी समन वारण्ट कराने की साजिश की। मुहल्ले का पत्ता खड़कता है तो इसाक मियाँ को पता चल जाता है। मैं न बाभन-बनिया हूँ, न लाला-लूली हूँ, मैं हूँ असली पठान। मुंशी और भवनाथ मेरे मुँहबोले भाई हैं। मैंने बिशन को बुलाके कह दिया कि मुस्तफा साले को तो हम खोद के कुएँ के पास दफन कर देंगे और समदाबाद का आठ-सौ पठान तुम्हारे बाल-बच्चों तक को नेस्तनाबूद कर देगा अगर तुम अपनी हरकत से बाज नहीं आये। खबरदार ! साला बिशनवा बड़े खाँ साहब की आरामगाह में अपनी बेटी भेज चुका है। मेरे सामने आँख नहीं उठा सकता है। पिटे कुत्ते की तरह चला गया।"

बिरजा ने क्या कहा मुंशीजी को सुनायी नहीं पड़ा। भवनाथ ने भी कुछ कहा, फिर इसाक मियाँ ने वहीं से आवाज लगायी, "मुंशी ! अबे कब तक जनानखाने में घुसा रहेगा ! तबीयत ठीक कर। इधर से तेरा चौका छू जाता है। किसी दिन खेत की तरफ से कमन्द लगाकर खिड़की से आयेंगे। जरा मरद पठान से रूबरू बातें कर तो तेरा दिमाग ठीक हो, नहीं तो औरतों के बीच पड़ा औरतों की तरह कुजड़िहाव करता है। जल्दी ठीक होके टाल पर आ। ताश-पत्ता खेलेंगे नहीं तो बेटा अगली रामलीला में तुझे सीता मैया न बनवा दिया तो असल पठान नहीं !"

थोड़ी देर बाद बिरजा ने हिम्मत करके झाँका। मुंशीजी का चेहरा ज्यों-का-त्यों जड़ था, पत्थर। लेकिन मोखे से बाहर नहीं देख रहे थे। सीढ़ी की तरफ देख रहे थे एकटक। जैसे किसी का इन्तजार हो।

राघोराम घर में आया। उसे कुछ मालूम नहीं था। बिरजा के मुँह पर तनाव

देखा तो बोला, "दरजी के यहाँ से कोट लेना था तो रुक गये थे।" फिर सीधे ऊपर गया। ढिबरी की हल्की-पीली काँपती रोशनी में मुंशीजी का मुँह बहुत पीला लग रहा था। पास जाकर बोला, "बरिच्छा का इक्यावन रुपया मिला था हमें तो साँवलदास के यहाँ से नया ऊनी कपड़ा आपके लिए ले आये थे। बन्द गले का नये चाल का कोट है। आपका कचहरीवाला कोट तो फट भी गया है। दरजी ने कहा है एक बार पहन लें। कहीं झोल-झाल होगा तो ठीक कर देगा।"

और कोट पहनाने के लिए राघोराम ने मुंशीजी को उठाने के लिए जो सहारा दिया कि मुंशीजी एकदम फूट पड़े, "भैया ! बेटा···" राघोराम एकदम घबरा गया। "माई !" उसने पुकारा। बिरजा ऊपर आयी तो देखा राघोराम एक हाथ में कोट लिये तकिये के पास बैठा है और मुंशीजी उसके कन्धे से टिककर रो रहे हैं···रोये ही चले जा रहे हैं।

तीसरे दिन हूबहू यही दृश्य उपस्थित था, फर्क सिर्फ इतना था कि इस बार रुदन बिरजा का था, कन्धा छोटी बहू का और दर्शक थे भवनाथ देवर जी। भवनाथ थोड़ा हक्का-बक्का थे और रो-रोकर भौजी जो कह रही थी उस पर घबराहट में 'हाँ-हाँ' तो कहे जा रहे थे। पर सुन कम रहे थे। एक तो उन्हें अचरज कि भौजी ने टुन्नी को भेजकर बुलवाया, अपने घर नहीं छोटी बहू के घर, फिर छोटी बहू बिना परदा किये मुँह खोले भवनाथ भैया के आगे बैठी हैं, और बिरजा भौजी नयी काट का जम्पर-अँगिया पहने जार-जार रोती जा रही है, आँसू थमते ही नहीं। जो कुछ उन्होंने बार-बार समझाकर नये-नये तर्कों और नये-नये आँसुओं के साथ कहा उसका सारांश यह था कि "मुंशीजी के कारण इसाक मियाँ नें बिशन मामा को जान से मारने की धमकी दी है, मुंशीजी सें चाहे जो रंजिस हो उससे बिरजा को क्या लेना-देना लेकिन राघोराम पर बिशन मामा की छाँह है। अब बिरजा मुंशीजी को ही देखती रहे, राघोराम को न देखे ? राघोराम को जात-बिरादरी, रिश्तेदार, नातेदार, कुटम-कबीला में जिन्दगी बितानी है। बिशन मामा कहते हैं कि हमारी बिरादरी में पहला लड़का है जो पढ़-लिखकर इतना गुनी निकला है। दो-चार बरस बाद इसे मनिसबिल्टी की निम्मरी के लिए खड़ा करेंगे। अपने बिरादरी का कोई है ही नहीं। सारा चौक, मीरगंज, बहादुरगंज, जहाँ-जहाँ नाच-गाना होता है सारा वोट बिशन मामा दिलावैंगे। अब मुंशीजी से बिशन मामा रंजिस रखते हैं, राघोराम को और हमें मानते हैं तो हम क्या करें ! खून का भी तकाजा होता है देवरजी ! खून खून होता है पानी तो नहीं होता ! अब मुंशीजी ने बिरजा को भी दूध में से मक्खी की तरह निकाल फेंका है। हमारा तो भाग ही खोटा है नहीं तो जिससे सात फेरे लिये थे वही हाथ पकड़कर घर से क्यों निकाल देता। जिसने हाथ पकड़कर शरण दी उसने अब चित्त से उतार दिया। बेटा-बहू का मोह न होता तो कहीं डूब मरती। बिरजा;

लेकिन अब सामने राघोराम है। बहू आवैगी तो क्या करैगी ? आजकल की बहुएँ ! अपने सिंगार-पटार से फुरसत मिले तो। राघोराम का तो सब बिरजा को ही करना पड़ेगा। मुंशीजी से यह देखा नहीं जाता !"

अब जरा भवनाथ भी बरदास्त के बाहर हो गया। बीच में कई बार भवनाथ ने रोका, "नहीं भौजी ! ये बात तो गलत है !" लेकिन जब भवनाथ बोलें तो छोटी बहू अपनी सुग्गा-सी नाक फड़का के आँख डुला के भवनाथ की ओर देखें और फिर भवनाथ की बोलती बन्द हो जाये और 'हाँ-हाँ' करके सुनने लगें। लेकिन अब भौजी भैया को बिलकुल समझें ही नहीं और अन्याव की बात बोलें यह भवनाथ से नहीं सहा जायेगा। "अब हमें भी कुछ कहने देव !" भवनाथ ने जी कड़ा करके, छोटी बहू की ओर से बिलकुल ध्यान-नजर हटाकर कहा, "देखो भौजी ! हमको इतने साल से तुम्हारा और भैया का रत्ती-रत्ती हाल मालूम है। तुमने जितने जीवट से सब सहा और भैया ने जितने जीवट से सब अपने ऊपर ओढ़ा इसकी गवाही देनी पड़े तो हमारा रोम-रोम बोलेगा, लेकिन भौजी अब तुम्हारी आँख बदल गयी है। बिशन साला बेटी की कमाई···"

और बिरजा एकदम फट पड़ी, "हाँ बोलोगे अपने भाई-जैसी न ! तोताचस्म जैसे तुम, वैसे तुम्हारे भाई ! बहुत एहसान मत जताओ। था क्या मुंशीजी के ? खण्डहर-जैसे घर में मुरदा-जैसे पड़े थे। हम आये तो दीया-बत्ती जल गयी घर में। कोई टके को नहीं पूछता था। उमर बीत गयी थी। हम नहीं होते तो मक्खी भिनकती ! और रहा बिशन मामा का ? तो हम जो चाहें कह लें, गुस्से में; कोई पराया उँगली नहीं उठा सकता। इसाक मियाँ तो सुनी-सुनायी हाँकते हैं। तुम क्या कहोगे बिशन मामा के लिए ! उनकी बेटी का कलंक बाद में बखानना, पहले अपनी बहन की ओर देखो। बिटौनी को कौन नहीं जानता। बड़ी लीडरानी की दुम बनी है। मंगलापरसाद के चुनाव में मंजूर मियाँ काँगरेसी के साथ-साथ रात-बिरात हटिया से ले के कटघर तक का चक्कर लगात थीं।"

भवनाथ उठ खड़े हुए। पहले दोनों हाथों से कान बन्द कर, फिर माथे के ऊपर दोनों हाथ जोड़कर बोले, "धन्य है भौजी ! अभी क्रोध में हो। जब सुचित होगी तब बात करैंगे !" और छोटी बहू की ओर देखकर, हाथ जोड़कर चले गये।

और जाते ही जैसे ग्रामोफोन का तवा (रेकार्ड) पलट गया। दूसरा हिस्सा शुरू। अब बिरजा सिसक-सिसककर छोटी बहू को बता रही थी कि मुंशीजी तो देवता हैं। यहाँ भवनाथ और इसाक ने उनका दिमाग बिगाड़ दिया। मुंशीजी तो बिरजा में जीते हैं, बिरजा में मरते हैं। बिरजा कभी-कभी बहुत थक के आये तो कहते थे बिरजा गोड़ दबा दें ! रोम-रोम से न्योछावर रहते हैं।

"अरी बुढ़ाई दावँ की प्रीत बड़ी गाढ़ी होती है !" छोटी बहू जानकार की तरह बोलीं। फिर चारों ओर एक बार देखकर कि कोई है तो नहीं, बिरजा के कान के पास मुँह लाकर फुसफुसायी, "वैसे तो हमारे वो भी बहुत मानते हैं। कानपुर से कभी

छठे-छमाये आते हैं लेकिन हर तीसरे दिन कभी कानपुर की साटन छींट, कभी लखनऊ की गजक रेवड़ी, कभी कालपी की गुझिया। और आते हैं तो बस···लेकिन उनसे बढ़के हमारे बुढ़ऊ हैं। रात-दिन चक्कर लगाते हैं चक्करघिन्नी की तरह और जैसे-जैसे उमर बढ़ती जाती है वैसे-वैसे लोभ···जानती है ? कहते हैं···"

और इसके बाद छोटी बहू की अन्तरंग वार्ता शुरू हो गयी। बिरजा बीच-बीच में मुंशीजी के प्यार की बहुत मीठी बातें याद कर-करके रोती जा रही थी और छोटी बहू की प्रणय-गाथा सुनती जा रही थी। असल में छोटी बहू और बिरजा की दोस्ती का मुख्य आधार यही था। बरसों से छोटी बहू तड़प रही थीं कि कैसे उन्होंने बेटे और बाप दोनों को कठपुतली बना रखा है इसका किस्सा किसे सुनायें कैसे सुनायें। बरसों बाद बिरजा मिली थी जिससे बात फूटने का डर नहीं था।

बिस्तर पर बीमार पड़े-पड़े—इतने दिन से पड़े-पड़े अब मुंशीजी के लिए संसार आवाजों का संसार हो गया था। पहले धूप के चढ़ाव-उतार से वक्त गुजरना मालूम होता था। अब दिशा और काल दोनों आवाजों में बदल गये थे। बहुत सुबह, पौ फटने के पहले खेत के कुएँ पर की गड़ारी बोलने लगती थी। कभी-कभी अगर हवा इधर की हो तो जमुना के पुल पर से चरबज्जी (चार बजेवाली) डाकगाड़ी के गुजरने की आवाज आती थी। फिर गली में से बदलू कुम्हार खच्चर पर सकोरे लादकर हट्टी ले जाता था। खेत में एक खास वक्त पर टिटिहरी बोलती थी और दोपहर को तोते। ओलती के बाँसों पर कभी-कभी कबूतर का जोड़ा आ बैठता था और कभी-कभी पतंग लूटते बच्चों का शोर। कभी पिड़ोर मिट्टी, कभी पुराने बरतन और कभी कपड़े बेचनेवालों की आवाजें, कभी नल की टिप-टिप-टिप···जिस दिन रात को आठ बजे कल्यानी देवी के मन्दिर की आरती का घण्टा घड़ियाली सुनायी पड़ जाये उस दिन मुंशीजी लेटे-लेटे हाथ जोड़ लेते थे। कुछ आवाजें समय और आयु का बन्धन पार कर अपने को दोहराती थीं और वर्तमान की आवाजों में ऐसे घुल-मिल जाती थीं गोया अभी-अभी बोली गयी हों। उनके साथ कभी-कभी मुंशीजी की अपनी आवाज भी होती थी। एक दिन नैनी से छूटकर जमुना पुल पर गाड़ी की आवाज आयी कि मुंशीजी को हरदेई की आवाज सुनायी पड़ी। "बेटा, तुम्हारा खैनी-तमाखू का बटुआ आले में रख दिया है, कचहरी जाते बखत ले लैना।" मुंशीजी चौंक पड़े। नैनी से यहाँ रेलगाड़ी की आवाज आ जाये हरदेई की थोड़े ही आ सकती है ! एक दिन तीसरे पहर वही बाँस के कीड़ों की आवाज। कर्र-कर्र : "अब हम जायँ ! कहो तो नीचे सो रहैं !" बिरजा की आवाज। "अब कहाँ जाना है। बिरजा।" पर मुंशीजी तो बोले नहीं ! बिरजा भी थी ही नहीं ! कुछ आवाजों का मुंशीजी को इन्तजार रहता था। संझा बेला, बल्कि गोधूलि तक राघोराम के बूट की चर्र-मर्र और पहला सवाल "माई रे ! मुंशीजी ने दवा खा ली ? कैसी तबीयत है ?" और इस

आवाज पर मुंशीजी को लगता था बदन की पीर कम हो गयी।

लेकिन सबसे अजीब लगता था जब मुंशीजी पड़े-पड़े आँख खोलते और गोबर लिपी दीवार, आला, ओलती, टीन के बक्से सब पर से घूमती हुई निगाह सामने पैताने की बड़ी खूँटी पर टिक जाती जहाँ हरिया की सारंगी टँगी थी। इस बीच में कब हरिया वहाँ अपनी सारंगी टाँग गया किसी ने गौर भी नहीं किया। कोठरी में अँधेरा था पर मोखे में से रोशनी सारंगी पर बराबर पड़ी रहती थी। इतनी सारी तमाम-तमाम आवाजों के बीच खामोश टँगी एक सारंगी बिलकुल बेआवाज। मुंशीजी अकसर उसे बेमतलब देखते रहते एकटक, फिर आँख मूँदकर इन्तजार करते कि कोई अदृश्य हाथ कमानी खींचेगा और सारंगी से बोल फूटेंगे।

कभी-कभी आँख मूँदे-मूँदे मुंशीजी को लगता कि कोठरी, खाट, मोखा सब छोटे हो गये हैं और सारंगी इतनी बड़ी, इतनी बड़ा, इतनी बड़ी हो गयी है कि सब आवाजें उसी में बजने लगी हैं। कुएँ की गड़ारी, पुल पर गुजरती रेल, कबूतर की गुटरगूँ, बसन्तू के लँगड़े घोड़े की लदर-फदर, हरदेई, बिरजा, मुंशीजी सबकी आवाजें उसी में बज रही हैं। कौन निकालता है ये बोल ? मुंशीजी अचरज से आँखें खोलते तो पाते खूँटी पर सारंगी वैसी ही टँगी है, खामोश, बेआवाज !

हफ्तों बीत गये थे हरिया ऊपर आया भी नहीं था सारंगी देखने तक के लिए। इधर जब से राघोराम की शादी की चर्चा थी हरिया का चित्त सारंगी से भी उचट गया। कहाँ घूमता रहता था कुछ पता नहीं। घर में अलबत्ता शान्ति थी। वैसे एक-आध झपट सुबह-शाम बिरजा से होती और फिर बहुत देर तक बिरजा की झककल चालू रहती।

उस दिन भवनाथ ने आकर बताया कि आजकल हरिया की चाल बहुत बिगड़ गयी है। वो मेहरिया बेड़िन है न, उसी के चक्कर में है। एक बार तो दारू पीकर घूम रहा था। अनवर अफीमची ने एक बदनाम बेड़िन बैठा ली थी, बाद में उसे मुसलमान बनाकर उससे निकाह भी पढ़ा लिया था। नया नाम था मेहरुन्निसा लेकिन सब उसे मेहरिया ही कहते थे। मशहूर था कि वह शुरू से ही कभी किसी को 'नहीं' नहीं कह सकती थी और निकाह के बाद भी वह ज्यों-की-त्यों थी। इसलिए मुहल्ले की कहावत बन गयी थी—"अनवर की बीवी, शहर भर की मेहरिया।" लेकिन हरिया ! वह तो बच्चा था उसके आगे। कम-से-कम बारह बरस बड़ी तो होगी। छी-छी !"

बिरजा को दूसरा शक पड़ गया। कुछ दिन पहले राघोराम की बहू के लिए जो कपड़ा-जेवर रखा था, उसमें से एक नये चाल की अँगिया और एक इकलाई की चूड़िया पाड़ की धोती नहीं मिल रही थी। हो न हो यह हरिया की करतूत है। आने देव। अबकी लोटा से उसकी खोपड़ी का कचूमर न निकाला तो बिरजा बिरजा नहीं।

ले जाये अपना कपड़ा-लत्ता, सारंगी और रहे उसी अफीमची के घर। दारू पिये, कहे तो बिरजा लोटा में संखिया घोल के पिला दे।

जरूर बीमारी का असर था नहीं तो मुंशीजी के दिमाग में ऐसा गलीज खयाल काहे को आता। सामने सारंगी टँगी थी न, उसे देखकर उन्हें बार-बार मेहरिया के पतले छरहरे बदन का ख़याल आता था। उन्होंने एक बार देखा था। ऊपर सारंगी का हत्था होता है न, नीचे दो कटाव, पतली कमर, कूल्हे की तरह फिर गोल पेटा। सुनहरा गन्दुमी रंग। छरहरा बदन, ऐसे ही कूल्हे की दो हड्डियाँ उभरी हुई और···छी ! छी ! तब मुंशीजी को कैसा लगा था ? हुआ यह था कि सत्तार खाँ तब कोतवाल थे, बड़े दबंग। अपने वकील साहब से बहुत छनती थी। वकील साहब के ही किसी काम से कोतवाली गये थे। कोतवाल साहब अन्दर के कमरे में थे, मुजरिमों की पेशी हो रही थी। वहीं उन्होंने मुंशीजी को बुला लिया था। बेड़िन की बिटिया तब चौदह-पन्द्रह बरस की होगी, लेकिन कच्ची शराब के किसी किस्से में पकड़कर लायी गयी थी। आते ही उसने पुलिसवालों के बेड़िनों के साथ के मधुर सम्बन्धों का वर्णन चीख-चीखकर ऐसे अल्फाज में करना शुरू किया कि कोतवाल साहब बिगड़ गये, "साली के कपड़े उतारकर दस जूते लगाओ।" "जूते लगा लो, खबरदार हाथ न लगाना। हम खुद अपने कपड़े उतार देंगे," और बिजली की तेजी से उसने अपने कहे पर अमल करना शुरू कर दिया। कपड़े यह जा वह जा और आँख मटकाकर कोतवाल साहब को चिढ़ाये जाय। सत्तार खाँ रोजा-नमाज धरम-करम के पक्के थे : "तौबा ! तौबा ! दोजखी है साली। नंगी मादरजाद ! ले जाओ इसे !" मुंशीजी ने मुँह फेर लिया था।

लेकिन तब जिस बदन, कमर, कूल्हे की एक झलक भी उन्हें सह्य नहीं थी अब कभी-कभी सारंगी में उसे देखते रह जाते थे एकटक। बजरंग स्वामी ! यह क्या हो गया ? एक समय ऐसा आता है जब चीजों के नाम, रिश्ते, सन्दर्भ सब गायब हो जाते हैं। अनेक चीजें एक चीज बन जाती हैं। अब वह सिर्फ कमर थी, कूल्हे की उभरी हड्डियाँ, कमर का कटाव। खामोश, बेआवाज औरत का बदन। नाम कोई भी हो।

और फिर मुंशीजी को याद आता कि जब ये बहुत उद्विग्न थे तब वकील साहब ने कहा था, "मुंशीजी, तुम तो समझदार हो ! जो किया तो अब नतीजे के लिए तैयार रहो। भैया हम दोष नहीं देते। यह औरत ऐसी खाई है कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भवसागर पार कर गये लेकिन इस खाई में गिरे तो बचे नहीं। फिर हम-तुम तो इनसान हैं। इसी मोह-माया से पैदा हुए हैं। इसमें शान्ति नहीं पर इससे निस्तार भी तो नहीं। अब मन छोटा न करो, कुछ दिन बदरीनाथ हो आओ। मन शान्त हो जायेगा।" काश ! मुंशीजी उस रात रुकते नहीं, बदरीनाथ हो ही आते। भगवान् उसी का दण्ड तो नहीं दे रहे हो ?

हरिया की हरकतों पर कई बार मुंशीजी को मर्मान्तक कष्ट हुआ है। सारंगी पर संगतवाली बात पहले दिन सुनी थी तो कितने बेचैन हुए थे लेकिन इतनी बड़ी बात

पर उन्हें कुछ व्यथा ही नहीं। बस यह सोचते रहे कि यह मेहरिया छोटी थी तो अपने से दस-दस, बीस-बीस बरस बड़े मरदों को नचाती थी और अब अनवर अफीमची की छाती पर मूँग दलकर दस-दस बरस छोटे छोकड़ों को नचाती है। और अनेक आवाजों में एक पुरानी आवाज गूँजती हुई। एक दिन तास-पत्ते के दिन इसाक मियाँ की टाल पर लकड़ी माँगने आयी थी मेहरुन्निसा और पैसा दिया नहीं। फरमाइश पर एक गजल सुनायी थी—"पान खाना, लब रचना, दिल लुभाना छोड़ दो !" और चलते वखत मुंशीजी को कोहनी मार के बोली, "खेत में से जाना है। हमें डर लगता है, घर पहुँचा दो न ! अकेली हूँ। अनवर निगोड़ा तो डेरे के साथ गया है।" अन्त में राम का भार बड़े मौके पर लक्ष्मण ने सँभाल लिया था। भवनाथ उठ खड़े हुए पहुँचाने के लिए। मुंशीजी को बजरंग स्वामी ने बचा लिया, लेकिन अब हरिया को कौन बचाये !

(लेकिन कौन बचता है। गीता की टीका में पढ़ा था, न जो बचता है वह बचता नहीं और जो नहीं बचता वह कहीं बच जाता है। लेकिन अब पता नहीं क्यों, मुंशीजी का मन गीता में लगता ही नहीं था।)

हरिया पर कहाँ तक बचता। उस दिन इसाक मियाँ ने पकड़ लिया। लकड़ी लादकर जमना पार से नावें आयी थीं और इसाक मियाँ माल छुड़ाने गये थे। लौट रहे थे तो बीच में जहाँ बिलकुल निचाट जंगल है और बेरी के पेड़ हैं, वहाँ एक बेर के पेड़ के नीचे हरिया बैठा बेर खा रहा था। बगल में कपड़ों की पोटरी थी। दो-चार झापड़ खाकर सब कबूल दिया। मेहरिया ने कहा था कि उसे जिन्न जगाना आता है। नदी किनारे सियार की माँद पर सूरज डूबते समय सब कपड़े उतारकर सिद्धी जगाती है। लेकिन हरिया या तो जोड़ी कपड़ा दे या पाँच रुपया। हरीराम जोड़ी कपड़ा लिये सियार की माँद के पास मेहरिया के आने के इन्तजार में बैठे थे। भवनाथ टाल से हरिया को पकड़ चोरी के माल सहित घर लाये थे और फिर जो आँगन में कोहराम मचा था कि पाण्डेजी घर से दौड़कर आये कि हो क्या गया। बिरजा ने चूल्हे की लकड़ी निकालकर हरिया को पीटा था और अगर मुंशीजी ऊपर से चिल्लाते नहीं तो उस दिन हरिया की हड्डी-पसली नहीं बचती।

पिट-पिटाकर हरिया ऊपर आया। पहली बार हरिया सचमुच सहमा हुआ था, दयनीय ! चोट काफी लगी थी। थोड़ी देर कराहता रहा, फिर दीवार का सहारा लेकर उठा, अपनी सारंगी उतारी, झाड़-पोंछकर उसकी खूँटियाँ कसने लगा। लेकिन न मुंशीजी से वह बोला, न मुंशीजी ने उससे कुछ कहा। इसी बीच राघोराम आया। मुंशीजी को लौकी का झोर पिलाकर बदन दाबकर चला गया। और तब पता नहीं मुंशीजी को क्या सूझा। बोले, "जिन्न क्यों जगा रहा है रे हरी !" हरी ने अचरज से देखा, जवाब दे कि न दे। मुंशीजी ने फिर कहा, "बोल रे !" "क्या करें ! क्या हमारा मन नहीं होता कि राघो भैया की तरह खायें, पहनें ? लेकिन हम किसी की नौकरी नहीं बजावैंगे। जिन्न सध जाये तो···" हरीराम की आँखों में बड़े-बड़े आँसू थे। और पता नहीं भगवान् ने कैसी मति फेरी मुंशीजी की, बुलाया, "हरीराम इधर आ !"

हरीराम सम्भावित तमाचे से अपना मुँह दोनों हाथों से बचाये, पास जाकर खड़ा हुआ कि उन्होंने टटोलकर तीन रुपये और कुछ रेजगारी निकालकर दी, "देख हरी ! माई से कुछ नहीं कहना, समझा ! ये पाँच रुपये ले जा। जब तेरे मन में जाग गयी है तो जो मन में आये कर ले। फिर अपने इलम-हुनर में लग। सारंगी छोड़ना नहीं है, समझा ! और उस औरत की संगत में पड़ गया तो अब तो पड़ ही गया मगर देख उसके चंगुल में नहीं पड़ना। समझा !"

हरीराम पहले डर गये, फिर चारों ओर देखा, फिर रुपये गिनकर टेंट में खोंसे, फिर बहुत प्रसन्न होकर कोने में जा बैठे। आधा दरद गायब हो गया था। और भी उत्साह से सारंगी ठीक करने लगे।

मुंशीजी के मन में जाने कौन-सी इच्छा अदम्य होने लगी। बड़े प्रगाढ़ स्वर में बोले, "हरिया ! जरा अपनी सारंगी सुना न ! हम भी सुनें !" हरिया के हाथ बड़े उत्साह से उठे, गज थामा, साधा, खींचा कि एकदम जैसे कुछ खयाल आ गया। झटककर सारंगी रख दी और उठकर खड़ा हो गया, "मुंशीजी, पाँच रुपये दे के हमारा इलम-हुनर माँगते हो ! ये रुपया हमपर उधार है। तुम्हारा भी, माई का भी, राघो भैया का भी ! जितना लिया है एक-एक पाई हरीराम चुका देंगे। हमारे इलम-हुनर में दखल देने की जरूरत नहीं, हाँ ! और सारंगी टाँगकर पाँव पटकते नीचे उतर गया।

मुंशीजी ने गहरी साँस ली और करवट बदलकर आँखें मूँद लीं।

कमजोरी तो बेहद थी, लेकिन बदन की ऐंठन और दरद में कमी थी और सबसे बड़ी बात यह थी कि मुंशीजी अन्दर से जाने क्यों बहुत हलका महसूस करने लगे थे। लगता था कि कठिन वक्त पार कर गये और वैदजी का भी कहना था कि फागुन लगते-लगते मुंशीजी चलने-फिरने लगेंगे। अगले दिन हरदेई नैनी से आयी तो मुंशीजी ने उससे कहा कि उनकी बड़ी इच्छा है नीचे ओसारे में खाट डलवाने की। आँगन देखे कितने दिन हो गये। भवनाथ, राघोराम, हरीराम सब मिल के किसी तरह मुंशीजी को नीचे लाये। बिरजा भी खुश थी। तीन-चार गोरसी में कोयला सुलगाकर लायी थी; आँगन सुबह उठकर बुहारा; तुलसी चौरा को गेरू से रँगा। आँगन में धूप बहुत अच्छी लग रही थी। जहाँ बिरजा ने चावल बीनकर किरनकी फेंकी थी वहाँ गौरैया उतर आयी थी। हालाँकि एक बात का दूसरी से कोई तारतम्य नहीं था। लेकिन जाने क्यों धूप में गौरैया को फुदकता देखकर मुंशीजी को लगा कि उन्होंने बजरंग स्वामी से जो सवाल पूछा था उसका उत्तर चाहे न मिला हो पर भगवान् हैं, जरूर हैं। बिना उनके हुक्म के पत्ता नहीं खड़कता। इतवार था। शाम को वकील साहब देखने आये, मुंशीजी बहुत ही पुलककर बोले, "अब अच्छे ही समझो। कमजोरी बाकी है। अबकी फागुन-चैत में कपाट खुल

जाये तो बदरीनाथ भगवान् के दरसन जरूर करेंगे।"

"राघो की माँ को भी ले जाना।" वकील साहब बोले।

रात को ओसारे में टाट का परदा टाँगकर सर्दी की रोक की गयी और इसाक मियाँ ने टाल से कुन्दे भिजवा दिये कि ईंट का थाला बनाकर सुलगा दें—ठिठुरन नहीं व्यापैगी।

तीसरे दिन बिटौनी आयी। यही शाम को तीन-चार का समय रहा होगा। बिरजा भात राँध के, राघोराम को कचहरी भेज के चल देती थी, कभी छोटी बहू, कभी विशन मामा, कभी पँड़ाइन के यहाँ। न वह बताती थी, न मुंशीजी पूछते थे। बिटौनी आई और बैठी ही थी कि उसके मिनट-भर बाद बिरजा खबर पाकर तुरत आयी और कनखी से बिटौनी की ओर देखते हुए अत्यन्त मर्यादित गृहिणी की तरह बोली, "जरा पल-भर के लिए छोटी बहू ने बुलाया था तुम्हारी तबीयत का हाल पूछने। तुम्हारी आँख लग गयी थी तो जगाया नहीं।" और फिर मुंशीजी का कम्बल-तकिया ठीक करते हुए उनके माथे पर हलके से हाथ फेरकर उधर तख्त पर बैठकर सुपारी कतरने लगी।

बिटौनी बहुत देर तक भैया के पास बैठी रही। ज्यादा बोली नहीं। अगर मुंशीजी सतसहाय या बच्चों के बारे में पूछें तो बता दे और बाकी बीच-बीच में आँख डबडबाकर चुपचाप भैया की ओर देखती रहे। बहुत देर बाद दबी जबान में बोली, "भैया तुम खुश रहो, अच्छे रहो हम कभी कुछ कहती थीं तो इसी खयाल से कहती थीं। हमारे कहे-सुने को क्षमा कर देना !"

"नहीं बिटौनी ! ठीक है बेटा !" मुंशीजी भरे गले से बोले। बिटौनी आँख पोंछती उठ खड़ी हुई। बिरजा तख्त पर बैठी सुपारी कतरती रही। न बिटौनी उससे कुछ बोली न वह बिटौनी से। भवनाथ और राघोराम आ गये थे। राघोराम ने एक पल मुंशीजी की ओर देखा, फिर बोला, "ठहरिए ! पान तो खाती जाइए !" और माँ के पास रखे पानदान से एक पान बना लाया।

बिटौनी ने निस्संकोच हाथ बढ़ाया कि बिरजा पर निगाह पड़ गयी और एकदम हाथ रोककर बोली, "हमारे यहाँ एक पान नहीं लेते, अशुभ माना जाता है।" राघोराम दूसरा पान बनाने उधर गया कि बिरजा ने पानदान अलग खींच लिया बोली, "हम छोटे आदमी हैं, गरीब आदमी हैं। एक ही पान है। नहीं खाना हो तो न खाओ भाई ! हमें मान रखना था सो रख दिया।"

"अरे छोटे को छोटा नहीं समझते, " भवनाथ बीच-बचाव करने के लिए बोले, "बरोसी में बड़ा कोयला जल जाता है, छोटा कोयला ठहर जाता है।" और बरोसी पर आग तपता हुआ हाथ उधर बढ़ाकर बोले, "लाओ, लाओ, बहन की ओर से हम ले लेते हैं पान !"

चलते-चलते बिटौनी ने फिर मुड़कर भैया की ओर देखा, "कैसी कंचन काया थी भैया की। मिट्टी में मिला दी लोगों ने ! हे भगवान् !" और चली गयी। बिरजा ने

सरौते में दबी सुपारी दाँत भींच के एक ही झटके में कतर दी। "ऊँह ! आवें चाहे जायँ !"

मुंशीजी जड़ थे। भावशून्य !

पता नहीं मगज की कमजोरी थी या थकान, अकसर पहले दिन जिन बातों पर उनका खून खौल उठे या मन चोट खा जाये ऐसी अनेक बातें अब उनका मन ऊपर से ही टाल देती थीं। तर्कपूर्ण तारतम्य जुड़ता ही नहीं था या जुड़ता था तो ऐसा जैसा गौरैया देख के भगवान् का ! लेकिन शायद एक बात और थी, पहले मुंशीजी के सामने गीता के सीन के मुताबिक सारा सीन साफ था। परदे पर इधर पाण्डो सेना बनी है इधर कौरो सेना, बीच स्टेज पर अर्जुन खड़ा है। इधर सब सम्बन्धी हैं, पर उधर भी तो सब अपने हैं। अर्जुन कैसे बान चलाये ! लेकिन यहाँ तो परदे पर मुसव्विर ने सीन ही गलत पेण्ट कर दिया। दोनों सम्बन्धी हैं, लेकिन दोनों ही मुंशीजी का पक्ष लेकर मुंशीजी के ही खिलाफ हल्ला बोल रही हैं। अब मुंशीजी क्या बान चलावें और क्या मोह बखानैं। दोनों बराबर, दोनों बेकार। राघोराम लौकी का झोर बनाकर ले आया था और वे उसमें थोड़ा पिसा जीरा और डालकर चुपचाप पीने लगे। हरी धनिया होती तो और मजा आता।

ठण्ड बढ़ गयी थी। ओसारे का टाट गिरा दिया राघोराम ने और आग में एक नया कुन्दा डाल दिया। मुंशीजी अच्छी तरह कम्बल लपेटकर लेट गये। आँख बन्द कर ली और जाने क्यों बिटौनी का खयाल लौट आया। यह पाकड़ तले हनुमानजी की मूरत मिली थी न, उस दिन बच्चों के साथ मेड़ पर खेलते-खेलते बिटौनी को बड़ी देर हो गयी थी। खोजने गये तो बिटौनी और बाकी बच्चे पाकड़ तले जमे थे। पहुँचते ही बिटौनी ने बताया, "भैया, यहाँ पाताल लोक की सुरंग है। भगवान् जी भी दरवाज़े पर हैं।" मुंशीजी ने देखा हनुमानजी की मूर्ति थी और पास में एक भीटा। गहरी गुफा सरीखा। शायद सियारों ने खोदा होगा। बच्चे उत्साह से बोले, "मुंशी भैया, इसमें घुसो तो पाताल में निकलता है।" पाताल में क्या होता होगा ? मुंशीजी ने सोचा। नागबासुकी होगा, तक्षक भी होंगे, शेषनाग होगा और उनके सब सिपाही अर्दली नाग होंगे। अगर कोई वहाँ पहुँच जाये तो नाग-ही-नाग—नाग-ही-नाग। मुंशीजी को झुरझुरी छूटने लगी। बढ़ती ही गयी। आँख खोल दी। "राघोराम बेटा, बहुत सर्दी लग रही है। जरा एक कम्बल और डाल दे रे···" दाँत-से-दाँत बजने लगे थे और पसली में ऐसा दरद मानो कई-कई साँप डँस रहे हों। थोड़ी देर में घर-भर के कम्बल-रजाई-गद्दे लद गये और मुंशीजी की झुरझुरी बन्द नहीं हुई। राघोराम वैद्यजी को बुलाने दौड़ा।

"तुम लोग जान लेने पर तुले थे ! ऐसी नाजुक हालत मरीज की और खुले ओसारे में ला के डाल दिया ! ऊपर कोठरी में ले जाओ। लक्षण बहुत बुरे हैं। अगर

सरशाम हो गया तो धन्वन्तरि भी नहीं बचा सकेंगे ! तेल का और लोहे का दान करा देना। शनि की दोहरी मारक दृष्टि है !" वैद्यजी ने बताया।

रात-भर और दूसरे दिन-भर फेफड़े में बेहद बलगम जमा हो गया था। साँस घरघराकर चलती थी। लेकिन पूरे होश में थे। एक बार हँसे बोले भी। हरिया कब आया किसी को पता नहीं चला। लेकिन आकर उसी कोने में चुप मूरत की तरह बैठ गया। बीच में बोले मुंशीजी तो एकदम उठकर गया और बोला, "मुंशीजी ! वह हरामजादी है। बिलकुल दोजखी। हम उसके चंगुल में नहीं···" और राघोराम ने डाँट दिया, "क्या टें-टें लगाये है ! देखता नहीं मुंशीजी की क्या हालत है ! एक झापड़ देंगे···" डाँट खाकर फिर उसी कोने में आकर बैठ गया। बिलकुल खामोश !

रात आठ बजे भवनाथ टाल पर खाना खाकर हुक्का गुड़गुड़ाने जा ही रहे थे कि घबराया हुआ राघोराम पहुँचा, "आपको अम्मा बुलाती हैं !" भवनाथ हड़बड़ाकर उठे, "भैया तो ठीक हैं ?" "हाँ ठीक हैं।" बहुत भरी आवाज में उसने कहा। भवनाथ घर की तरफ चले तो बोला, "उधर नहीं बिशन मामा के घर !"

सब खामोश थे। वैद्यजी भी थे और राघोराम के ससुर गोविन्द महाराज भी। बिरजा औरतों के बीच में थी, बाल बिखरे, आँख सूजी, अजीब-सी शक्ल। वैद्यजी बोले, "भवनाथ, हमने कहा था न कि मारक दृष्टि है ! किसी-न-किसी को तो लेती ही !" और फिर गोविन्द महाराज ने बताया कि आज दोपहर को राघोराम का बाप गुजर गया। कुछ दिन से गोपीगंज में ही आ गया था, अफीम खा के पड़ा रहता था। अभी मट्टी नहीं उठी है। बिरजा और राघोराम जायेंगे तब उठेगी। एक मोटरवाला माल खरीदने इलाहाबाद आ रहा था। उसी के साथ आये हैं। उसी के साथ घण्टे भर में जाना है। इतनी देर में सबसे बातचीत करके तय हुआ है कि बिरजा और राघोराम अभी चले जायें। बिरजा कल शाम तक लौट आवे लेकिन राघोराम को तो दाग देना है, कम-से-कम तेरह दिन रहना पड़ेगा। पूजा करके सूतक शान्त करा देंगे। बियाह में कोई रुकावट नहीं आयेगी। उसी तारीख में हो जायेगा। अब देर करने की जरूरत नहीं। कपड़ा-बिस्तरा बाँधें और तुरत बिरजा और राघोराम चलें।

कोई कुछ नहीं बोला। कोई अपनी जगह से हिला भी नहीं। बस भवनाथ उठे और भौजी से बोले, "भौजी इधर आना !" बिरजा ने फटी-फटी आँखों से देखा और अपनी जगह जड़ बैठी रही। "भौजी तुम जाओगी ?" भवनाथ ने पूछा। बिरजा कुछ नहीं बोली। मामी टन्नाकर बोलीं, "अब ऐसे में मुंशियाना नहीं चलेगा लाला ! कोई छुट्टा-छेड़ा तो हुआ नहीं था। जाना तो पड़ेगा ही। राघोराम भी दाग नहीं देगा तो परेत-राच्छस बनके मुरदा छाती पर बैठा रहेगा। और गोपीगंजवाले तो ऐसे में बियाह करेंगे नहीं। बिरादरी में कौन करेगा हम देखेंगे !"

भवनाथ चुप खड़े रहे कि भौजी कुछ बोलें, नहीं बोलीं तो बोले, "चिन्ता न करो। भौजी ! हम चौबीस घण्टा रहेंगे। खाना तो हम तुमसे अच्छा बनाते हैं। कल शाम को तुम आ ही जाओगी।"

बिशन मामा खुद राघोराम के साथ गये कपड़ा-बिस्तरा निकलवाने। बाहर खड़े रहे। राघोराम ने बिना जरा भी खटपट किये कपड़ा-बिस्तरा निकाला। ऊपर झाँककर देखा। मुंशीजी सो रहे थे। हरिया भी कोने में कम्बल ओढ़ के सिमटा पड़ा था। वहीं सीढ़ी से धरती छू के मुंशीजी को प्रणाम किया और फिर जैसे कहीं कुछ जमा हो गया था। वह फूट के निकल पड़ा। सिसकते-सिसकते बाहर आया। बिशन मामा ने पीठ पर हाथ रखा, "आज तुम बेबाप के हो गये बेटा ! कोई बात नहीं, हम तो हैं !" रोते हुए अस्फुट स्वर में राघोराम क्या कह रहा था कुछ समझ में नहीं आया !

भवनाथ लौट के आये तो एक-एक पाँव सौ-सौ मन का हो रहा था। मुंशीजी सो रहे थे। बस साँस की घर-घर और साँस के साथ कम्बल का उठना-गिरना ! वैद्यजी कह रहे हैं कि बारह घण्टे में साँस की चाल ठीक हो जायेगी। कुम्भ नहाने आये थे राजा बराँव तो यही आलत हो गयी थी। बस इसी दवा से बारह घण्टे में उठ बैठे थे और घोड़ा दौड़ाते हुए बराँव लौटे थे। अब कोई चिन्ता नहीं। लेकिन हरिया के भरोसे भैया को भवनाथ कैसे छोड़ें ! हरिया को जगाया। औंघा-नींदी में घूम रहा था। "देख रे ! भौजी और राघोराम नैनी गये हैं। हरदेई की तबीयत खराब थी। समझा ! कल शाम को आयेंगी भौजी। हम चले जाते हैं अपना कम्बल-कथरी लाने। नीचे पड़ रहेंगे ! जब तक आवें सोनी मर्त !"

हरी उठ बैठा। नीचे की ढिबरी ला के ऊपर रख ली। लम्बे बीमार की एक कड़वी गन्ध होती है। दवा की, छाती के लेप की, काढ़े की—घुली-मिली। कोठरी में अँधेरा और गन्ध और मुंशीजी के साँस की घर-घर। ढिबरी आते ही अँधेरा हल्काया और खाट की, मुंशीजी की छाया दीवार पर भाँपने लगी। इस दीवार पर सारंगी की छाया। हरिया का जी बहुत घबराने लगा। कुछ समझ में नहीं आया। सारंगी उतारकर खूँटी उमेटने लगा। सुना मुंशीजी कराह रहे हैं। हरिया उठा। बुला रहे थे, "बिरजा, बिरजा !"

"माई और भैया नैनी गये हैं नानी की तबीयत खराब है।" हरिया बोला। मुंशीजी ने आँख खोलकर चारों ओर देखा—दीवाल, खपरैल, मोखा, टीन का सन्दूक। फिर आँख बन्द कर ली। "बजरंग स्वामी ! बड़ी पीर है !" फिर बोले, "राघो, बेटा राघो !"

हरिया पास आया, "भैया भी गये हैं। नींद नहीं आती मुंशीजी ! सारंगी सुनावें ! आप उस दिन कह रहे थे। नींद आ जायेगी।" मुंशीजी ने फिर आँख बन्द कर ली। गाने में सुना था बदरीनाथ के चन्दन के कपाट हैं। हीरा, मोती, पन्ना, पुखराज जड़ा है। देखा मोखे के पल्ले में कोई हीरा, मोती, पन्ना, पुखराज जड़ गया है। पास में बिरजा खड़ी है, "तो हम जायँ मुंशीजी !" मुंशीजी ने रोका नहीं। "जरा

कपाट खोलती जा रे ! बड़ी घुटन है कोठरी में !" कपाट खुल गये। मोखे के बाहर देखा। न खेत था न कुआँ। न हनुमान चौरा। बस ऊँचे-ऊँचे पहाड़ और बरफ, और निचाट रास्ता और मुंशीजी गुड़गुड़ी लेकर निकल गये। बरफ की आँधी हाड़-हाड़ कँपा रही थी। पाँव फट गये थे। जबान ऐंठ रही थी। बस घाटी और पहाड़। न कहीं मंदिर न तीरथ। कहीं कोई चिड़िया तक पंख नहीं मारती थी। बरफ, बियाबान बरफ। "अरे कोई है रे !" उन्होंने गला फाड़कर पुकारा।

"हम हैं न !" हरिया बोला। मुंशीजी ने आँख खोली। हरिया का चेहरा सूख गया था। "मुंशीजी ! ऐसे न देखो मुंशीजी ! हमें बड़ा डर लगता है। क्या चाहिए बोलो न ! मुंशीजी, हम भी तुम्हारे बेटा हैं, मुंशी ऽ ऽ जी ऽ ऽ।" हरिया बिलबिलाकर रो पड़ा। मुंशीजी ने आँखें फिर मूँद लीं और बरफ में धँसते चले गये... सब तरफ सन्नाटा था, बस कहीं सारंगी बज रही थी।

भवनाथ ने गली में ही हरिया की चीख सुनी। दौड़े-दौड़े आये। हाँफते-हाँफते सीढ़ी चढ़े। माथा-नब्ज देखा। बरफ की तरह ठण्डा पड़ गया था सारा शरीर। □